कन थोरे
कांकर घने
मलूक-वाणी
भगवान श्री रजनीश

भगवान् श्री रजनीश के नवीनतम प्रवचन-संकलन

- सर्वसार उपनिषद् (माथेरान शिविर के सत्रह प्रवचन)
- कैवल्य उपनिषद् (माऊन्ट आबू शिविर के सत्रह प्रवचन)
- जिन-सूत्र, भाग तीसरा (सोलह प्रवचन)
- गीता-दर्शन अध्याय-१७ (ग्यारह प्रवचन)
- गीता-दर्शन अध्याय-१३, १४ (कुल बाईस प्रवचन)
- मैंने रामरतन धन पायो (मीरा के पदों पर दस प्रवचन)

कन थोरे कांकर घने

(मलूक-वाणी पर दस प्रवचन)

प्रवचन :

भगवान् श्री रजनीश

संकलन-सम्पादन

स्वामी योग चिन्मय

रजनीश फाउन्डेशन प्रकाशन, पूना

१९७७

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी,
सचिव, रजनीश फाउन्डेशन,
श्री रजनीश आश्रम, १७ कोरेगांव पार्क, पूना–१

कॉपी राइट
रजनीश फाउन्डेशन, १९७७
प्रथम संस्करण : ११ दिसम्बर, १९७७
प्रतियाँ : ३०००

मूल्य
राज संस्करण : रुपये ५०
सामान्य संस्करण : रुपये ३०

मुद्रक
नारायण मु. उरुकीकर
श्री रजनीश आश्रम प्रेस, पूना–१

समाधि साधना शिविर, श्री रजनीश आश्रम, पूना में
दिनांक ११ से २० मई, १९७७ तक संत मलूकदास के पदों पर
भगवान् श्री रजनीश द्वारा दिये गये दस प्रवचन

आमुख

ये गीत मलूकदास के प्राणों की भेंट हैं। जो परमात्मा ने मलूकदास में दिया है, वह मलूकदास तुम्हें दे रहे हैं। जो परमात्मा में पहुँच कर मलूकदास को मिला है, वह उनके शब्दों पर सवार हो कर तुम तक पहुँच रहा है।

भक्तों के तो सारे वचन गाये गये हैं। भक्ति तो प्रेम है; प्रेम तो गीत है--प्रेम तो नाच है।

भक्त नाचे हैं; भक्त गुनगुनाये हैं। जब भगवान् हृदय में उतरे, तो कैसे रुकोगे --बिना गुनगुनाये? और करोगे क्या? और करते बनेगा भी क्या? विराट तुम्हारे आँगन में आ जायेगा, तो नाचोगे नहीं?--नाचोगे ही। यह नैसर्गिक है; स्वाभाविक है। रोओगे नहीं? आनन्द के आँसू न बहाओगे?--आँसू बहेंगे ही; रोके न रुकेंगे।

इन कविताओं में, इन छोटे-छोटे पदों में मलूकदास के नाच हैं—मलूकदास के आँसू हैं; मलूकदास के हृदय के भाव हैं। इनको तुम पण्डित की तरह मत तौलना। इनको तुम--काव्यशास्त्री की तरह इनका विश्लेषण मत करना। ये विश्लेषण की पकड़ में न आयेंगे। इनको तो तुम पीना; इनके साथ तो तुम भी गुनगुनाना और नाचना, तो ही पहचान होगी।

अन्तर्सूत्र

अलमस्त फकीरा

पहला प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक ११ मई, १९७७
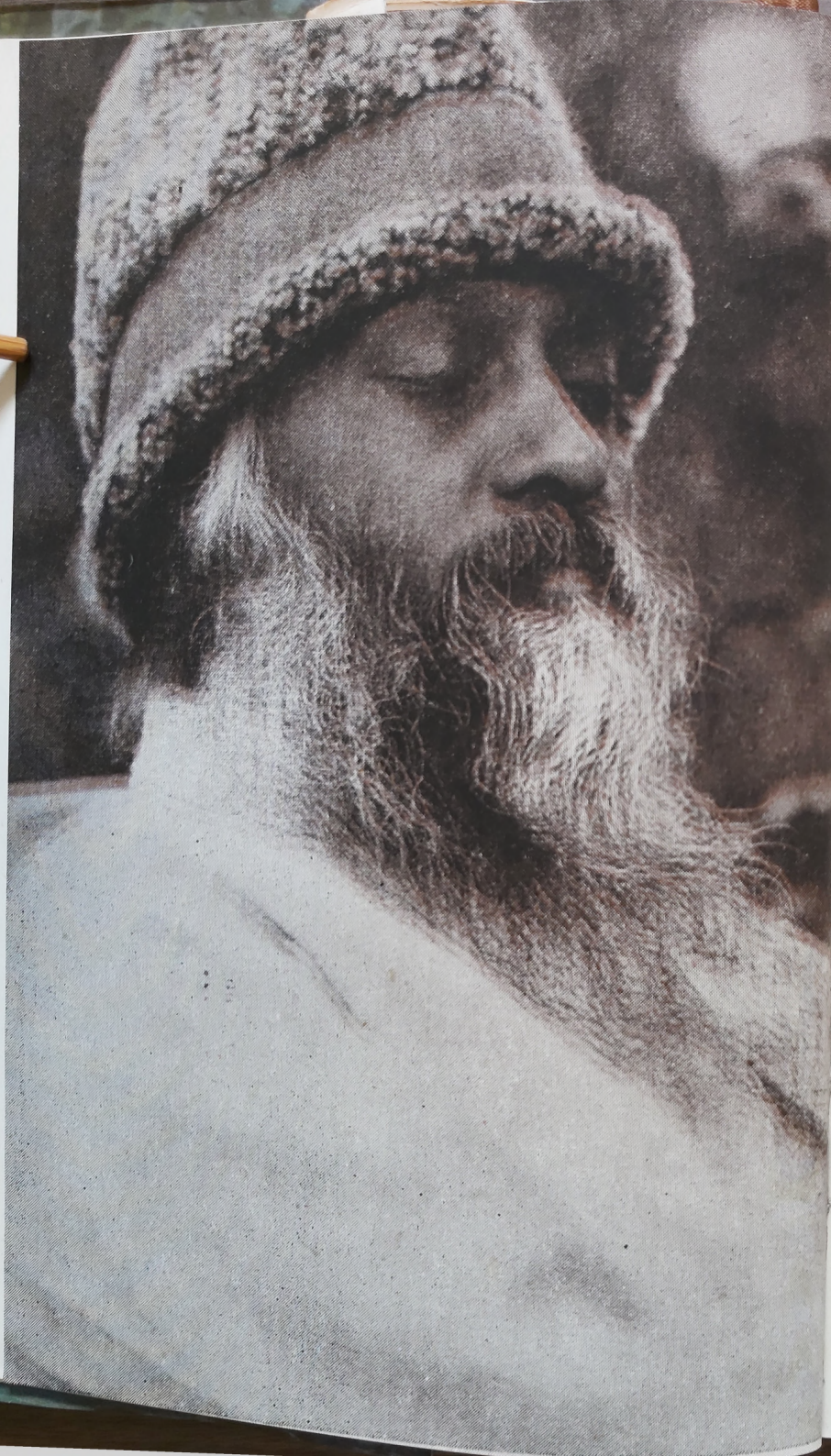
दर्द दिवानें बावरे, अलमस्त फकीरा ।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन धीरा ॥
प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी ।
आठ पहर यों झूमत, मैगल माता हाथी ॥
उनकी नहर न आवते, कोई रांजा-रंक ।
बंधन तोड़ें मोह के, फिरते निहसंक ॥
साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई ।
कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई ॥
आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे ॥
हरि का मर्म न पाइया, कारन कर ऊबे ।
करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया ।
बूड़ गए तरबोर को, कहुं खोज न पाया ॥
साध मंडली बैठिके, मूढ़ जाति बखानी ।
हम बड़ हम बड़ करि मुए, बूड़े बिन पानी ॥
तबके बांधि तेई नर, अजहुं नहिं छूटे ।
पकरि पकरि भलि भांति से, जमपूतन लूटे ॥
काम को सब त्यागि के, जो रामहिं गावै ।
दास मलूका यों कहै, तेहि अलख लखावै ॥

बाबा मलकूदास--यह नाम ही मेरी हृदय-वीणा को झंकृत कर जाता है। जैसे अचानक वसंत आ जाय! जैसे हजारों फूल अचानक झर जायँ!

नानक से मैं प्रभावित हूँ; कबीर से चकित हूँ; बाबा मलकूदास से मस्त। ऐसे शराब में डूबे हुए वचन किसी और दूसरे संत के नहीं हैं।

नानक में धर्म का सारसूत्र है, पर रूखा-सूखा। कबीर में अधर्म को चुनौती है --बड़ी क्रांतिकारी, बड़ी विद्रोही। मलकू में धर्म की मस्ती है; धर्म का परमहंस रूप; धर्म को जिसने पीया है, वह कैसा होगा। न तो धर्म के सारतत्त्व को कहने की बहुत चिंता है, न अधर्म से लड़ने का कोई आग्रह है। धर्म की शराब जिसने पी है उसके जीवन में कैसी मस्ती की तरंग होगी, उस तरंग से कैसे गीत फूट पड़ेंगे, उस तरंग से कैसे फूल झरेंगे, वैसे सरल अलमस्त फकीर का दिग्दर्शन होगा मलकू में।

झिर-झिर कर झरे फूल
बरस गया हरसिंगार।
मेघ ये बरसते हैं
बूँद-बूँद रिसते हैं
सजल मेघ बनकर सखी
बिखर गया हरसिंगार।
वायु के झकोरों पर
दूर-दूर छोरों तक
महंमे दे गंध दान
बिथुर गया हरसिंगार।
फूलों की अंजुली भर
कन-कन को सुरभित कर
बन कर सखी वीतराग
निखर गया हर सिंगार।

जैसे वृक्ष फूलों में झर जाता है, ऐसे बाबा मलकूदास अपने वचनों में झरे हैं। न किसी का समर्थन है, न किसी का विरोध है। जो भीतर भर गया है, उसका सहज प्रवाह है। जिन्हें मस्त होना है; जिन्हें डूबना है; जिन्हें न तो धर्म की कोई तार्किक व्याख्या करनी है, न अधर्म के साथ कोई संघर्ष करना है; जिन्हें उस अपने भीतर पड़ी वीणा के तारों को झंकृत कर लेना है, जिसके झंकृत हुए बिना न तो सत्य को कोई जानता है और न असत्य से कोई संघर्ष संभव है।

मलूक से ज्यादा सुंदर सरोवर और कहीं न मिलेगा। जिन्हें प्यास है और जो प्यास को बुझाने को आतुर हैं, और जल के संबंध में विवेचना की जिन्हें चिंता नहीं है; जो कहते हैं : हम प्यासे हैं और हमें प्रयोजन नहीं कि जल की व्याख्या क्या है, हम जल चाहते हैं...।

और प्यास मिटाने को जल की व्याख्या थोड़े ही समझनी पड़ती है। कितना ही तुम जान लो कि जल कैसे बनता है; कितना ही कोई समझा दे कि ऑक्सीजन और उद्जन से मिलकर बनता है; तुम्हारे हाथ में सूत्र दे दे 'एच टू ओ' का कि यह रहा जल का सूत्र--तो भी प्यास तो नहीं बुझती। प्यास तो जल से बुझती है। और प्यास बुझाने के लिए, जल कैसे निर्मित हुआ है, वह जानना तो जरूरी ही नहीं है। प्यास बुझाने के लिए तो झुकना और जल को अंजुली में भर लेना जरूरी है।

मलूक वैसे सरोवर हैं; तुम अगर झुके, तो तृप्त हो कर उठोगे। तुम अगर राजी हुए और तुमने हृदय के द्वार खोले, तो मलूक की तरंगें तुम्हें झंस्कृत कर जायेंगी; तुम नाच उठोगे। उस नाच में ही रूपांतरण है। तुम्हारे भीतर भी गीत का आविर्भाव होगा और उस गीत के जन्म में ही परमात्मा है।

शेख ने काबा, बरहमन ने दैर
दर-ए-मैखाना हमने ताका है।

मौलवी है, वह काबा की तरफ देख रहा है। ब्राह्मण है, वह मंदिर की तरफ देख रहा है, काशी की तरफ देख रहा है। 'दर-ए-मैखाना हमने ताका है'। लेकिन जो मस्त हैं, वे मधुशाला की तरफ देखते हैं। परमात्मा उनके लिए न काबा है, न काशी। परमात्मा उनके लिए मधुशाला है।

मलूकदास पियक्कड़ हैं। उनके शब्द-शब्द मे शराब है, उनके शब्द-शब्द में रस है; अगर तुम डूबे तो उबर जाओगे। तो समझने की चेष्टा कम करना, पीने की चेष्टा ज्यादा करना। बुद्धि से संबंध मत जोड़ना। मलूकदास का बुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं है। सरल बालक की भाँति उनके वचन हैं।

उनका एक ही वचन लोगों को पता है, शेष वचनों का कोई स्मरण नहीं है। वह वचन बहुत प्रसिद्ध हो गया और उसकी बड़ी गलत व्याख्या हो गई।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गया, सबके दाता राम ।।

यह खूब प्रसिद्ध हुआ—गलत कारणों से प्रसिद्ध हुआ। आलसियों ने प्रसिद्ध कर दिया। जिन्हें भी काम से बचना था, उन्हें इसमें आड़ मिल गई। आदमी बड़ा बेईमान है। मलूक का अर्थ कुछ और ही था। मलूक यह नहीं कह रहे हैं कि कुछ न करो। यह तो कह ही नहीं सकते हैं। मलूक यह कह रहे हैं कि परमात्मा को करने दो—तुम न करो।

अजगर करै न चाकरी—सच है। किसने अजगर को नौकरी करते देखा? लेकिन अजगर भी सतत काम में लगा रहता है। पंछी करै न काम—सच है। पंछी दफ्तर में क्लर्की नहीं करते, न मजिस्ट्रेट होते, न स्कूलों में मास्टरी करते, न दुकान चलाते हैं। लेकिन काम में तो चौबीस घंटे लगे रहते हैं। सुबह सूरज निकला नहीं कि पंछी काम पर निकले नहीं। साँझ सूरज ढलेगा, तब काम रुकेगा। अर्जित करेंगे दिन भर, तब रात विश्राम करेंगे।

काम तो विराट् चलता है। काम तो छोटी-सी चींटी भी करती है। काम से यहाँ कोई भी खाली नहीं है। फिर क्यों कहा होगा मलूक ने 'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम'? मलूक का अर्थ है: इस काम में कहीं कर्ता का भाव नहीं है; 'मैं कर रहा हूँ,' ऐसी कोई धारणा नहीं है। जो परमात्मा कराये! जिहि विधि राखै राम! जो करा लेता है, वही कर रहे हैं। करने वाला वह है, हम सिर्फ उपकरण मात्र हैं।

दास मलूका कहि गया, सबके दाता राम।

तो न तो हम कर्ता हैं, न हम भोक्ता हैं। न हम कर्ता हैं और न हम करने में सफल या असफल हो सकते हैं। वही करता है—वही हो सफल, वही हो असफल। ऐसी जिसकी जीवन-दृष्टि हो, उसके जीवन में तनाव न रह जायेगा, चिंता न रह जायेगी।

यह सूत्र तनाव को मिटाने का सबसे बड़ा सूत्र है। यह सूत्र काफी है—मनुष्य के जीवन से सारी चिंता छीन लेने के लिए। चिंता ही क्या है? चिंता एक ही है कि कहीं मैं न हार जाऊँ। चिंता एक ही है कि कहीं और कोई न जीत जाय। चिंता एक ही है कि मैं जीत पाऊंगा या नहीं? चिंता एक ही है कि कोई भूल-चूक न हो जाय। चिंता एक ही है कि जिस मंजिल पर निकला हूँ, वह मुझे मिलकर रहे।

जिसने समझा: 'सबके दाता राम', उसकी सारी चिंता गई। अहंकार गया, तो चिंता गई। कर्ता का भाव गया, तो बेचैनी गई। फिर चैन ही चैन है। फिर असफलता में भी सफलता है; निर्धनता में भी धन है। फिर मृत्यु में भी महाजीवन

है। और अभी तो सफलता में भी असफलता ही हाथ लगती है।

तुमने देखा नहीं: सफल आदमी किस बुरी तरह असफल हो जाता है! सफलता के शिखर पर पहुँच कर कैसा उदास हो जाता है! सफलता तो मिल गई, और क्या मिला? सफलता तो हाथ आ गई, सारा जीवन हाथ से निकल गया। और सफलता बड़ी थोथी है। सफलता सफलता लाती कहाँ है? धन इकट्ठा कर लिया जीवन भर गँवाकर—और तब पता चलता है कि धन को खाओगे, पीओगे, ओढ़ोगे—क्या करोगे? और मौत करीब आने लगी। धन मौत से बचा न सकेगा। तब याद आती है कि ध्यान ही कर लिया होता, तो ठीक था। क्योंकि ध्यान ही है एक सूत्र, जो अमृत से जोड़ देता है।

बन गए राष्ट्रपति कि प्रधानमंत्री; पहुँच कर पद पर क्या होगा? मौत सब छीन लेगी। तुमने जो दूसरों से छीना है, मौत तुमसे छीन लेगी। मौत सब छीना-झपटी समाप्त कर देती है। मौत बड़ी समाजवादी है, सबको समान कर देती है—गरीब और अमीर को, हारे को और जीते को, सबको एक साथ मिट्टी में मिला देती है, एक जैसा मिट्टी में मिला देती है। जीते के साथ कुछ भेद नहीं करती, हारे के साथ कुछ भेद नहीं करती। गोरे के साथ कुछ भेद नहीं करती; काले के साथ कुछ भेद नहीं करती। मौत परम समाजवादी है।

पा कर क्या होगा? जैसे रात कोई सपना देखे और सुबह आये और नींद टूटे और सपना खो जाये, ऐसे एक दिन मौत आती है और सब सपने टूट जाते हैं; पाया न पाया सब बराबर हो गया। लेकिन पाने की दौड़ में उस जीवन को गँवा दिया, जिसके माध्यम से उसे जाना जा सकता था—जिसे मौत नहीं छीन सकती है।

मलूक के इस सूत्र का अर्थ था...यह अपूर्व सूत्र है...इसका अर्थ था कि अगर तुम निश्चित होना चाहो, तो छोटा-सा काम है बस; जरा-सी तरकीब है; जरा-सी कला है—और कला यह है: अपने को हटा लो और परमात्मा को करने दे जो कराए। कराए तो ठीक, न कराए तो ठीक। पहुँचाए कहीं तो ठीक, न पहुँचाए तो ठीक। तुम सारी चिंता उस पर छोड़ दो। जिस पर इतना विराट जीवन ठहरा हुआ है, चाँद-तारे चलते हैं, ऋतुएँ घूमती हैं, सूरज निकलता है, डूबता है; इतना विराट जीवन का सागर, इतनी लहर जो सम्हालता है, तुम्हारी भी छोटी लहर सम्हाल लेगा।

इसका यह अर्थ नहीं कि तुम कुछ भी न करो। लहराना तो तुम्हें होगा, लेकिन उसे तुम अपने भीतर लहरने दो। तुम अपनी लहर को अपना अहंकार मत बनाओ। तुम अपनी लहर को उसके हाथ में समर्पित कर दो।

एक यह छोटा-सा सूत्र मलूकदास का लोगों को पता है और वह भी गलत कारणों

से पता है; वह भी आलसी दोहराते हैं जो कुछ नहीं करना चाहते; जो कर्ता होना तो नहीं छोड़ते, लेकिन धर्म की झंझट छोड़ देते हैं। और असली बात कर्म छोड़ना नहीं है; असली बात कर्ता का भाव छोड़ना है।

और अद्भुत सूत्र हैं मलूकदास के, लोगों की याददाश्त में नहीं रहे। आज जिन सूत्रों से हम मलूकदास पर बात शुरू करेंगे, वे सूत्र अपूर्व हैं। पहली तो बात, वे संन्यास के संबंध में हैं। दुनिया में बहुत मनीषी हुए, वे सभी संसार से शुरू करते हैं बात; मलूकदास ने संन्यास से शुरू की है बात।

स्वाभाविक भी है कि संसार से शुरू हो बात, क्योंकि जहाँ हम उलझे हैं, उसकी ही बात करो। बीमार से स्वास्थ्य की बात का क्या अर्थ होगा? बीमारी की बात करो। वही भाषा है उसकी, वही वह समझेगा भी। स्वास्थ्य तो पीछे आयेगा, जब बीमारी छूटेगी। इसलिए आमतौर से संतों के वचन संसार से शुरू होते हैं; फिर धीरे-धीरे फुसला कर संन्यास की बात आती है। धीरे-धीरे सरका-सरका कर संन्यास को तुम्हारे भीतर आरोपित किया जाता है।

मलूकदास संन्यास से शुरू करते हैं। कारण बहुत खूबी का है। मलूकदास कहते हैं: बीमारी की बात ही क्या करनी? स्वास्थ्य की बात समझ में आ जाय, तो बीमारी टिकती नहीं। बीमारी इसलिए टिकी है कि हम बीमारी ही बीमारी की बात कर रहे हैं। बीमारी इसलिए टिकी है कि हमारा सारा ध्यान बीमारी पर टिका है। बीमारी इसलिए टिकी है कि हम बीमारी से आँख नहीं हटाते। या तो कुछ लोग बीमारी में रस ले रहे हैं। जिनको हम भोगी कहते हैं, उनकी नजर भी बीमारी पर टिकी है—एकटक, एकजूट! या कुछ लोग जिनको हम योगी कहते हैं, बीमारी से भागने में संलग्न हैं; लेकिन उनकी नजर भी बीमारी पर टिकी है, कि बीमारी कहीं पकड़ न ले! कुछ हैं जो बीमारी में डूबे हैं, कुछ हैं जो बीमारी से भागे हैं; लेकिन दोनों का मन बीमारी में उलझा है।

मलूक कहते हैं: कुछ संन्यास की बात हो, कुछ पार की बात हो, कुछ चाँद-तारों की बात हो। जमीन पर आंखें गड़ाए-गड़ाए ही तो हम कीड़े-मकोड़े हो गए हैं। इसलिए बात शुरू करते हैं संन्यास से।

मेरे पास लोग आ कर अकसर पूछते हैं: 'आप एकदम से संन्यास में उतार देते हैं लोगों को!' संन्यास से ही बात शुरू करनी है। बहुत रह चुके संसारी तो तुम। और अगर जन्मों-जन्मों तक संसारी रह कर भी तुम नहीं समझे कि संसार व्यर्थ है, तो अब और कुछ बात कहने से समझ जाओगे, इसकी आशा व्यर्थ है।

तुम्हारे हाथ में कंकड़-पत्थर हैं। अगर तुम जन्मों के अनुभव से नहीं समझे कि ये कंकड़-पत्थर हैं, तो जब इनको बार-बार कंकड़-पत्थर कहने से तुम समझोगे,

ऐसी आशा नहीं हो सकती। अब तो कुछ हीरों की बात हो। शायद हीरों की बात से ही तुम्हें खयाल आये कि तुम जिन्हें ढो रहे हो—कंकड़-पत्थर हैं। शायद हीरों की बात से ही तुम्हारे जीवन में पहली बार तुलना उठे, तुम विचार करो कि मेरे पास जो है, वह पत्थर है या हीरा; क्योंकि हीरे की तो यह रही व्याख्या। तुम शायद अपनी गाँठ खोलो और अपने कंकड़-पत्थरों को एक बार पुनः देखो, इनमें कोई भी हीरा नहीं है।

हीरे की परख मिलनी चाहिए; कंकड़-पत्थर की निंदा से कुछ भी न होगा। हीरे की परख आ जाय, तो तुम खुद ही इन कंकड़-पत्थरों को छोड़ दोगे, हीरों की तलाश में लग जाओगे। तलाश तो तुम खूब करते हो; परख तुम्हारे पास नहीं है। दौड़ते नहीं हो, ऐसा नहीं है; गलत दिशाओं में दौड़ते हो। तो चलो, ठीक दिशा की बात हो।

इसलिए मैं भी संन्यास की बात करता हूँ और मेरा मलूकदास से बहुत तालमेल है, गहरी आत्मीयता है। एक ही जैसी तरंग है। मेरी भी दृष्टि यही है कि असार छोड़ने से नहीं छूटता, सार के अनुभव से छूटता है। श्रेष्ठ को पा लो, अश्रेष्ठ छूट जाता है। अश्रेष्ठ को छोड़ने से श्रेष्ठ नहीं मिलता।

त्यागियों ने तुम्हें कुछ और ही समझाया है। वे कहते हैं: संसार छोड़ो तो परमात्मा मिलेगा। मैं तुमसे कहता हूँ: तुम परमात्मा पाने में लग जाओ, संसार की फिक्र ही छोड़ दो। तुम परमात्मा की थोड़ी-सी भी अनुभूति में उतर गए, तो संसार छूटने लगेगा। जिस मात्रा में परमात्मा का प्रकाश आयेगा, उसी मात्रा में संसार का अंधकार अलग हो जायेगा।

अँधेरे से मत लड़ो—दीये को जलाओ। और अँधेरे की निंदा बहुत हो चुकी। कब तक अँधेरे की निंदा करते रहोगे? अँधेरे की निंदा व्यर्थ है। अँधेरे का कोई कसूर भी नहीं है। दीया जलाओ। एक छोटा दीया जला लो। इस अँधेरी रात की बहुत निन्दा मत करो। अँधेरे की हजारों वर्षों तक निन्दा करने से भी कुछ नहीं होता; निन्दा से दीया तो नहीं जलता। एक छोटा दीया जला लो। और छोटे दीये के जलते ही अँधेरा नष्ट हो जाता है—जन्मों-जन्मों का अँधेरा भी नष्ट हो जाता है। अँधेरा यह तो नहीं कह सकता कि मैं बहुत प्राचीन हूँ, तुम छोकरे, अभी-अभी पैदा हुए दीये से बुझूँगा? अँधेरे की कोई सामर्थ्य ही नहीं है; अँधेरा नपुंसक है।

संसार नपुंसक है। संसार का कोई बल नहीं है। तुम जरा संन्यास का स्वाद ले लो; एक बूंद तुम्हारे ओंठ से लग जाय संन्यास की, तो संसार जायेगा।

एक धारणा है संन्यास की कि संसार छोड़ो, तब संन्यास। एक और धारणा है

जिस पर मैं काम में लगा हूँ कि तुम संन्यासी हो जाओ; संसार छूटेगा, अपने से छूट जायेगा। छूटे, न छूटे, अंतर ही नहीं पड़ता; तुम उसके भीतर रहते भी उसके बाहर हो जाओगे।

तुमने मुझसे बहुत बार पूछा है : 'संन्यास क्या, संन्यास की परिभाषा क्या ?' ये सूत्र तुम्हें परिभाषा देंगे।

'दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा ले रहे, ऐसे मन धीरा।।'

'दर्द दिवाने बावरे'.. संन्यासी की पहली परिभाषा, कि जो प्रभु के विरह और मिलन की पीड़ा में मस्त है। समझना--विरह और मिलन की पीड़ा में मस्त। 'दर्द दिवाने बावरे'...। प्रभु को न पाया है, तब तक दर्द है—यह तो सच है। प्रभु को पा कर भी बहुत दर्द होता है। दर्द का गुण बदल जाता है, दर्द नहीं बदलता। मीठा हो जाता है दर्द। दर्द का दंश चला जाता है, बड़ी मिठास आ जाती है, मधुमय हो जाता है। प्रभु के विरह में एक दर्द है, जैसे काँटा चुभता है; प्रभु के मिलन में भी एक दर्द है, जैसे घाव पर किसी ने फूल रख दिया। मगर दर्द दोनों हैं।

संन्यासी इस दर्द में मस्त है और संसारी इस दर्द को भुलाने की चेष्टा में लगा है। संसारी का अर्थ है : जो इस बात को भुलाने की चेष्टा में लगा है कि प्रभु के न मिलने से कोई दर्द होता है। संसारी इस खोज में लगा है कि मैं किसी तरह प्रभु को भुलाने में पूरी तरह समर्थ हो जाऊँ। पीठ किये है प्रभु की तरफ। जीवन क्या है, जीवन का सत्य क्या है--इस सबकी तरफ पीठ किये है। खिलौनों से खेल रहा है। पीठ करने का कारण है।

यह याद भी आ जाये कि प्रभु है, तो पीड़ा शुरू हो जाती है। इस याद के साथ ही तुम्हारे जीवन में क्रांति का सूत्रपात होता है। अगर प्रभु है, तो फिर तुम क्या कर रहे हो—धन बटोर कर? अगर प्रभु है, तो दुकान चला कर तुम क्या कर रहे हो? अगर प्रभु है, तो पद-प्रतिष्ठा पा कर तुम क्या कर रहे हो? अगर प्रभु है, तो फिर सारी जीवन-ऊर्जा उसी की दिशा में लगा दो। क्योंकि उसी को पाने से कुछ पाया जायेगा। और तो कुछ भी पाने से कुछ भी न होगा।

मगर प्रभु है, यह बात ही पीड़ादायी है। प्रभु है और मुझे तो मिला नहीं, तो पीड़ा तो होगी। प्रभु है और मैं क्या करता रहा जन्मों-जन्मों तक, मैं कहाँ भटकता रहा, मैं किन दुःख स्वप्न में खोया रहा? प्रभु है और मैंने उसके द्वार पर दस्तक भी न दी! तो पीड़ा होगी।

इस पीड़ा से बचने की जो कोशिश करता है, वह संसारी है। इस पीड़ा में जो मस्त हो जाता है; जो कहता है : धन्यभागी मैं, चलो यह भी क्या कम है कि मुझे

प्रभु-विरह की पीड़ा हुई! प्रभु-विरह आ गया, तो मिलन भी आता ही होगा; पतझड़ आ गई, तो वसंत भी ज्यादा दूर नहीं होगा--प्रभु-विरह की पीडा में जिसे मस्ती आ गई, जो नाच उठा; यद्यपि उसके नाच में आँसू मिले होंगे--मिश्रित होंगे आँसू, लेकिन अब बड़ी पुलक से भरे होंगे, बड़े उत्साह से भरे होंगे, आँसू, बस, आँसू ही न होंगे अब।

संसार को पाकर तुम हँसो भी, तो हँसी में कुछ खास हँसी नहीं होती, क्योंकि तुम्हारी हँसी में भी मौत हँसती है। और प्रभु को खोया है, प्रभु को खोये बैठे हैं, ऐसी पीड़ा में तुम रोओ भी, तो तुम्हारे आँसुओं में रुदन नहीं होता; मिलन की छाया पड़ने लगती है, मिलन के प्रतिबिंब बनने लगते हैं।

'दर्द-दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।'

जो प्रभु के विरह और मिलन के दर्द में मस्त है--संन्यासी। जो कहता है : प्रभु मुझे मिला नहीं, लेकिन यह भी क्या कम है कि मुझे याद आ गई कि प्रभु मुझे मिला नहीं। अगर यह हो गया, तो मिलन भी होगा। विरह की रात कितनी लम्बी हो सकती है? आखिर मिलन की सुबह भी होगी। विरह है, तो मिलन है। विरह ही नहीं, तो फिर मिलन का कोई उपाय नहीं।

संसारी वही है, जो यह भुलाने की कोशिश कर रहा है कि मैं परमात्मा से बिछुड़ गया हूँ। वह हजार तरह से नकार रहा है। पहले तो वह कहता है : परमात्मा इत्यादि कुछ है नहीं; सब व्यर्थ की बात है। ऐसा कह कर वह मन को सांत्वना देता है। वह यह कहता है : परमात्मा है ही नहीं, इसलिए करने योग्य यही संसार है; और तो कुछ करने योग्य है ही नहीं।

परमात्मा नहीं है, ऐसा कह कर हम उस विरह से अपने को बचा रहे हैं, जो परमात्मा की मौजूदगी स्वीकार करते ही जीवन में खड़ा हो जायेगा; एक तूफान की भाँति, एक आँधी की भाँति आयेगा और हमें झकझोर देगा। हम पतझड़ से बच रहे हैं।

लेकिन ध्यान रहे। पतझड़ वसंत के लिए मार्ग बनाता है। सूखे पत्ते गिरते हैं, तो नई कोंपल के आने के लिए द्वार खुलता है। नहीं तो कोंपल के लिए आने के लिए द्वार कहाँ? सूखे पत्ते अड्डा जमाए रहें, तो नये पत्ते पैदा न हो सकेंगे। सूखे पत्ते स्थान खाली कर देते हैं, तो नये पत्ते आते हैं। रात सुबह के लिए आयोजन करती है। रात के अँधेरे में ही सुबह निर्मित होती है। रात्रि के गर्भ में ही सुबह का जन्म है।

संसारी वह जो कहता है : मुझे कोई विरह इत्यादि नहीं। है ही नहीं ईश्वर, तो विरह क्या होगा? अगर मुझे विरह इत्यादि है भी, तो धन का विरह हो रहा

है कि धन होना चाहिए, वह नहीं है; पत्नी का विरह हो रहा है, पत्नी मायके गई है; कि पति का विरह हो रहा है कि पति ने मुझे छोड़ दिया; कि बेटे का विरह हो रहा है कि बेटा नहीं जन्मा; कि पद का विरह हो रहा है कि पद मिलना था, मैं योग्य था--और नहीं मिला। इस तरह के हमारे हजार विरह हैं। एक विरह से बचने के लिए हमने हजार थोथे विरह पैदा कर लिए हैं और इनमें से कोई भी विरह मिलन नहीं लाता। यह तुमने देखा।

धन का विरह होता है, तो आदमी पीड़ित होता है और धन जब मिल जाता है तो कोई तृप्ति नहीं आती। ये विरह नपुंसक हैं, क्योंकि इनके बाद मिलन नहीं आता। पद न हो तो पीड़ा होती है, यह सच है; लेकिन पद के मिलने से तुमने कब किसी को सुखी देखा ? कोई पद के मिलने से सुख नहीं आता। निश्चित ही विरह झूठा रहा होगा। पुराना पत्ता तो गिर गया, नया पत्ता पैदा नहीं होता; तो पुराना पत्ता प्लास्टिक का रहा होगा, झूठा रहा होगा। धोखा था, मान्यता थी, आभास था। अगर पुराना पत्ता सच था, तो उसके गिरने से नये पत्ते को जगह मिलनी चाहिए थी।

अलेक्जेंडर दुःखी मरा, रोते हुए मरा, क्योंकि सारी दुनिया तो जीत ली, लेकिन अपना जीवन गँवा दिया। पूछो बड़े से बड़े धनपतियों से। अगर वे ईमानदार हों, तो वे कहेंगे कि जीवन में राख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिला; राख मिली। सब चुका कर बैठे हैं, हार कर बैठे हैं।

'दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।'

और जो प्रभु के मिलन-विरह में दुःखी हो रहा है, लेकिन दुःख में मस्ती है। दर्द-दिवाने बावरे ? जो दुःख को दुःख नहीं मान रहा है; अब कैसा दुःख ! प्रभु का विरह भी सुख है। प्रेमी की याद भी परम आनंद है। रो रहा है, लेकिन आँसुओं में उसके आने की पगध्वनि है !...अलमस्त फकीरा ! रो रहा है, लेकिन मस्ती है। रो रहा है, लेकिन निर्द्वन्द्व है, अलमस्त है।

फकीरा का अर्थ होता है : जिसके पास अपना कुछ भी नहीं। इसका ठीक वही अर्थ होता है, जो जीसस के इस वचन का है--जीसस ने कहा : धन्य हैं दरिद्र, क्योंकि प्रभु का राज्य उनका ही होगा। धन्य हैं दरिद्र !

किन दरिद्रों की बात कर रहे हैं ईसा ? उन दरिद्रों की, जो कहता है : हमारा अपने पास कुछ भी नहीं है; जो है, सब परमात्मा का है, हमारा क्या है; जिनकी कोई मालकियत का दावा नहीं है। खयाल करना फर्क। यह भी हो सकता है कि तुम सब धन छोड़ कर फकीर हो जाओ। लेकिन धन छोड़कर भी तुम यह दावा करते रहो कि वे लाखों तुम्हारे थे, तुमने त्यागे, तुमने बड़ा कृत्य किया ! तो तुम

फकीर नहीं हो ! तुम अभी धन का हिसाब रखे हो।

फकीर का अर्थ है : जिसने यह जाना कि मेरा यहाँ क्या हो सकता है ! मैं नहीं था, तब यह संसार था। मैं नहीं रहूँगा, तब भी यह संसार रहेगा। मेरे न होने, होने से कुछ भी तो अन्तर नहीं पड़ता। तो मैं थोड़े दिन के लिए बीच में आ जाता हूँ और दावे कर लेता हूँ !

तुम देखते हो, जमीन मर लोग लकीरें खींच कर दावे कर लिए हैं कि यह मेरी जमीन, यह मेरा देश ! सीमाएँ खींच ली हैं। जमीन को पता ही नहीं है कि किसकी जमीन। तुम आये और तुम चले जाओगे। तुम जमीन से पैदा हुए और जमीन में डूब जाओगे और खो जाओगे, और बीच में तुमने थोड़ी देर को बड़े सपने देखे, दावे कर लिए !

दावेदार जो नहीं है, वही दरिद्र, वही फकीर। जो कहता है, मेरा तो कुछ था ही नहीं, तो त्याग कैसे हो सकता है ? इसको समझना।

भोगी है, तो वह कहता है : मेरे पास लाखों रुपये हैं। और त्यागी है, तो कहता है, मैंने लाखों छोड़ दिये हैं। मगर दोनों एक बात में राजी हैं कि लाखों उनके थे या उनके हैं। फकीर वह है, जो कहता है : मेरा कुछ भी नहीं। उपयोग कर लेता हूँ, लेकिन मेरा नहीं है। उपयोग छोड़ दूँ, लेकिन मेरा नहीं है। है तो सब परमात्मा का। सबै भूमि गोपाल की। सब उसका है।

'दर्द, दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।'

जिसने कह दिया, 'सब उसका है, मेरा कुछ भी नहीं', उसका अहंकार अपने आप विर्सजित हो जायेगा। क्योंकि अहंकार के लिए सहारे चाहिए। मेरा मकान, मेरा धन, मेरा पद, मेरी प्रतिष्ठा--'मैं' के लिए 'मेरे' का सहारा चाहिए। अगर 'मेरे' की बैसांखियाँ अलग कर लो, तो 'मैं' तत्क्षण गिर जाता है। 'मैं' बिलकुल लंगड़ा है।

तुम में से बहुत लोग सोचते हैं : अहंकार कैसे छूटे ? अहंकार न छूटेगा; जब तक 'मेरा' न छूटे, तब तक मैं न छूटेगा। मेरा जाय, तो फिर तुम मैं को बचाना भी चाहो, तो न बचा सकोगे। 'मेरा' 'मेरा' 'मेरा'--इसका जो जोड़ है, वही 'मैं' है। इसलिए तुम्हारे पास जितना 'मेरा' कहने को होगा, उतना बड़ा 'मैं' होगा।

तुम देखते हो एक आदमी पद पर पहुँच गया, तो उसका 'मैं' खूब फूल जाता है ! फिर यही आदमी पद पर न रहा, तब तुम उसे देखने जाओ; उसका 'मैं' बिलकुल सिकुड़ जाता है, जैसे गुब्बारे में से हवा निकल गई हो ! वह सारा फैलाव गया। वह सिकुड़ गया।

तुम्हारे पास धन है, तुम एक तरह से चलते हो। तुम्हारे पास धन नहीं है, तुम्हारी चाल में से प्राण निकल जाते हैं।

मैंने सुना है: दो फकीर एक नाला पार रहे थे। छोटा-सा नाला था। एक फकीर तो छलाँग लगा गया और निकल गया उस पार। दूसरा फकीर बड़ा चकित हुआ, क्योंकि नाला यद्यपि छोटा था, फिर भी काफी बड़ा था और छलाँग...। उसने कभी सोची भी न थी कि कोई आदमी लगा सकेगा इतनी बड़ी छलाँग। उसने भी लगाने की कोशिश की, लेकिन बीच में ही गिर गया। वह बड़ा हैरान हुआ। पानी से कपड़े तरबतर हो गए। बाहर निकला किसी तरह, उसने अपने मित्र से पूछा कि 'भाई, तुमने यह छलाँग लगानी कहाँ सीखी! इतने दिन साथ रहे हो गए, मुझे बताया भी नहीं तुमने कभी! इतनी लंबी छलाँग! तुम तो अगर ओलिम्पिक प्रतियोगिता में जाओ तो विश्व-रिकार्ड तोड़ दो। मगर सीखी कहाँ?'

उसने कहा, 'इसका सीखने इत्यादि से कोई संबंध नहीं।'

'पर तुम छलाँग इतनी लगाए कैसे? मैं भी लगाया; बीच में गिर गया!'

उसने फकीर से कहा, 'इसका राज है कि मेरे जेब में रुपये हैं। जब जेब में रुपये होते हैं तो आदमी में गरमी होती है!' उसने कहा, 'तुम्हारे जेब में क्या है? खाली जेब छलाँग लगाओगे कैसे?'

आदमी के पास रुपये हों, तो उसकी देखते हैं चाल! उसको सींग निकल आते हैं। रुपये न हों तो सिकुड़ जाता, ऊँचाई कम हो जाती है। गुब्बारा फूट जाता है; हवा निकल जाती है।

फकीर का अर्थ है: जिसने यह कहा कि मेरा कुछ भी नहीं है। यह कहते ही उसने कह दिया: मैं कुछ भी नहीं हूँ। तो फकीर का पहला परिधिगत अर्थ तो होता है कि मेरा कुछ नहीं और गहरा केंद्रगत अर्थ होता है कि मैं कुछ नहीं।

जिसके पास कुछ भी नहीं है, 'स्व' भी नहीं, वही फकीर। फिर स्वभावतः मस्ती का क्या कहना! जितना तुम्हारे पास है उतनी चिंता है, उतना द्वन्द्व है, उतनी फिक्र है, उतनी सुरक्षा करनी, व्यवस्था करनी। जब तुम्हारा कुछ भी नहीं है, फिर कैसी चिंता, फिर कैसा द्वन्द्व, फिर कैसी सुरक्षा? फिर तुम सो सकते हो—पैर पसार कर।

एक प्रधानमंत्री संन्यस्थ हो गया। जंगल चला गया। सम्राट् उसे बहुत चाहता था। धीरे-धीरे खबरें आने लगीं कि वह परम ज्ञानी हो गया। तो सम्राट् उसके दर्शन करने को गया। लेकिन पुराना मंत्री था सम्राट् का ही, तो अनजानी अपेक्षाएं भी थीं। जब सम्राट् वहाँ पहुँचा, तो वह प्रधानमंत्री पैर फैलाए एक वृक्ष के नीचे बैठा था, नंग-धड़ंग; एक ढपली बजा रहा था। न तो उसने ढपली बजाना

बंद किया, न उठ कर नमस्कार किया, न पैर सिकोड़े। यह जरा सीमा के बाहर थी बात। यह जरा अशिष्ट था। सम्राट् ने कहा, 'और सब तो ठीक है। मैंने सुना है, तुम ज्ञानी हो गए; मगर यह कैसा ज्ञान? तुमने पैर भी न सिकोड़े! तुमने ढपली भी न अपनी बंद नहीं की। तुम उठ कर खड़े भी नहीं हुए। आखिर मैं तुम्हारा पुराना मालिक हूँ। कम से कम पैर सिकोड़ो। शिष्टाचार तो न भूल जाओ।

वह फकीर हँसने लगा। उसने कहा, 'जाने दो जी। अब क्या पैर सिकोड़ने? पैर सिकोड़ता था, क्योंकि भीतर द्वन्द्व था; पद को बचाना था। तुम्हारे लिए पैर सिकोड़े थे, इस भूल में तुम पड़ना भी मत; अपने ही लिए पैर सिकोड़े थे। और तुम्हारे लिए उठ-उठ खड़ा होता था, इस झंझट में तुम पड़ना ही मत; इस भ्रांति में मत रहना। अपने लिए ही उठ-उठ कर खड़ा होता था। भय था, पद को बचाना था। प्रतिष्ठा बचानी थी। धन बचाना था, नौकरी बचानी थी। अब किसलिए उठना जी? किसके लिए उठना? अब तो जब उठना होगा उठेंगे, नहीं उठना होगा नहीं उठेंगे। अब कैसा शिष्टाचार और कैसा आचार? वे सब बातें थीं, बकवास थीं; भीतर तो अहंकार था।'

फकीर का अर्थ होता है: जिसके पास अब अपना कुछ भी नहीं।

'अलमस्त' शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ तो होता है: अपनी मस्ती में डूबा हुआ, असीम मस्ती में डूबा हुआ। और दूसरा अर्थ होता है: निर्द्वन्द्व; जिसके भीतर अब कोई द्वन्द्व न रहा। अब कोई चिंता नहीं उठती। अब जो है, ठीक है। अब जैसा है, बिलकुल ठीक है। अब जिसके भीतर, अस्तित्व में कुछ भेद होना चाहिए तब वह सुखी होगा—ऐसा भाव नहीं उठता। वह सुखी है ही। जैसा जगत् चलता हो चलता रहे, उसके सुख में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

'दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन धीरा॥'

और संन्यासी का अर्थ है: जो एक पर आस्था ले आया। 'एक अकीदा लै रहे' ...जिसने एक पर आस्था जमा ली—और एकजूट आस्था जमा ली; जिसने उस एक पर अपना सब समर्पित कर दिया; जिसने उस एक पर सब न्योछावर कर दिया, सब भेंट कर दिया।

'एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन धीरा'।

और फिर जो प्रतीक्षा का रहस्य जानता है... ऐसे मन धीरा। उस एक पर जिसने सब छोड़ दिया और जो प्रतीक्षा करने को अनंत रूप में तैयार है। क्योंकि तुम्हारे छोड़ते ही सब नहीं मिल जाता। छोड़ते-छोड़ते-छोड़ते-छोड़ते छूटता है।

तुम जब कहते हो: मैंने सब छोड़ दिया, तब भी सब नहीं छूटता; कुछ न कुछ

बचा रह जाता है। पर्त-पर्त बचाव है। बड़ी गहराई तक तुम्हारा अहंकार छाया हुआ है। जितना तुम जानते हो उतना तुम्हारा अहंकार नहीं, उससे बहुत ज्यादा है। तुमने तो ऊपर-ऊपर की भनक सुनी है, भीतर अचेतन तक गहरे में जड़ें चली गई हैं अहंकार की। तुम पत्ते समर्पित कर देते हो, फूल समर्पित कर देते हो, शाखाएँ काट डालते हो, वृक्ष काट डालते हो; लेकिन जड़े छिपी हैं--गहरे अन्तश्चेतन में। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे जिस दिन तुम सब समर्पित कर देते हो, वस्तुतः सब समर्पित हो जाता है, उस दिन क्रांति घटती है। पर उसकी प्रतीक्षा करनी जरूरी है।

तो प्रभु को पाने के लिए दो उपाय हैं--प्रार्थना और प्रतीक्षा। प्रार्थना का अर्थ है : 'दास मलूका कहि गया, सबके दाता राम।' प्रार्थना का अर्थ है : 'तुम जो करोगे होगा। तुम जैसा करोगे, वैसा होगा। तुम जब करोगे, तब होगा।' और प्रतीक्षा का अर्थ है : 'मैं राजी हूँ; मैं प्रतीक्षा करूँगा; जल्दी नहीं है। तुम अगर अनंत तक भी प्रतीक्षा कराओगे, तो मैं प्रतीक्षा करूँगा। जल्दबाजी किसकी हो ?'

जल्दबाजी भी अहंकार की है। जल्दबाजी भी अहंकार का हिस्सा है। अधैर्य अहंकार की छाया है। अहंकारी जल्दी चाहता है--अभी हो जाय। उसका कारण भी समझने जैसा है।

अहंकारी इतनी जल्दी क्यों चाहता है? क्योंकि उसे पता है : मौत आ रही है। मौत के आने के कारण जल्दबाजी है। समय जा रहा है। एक दिन गया, एक दिन कम हुआ। दो दिन गए, दो दिन कम हुए।

तुम देखते हो, पश्चिम के मुल्कों में ज्यादा जल्दबाजी है--बजाय पूरब के मुल्कों के! कारण? कारण है ईसायत की धारणा कि एक ही जीवन है। जब एक ही जीवन है, तो घबड़ाहट ज्यादा है। मौत आ रही है और एक ही जीवन है; अभी भोग भी नहीं पाये, कुछ भी नहीं पाये, यह मौत की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी! यह ब्लड-प्रेशर बढ़ा; यह हार्ट-अटैक होने लगा; ये मौत के दो कदम पास पड़ने लगे; यह द्वार पर दस्तक साफ होने लगी; ये मौत की छायाएं दिखाई पड़ने लगीं। और अभी तो कुछ कर भी नहीं पाये और अभी कुछ हो भी नहीं पाया और एक ही जीवन है। तो घबड़ाहट--बेचैनी!

पूरब के मुल्कों में इतनी बेचैनी नहीं है। अनंत जीवन है। यह जीवन गया, कुछ गया नहीं; और जीवन आयेगा। यह ऋतु खो गई, कोई हर्जा नहीं; और ऋतु आयेगी। इस वसंत में फूल न खिले, अगले वसंत में खिलेंगे; वसंत आता रहेगा।

ऋतु शब्द बना है ऋत् से। वेद में शब्द है--ऋत्। ऋत् का अर्थ होता है, जो सदा लौट-लौट कर आ जाय; जो आता ही रहे; जो जाता है और आता है;

जिसके जाने में आना छिपा है; जो इधर से गया, उधर से आयेगा। जो अन्तहीन परिभ्रमण है संसार का--उसका नाम ऋत्। 'ऋत्' उसी से बना है। इस बार नहीं बो पाये बीज और वर्षा रीत गई, वर्षा चली गई, मेघ घुमड़े और बिदा हो गए--घबड़ाना मत; यह खाली आकाश खाली न रहेगा; फिर मेघ उठेंगे, फिर आषाढ़ आयेगा, फिर गरजेंगे बादल, फिर दामिनी दमकेगी। फिर तुम बो लेना बीज।

तो पूरब में प्रतीक्षा है। इसलिए पूरब में समय की बहुत धारणा नहीं है। पश्चिम में बड़ी समय की धारणा है, बड़ा समय-बोध है। अगर तुम किसी पश्चिमी से कह दो; मैं पाँच बजे आता हूँ और पाँच मिनिट देर हो जाओ, तो वह नाराज होता है। अब हिन्दुस्तान में पाँच बजे का मतलब छः बजे भी होता है, चार बजे भी होता है; चलता है! पाँच बजे का मतलब कोई पाँच बजे ही नहीं होता। और तुमने कहा : सोमवार को आयेंगे, मंगल को आये, तो भी चलता है। यहाँ कुछ इतना समय-बोध नहीं है। कुछ ऐसी पकड़ नहीं है समय पर।

घड़ी पश्चिम में बनी, पूरब में नहीं बनी। पूरब में अधिकतर लोग घड़ी पहनते है--केवल आभूषण की तरह; ऐसा मेरा अनुभव है। कम से कम स्त्रियां तो तो निश्चित आभूषण की तरह पहनती हैं। साज-सिंगार है। घड़ी का बोध नहीं है। वह पश्चिमी बुद्धि नहीं है भीतर, जो आतुर है, एकदम जल्दी से सब हो जाय, समय पर हो जाय, एक मिनिट न चूक जाय। मिनिट-मिनिट बचाना है। फिर करना क्या है--मिनिट-मिनिट बचा कर? करने को कुछ भी नहीं है। जाना कहाँ है?

मैंने सुना है : एक जंगली इलाके में, एक आदिम इलाके में रेलगाड़ी को पटरियाँ बिछाई जा रही थीं। जो प्रधान ऑफिसर था, रेलगाड़ी का पटरीयाँ बिछा रहा था, उसने एक दिन देखा कि एक आदिम आदमी, एक आदिवासी वृक्ष के नीचे बड़े आनंद से लेटा हुआ, एक चट्टान पर सिर टिकाए; काम देख रहा है। लोग काम कर रहे हैं, वह मजे से लेटा है। वह ऑफिसर उसके पास गया, उससे बोला, 'तुम क्या करते हो?' उसने कहा कि 'मैं लकड़ियाँ काटता हूँ और शहर बेचने जाता हूँ।' कितना समय लगता है', ऑफिसर ने पूछा। उसने कहा कि 'दो दिन जाने में लगते हैं, दो दिन आने में लगते, दो दिन कम से कम बेचने में लग जाते हैं--कभी एक दिन, कभी दो दिन, कभी तीन दिन भी।' तो उसने कहा : 'ऐसे तो पूरा सप्ताह ही खराब हो जाता है! अब तुम देखो ट्रेन बनी जा रही है, जल्दी ही, अगले वर्ष से तुम्हें दिक्कत न रहेगी। घंटे में पहुँच जाओगे, घंटे में आ जाओगे।'

लेकिन यह आदमी प्रसन्न न दिखा। तो ऑफिसर ने पूछा, 'तुम प्रसन्न नहीं दिखाई पड़ते!' उसने कहा, 'वह तो ठीक है : घंटे में चला गया, घंटे में आ गया;

फिर सात दिन क्या करूँगा? और एक झंझट। अभी तो एकाध दिन बचता है; छः दिन का थका-माँदा आता हूँ; देखो, आज लेटा हूँ, विश्राम कर रहा हूँ। एक दिन ठीक है। जब बच जाता है, तो मजे से विश्राम कर लेता हूँ। मगर एक घंटे में चले गए, एक घंटे में आ गए--फिर? 'फिर उन सात दिनों का क्या होगा?'

उसकी चिंता स्वाभाविक है।

पश्चिम में लोग समय को बचा लेते हैं, फिर नहीं जानते कि क्या करें? फिर उस समय का क्या हो? फिर उस समय का क्या उपयोग है?

समय के संबंध में एक अधैर्य है, वह भी अहंकार का हिस्सा है। और अहंकार स्वभावतः मौत से डरता है। क्योंकि मौत सिर्फ अहंकार को मारती है, तुम्हें नहीं मारती।

'दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन धीरा।।'

एक भरोसा कर लिया प्रभु पर, की उसकी प्रार्थना और छोड़ दिया सब उस पर--ऐसा संन्यास है। और फिर अनंत प्रतीक्षा की तैयारी : ऐसा नहीं है कि अनंत प्रतीक्षा करनी ही होगी। बड़ी विरोधाभासी बात है, खूब मन में सम्हाल कर रख लेना।

जितनी जल्दबाजी करोगे, उतनी देर लगेगी। और जितना धैर्य रखोगे, उतना जल्दी हो जायेगा। जो जितनी प्रतीक्षा करने को राजी है, उतनी ही जल्दी घटना घट जाती है। अगर तुम अनंत प्रतीक्षा करने को राजी हो, तो इसी क्षण परमात्मा मिलेगा। तुम्हारी प्रतीक्षा का भाव ही परमात्मा के मिलन के लिए द्वार बन जाता है।

...'ऐसे मन-धीरा।'

संन्यास का अर्थ है : प्रार्थना।

संन्यास का अर्थ है : निरहंकार।

संन्यास का अर्थ है : उसके मिलन में, उसके विरह में मस्ती।

संन्यास का अर्थ है : उसके आगमन की अनंत प्रतीक्षा।

'प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमत, मैंगल माता हाथी।।'

कहते हैं मलूक : 'प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी'। संसार भूल गया, जब से उसके प्रेम के प्याले से दो बूंद भी पी ली है। जब से उसके प्रेम का प्याला पिया जब से उसकी प्रार्थना में लगे, जब से मस्त हुए उसकी याद में, जब से उसका स्मरण आया--तब से सब साथी बिसर गए। फर्क समझना।

संसार छोड़ना नहीं है--प्रभु को चखना है। प्रभु को चखते ही संसार विस्मृत

होने लगता है। संसार को छोड़ने की जो चेष्टा में लगता है, और प्रभु को चखता नहीं है, उससे संसार छूटता ही नहीं; लौट-लौट कर आ जाता है; नये-नये ढंग में आ जाता है। और दमन ही होता है भीतर। वासनाएँ भीतर कुलबुलाती हैं। वासना के कीड़े भीतर अँधेरे में सरकते हैं; सब तरफ से झाँकते हैं, सब तरफ से संसार में खींच लेने की कोशिश करते हैं।

तुम अगर अपने तथाकथित त्यागी के जीवन में उतर कर देख सको, तो बहुत हैरान हो जाओगे; उसकी दशा भोगी से भी बुरी है! भोगी तो कम से कम भोग रहा है, इसलिए उतना चिंतित-परेशान नहीं है। त्यागी भोग भी नहीं रहा है, और परमात्मा उसे मिला नहीं है। उसकी दशा त्रिशंकु की है; वह बीच में अटक गया है; न यहाँ का रहा--न वहाँ का : धोबी का गधा, न घर का न घाट का। संसार छोड़ दिया, इस आशा में कि प्रभु मिलेगा; लेकिन संसार छोड़ने से प्रभु के मिलने का कोई भी संबंध नहीं है। असल में संसार तो प्रभु का ही है। इसका छोड़ने से प्रभु के मिलने का क्या संबंध हो सकता है?

संसार को समझने से प्रभु को मिलने का संबंध है, छोड़ने से नहीं। भागने से नहीं, जागने से। और जागना बड़ी अलग प्रक्रिया है। और निश्चित रूप से यही है कि जब तुम्हें प्रभु का थोड़ा-सा स्वाद लग जाय, तो संसार पर तुम्हारी पकड़ अपने से छूटने लगती है। तुम्हें असली हीरे मिल जायँ, तो नकली काँच के टुकड़ों को कौन ढोता है! किसलिए? किस कारण?

'प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमत, मैंगल माता हाथी।।'

जैसे हाथी मस्त होकर झूमता है, मदमस्त होकर झूमता है, ऐसे कहते हैं मलूकदास : आठ पहर यों झूमत...। संन्यासी आठों पहर झूमता रहता है। उसका नृत्य भीतर चलता ही रहता है। वह मगन है। उसके भीतर एक गुनगुन चलती ही रहती है।

मैं साँसों के दो तार लिए फिरता हूँ
मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ
जग पूछ रहा उनको जो जग की गाते
मैं अपने मन का गान किया करता हूँ।
मैं निज उर के उद्गार लिए फिरता हूँ
मैं निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ
है यह अपूर्ण संसार, न मुझको भाता
मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूं।

कर यत्न मिटे सब, सत्य किसी ने जाना?
नादान वहीं हैं हाय जहाँ पर दाना
फिर मूढ़ न क्या जग जो इस पर भी सीखे
मैं सीख रहा हूँ सीखा ज्ञान भुलाना
मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूँ
मैं मादकता निश्शेष लिए फिरता हूँ
जिसको सुनकर जग झूम उठे, लहराए
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूँ।

संन्यासी के संबंध में तथाकथित त्यागियों के कारण बड़ी गलत धारणा बन गई है। संन्यासी से हम समझते हैं: कोई उदास, हारा-थका, पराजित, रोता-सा आदमी जिसके चेहरे पर कभी हँसी नहीं आती; जिसके जीवन में कभी कोई मस्ती का दर्शन नहीं होता; जहाँ रस की धार नहीं बहती। त्यागी से हमने अर्थ समझा है, कोई आदमी जो मरुस्थल जैसा सूख गया; सूखा-साखा दरख्त, जिस पर अब नई कोंपलें नहीं फूटतीं; वसंत आता है, तो खाली लौट जाता है; पक्षी जिस पर अब घोंसला भी नहीं बनाते; जिसकी छाया भी खो गई है; जिसकी छाया में कोई यात्री विश्राम भी नहीं करता। ऐसे सूखे-साखे आदमी को हम कहते हैं विरक्त--जिसमें रस बिलकुल सूख गया। यह संन्यासी की विकृत धारणा है।

संन्यासी तो सदा मस्ती में होगा। उसका नृत्य तो सदा चलता होगा। उसकी धुन तो आठों पहर रहेगी। तुम उसके पास सदा ही उत्सव पाओगे।

जिसकी हवा में उत्सव हो और जिसके आसपास तरंगें उल्लास की हों, वहीं जानना की संन्यास घटित हुआ है। उदास और रोते हुए लोग संन्यासी नहीं हैं--संन्यास के धोखे में हैं। संसार उन्होंने त्याग दिया, यह सच है; लेकिन परमात्मा के प्याले से एक बूँद भी उनके कंठ में नहीं उतरी। 'आठ पहर यों झूमत, मैंगल माता हाथी'।

'उनकी नजर न आवते, कोई राजा रंक'।

संन्यासी को न तो अमीर दिखाई पड़ता है--न कोई गरीब। क्यों? क्योंकि जिसको यही दिखाई पड़ गया कि सभी उसका है, फिर कौन अमीर और कौन गरीब! उसके लिए तो अमीर भी गरीब है और गरीब भी गरीब है। क्योंकि दोनों ही धन के पीछे दीवाने हैं। दोनों ही निर्धन हैं। दोनों को असली धन का कोई अभी संदेश नहीं मिला है।

'उनकी नजर न आवते, कोई राजा-रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक।।'

और जैसे ही प्रभु के प्रेम के प्याले से थोड़ी-सी भी घूँट पी ली, फिर सारे मोह के बंधन छूट जाते हैं। क्यों? क्योंकि मोह में हम उसी प्रेम को खोजते थे। मिलता नहीं था, तो पकड़ते थे। तुमने जिन-जिन को पकड़ रखा है--किसलिए?--सोचना इसलिए कि शायद आज नहीं मिला, कब मिले, परसों मिले।

हम परमात्मा के प्यासे हैं; पत्नी को पकड़ बैठे हैं, कि पति को पकड़े बैठे हैं, मित्र को पकड़ बैठे हैं, कि बेटे को कि बाप को कि माँ को पकड़ बैठे हैं। सोचते हैं: शायद परमात्मा मिल जायेगा। इसलिए तो हमारे सभी संबंधों में विषाद है और सभी संबंधों में क्रोध है।

तुम अपनी पत्नी से वस्तुतः कभी प्रसन्न नहीं हो सकते, क्योंकि तुम इतनी बड़ी माँग कर रहे हो जो उस गरीब के पास है नहीं। तुम माँग रहे हो कि वह देवी हो, परमात्मा जैसी हो। पत्नी तुमसे माँग रही है कि तुम परमात्मा जैसे होओ। वह हो नहीं सकता; जो नही हो सकता; तो फिर बेचैनी है, क्रोध है; वैमनस्य है, कलह है; हजार तरह के उपद्रव हैं। लेकिन अगर गौर से देखोगे, तो तुम्हारी पत्नी चाहती है कि तुम परमात्मा जैसे होओ। तुम्हारी पत्नी जब नाराज होती है कि तुम धूम्रपान मत करो, तो वह क्या कह रही है? वह कहती है कि धूम्रपान करे मेरा पति! कि तुम जब जाते जूआ खेलने, तो तुम्हारी पत्नी रोती है, पीड़ित होती है, क्योंकि वह सोचती है कि उसका पति! उसने पति में परमात्मा खोजना चाहा है। यह बात जरा जँचती नहीं कि परमात्मा जूआ खेलने चले! शायद उसे भी साफ न हो कि क्यों वह तुमसे इतनी नाराज है। आखिर अगर एक दफा जूआ खेल भी आये, तो क्या हर्ज है? अगर तुमने थोड़ी सिगरेट पी भी ली, तो क्या हर्ज है; कि कभी शराब भी पी ली, तो ऐसा क्या बिगड़ गया? नहीं, उसकी धारणा! तुम्हें थोड़े ही चाहा है उसने; चाह में परमात्मा को खोजना चाहा है। उसे भी शायद साफ न हो।

तुम भी पत्नी में कुछ अपूर्व खोज रहे हो--कुछ दिव्य, कुछ शाश्वत। वह नहीं मिलता। मिलती है: एक साधारण स्त्री--साधारण ईर्ष्या, वैमनस्य, क्रोध, घृणा से भरी। मन व्यथित हो जाता है, जैसे धोखा हुआ; जैसे किसी ने धोखा दे दिया। तुमने चाहा था--एक अपूर्व सौंदर्य, जो कभी न कुम्हलाता--और यह पत्नी कुम्हलाने लगी। तुमने चाहा था--कुछ परलोक का, वह मिलता नहीं, तो तुम उदास होने लगते हो। उदास हो जाते हो, तो तुम किसी दूसरी स्त्री में खोजते हो, किसी दूसरे पुरुष में खोजते हो।

मगर परमात्मा को खोजना हो, तो यह कोई उपाय नहीं है। जिन्होंने परमात्मा की तरफ सीधी नजर उठाई, जो थोड़े-से भी सीमा को छोड़ कर असीम की तरफ सरके और सीमा में जिन्होंने जरूरत से ज्यादा माँग न की--सीमा की शर्तें हैं.

सीमा की सीमाएँ हैं––जिन्होंने असीम की माँग न की और असीम को जिन्होंने सीधा खोजने का प्रयास किया, उनके जीवन में मोह के बंधन अपने-आप छूट जाते हैं। जिनका गठबंधन परमात्मा से हो जाता है, उनके और सब गठबंधन अपने-आप खुल जाते हैं। 'बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक'।

'साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गए, जँह पवन न जाई।।'

'साहेब मिल साहेब भए'...। और परमात्मा से मिलने का सबसे बड़ा अपूर्व जो परिणाम है, वह यह है कि परमात्मा से जो मिला, वह परमात्मा हो गया। इससे छोटे में मन राजी होगा भी नहीं। इससे छोटे में बेचैनी रहेगी। तुम छोटे आँगन में न समा सकोगे. तुम्हें यह पूरा आकाश चाहिए। तुम्हारी नियति यह पूरा आकाश है। तुम्हें विराट् चाहिए, विभु चाहिए। तुम जब तक साहब ही न हो जाओ, तुम जब तक मालिकों के मालिक न हो जाओ, तब तक तुम अतृप्त रहोगे। अतृप्ति जलती रहेगी, काटती रहेगी भीतर––छूरे की धार की तरह, तुम्हारे प्राणों को सताती रहेगी।

'साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई'।

'तमाई' बड़ा प्यारा शब्द उपयोग किया मलूक ने। इसका अर्थ होता है: तम, अँधेरा, तामसिकता, क्षुद्रता। इसका अर्थ होता है वासना। इसका अर्थ होता है: मूलत: अब भीतर कोई अँधेरा न रहा, दीया जलने लगा।

'साहेब मिल साहेब गए, कुछ रही न तमाई'।

अब कोई अंधेरा न रहा।

'कहैं मलूक तिस घर गए, जँह पवन न जाई'।

यह सूत्र बड़ा अनूठा है।

बुद्ध ने कहा है अपने भिक्षुओं को, श्वास को देखना—अनापानसतियोग या सतिपत्थान। श्वास को देखना। क्यों? क्योंकि बुद्ध ने कहा है, श्वास को देखते-देखते तुम्हें यह दिखाई पड़ेगा कि श्वास तुम नहीं हो। तुम वहाँ हो, जहाँ श्वास भी नहीं जाती। श्वास शरीर के लिए जरूरी है, तुम्हारे लिए जरूरी नहीं है। श्वास आत्मा और शरीर के बीच सेतु है, जोड़ है। इसलिए श्वास टूट जाती है, तो आत्मा और शरीर का संबंध छूट जाता है। लेकिन इससे मृत्यु नहीं घटती, इससे केवल संयोग छूट जाता है। श्वास के प्रति जागे रहो; अगर श्वास को देखते रहो––भीतर आई, बाहर गई, भीतर आई, बाहर गई––इसके प्रति होश को प्रगाढ़ करते जाओ, बुद्ध ने कहा, तो एक दिन तुम पाओगे कि तुम श्वास नहीं हो। जिस दिन यह जाना कि मैं श्वास नहीं हूँ, उसी दिन तुम मृत्यु के बाहर हो गये, अमृत का दर्शन हो गया।

यह मलूक की पंक्ति कहती है:

'साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गए, जँह पवन न जाई।।

––जहाँ श्वास नहीं पहुँचती, उस घर में पहुँच गए। जहाँ श्वास नहीं पहुँचती, वहीं अमृत का वास है। जहाँ तक श्वास जाती है, वहाँ तक संसार है। जहाँ श्वास नहीं जाती, वहीं परमात्मा हो जाते हो। ऐसा नहीं कि तुम परमात्मा का दर्शन करते हो कि अहो, कैसे सुन्दर! तुम ही परमात्मा हो जाते हो।

जब तक इतनी भी दूरी रही कि तुम देखने वाले और परमात्मा दृश्य रहा, तक बेचैनी रहेगी। इतनी दूरी भी सही नहीं जाती। यही तो प्रेम की पीड़ा है। तुम जिसे प्रेम करते हो, उससे दूरी नहीं सही जाती। लेकिन इस जगत् में कुछ भी करो, दूरी तो रहेगी। कितना ही तुम पत्नी को प्रेम करो, पति को प्रेम करो, दूरी तो रहेगी। तुम दो हो, दूरी तो रहेगी। मिल जाओगे क्षण भर को, लेकिन क्षण भर का मिलन होगा, फिर दूरी खड़ी हो जायेगी—और भी प्रगाढ़ हो कर खड़ी हो जायेगी; पहले से भी ज्यादा दूरी मालूम होगी।

ऐसा होता है, तुम रास्ते से निकल रहे हो, अँधेरी रात है। धीरे-धीरे अँधेरे में चलते-चलते तुम्हें थोड़ा-थोड़ा दिखाई भी पड़ने लगा है। फिर एक अचानक तेज प्रकाश वाली कार तुम्हारे पास से निकल गई, एकदम रोशनी हो गई। कार के जाने पर तुम पाओगे: अँधेरा और भी ज्यादा हो गया; अब कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। पहले अँधेरे में चलते-चलते थोड़ा दिखाई भी पड़ता था; अब यह कार और तुम्हें चकाचौंध से भर गई, कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

जब भी पति और पत्नी क्षण भर को प्रेम के आवेग में मिलते हैं, तो उसके बाद और भी दूर हो जाते हैं—पहले से भी ज्यादा दूर। यही तो दुःख है संभोग का। संभोग के बाद सभी लोग विषाद से भर जाते हैं। यह तो पास आना चाहा था, और दूर फिक गए। यहाँ तो अद्वैत सध नहीं सकता। अद्वैत तो सध सकता है सिर्फ परमात्मा से, क्योंकि वहाँ देह का सवाल नहीं है। देह दो कर रही है। देह अलग-अलग कर रही है। देह के पार को जानते ही भेद समाप्त हो जाते हैं।

'साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।'

जल-सा तरल बनूँ
सूरज की किरण-डोर पकड़
गगन चढ़ूँ
बाष्प बन विचरूँ
फिर बरसूँ

चंदा की शीतल छाया छू
हिमखंड बनूँ
फिर पिघलूँ, बहूँ
चाहे जहाँ ढलूँ
चाहे जो रूप-रंग
आकृति ग्रहण करूँ
जो हूँ अन्ततः वही रहूँ !

इस प्रार्थना की जरूरत नहीं है। जो हम हैं, हम वही रहते हैं। अनंत-अनंत काल में अनंत-अनंत भटकावों में पड़ने के बाद भी साहब हमारे भीतर मौजूद है, हम वही के वही हैं। इसीलिए तो 'साहेब मिल साहेब भए'।

अगर हम साहब से अलग होते, तो मिल कर एक नहीं हो सकते थे। साहब के साथ हम एक हैं ही। इसीलिए स्मरण आते ही, बोध आते ही तत्क्षण भेद गिर जाते हैं। साहब के साथ हमारी एकता शाश्वत है। हम परमात्मा से कभी अलग हुए नहीं। हम परमात्मा से अलग हो नहीं सकते हैं। जैसे सागर से लहर अलग नहीं हो सकती, कितनी ही उछले-कूदे, कितने ही रूप धरे, दूर आकाश में उठ जाय उत्तुंग, जहाजों को डुबा दे, पक्षियों के साथ होड़ करे, सूरज को छूने की चेष्टा करे––लेकिन सागर से दूर नहीं हो सकती, सागर से अलग नहीं हो सकती; सागर की ही है, फिर गिर पड़ेगी, फिर सागर में खो जायेगी। यह जो बल है लहर का, वह भी सागर का बल है। हम तो लहरें हैं। जिस दिन कोई लहर जाग कर देखती है, उस दिन वह कहेगी : 'अरे, तो मैं लहर––सागर हो गई !' मगर लहर सागर थी।

'साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहँ मलूक तिस घर गए, जँह पवन न जाई ॥'
'आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे'।

कहते हैं मलूक : वही डूबता है, जो अपने को भूल कर परमात्मा को नहीं याद करता। हम अपने को याद कर रहे हैं, और परमात्मा को भूले हैं।

दुनिया में दो ही ढंग हैं जीने के। अपने को याद करो, परमात्मा को भूलो––यह ढग, कहो संसारी का ढंग। अपने को भूलो, परमात्मा को याद करो––दूसरा ढग, कहो संन्यासी का ढंग। अपने को नम्बर दो रखो और परमात्मा को नम्बर एक, फिर देर न लगेगी––साहेब मिल साहेब भए। अपने को नम्बर एक रखो और परमात्मा को नम्बर दो, तो तुम ही नास्तिक हो।

तुमने देखा, आस्तिक भी मंदिर में प्रार्थना करने जाता है तो परमात्मा को नम्बर दो रखता है, नम्बर एक नहीं ! वह परमात्मा से कहता है : जो मैं चाहता हूँ, वह तू कर। वह यह नहीं कहता कि जो तू करे, वह मुझे स्वीकार। वह यह नहीं कहता कि तेरी मरजी में स्वीकार, मैं आनंद से स्वीकार करने आया हूँ। वह कहता है कि देखो, मेरे लड़के को नौकरी नहीं मिल रही, नौकरी लगवा दो; कि मेरी पत्नी बीमार है और मैं कितना भक्ति-भाव कर रहा हूँ; सुनो अब कुछ, बहरे मत बनो, इसे ठीक कर दो। नम्बर एक वह खुद ही है, परमात्मा की भी सेवा लेना चाहता है। मालिक वही है। मालिक अपने को समझ रहा है, परमात्मा का भी उपयोग करना चाहता है। यह आस्तिकता नहीं है।

'आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे'।

वही डूबता है, जो अपने को तो भूलता नहीं और परमात्मा को भूला रहता है।

'हरि का मर्म न पाइया, कारन कर डूबे'।

और इसीलिए डूबता है कि हरि का मर्म न पा सका। जिसने अपने को भूला और परमात्मा को याद किया, उसकी बड़ी और गति है।

तुम रहो यदि साथ में तो पार क्या, मझधार क्या है
हर लहर तट है मुझे तो, सिन्धु की ललकार क्या है
फिर भरे तूफान में मेरी तरी अपने करों से
तुम डुबाओ, तट न पाऊँ, यह कभी संभव नहीं है।

फिर तो परमात्मा अगर डुबाए भी, तो भी तट मिल जाता है। यह थोड़ा समझना।

जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा और जो अपने को खो देगा, वह पा लेगा। बड़ा विरोधाभासी वचन है, पर बड़ा बहुमूल्य भी। जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा।

'करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया'।

और वे लोग भी जिनको तुम धार्मिक कहते हो––'करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया'––उनको भी साहब से कुछ मतलब नहीं है। वे भी भरोसा करते हैं कि देखो हमने इतना दान दिया, इतना पुण्य किया, इतनी मसजिदें बनवा दीं, इतने मंदिर, इतने गुरुद्वारे, इतने ब्राह्मणों को भोजन करवाया, इतने अस्पताल खोल दिये, इतने स्कूल चलवाये, हमने इतना पुण्य किया ! इस पुण्य के बल पर वे सोचते हैं कि पा लेंगे सत्य को, तो भ्रांति है उनकी। क्योंकि वह पुण्य भी अहंकार की ही घोषणा है। यह पुण्य भी अहंकार का ही आभूषण है। यह पुण्य भी जंजीर है। माना कि सोने की है, मगर है जंजीर ही। पाप होगी जंजीर लोहे की, पुण्य होगी जंजीर सोने की; मगर इससे क्या फर्क पड़ता है, जंजीर तो जंजीर है, दोनों बाँध लेती हैं।

'करें भरोसा पुत्र का, साहब बिसराया'।

यह आदमी जो कहता है : मैंने पुण्य किया, यह भी तो कर्ता बन रहा है। कर्ता बन रहा है कि चूका, कि आपे से घिरा, कि फिर सागर के मर्म को नहीं समझ पाया। एक ही पुण्य है इस जगत् में और वह पुण्य है : यह जानना कि मैं कर्ता नहीं हूँ, परमात्मा कर्ता है। और एक ही पाप है इस जगत् में––यह जानना कि मैंने किया और परमात्मा कर्ता नही है, कर्ता मैं हूँ।

'करें भरोसा पुत्र का, साहब बिसराया।
बूड़ गए तरबोर को, कहुँ खोज न पाया।।'

ऐसे लोग कितना ही खोजते रहें, कभी खोज न पायेंगे। इनकी खोज ऐसी है, जैसे कोई चम्मच से ले कर और सागर को नापने चले। अहंकार की छोटी-सी चम्मच––तुम अथाह सागर को नापने चले हो!

मैंने सुना है : यूनान के सागर-तट पर एक आदमी एक छोटा-सा गडढा खोद कर बैठा था और एक चम्मच हाथ में ले कर भाग कर जाता, सागर से पानी भरता और आ कर गड्ढे में डालता। अरस्तू घूमने निकला था। उसने यह देखा। वह घूम रहा था सुबह। बार-बार उसने देखा। वह थोड़ा हैरान हुआ। उसे बड़ी बेचैनी भी हुई। किसी के काम में बाधा तो नहीं डालनी चाहिए। लेकिन फिर जिज्ञासा को रोक न सका, तो उसने पूछा कि 'भई, तुम यह क्या कर रहे हो? चम्मच से पानी भर-भर कर इस गड्ढे में डाल रहे हो!' उसने कहा, 'मैंने तय किया है कि सागर को उलीच कर रहूँगा।' अरस्तू हँसा। उसने कहा कि 'भाई, पागल हो जाओगे? पागल तुम हो ही, नहीं तो ऐसा विचार ही कैसे उठता! यह छोटा-सा गड्ढा, यह जरा-सी चम्मच, इतने विराट् सागर को...जरा हिसाब तो लगाओ!'

और वह पागल खूब खिलखिला कर हँसने लगा। तो अरस्तू ने पूछा कि 'तुम हँसते क्यों हो? बात क्या है?' उसने कहा, मैं इसलिए हँसता हूँ कि अगर मैं पागल हूँ, तो तुम कौन हो! मैंने सुना है कि तुम छोटी-सी खोपड़ी से परमात्मा को समझने की चेष्टा में लगे हो। तुम अपने छोटे-से तर्क की चम्मच से अथाह को थाह पाने चले हो!'

कहते हैं, अरस्तू बहुत उदास हो गया। बात तो सच थी। अरस्तू यूनान का सबसे प्रसिद्ध दार्शनिक था और सबसे बड़ा तार्किक। कहते हैं, पश्चिम के तर्कशास्त्र का वही पिता है। तो जिसने भी यह गडढा खोदने का नाटक किया होगा, वह आदमी अद्भुत रहस्यवादी संत रहा होगा। रहा होगा बाबा मलूकदास जैसा कोई! ठीक ऐसा ही कोई अलमस्त आदमी रहा होगा। चेताने की चेष्टा करता होगा अरस्तू को कि इस छोटी-सी खोपड़ी में भर न सकोगे विराट् को। और तर्क की

जरा-सी चम्मच!

'करें भरोसा पुत्र का, साहब बिसराया।
बूड़ गए तरबोर को, कहुँ खोज न पाया।।

यह अथाह है। यह जो सत्य है, चारों तरफ से तुम्हें घेरे हुए, अथाह है। इसे तुम पुण्य की चम्मच से न खोज पाओगे। इसे तुम अहंकार के छोटे-से तराजू पर न तौल पाओगे। इसे तो तौलना हो, इसे तो जानना हो, पहचानना हो, तो एक ही उपाय है : इसमें डूब जाओ! इसमें गल जाओ! इसके साथ एक हो जाओ!

'साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गए, जँह पवन न जाई।।'
'साध मंडली बैठिके, मूढ़ जाति बखानी।
हम बड़ हम बड़ करि मुए, बूड़े बिन पानी।।'

और कहते हैं मलूक कि साधुओं के सत्संग में भी बैठने जाते हो, तो वहाँ भी सत्संग नहीं करते तुम।

'साध मंडली बैठिके, मूढ़ जातिब खानी।' वहाँ भी तुम यही फिक्र करते हो कि मैं ब्राह्मण हूँ, कि मैं क्षत्रिय हूँ, कि मैं राजा हूँ, कि मैं ज्ञानी हूँ, कि मेरे पास इतना धन, कि मेरे पास इतना पद! वहाँ भी तुम मूढ़ता की बातें करते हो। साधुओं के सत्संग में बैठ कर भी तुम सत्संग नहीं कर पाते।

साधु के पास बैठने से थोड़े ही सत्संग होता है। अगर तुम्हारे पास अहंकार की चादर चारों तरफ लिपटी हो, तो साधु बरसता रहेगा और तुम बिना भीगे रह जाओगे। सत्संग तो तभी होता है, जब तुम सब चादरें उतार कर रख दो––नग्न; सब द्वार-दरवाजे खोल दो––निर्भय। सत्संग तो तभी होता है, जब तुम किसी सद्गुरु की तरंग को, अपने भीतर जाने दो, अपने हृदय को उसके साथ नाचने दो, जब तुम उसकी तरंग के साथ एक हो जाओ; जब कुछ घड़ियों को तुम मिट जाओ, भूल जाओ।

गुरु के पास तो पहला पाठ सीखना है मिटने का, ताकि फिर एक दिन तुम उस महागुरु के साथ मिट सको। गुरु समझो कि एक छाटा-सा सरोवर है, इसमें तुम डुबकी लगाना सीख लो, तो फिर किसी दिन तुम सागर में डुबकी लगा लोगे। गुरु जैसे झरोखा है, अगर तुम इसमें उतर जाओ तो किसी दिन विराट् आकाश में पहुँच जाओगे।

'साध मंडली बैठिके, मूढ़ जाति बखानी'। वहाँ भी तुम अपने अहंकार की ही चर्चा में लगे रहते हो! चर्चा जरूरी नहीं कि तुम प्रगट रूप से करते हो। यहाँ लोग हैं। वे खबर भेजते हैं कि हम आना तो चाहते है सुनने, लेकिन पीछे

नहीं बैठ सकते। खबर भेजते हैं : आगे बैठने का इन्तजाम होना चाहिए। क्यों? जो आगे आये, वह आगे बैठ जाये। जो पीछे आये, वह पीछे बैठ जाये। उन्हें यह बात खलती है कि उनको पीछे बैठना पड़े। अगर ऐसा कोई आ भी जाये, कुछ कहे भी न तो पीछे बैठा-बैठा तड़फता रहेगा कि पीछे बैठा हूँ। सुन नहीं पायेगा कि क्या हो रहा है। यहाँ क्या घट रहा है, उसमें लीन भी नहीं हो पायेगा, डूब भी नहीं पायेगा। मजबूत लोहे की चादर उसके चारों तरफ जकड़ी है।

कुछ लोग खबर भेजते हैं कि वे नीचे नहीं बैठ सकते, फर्श पर नहीं बैठ सकते। क्यों? क्या तकलीफ है? किसी को कलेक्टर होने की बीमारी है; किसी को कमिश्नर होने की बीमारी है; किसी को मेयर होने की बीमारी है; किसी को मिनिस्टर होने की बीमारी है। बीमारियाँ इतनी हैं! तो मैं उनसे कहता हूँ, आओ ही मत, क्योंकि बेकार होगा आना। नाहक चल कर आओगे-जाओगे, इतनी तकलीफ, इतना समय गँवाओगे, इस बीच कुछ और कर लेना। उपमंत्री हो, तो इस बीच थोड़े चढ़ कर मंत्री बन जाना। डिप्टी कलेक्टर हो, तो कलेक्टर बनने की कोशिश में लगा देना इतना समय। तो कुछ सार होगा। यहाँ आने से क्या फायदा होगा? वह जो तुम्हारा भाव है, वह भाव तुम्हें वंचित कर देगा।

'साध मंडली बैठिके, मूढ़ जाति बखानी।
हम बड़ हम बड़ करि मुए, बूड़े बिन पानी॥'

और ऐसे, मलूक कहते हैं, तुम बिना पानी के डूब मरोगे। चुल्लू भर पानी की भी जरूरत न होगी। 'हम बड़ हम बड़ कर मुए, बूड़े बिन पानी'।

'तबके बांधे तेई नर, अजहुं नहिं छूटे'।

और जन्मों से तुम बंधे हो इसी मूढ़ता से और अभी तक नहीं छूटे! अब तो चेतो; अब तो जागो! अजहूं चेत गँवार!

'तबके बांधे तेई नर'...कब के बंधे हो! कितना दुःख पाया! कितनी पीड़ा झेली! कितने दंश, कितने काँटे! लहूलुहान हो गए तुम्हारे पैर। हृदय तुम्हारा छिन्न-भिन्न हो गया है। कहीं कोई शांति नहीं, कहीं कोई आनंद नहीं। फिर भी इस अहंकार को पकड़े हो! कब जागोगे?

'तबके बांधे तेई नर, अजहुं नहिं छूटे'। कितने जन्मों-जन्मों से यह तुम्हें पकड़े हुए लिए जा रहा है! और आगे भी तुम्हें पकड़े रहेगा। अगर आज नहीं छोड़ा, तो कल कैसे छोड़ोगे? क्योंकि जब भी समय आता है, आज की तरह आता है।

मैंने सुना, एक होटल में, होटल ठीक नहीं चलती थी तो मैनेजर ने एक तरकीब की; उसने एक तख्ती लगा दी होटल पर कि 'भोजन मजे से करिये, आपको पैसे न चुकाने पड़ेंगे। आपके नाती-पोते चुका सकते हैं। हम आपके नाती-पोतों से

ले लेंगे, आप फिक्र न करें।

बड़ी भीड़ हो गई। मुल्ला नसरुद्दीन भी पहुँच गया--अपनी पत्नी, बच्चों, मोहल्ले के बच्चों को भी ले कर और मित्रों को भी ले कर कि आओ। जो भी श्रेष्ठतम भोजन उपलब्ध हो सकता था, खूब डट-डट कर उसने खिलवाया। अब कोई कमी न थी। अब नाती-पोतों की नाती-पोते जानेंगे, क्या लेना-देना उसका! जब बाहर निकलने लगा, तो मैनेजर ने आ कर छः सौ रुपये का बिल उसके हाथ में दे दिया। छः सौ रुपये, और उसने कहा, 'बिल कैसा! तख्ती को देखो।' उसने कहा, 'वह तो ठीक है। यह आपके बाप-दादे जो भोजन कर गए थे, उसका बिल है। आज का बिल तो हम नाती-पोतों से ले लेंगे।

ऐसे पीछे से बंधे, आगे से बंधे हम सरकते रहते हैं। तुमने अपने पिछले जन्मों में जो किया है, उससे भी नहीं छूट पाये हो। अभी जो कर रहे हो, वह कल तुम्हें और बाँध लेगा।

'तबके बांधे तेई नर, अजहुं नहिं छूटे।
पकरि पकरि भलि भाँति से, जमदूतन लूटे॥'

और कितनी दफे मौत ने तुम्हें लूटा और भलीभाँति पकड़-पकड़ कर लूटा, फिर भी तुम अब तक नहीं समझ पाये! कितनी बार मरे, कितनी बार जन्मे; कितनी बार फिर पैदा होते ही फिर उसी दौड़ में लग गए! कितनी बार धन इकट्ठा किया, कितनी बार गँवाया! कितनी बार पत्नी-पति के राग-रंग में पड़े, कितनी बार राग-रंग टूटा! मौत आई—सब छीनती गई। फिर भी तुम जागते नहीं।

'तबके बांधे तेइ नर, अजहुं नहिं छूटे।
पकरि पकरि भलि भाँति से, जमदूतन लूटे॥'

हार गए यमदूत भी तुमसे। खूब भलाभाँति से पकड़-पकड़ कर खूब तुम्हें पीटते, मारते, खींचते! मगर जैसे ही तुम यमदूतों के हाथ से छूटते हो, तुम फिर उसी काम में लग जाते हो।

'काम को सब त्यागि के, जो रामहिं गावै।
दास मलूका यों कहै, तेहि अलख लखावै॥'

कहते हैं मलूक : 'काम को सब त्यागि के, जो रामहिं गावै,। एक काम भर कर लो, जो तुमने कभी नहीं किया। अब तक तुम कामवासना में ही पड़े रहे, तुमने सारी ऊर्जा कामवासना में लगा दी, कामना में लगा दी। वही ऊर्जा का थोड़ा-सा हिस्सा राम के गुणगान में लगाओ। काम से थोड़ी-सी ऊर्जा मुक्त करो, राम में डुबाओ।

दो दिशाएँ हैं--काम और राम। काम का अर्थ है : अंधे की तरह अहंकार की

बातों को मान कर चले जाना। राम का अर्थ है : विराट को सुनना, अनंत की तरफ आँखें उठाना, शाश्वत को गुनगुनाना। 'जो रामहि गावै'...थोड़ा राम का गीत गुनगुनाओ, थोड़ी राम की मस्ती में लगो।

'दास मलूका यों कहै, तेहि अलख लखावै।'

और जिसने राम का गीत गाना सीख लिया, जिसने भजा अल्लाह को, जिसने थोड़ी-सी गुनगुन की भीतर प्रभु की, उसे वह मिल जाता है जो लक्ष्य है और किसी तरह से साधे नहीं सधता।

'तेहि अलख लखावै'। जो दिखाई नहीं पड़ता आँखों से, वह दिखाई पड़ता है फिर। जो कानों से सुनाई नहीं पड़ता, वह मधुर, अपूर्व संगीत सुनाई पड़ता है फिर। जो हाथ से छुआ नहीं जाता, वह प्राणों से छुआ जाता है फिर। 'तेहि अलख लखावै'। असंभव संभव हो जाता है राम के साथ। जो नहीं होता किसी भी तरह, वह संभव हो जाता है। अकेले-अकेले संभव ही संभव नहीं होता, असंभव की तो बात ही छोड़ दो।

जो लहर अकेले हो जीने की कोशिश कर रही है, विक्षिप्त हो जायेगी। और जो लहर सागर के साथ जीने लगी, जिसने सागर के साथ अपना संबंध घोषित कर दिया और कहा, 'तुम्हारी हूँ; तुम्हीं गुनगुनाना मुझसे...रामहि गावै, अब मैं नहीं गाती, तुम ही गावो मुझसे; अब तुम्हीं धड़को मेरी धड़कन में; तुम्हीं उठो लहर बन कर; तुम्हीं छुओ चाँद-तारों को; तुम्हीं नाचो; मैं हटती हूँ, मैं तुम्हें द्वार दरवाजा देती हूँ'...रामहि गावै...तेहि अलख लखावै--फिर उसे तो जो अलक्ष्य है, वह भी उसका लक्ष्य बन जाता है। जो नहीं मिल सकता है, वह भी मिलता है। जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि कभी पा सकेंगे, वह कल्पनातीत भी हमारे ऊपर झरस जाता, बरस जाता।

जरा राम की तरफ आँख उठाओ, तो राम तुम्हारी तरफ आँख उठाये।

मैं समझता हूँ तेरी इश्वागिरी को साकी।
काम करती है नजर, नाम है पैमाने का।।

कुछ पीने-पिलाने की जरूरत नहीं, बस उसकी नजर से थोड़ी नजर मिल जाय, 'काम करती है नजर, नाम है पैमाने का।' उस परम प्रियतम की आँख से थोड़ी आँख मिल जाय, बस एक दरस--सब हो गया! परम कीमिया तुम्हारे हाथ आ गई। उस एक झलक में ही, उसकी आँख से तुम्हारी आँख के मिल जाने में ही, तुम समझ लोगे कि अब तक भूल-चूक कहाँ हो रही थी।

और ध्यान रखना, परमात्मा तुम्हारी तरफ सदा से देख ही रहा है। उसकी नजर तुम पर गड़ी है। सिर्फ तुम्हीं उसकी तरफ नहीं देख रहे। इसलिए तुम्हारे

ही लौटने की बात है। और जब तक तुम उसे न देखोगे, तब तक भूल-चूक होती रहेगी; तुम कंकड़-पत्थरों को हीरे समझोगे।

जो शै है फना उसे बका समझा है
जो चीज है कम उसे सिवा समझा है
है बहरेजहाँ में उम्र मानिंदे हबाब
गाफिल इस जिंदगी को क्या समझा है?

जो शै है फना, उसे बका समझा है। जो कुछ भी नहीं है, उसे सब कुछ समझ बैठे हैं। जो मिटने को ही है, उसे जीवन समझ बैठे हैं। जो चीज है कम, उसे सिवा समझा है। जो सीमित है, उसे असीम मान बैठे हैं। जो चुक जायेगी आज नहीं कल, उस पर ऐसा भरोसा किये बैठे हैं, जैसे कभी न चुकेगी। यह जिंदगी चुक जायेगी, ये हाथ खाली रह जायेंगे। इसे ऐसे समझे बैठे हैं, जैसे हमें मरना ही नहीं है; जैसे और लोग मरते हैं, हम थोड़े ही मरते हैं। हम तो दूसरों को मरघट तक पहुँचा आते हैं। हम तो कभी मरते नहीं।

खयाल रखना, जब भी कोई अर्थी निकले, जानना तुम्हारी ही अर्थी है। जब भी कोई मरता है, तुम्हीं मरते हो। हर मौत तुम्हारी ही मौत की खबर लाती है।

जो चीज है कम उसे सिवा समझा है
है बहरेजहाँ में उम्र मानिंदे हबाब।

जैसे पानी का बुलबुला, ऐसी है जिंदगी। मानिंदे हबाब!

गाफिल इस इस जिंदगी को क्या समझा है?

पानी का बुलबुला उठता है; सूरज की किरणें पड़ती हैं, इंद्रधनुष के रंग फैल जाते हैं। अभी है, अभी गया--ऐसी ही जिंदगी है--खूब इन्द्रधनुषी! हाथ कुछ भी नहीं आता। इन्द्रधनुष को पकड़ो, हाथ खाली के खाली रह जाते हैं; दूर से बड़े सुहावने, पास से शून्य।

है बहरेजहाँ में उम्र मानिंदे हबाब
गाफिल इस जिंदगी को क्या समझा है?

ईश्वर की तरफ थोड़ी आँख उठे, तो तुम्हारे पास कसौटी आये, तौलने का तराजू आये, मापदंड मिले। तो फिर उस एक छोटी-सी किरण से जो उसकी आँख से तुम्हारी आँख में उतर जायेगी, तुम इस सारी जिंदगी को नाप लोगे। एक क्षण में तुम्हें अहसास हो जायेगा--सब असार है। फिर जरूरी नहीं कि तुम इसे छोड़-कर भाग जाओ। अगर परमात्मा यही मरजी है कि इसमें रहो, की इसी में बढ़ो, तो तुम इस में ही रहोगे, इसी में ही बढ़ोगे। अगर उसकी मरजी है कि हटा ले तुम्हें यहाँ से, तो तुम हट जाओगे। लेकिन अब न अपनी मरजी से रहोगे, न अपनी

मरजी से जाओगे। जिहि विधि राखे राम! फिर तुम उसी विधि से रहने लगोगे।

जिहि विधि राखे राम--यही संन्यास का मूल सूत्र है, क्योंकि यही समर्पण का मूल सूत्र है।

संन्यास यानी समर्पण।

मलूकदास ने संन्यास की यह जो व्याख्या की है, इस पर खूब ध्यान करना। इसमें कुंजी छिपी है, जिससे जीवन के मंदिर के द्वार खोले जा सकते हैं।

आज इतना ही।

क्रान्तिद्रष्टा सन्त • गूंगी प्रार्थना • काम पकै जाय, तो राम
नाचो--गाओ--डूबो • प्रभु-मिलन

दूसरा प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः दिनांक १२ मई, १९७७
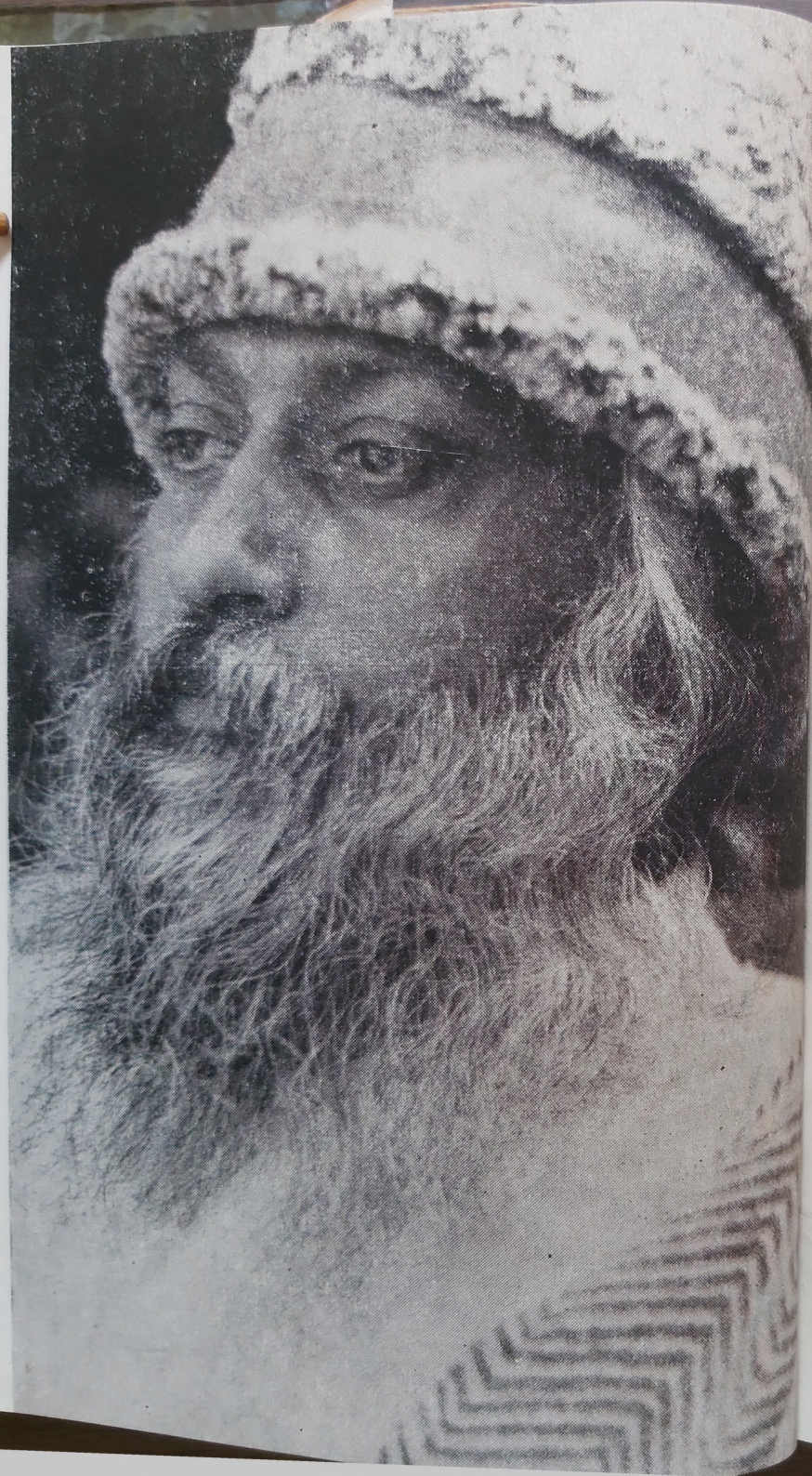
प्रश्न-सार

- बाबा मलूकदास जैसे अलमस्त फकीरों की परम्परा क्यों नहीं बन पाती ?
- प्रार्थना में क्या कहें ? प्रभु-कृपा कैसे उपलब्ध हो ?
- शरीर और मन के सम्बन्ध तृप्त नहीं करते, क्या करूं ?
- कुछ समझ में नहीं आता ?
- जब खो ही गये, तो परमात्मा से मिलन कैसा ?

● पहला प्रश्न : मलूकबाबा जैसे पियक्कड़ों की परम्परा तो क्या, संगी-साथी भी कम सुनाई पड़ते हैं! पियक्कड़ों के साथ पीने में सदा से क्या भय और एतराज रहा है? कृपा करके कहें।

परम्परा आँखवालों की बनती ही नहीं; परम्परा अन्धों की बनती है। अन्धों के पीछे जो अन्धों की कतार है, उसका काम है--परम्परा। आँखवाले तो अकेले होते हैं। आँखवालों की भीड़ नहीं होती। भेड़ें चलती हैं भीड़ में। 'सिंहों के नहि लेहड़े'।

संतों की कोई जमात नहीं है। जमात के पीछे ही, भीड़ के पीछे ही भय छिपा है। भेड़ चलती है भीड़ में--भय के कारण। अकेले होने का साहस नहीं है। दूसरों के संग-साथ में भय छिपा रहता है। अकेले होते ही भय उभर आता है।

समाज है इसीलिए—कि आदमी भयभीत है। जैसे-जैसे आदमी निर्भय होगा, वैसे-वैसे समाज तिरोहित होगा। व्यक्ति होंगे फिर; समाज जैसी चीज शिथिल होती जायेगी।

समाज का अर्थ ही यही है कि अकेले अकेले हम बहुत अधूरे हैं, चलो, हाथ में हाथ डाल लें। एक भ्रम पैदा करें--कि अकेले नहीं हैं।

तुमने देखा : एक अकेला आदमी गुजरता हो मरघट से, तो डरता है। दूसरा आदमी साथ हो जाय, तो डर कम हो जाता है। दूसरा भी इतना ही डर रहा था। दोनों डरे हुए हैं; दोनों अलग-अलग डरे हुए हैं। लेकिन दोनों साथ होकर सोचते हैं कि शायद कोई आश्वासन मिल गया।

दो डरे हुए आदमियों के साथ होने से क्या फर्क पड़ता है? डर दुगुना हो जाना चाहिए; और क्या होगा! लेकिन भ्रम पैदा होता है--कि चलो, दूसरा है। दूसरे की मौजूदगी से एक आभास पैदा होता है कि जरूरत पड़ेगी, तो कोई संग-साथ है। इसलिए हम परिवार बनाते हैं। अकेले में भय है। समाज बनाते हैं। राष्ट्र बनाते हैं। राज्य बनाते हैं। समूहों पर समूह निर्मित करते हैं। लेकिन सब के पीछे

गहरे में भय है।

संत तो अकेला है। और संत के पीछे और संत के साथ तो केवल वे ही हो सकते हैं, जिनकी अकेले होने की हिम्मत है। फर्क को समझना।

ऐसा नहीं कि बुद्ध के साथ लोग नहीं चले। चले--हजारों लोग चले। लेकिन वही लोग चले, जो भीड़ की तलाश में न थे; जिन्हें अकेले होने की हिम्मत थी।

संतत्व का अर्थ ही है : अकेले होने का साहस।

अगर तुम बुद्ध के पास गये होते, तो तुम पाते : दस हजार भिक्षु बैठे हैं। ऊपर से तो ऐसा ही दिखेगा कि यह भी भीड़ है। मगर तुम भ्रांति में पड़ गये। यह भीड़ नहीं है। यहाँ एक-एक आदमी अपनी वजह से बैठा है। ऊपर से तो भीड़ दिखाई पड़ती है, क्योंकि दस हजार लोग बैठे हैं, लेकिन ये दस हजार में एक भी आदमी ऐसा नहीं है, जो नौ हजार नौ सौ निन्यानबे के कारण बैठा है। अगर नौ हजार नौ सौ निन्यानबे चले जायेंगे, तो उठ जायेगा उनके साथ--ऐसा नहीं है। अपने कारण बैठा है। यहाँ एक-एक अकेला बैठा है। यहाँ दस हजार एक बैठे हैं। इसको खयाल में लेना।

तुम दस आदमियों के साथ ध्यान में बैठ सकते हो। लेकिन जैसे ही तुम ध्यान में जाओगे, वहाँ दस इकट्ठे न रह जायेंगे। प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग हो गया। ध्यान में उतरते ही अलग-अलग हो गया। आँख बंद होते ही भीड़ खो गई। तुम बचे। तुम अकेले बचे; दूजा कोई न रहा।

यह जो भीड़ से जुड़ा हुआ आदमी है, परंपरा से जकड़ा हुआ आदमी है, वह ध्यान भी नहीं कर पाता, क्योंकि ध्यान में अकेला होना पड़ेगा। ध्यान तो मार्ग है--संतत्व का।

तुम पूछते हो : बाबा मलूकदास जैसे पियक्कड़ों की परंपरा क्यों नहीं बनी? परंपरा बन नहीं सकती।

कभी-कभी कोई बिरला व्यक्ति उस ऊँचाई तक उठता है। ऐसे तारे कभी-कभी उगते हैं और खो जाते हैं। फिर सदियों प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

तुम भी ऐसे तारे बन सकते हो, अगर भय छोड़ो। तुम भी ऐसे ज्योतिपिंड बन सकते हो, अगर भीड़ से नाता छोड़ो।

तुम खयाल करते हो : तुमने कहाँ-कहाँ अपने को भीड़ से बाँध रखा है? कोई कहता है : मैं हिन्दू। कोई कहता है : मैं मुसलमान। कोई कहता है : मैं ईसाई। कोई कहता है : मैं सिक्ख। कोई कहता कि मैं भारतीय; कोई कहता : मैं चीनी; कोई कहता : मैं जापानी। कोई कुछ कहता; कोई कुछ कहता। हजार-हजार समूहों से हमने संबंध बाँध रखा है।

एक आदमी न मालूम कितने समूहों से बँधा है ! इन सारे बंधनों के ऊपर उठते ही तुम भी संतत्व को उपलब्ध हो जाओगे।

संतों की भीड़ नहीं होती--और न संतों की कोई जमात होती है।

फिर मलूकदास जैसे लोगों की जमात तो और भी मुश्किल है। इतने मस्त लोगों के साथ तो तुम चलने में घबड़ाते हो। इनकी मस्ती तुम्हें और भी भय से भर देती है।

मस्ती से बड़ा भय है। क्यों? क्योंकि मस्ती के लिए एक अनिवार्य शर्त है कि तुम अपना नियंत्रण छोड़ो। डोलना हो--मस्त हाथी की भाँति, तो नियंत्रण न रख सकोगे। शराबी की भाँति चलना हो तरंग में, तो फिर नियंत्रण न रहेगा। और नियंत्रण गया--कि अहंकार गया।

अहंकार नियंत्रक है। अहंकार पूरे समय बैठा हुआ है--नियंत्रण जमाये। अहंकार तानाशाह है तुम्हारे भीतर। अहंकार जो कहता है, वही तुम कहते हो। जो कहता है : मत करो, वह तुम नहीं करते। अहंकार तुम्हें चलाता है, तो तुम चलते हो। अहंकार बिठाता है, तो बैठते हो।

मस्त आदमी का क्या अर्थ होता है? मस्त आदमी का अर्थ होता है : अब कोई चलानेवाला नियंत्रण भीतर न रहा। अब तो छोड़ दिया सब परमात्मा पर। जहां उसकी मरजी हो, ले जाय। डुबाना हो--डुबा दे; हम गीत गुनगुनाते डूब जायेंगे। मिटना हो--मिटा दे; हम मुसकराते मिट जायेंगे। जो उसकी मरजी; जैसी उसकी मरजी।

अहंकार कहता है : हिसाब से चलो; कदम कदम फूंक कर रखो; कहीं भटक मत जाना। होशियारी रखो; चालाकी रखो। तो मस्तों के साथ नहीं चल पाते।

बाबा मलूकदास तो पियक्कड़ हैं। पियक्कड़ के साथ जाने का मतलब ही यह होता है कि तुम भी पीने की हिम्मत जुटाओगे। नहीं तो पियक्कड़ के साथ बैठने का क्या सार? और खतरा यह है कि पीने वालों के साथ बैठो, तो सत्संग के परिणाम होते हैं। शराबियों के पास बैठोगे, शराब पीने लगोगे। संतों के पास बैठोगे, शराब पीने लगोगे।

सत्संग का अर्थ ही क्या है? सत्संग का अर्थ है कि तुम संत की 'बीमारी' के लिए खुले हो। अगर संत की 'बीमारी' तुम्हारे तरफ आने लगेगी, तो तुम प्रतिरोध न करोगे। तुम कहोगे : आओ, द्वार खुले हैं।

संतत्व संक्रामक है। जैसे बीमारी लगती है ना, ऐसे ही संतत्व भी लगता है। संतों से लोग डरते हैं! डर के कारण पूजा भी कर लेते है। पूजा--डर का ही एक उपाय है। पैर छू कर--और भागे! बैठते नहीं है--पास में। पैर छूते हैं और

कहते हैं : बाबा, बख्शो। पैर छूकर यह कहते हैं कि 'आप भले, हम भले; आपकी कृपा बनी रहे। आपका आशीर्वाद बना रहे।' लेकिन संतों के पास ज्यादा देर रुकते नहीं। खतरा है।

> कठिन है
> बहुत कठिन है
> बैठे बैठे सहना--सौन्दर्य को
> धुली धुली दुरवा का
> बिखरा बिखरा हुआ रूप
> हलके हलके बादल
> खुली-मुँदी हलकी धूप
> कठिन है
> बहुत कठिन है
> झाँक कर रह जाना
> इन्हें खिड़की से
> वृक्षों पर नये पत्ते
> पत्तों की हर-हर
> पड़े पड़े बिस्तर पर सुनना
> बाहर बरसा की झड़ी
> कठिन है
> बहुत कठिन है।

पुकार आती है। बाहर निकला सूरज--पुकार आती है। बसंत आया, फूल झरे--पुकार आती है। गंध लाती--हजार हजार संदेश। कहती : आओ बाहर। फिर कठिन है पड़े रहना--द्वार-दरवाजे बन्द किये।

जैसे प्रकृति बुलाती है।... सुनते हैं--इन पक्षियों को! ऐसे परमात्मा भी बुलाता है--संतों से।

संतों के पास अगर अपने को रखोगे, तो उनके हृदय की धड़कन में तुम्हें परमात्मा की गूँज सुनाई पड़ेगी।

> कठिन है
> बहुत कठिन है
> बैठे बैठे सहना—सौन्दर्य को

चलना पड़ेगा; उठना पड़ेगा; साथ होना पड़ेगा।

जब पुकार आयेगी, तो तुम पुकार को झुठला न सकोगे। इसलिए लोग होशियार

है--दूर ही रहते हैं। दूर रहने के हजार बहाने खोज लेते हैं। कोई दूर रहता कह कर--कि संतत्व में कुछ धरा नहीं है; परमात्मा इत्यादि सब बातें हैं; बकवास है। स्वर्ग, नरक, मोक्ष--कुछ होते नहीं हैं। कहाँ की आत्मा? कैसी आत्मा? बस मनुष्य तो मिट्टी है। दो दिन का खेल है--खेल लो। फिर गये--सो गये।

कोई नास्तिक बन कर संतों के पास आने से बचता है। यह एक तरकीब है--नकारात्मक तरकीब है। यह भी तरकीब बचने की है--खयाल रखना। नास्तिक संतों से बचने के उपाय खोज रहा है। अपने चारों तरफ बागुड़ लगा रहा है--कि है ही नहीं, तो जाना क्यों? जब यही बात पक्की मन में बिठा ली, दृढ़ कर लिया विचार--कि ईश्वर नहीं, स्वर्ग नहीं, मोक्ष नहीं, समाधि नहीं, सब पाखण्ड है; सब वितन्डा है--जब ऐसा पक्का कर लिया, जाने का भाव ही न उठेगा। और अगर कभी भूल-चूक से पहुँच भी गए, तो कानों में इतना सीसा भरा है--इन धारणाओं का--कि कुछ सुनाई न पड़ेगा। अगर संत को कभी देखा भी, तो जो गलत है, वही दिखाई पड़ेगा; सही दिखाई ही न पड़ेगा। आँखें तुमने पहले से तैयार कर रखी हैं--गलत को देखने के लिए।

एक दूसरी तरकीब भी है, जो आस्तिक की तरकीब है। तुम यह तो जानते हो, कि नास्तिक शायद बचने की कोशिश कर रहा है, लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूँ: आस्तिक भी बचने की कोशिश कर रहा है। आस्तिक भी उपाय खोजता है कि न जा पाय संत के पास। उसके उपाय क्या हैं? एक उपाय उसका--कि वह मुरदा संतों की पूजा करता है। राम में कोई खतरा नहीं है। कृष्ण में कोई खतरा नहीं है। क्राइस्ट में अब कोई खतरा नहीं है। कबीर, नानक में अब कोई खतरा नही है। जब जिन्दा थे, तब खतरा था।

मरा संत क्या करेगा! तुम तो मरे मरे हो ही, तुम्हारा संत भी मरा हुआ! दो मुर्दों के बीच खूब बन जाती है; दोस्ती बन जाती है। मुरदा संत तुम्हें बदल नहीं सकते। इसलिए आस्तिक मुरदा संतों को पूजता है; और जिन्दा संतों से बचता है! क्योंकि जिन्दा संत खतरनाक हैं; चिनगारी हैं। गिरेगी, तो तुम्हारा 'घास-फूस' जल जायेगा

कबीर ने कहा है: 'जो घर फूंके आपना, चले हमारे संग।' तुम्हारा घर फुंक जायेगा। तो 'राख' की पूजा...। राख को तुम कहते--विभूति। राख की पूजा करो। राख को लगाते तिलक की तरह, टीके की तरह।

जीवित संत अंगारा है; तुम राख पूजते।

तो या तो उपाय है कि मुरदा संतों को पूजो। या अगर कभी भूल-चूक जिन्दा संत के पास पहुँच जाओ, तो कहो कि 'महाराज, आऊँगा कभी। माना कि आप

बिलकुल ठीक हैं...।' यह माना कि 'आप बिलकुल ठीक हैं'--बचने की तरकीब है। क्योंकि जब मान ही लिया कि बिलकुल ठीक हैं, तो अब करने को क्या बचा? बेचैनी गई। मान ही लिया कि 'आप बिलकुल ठीक हैं। मान ही लिया--कि मैं पापी; मैं पतित; आप महान। कहाँ आप, कहाँ मैं! मैंने स्वीकार ही कर लिया सब कि आप जो कहते हैं, सब अक्षरश: ठीक है। मगर अभी मेरा समय नहीं आया है। जब मेरा समय आयेगा, तब आऊँगा।'

तो पैर में दो फूल चढ़ा कर चले आये!

पूजा भी उपाय है--संत से बचने का।

संत के पास वही पहुँचता है, जो सारे उपाय बचने के छोड़ देता है। जो कहता है कि चलो, साहस से एक बार आँख खोल कर देखें कि संतत्व क्या है। कौन जाने, जिस जीवन-निधि को हम खोज रहे और-और, अलग-अलग दिशाओं में, वह संतत्व में ही छिपी हुई पड़ी हो! कौन जाने...।

न तो संत के पास न-कार में भर कर जाना, और न अ-कार से भर कर जाना। न नास्तिक की तरह जाना, न आस्तिक की तरह जाना। संत के पास तो खुला हृदय ले कर जाना; खुली आँख लेकर जाना; दर्पण हो कर जाना--कि जो है, वह दिखाई पड़ जाय। और जो है--वह दिखाई पड़ जाय, तो निश्चित ही...।

कठिन है
बहुत कठिन है
बैठे-बैठे सहना--सौंदर्य को
धुली धुली दुरवा का
निखरा बिखरा हुआ रूप
हलके हलके बादल
खुली-मुँदी हलकी धूप
कठिन है
बहुत कठिन है
झाँक कर रह जाना
इन्हें खिड़की से
वृक्षों पर नये पत्ते
पत्तों की हर-हर
पड़े-पड़े बिस्तर पर सुनना
बाहर बरसा की झड़ी

कठिन है
बहुत कठिन है।

जब तुम परमात्मा की झर-झर सुनोगे—संत के हृदय में; परमात्मा कल-कल नाद सुनोगे—संत के हृदय में; जब तुम संत के हृदय के पास कान लगा कर बैठ जाओगे, वही तो शिष्यत्व का अर्थ है।...

शिष्यत्व का अर्थ नहीं है : पूजन। शिष्यत्व का अर्थ है : श्रवण, सुनने की क्षमता। शिष्यत्व का अर्थ है : जो है, उसे वैसा ही देखूँगा; बदलूँगा नहीं; व्याख्या न करूँगा। अपने को बीच में न लाऊँगा; अपने को हटा कर देखूँगा। एक बार तो सही : खिड़की से झांक कर देख लूँ कि बाहर क्या हो रहा है। एक बार तो देख लूँ कि मनुष्य के भीतर क्या हो सकता है—क्या संभावना है? जिसके भीतर हुआ है, उसके भीतर एक बार झाँक कर देख लूँ, तो अपनी भी सुधि आ जाय।

तो लोग संतों से डरते हैं। फिर पियक्कड़ों संतों से तो और भी ज्यादा। संत भी दो तरह के हैं। एक तो संत हैं, जिनको हम कहें—मर्यादा, समाज, संस्कृति, सभ्यता—उसके अनुकूल। जैसे हम राम को कहते हैं : मर्यादा पुरुषोत्तम। तो एक तो संत होते—राम जैसे; जो रत्ती भर समाज की मर्यादा से हटते नहीं।

एक संत होते हैं—क्रांति-द्रष्टा; कृष्ण जैसे; जिनके जीवन में कोई मर्यादा नहीं होती। यह कुछ संयोग की बात नहीं कि इस देश ने राम को आंशिक अवतार कहा और कृष्ण को पूर्ण अवतार कहा। जिन्होंने जाना, उन्हें यह कहना ही पड़ा। जो परंपरा के अनुकूल चलता है; वह अंश ही है—पूरा नहीं। जो परंपरा को ध्यान में रख कर चलता है—लीक-लीक, उसमें अभी अंश ही परमात्मा उतरा है—पूरा परमात्मा नहीं।

पूरा परमात्मा तो जब उतरेगा, तब कसी मर्यादा? कैसी सीमा? बाढ़ की तरह उतरेगा। पूरा परमात्मा कुछ नल की टोंटी नहीं है—कि तुमने खोला और अब तुम्हारी मर्यादा में उतरा! पूरा परमात्मा तो बाढ़ की तरह है—कि बादल खुल गये, और हुई मूसलधार वर्षा; कि भर गये नदी-तालाब, सर-सरिताएँ; कि कँप गई—सारी पृथ्वी।

तो एक तो संत का सौम्यरूप है; राम उसके प्रतीक हैं। एक संत का क्रांतिरूप है; कृष्ण उसके प्रतीक हैं। मलूक कृष्ण की धारा में आते हैं। वह पियक्कड़ों की धारा है।

राम का उपयोग इतना ही है—कि अगर तुममें हिम्मत न हो, तो चलो, मूसलधार वर्षा में स्नान नहीं कर सकते हो, कोई हरजा नहीं है। अपने घर की नल की टोंटी के नीचे बैठ कर ही कम से कम स्नान तो कर लो। आज नल की टोंटी के नीचे स्नान करोगे, तो शायद स्नान का रस लग जाय। तो कल शायद हिम्मत जुटा कर नग्न खड़े हो सको—वर्षा के नीचे; और आनंदित हो सको—निसर्ग में।

परंपरागत संत की इतनी ही उपयोगिता है कि वह तुम्हें किसी दिन क्रांतिकारी संत के पास पहुँचा दे। वह सीढ़ी है; सीढ़ी से ज्यादा नहीं है। अन्ततः तो किसी न किसी दिन बाबा मलूकदास जैसे किसी आदमी के हृदय में झाँक कर देखना होगा। वहाँ परमात्मा अपने पूरे रूप में प्रगट होता है।

मयाल-ए-सोज ए गमहा ए निहानी।
देखते जाओ भड़क उठ्ठी है सम्मे से जिंदगानी देखते जाओ।।

जब कभी कोई मलूक जैसा व्यक्ति पैदा होता, तो उसकी जीवन की मशाल पूरी भड़क उठती है। 'भड़क उठ्ठी है सम्मे से जिंदगानी देखते जाओ।' मगर उतनी विराट् लपट को शायद तुम न झेल पाओ; शायद वैसी आँच को तुम न झेल पाओ; तुम अँधेरे के आदी हो, तो कोई हरजा नहीं है। छोटा-सा दीया जलाओ। राम ऐसे ही छोटे दीये हैं।

जो संत तुम्हारी धारणाओं के अनुकूल पड़ता है, वह मिट्टी का दीया है, जिसे तुमने जला लिया है। रोशनी उससे भी होती है। फिर एक मशाल भी है—दोनों छोरों से जलती हुई मशाल है; रोशनी उससे भी होती है। रोशनी का पूरा मजा तो मशाल में है। मगर चलो, स्वाद ..। कम से कम अँधेरे से रोशनी में आये। छोटे टिमटिमाते दीये की रोशनी ही सही; फिर भी भली है।

मलूकदास जैसे व्यक्ति, जिस भाषा में बोलते हैं, वह भाषा भी घबड़ा देती है—पण्डित को, पुरोहित को। विशेषकर उनको, जो अपने को धार्मिक मानते हैं और धार्मिक नहीं हैं; उनके पैरों के नीचे की जमीन खिंच जाती है। उनके पैरों के नीचे खन्दक हो जाती है। वे घबड़ा उठते हैं।

मलूक जैसे व्यक्तियों का विरोध होने लगता है। उनके पास आना तो दूर, उनसे दूर ले जाने के सब उपाय होने लगते हैं।

वह आ रहा है असा टेकता हुआ वाइज।
बहा दे इतनी कि साकी कहीं न थाह मिले।।

वह जो धर्मगुरु चला आ रहा है—अपनी लकड़ी टेकते हुए...। मलूक जैसे संत तो कहते : हे प्रभु, इतनी शराब बहा दे कि यह डूब ही जाय। इसको कहीं थाह भी न मिले।

उट्ठे कभी घबरा के तो मयखाने से हो आये।
पी आये तो फिर बैठ रहे याद-ए-खुदा में ए रियाज।।

एक ऐसी परम दृष्टि है, जहाँ जीवन को अखण्ड रूप में देखा जाता; जहाँ

जीवन के साधारण सुख और परमात्मा के विराट् सुख में विरोध नहीं है। जहाँ जीवन के साधारण सुख में भी परमात्मा के ही परम सुख की किरण है। जहाँ हमें इस जगत् में जो सौन्दर्य प्रगट हो रहा है, उस सौन्दर्य को भुलाने के लिए नहीं, उस सौन्दर्य में गहरे उतर जाने का निमंत्रण है। फूल में भी परमात्मा है; काश! तुम फूल में गहरे उतर सको! हरे-हरे नये-नये आये पत्तों में भी परमात्मा ही आया है; काश, तुम पत्तों में गहरे उतर सको! तुममें भी परमात्मा ही विराजमान है।

जहाँ-जहाँ तुमने सुख की थोड़ी झलक भी पाई है--झूठी ही सही--सपना ही सही; लेकिन जहाँ भी तुमने सुख की थोड़ी-सी झलक पाई है, वहाँ परमात्मा ही करीब था। उसकी ही सुगंध आई थी।

वह जो क्रांतिद्रष्टा संत है, उसके लिए सृष्टि में और स्रष्टा में विरोध नहीं है। यह सृष्टि भी स्रष्टा का ही रूप है। यह तथाकथित साधु-संन्यासी को, तथाकथित महात्मा को, तथाकथित धर्मगुरु को बहुत खटकने-अखरने वाली बात है।

धर्मगुरु का तो सारा व्यवसाय इसमें है, कि वह तुम्हें संसार के विरोध में खड़ा कर दे। परमात्मा के पास तो नहीं पहुँचा पाता, लेकिन संसार के विरोध में खड़ा कर देता है। संसार को तुम्हारे भीतर से मिटा भी नहीं पाता, लेकिन विषाक्त कर देता है। परमात्मा का सुख तो उठाता ही नहीं, इस जीवन का जो थोड़ा-बहुत सुख उतरता था, वह भी उतरना बन्द हो जाता है। तुम बिलकुल रूख-सूख जाते हो।

मस्ती से भरे हुए संतों की धारणा बड़ी और है। वे तुमसे कहते हैं : छोड़ने को यहाँ कुछ भी नहीं है; पाने को सब कुछ है। वे तुमसे कहते हैं : छोड़ने की बात ही गलत शुरुआत है। संसार छोड़ना नहीं है; प्रभु को पाना है। फिर उसको पाने से जो छूट जाय--छूट जाय। उसको पाने से जो अपने से छूट जाय--छूट जाय।

गर यार मय पिलाये, तो फिर क्यूँ न पीजिये।
जाहिद नहीं, मैं शेख नहीं, कुछ वली नहीं ।।

अगर परमात्मा ही पिला रहा हो, तो फिर क्यों न पीजिये! 'जाहिद नहीं, मैं शेख नहीं, कुछ वली नहीं।' परमात्मा जो पिलाये--पीयो। परमात्मा जो दिखाये--देखो। परमात्मा जैसा नचाये--नाचो।

यह जो परमात्मा का परम स्वीकार है, इसके कारण मलूकदास जैसे लोगों को समाज की प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। मलूकदास जैसे लोगों को समाज का विरोध झेलना पड़ता है।

समाज की बड़ी टुच्ची धारणाएं हैं, जिनका कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन

समाज इन्हीं धारणाओं से जीता है और घबड़ाता है कि कहीं वे धारणाएँ छूट न जायँ। उन धारणाओं से कुछ मिला भी नहीं है; कुछ पाया भी नहीं है। लेकिन उन धारणाओं में इतने दिन रहे हैं कि छूट जाय धारणा, टूट जाय धारणा, तो प्राण कँपते हैं।

ऐसा ही समझो कि जैसे कोई आदमी बहुत दिन तक जंजीरों में रह गया हो, बहुत दिन तक कारागृह में रहा हो, फिर उसकी तुम जंजीरें तोड़ो, तो उसे बेचैनी होती है। वे जंजीरें तो अब उसके आभूषण बन गई हैं। वे जंजीरें तो अब उसके शरीर का हिस्सा हो गई हैं।

ऐसा हुआ : फ्रांस की क्रांति में वेस्टाइल के किले को क्रांतिकारियों ने तोड़ दिया और उस किले में बंद कारागृह में बड़े पुराने कैदी थे। कोई चालीस साल से बंद था, कोई तीस साल से बंद था, कोई तो ऐसा था कि पचास साल से बंद था। उस किले में केवल आजीवन जिनको सजाएँ मिली थीं, ऐसे हजारों कैदी थे। उन्होंने उन सबको छुट्टी दे दी; बाहर निकाल दिया।

सोचा था क्रांतिकारियों ने कि वे बड़े प्रसन्न होंगे। लेकिन वे बड़े नाराज हुए। उनमें से तो कुछ ने साफ इनकार कर दिया--बाहर जाने से। उन्होंने कहा : 'हम चालीस साल से, पचास साल से यहाँ हैं; बूढ़े हो गये हैं, अब कहाँ जायेंगे? अब तो हमें याद भी नहीं है कि हम किसको खोजेंगे! किस घर में निवास करेंगे? और अब तो हम सब काम-धाम भी भूल गये हैं। अब हम काम-धाम इस बुढ़ापे में क्या करेंगे? और फिर हमें हमारी कोठरी रास आती है।' पचास साल जो कोठरी के अँधेरे में रह गया हो, बाहर की रोशनी तिलमिलायेगी।

और तुम चकित होओगे जानकर...। फिर भी क्रांतिकारी तो जिद्दी, उन्होंने बाहर निकाल ही दिया; दबरदस्ती बाहर निकाल दिया। दुनिया में तुम किसी आदमी को जबरदस्ती स्वतंत्र नहीं कर सकते। जबरदस्ती परतंत्र तो कर सकते हो, लेकिन जबरदस्ती स्वतंत्र नहीं कर सकते। कैसे करोगे?

आधी रात होते-होते अनेक उनमें से लौट आये। और उन्होंने कहा कि उन्हें नींद ही नहीं आती! एक ने तो कहा कि 'मेरी जंजीरें मुझे वापस लौटा दो। क्योंकि उनके बिना मुझे लगता है, मैं नंगा-नंगा हूँ। मैं सो ही नहीं सकता।' तुम थोड़ा सोचो : पचास साल जिस आदमी के हाथ में लोहे की मजबूत जंजीरें, पैर में मजबूत बेड़ियाँ पड़ी हों; वह उन्हीं के साथ सोया--पचास साल तक। अब करवट लेता है, तो खाली-खाली लगता है। न जंजीर बजती, न आवाज होती! न वजन मालूम होता। नींद उसकी टूट-टूट जाती है। आदत!

साधारण आदमी आदत से जीता है। और क्रांतिद्रष्टा संतों का एक ही आग्रह

है : आदत से जागो; होश से जीओ।

और मजा यह है कि यह कुछ ऐसा होश है कि एक तरफ होश बढ़ता है और एक तरफ मदमस्ती बढ़ती है। यह कुछ ऐसा होश है कि पुरानी बेहोशी चली जाती है और एक नये तरह की, एक अभिनव तरह की बेहोशी आती है। पुराना अज्ञान चला जाता है और एक नये तरह की निर्दोषता का आविर्भाव होता है।

अब तुम्हें धन के कारण मस्ती नहीं आती; न पद के कारण मस्ती आती है; अब तुम्हें अकारण मस्ती आती है। तुम मस्ती में डोलते ही रहते हो। जैसे मस्त हाथी डोलता हो--कहा मलूक ने; कि जैसे शराबी पी कर चलता हो--ऐसा जिसने परमात्मा को पी लिया है, उसकी चौबीस घड़ियाँ मस्ती में डूबी हुई बीतती हैं।

मगर ऐसा आदमी समाज के लिए बहुत झंझट का कारण हो जायेगा। क्योंकि इतने मस्त आदमियों को गुलाम नहीं बनाया जा सकता। इतने मस्त आदमी मस्ती से जीते हैं। इतने मस्त आदमियों को तुम 'भेड़ें' नहीं बना सकते। ऐसे मस्त आदमी सिंहों की तरह जीते हैं। और समाज भेड़ें चाहता है। राजनेता, पण्डित, पुरोहित भेड़ें चाहते हैं; ऐसे आदमी नहीं चाहते। इतने खतरनाक आदमी झेलने की क्षमता अभी समाज की नहीं है।

समाज अभी संतों को झेलने के योग्य नहीं हो पाया है। अभी संतों का कोई समाज नहीं हो पाया है। अभी धर्म के नाम पर पाखण्ड जीता है, धर्म के नाम पर सत्य नहीं।

अभी तुम उस संत की पूजा करते हो, जो तुम्हारे आँगन में समा जाता है। तुम उस संत से तो भयभीत हो जाते हो, जो तुम्हारे आँगन को तोड़ दे; तुम्हारी दीवालों को उखाड़ दे; तुम्हें खुले आकाश के नीचे ले आये।

इसलिए मलूक जैसे लोगों के पीछे कोई परंपरा नहीं बनती; संगी-साथी भी पैदा मुश्किल से होते हैं--कभी-कभार।

समाज इनसे भयभीत रहा है। अकसर तुम भय के कारण पूजा भी करते हो। तुम्हारी पूजा में भी भय ही होता है।

सभी दुनिया की भाषाओं में एक बहुत ही अरुचिपूर्ण, कुरूचि से भरा हुआ शब्द उपयोग में आता है, वह है : ईश्वर भीरु--गॉड फीयरिंग। धार्मिक आदमी को हम कहते हैं : ईश्वर भीरु। यह कोई बात हुई! धार्मिक आदमी और ईश्वर से भयभीत?

महात्मा गांधी कहते थे : 'मैं किसी से नहीं डरता--सिवाय ईश्वर के।' मगर ईश्वर से डरते हैं! सबसे डरो; कम से कम ईश्वर से तो न डरो। क्योंकि जिससे डर होगा, उससे प्रेम न हो सकेगा। भय के साथ प्रेम का संबंध नहीं है। जहाँ भय

है, वहाँ प्रेम मर जाता है। जिससे भय है, उससे घृणा हो सकती है, प्रेम कैसे होगा?

तुमने किसी से भयभीत होकर प्रेम किया है? कोई तुम्हारी छाती पर छुरा रख दे, उससे तुम प्रेम करोगे? हाँ, तुम बतला सकते हो कि मैं तुम्हारे प्रेम में हूँ। लेकिन उससे तुम प्रेम करोगे?

मैंने सुना है...। आदमियों की बीमारियाँ जंगलों तक पहुँच जाती हैं। एक बार जंगल में जानवरों ने एक प्रतियोगिता का आयोजन किया। जैसे आदमी करते हैं। तो सब तरह के खेल--कबड्डी, और वालीबॉल, और फुटबॉल--और जो जो जंगली जानवर कर सकते थे, उन्होंने सब खेलों का आयोजन किया। सिंह भी आया। बैठा देखता रहा। और सब प्रतियोगिता में तो उसने भाग न लिया; बड़े आनंद से देखता रहा; लेकिन आखिरी प्रतियोगिता थी, लतीफे सुनाने की--चुटकुले सुनाने की, उसमें वह भी भाग लेना चाहता था। उसने सोचा : कम से कम एक में तो मैं भी भाग लूँ।

पहले एक खरगोश खड़ा हुआ; उसने एक लतीफा सुनाया। लेकिन खरगोश की जान कितनी? भीड़-भड़क्का और जानवरों को देख कर बहुत घबड़ा गया। आधा ही लतीफा सुना पाया और उसको पसीना बह गया; वह बैठ गया। फिर लोमड़ी ने सुनाया। लोमड़ी कुशल; पुरानी राजनीतिज्ञ; उसने लोगों को खूब हँसाया। ऐसे और भी जानवर कहे।

आखिर में सिंह खड़ा हुआ। सन्नाटा छा गया। सब उत्सुक हुए कि सिंह कौन-सा लतीफा सुनाता है--देखें। माइक के पास आकर लतीफा तो दूर उसने बड़े जोर से सिंह-गर्जना की। इतने जोर से...। एक तो वैसे ही सिंह-गर्जना--और फिर लाउड स्पीकर पर! छोटे-मोटे प्राणियों के तो प्राण निकल गये। खरगोश जो सामने ही बैठा था, प्रतियोगिता में पहले नंबर भाग लेने आया था, वह तो वहीं ढेर हो गया। कई प्राणी एकदम बेहोश हो गये। जो बचे उनकी भी छातियाँ धड़क गईं।

दहाड़ने के बाद सिंह ने कहा, 'अब मूर्खो, हँसो। हँसते क्यों नहीं? यही लतीफा था। हँसो।' हँसी किसी को भी नहीं आ रही है। हँसी का कोई कारण नहीं है। लेकिन हँसना पड़ा। जब सिंह कहे...। तो लोग हँसने लगे। ऐसे हँसने लगे कि कई जानवरों को तो खाँसी आने लगी--हँसी के मारे। मगर जब तक सिंह कहे ना कि रुको, तब तक रुक भी नहीं सकते!

स्वभावतः पहला पुरस्कार सिंह को गया।

जहाँ शक्ति है और जहाँ शक्ति के साथ जबरदस्ती है, वहाँ भय पैदा हो जाता है। भय में तुम हँस भी सकते हो। अब सिंह कहता है कि हँसो मूर्खो, हँसो। यही

लतीफा था। हँसी किसी को भी नहीं आ रही है। लेकिन यह कोई हँसी होगी! इसमें हँसी होगी? इसमें सिर्फ एक धोखा होगा, एक प्रवंचना होगी; एक अभिनय होगा, एक पाखण्ड होगा।

ईश्वर से भयभीत--तो फिर प्रेम कैसे करोगे? और अगर ईश्वर से तुम भयभीत हो, तो भीतर गहरे में तुम्हारे घृणा होगी। तुम बदला लेना चाहोगे।

नीत्शे ने कहा है कि ईश्वर मर गया। और यह भी कहा है कि और किसी ने नहीं, आदमी ने ही उसकी हत्या कर दी है। नीत्शे से लोग बहुत नाराज हैं--कि उसने ऐसी अभद्र बात कही। लेकिन मेरे देखे, मेरे समझे नीत्शे ने जो कहा, वह स्वाभाविक परिणाम है— ईश्वर-भीरुता का। जब आदमी इतने दिन तक डराया गया है ईश्वर से, तो कोई तो हिम्मतवर आदमी कहेगा--कि मारो गोली; खतम करो ईश्वर को; बहुत हो गया भय।

अगर उस दिन जंगल के जानवरों में कोई एकाध भी हिम्मतवर होता, तो खड़े होकर कहता कि बंद करो यह बकवास। यह कोई चुटकुला है? यह कोई लतीफा हुआ?

नीत्शे ने यह भी कहा है कि ईश्वर मर गया है और आदमी अब स्वतंत्र है। अब आदमी जो चाहे, कर सकता है। क्योंकि अब तक आदमी ने ईश्वर के डर से ही बहुत कुछ नही किया है।

आदमी बदला नही है; सिर्फ भय के कारण ग्रसित है। और जब महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति भी कहते है कि मैं और किसी से नहीं डरता, सिर्फ ईश्वर से डरता हूँ, तो जाहिर होती है बात कि ऐसे व्यक्तियों को भी ईश्वर की कोई प्रतीति नहीं है। प्रतीति हो नहीं सकती।

ईश्वर यानी प्रेम। प्रेम में कहाँ भय है! प्रेम में कैसा भय? प्रेम कोई तलवार थोड़े ही है। प्रेम में फुसलावा हो सकता, मनुहार हो सकती; प्रेम में कोई जबरदस्ती थोड़े ही है।

लेकिन आदमी अब तक ऐसे ही मानता रहा है--कि भय के कारण।... तो तुमने जो एक समाज बना रखा है, उसमें सारी व्यवस्था भय के कारण है। तुम नैतिक हो, तो भय के कारण। तुम चोरी नहीं करते--तो भय के कारण। तुम झूठ नहीं बोलते--तो भय के कारण। तुम्हारे सब सद्‌गुण भय पर टिके हैं! इसलिए तुम्हारे सब सद्‌गुण दो कौड़ी के हैं।

जब मलूक जैसे व्यक्ति जगत् में आते हैं, तो वे कहते हैं: छोड़ो भय; आओ, प्रेम की बात करें। छोड़ो भय--आओ, मस्त हों। छोड़ो भय--आओ, प्रभु के गीत गुनगुनायें--आनन्द में, प्रेम में। प्रभु--प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आओ, प्रभु के हाथ में हाथ डालें, प्रभु को आलिंगन में लें। नाचें प्रभु के

साथ--रास रचायें।

जब ऐसी कोई बात कभी कोई संत कहता है, तुम घबड़ा जाते हो। क्योंकि तुम्हारे भय के जन्मों-जन्मों के जाल, तुम्हारी जंजीरें, तुम्हारी आदतें, तुम्हारी धारणायें, तुम्हारे संस्कार--सब एकदम घबड़ा कर ठिठक कर खड़े हो जाते हैं--कि यह तो बात खतरनाक है।

तुम जानते हो कि तुमने भय छोड़ा, तो तुम्हारी सब नीति गई; तुम्हारा सब आचरण गया। सब झूठा है, इसलिए जाने का डर है।

मलूक एक नये तरह का आचरण जगत् में लाते हैं—एक आचरण, जो प्रेम पर निर्भर है; एक आचरण, जो आनन्द पर निर्भर है। तुम बुरा इसलिए नहीं कर सकते, क्योंकि तुम इतने आनन्दित हो कि बुरा कैसे कर सकोगे! तुम बुरा नहीं कर सकते, क्योंकि इतने प्रेम से प्लावित हो कि बुरा कैसे कर सकोगे!

प्रेम ही एकमात्र नीति है; और प्रेम ही एकमात्र चरित्र है।

इस प्रेम की मस्ती से जो सुगंध उठती है, उस सुगंध को बहुत कम लोग ही जान पाते हैं। क्योंकि तुम्हारे नासापुट खराब हो गये हैं।

मैंने सुना है कि देहात--दूर देहात से मछलियाँ बेचने एक आदमी गाँव आया था--शहर आया था। जब वह मछलियाँ बेच कर वापस जा रहा था, भरी दुपहरी थी; बड़ी तेज धूप थी और सूरज आग बरसा रहा था। वह एक सड़क पर भूखा-प्यासा, थका-माँदा बेहोश हो कर गिर पड़ा।

वह सड़क उस गाँव की, उस शहर की गंधियों की गली थी, जहाँ सुगंध बेचने वालों की दूकानें थीं। एक गंधी भागा; उसने अपनी तिजोड़ी से बड़ा बहुमूल्य इत्र निकाला, जिस इत्र की यह खूबी थी कि बेहोश आदमी को सुंघा दो, तो वह होश में आ जाय।

उसने ले जाकर, वह इत्र, उस आदमी के जो बेहोश पड़ा था, उसकी नाक पर रखा। वह आदमी तो और जोर से हाथ-पैर फेंकने लगा और बड़ी बेचैनी उसके चेहरे पर उतर आई। वह गंधी तो बड़ा हैरान हुआ।

भीड़ आ गई थी। एक आदमी भीड़ में खड़ा था. उसने कहा: 'ठहरो भाई, तुम उसको मार डालोगे। तुम्हें पता नहीं, यह कौन है। यह मछुआ है। तुम्हारी इस बहुमूल्य गंध का इसको क्या पता? यह गंध तो इसे दुर्गंध जैसी लगेगी। यह तो एक ही गंध जानता है--मछली की गंध। उसी को सुगंध मानता है। ठहरो।'

उस आदमी के पास उसकी टोकरी, और गंदी टोकरी में गंदे कपड़े, और उन गन्दे कपड़ों में ही बाँध कर वह मछलियाँ लाया था, वे पड़ी थीं। वह आदमी भागा; पास के नल से उसने थोड़ा-सा पानी लिया; उन गन्दे कपड़ों पर पानी

छिड़का; टोकरी पर पानी छिड़का। लाकर टोकरी और वे गन्दे कपड़े उसकी मुंह पर रख दिये।

मछली की गंध उठी। लोग तो तिलमिला गये। मगर वह आदमी होश में आ गया। और उस आदमी ने आँखें खोल देखकर कहा : धन्यवाद, किसने यह कृपा की! किसने मेरी मछलियों की गंध मेरे पास ला दी? अन्यथा आज मैं मर जाता।'

अगर मछलियों की गंध में ही जीवन भर जिये हो, तो इत्र की गंध तुम्हें दुर्गंध मालूम होगी। तुम उसे न सह पाओगे। और आदमी ऐसी ही 'मछलियों की गंध' में जिया है।

बाबा मलूकदास जैसे लोग उस परम इत्र को जगत् में ले आते हैं, जिसकी एक झलक, जिसकी एक लहर तुम्हें जगा दे--सदा के लिए जगा दे। मगर तुम्हारे नासापुट खराब हैं।

इसलिए न तो संगी-साथी मिलते, न परंपरा बनती।

लेकिन अपने भीतर खोजबीन जारी रखना। अगर तुम कभी बाबा मलूकदास जैसे किसी आदमी के साथ पड़ जाओ, तो चाहे लाख तकलीफ मालूम पड़े तुम्हें--पुराने संस्कार छोड़ने में; छोड़ना। लाख अड़चनें मालूम पड़ें--तुम्हारी पुरानी आदतों के टूटने में--तोड़ना। क्योंकि उन आदतों से न कभी कुछ मिला है, न कुछ कभी मिलेगा। लेकिन ऐसे व्यक्ति के पास अगर तुम रम जाओ; अगर ऐसे व्यक्ति के पास तुम टिक जाओ, तो तुम्हारे भीतर वैसे सूरज का उदय हो सकता है, जिसके उदय हुए बिना कोई कभी न तृप्त हुआ है--न हो सकता है।

● दूसरा प्रश्न :

> तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरुबा,
> तेरे सामने मेरा हाल है।
> तेरी इक निगाह की बात है,
> मेरी जिंदगी का सवाल है।।

सच है; ऐसा ही है। परमात्मा की एक निगाह की ही बात है। उसकी एक निगाह--और हमारे लिए पूरी जिंदगी; ऐसी ही बात है।

जिसने पूछा है--स्वामी वाहिद काजमी ने--ठीक ही पूछा है।

'तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरुबा, तेरे सामने मेरा हाल है।' परमात्मा से कहने को भी तो हमारे पास कुछ नहीं है। जो हम कह सकते हैं, वह तो वह जानता ही होगा। और जो हम ही नहीं जानते हैं, उसे तो हम कैसे कहेंगे!

सच तो यह है कि जो हम नहीं जानते हैं, वह भी वह जानता होगा। इसलिए परमात्मा के सामने कहने का तो कुछ सवाल नहीं है। जो लोग परमात्मा के सामने

बैठकर कुछ कहते हैं, बड़ी नासमझी करते हैं। प्रार्थनाएँ चुप होनी चाहिए। केवल चुप प्रार्थनाएँ ही सुनी जाती हैं। बोले--कि चूके।

प्रार्थना करने में बोलना ही मत। क्योंकि तुम जो भी बोलोगे, गलत बोलोगे। तुम सही तो बोल ही नहीं सकते। सही का तो तुम्हें पता ही नहीं है। सही की तो तुम्हें पहचान ही नहीं है।

तुम प्रार्थना में कहोगे क्या?

तुम अवाक रह जाना; मौन रह जाना। तुम बोलना ही मत। तुम गूंगे हो जाना। तुम्हारी गूंगी प्रार्थना ही पहुँचती है। मैं इसे दोहरा दूँ--सिर्फ गूंगी प्रार्थनाएँ ही परमात्मा तक पहुँचती हैं; मुखर प्रार्थनाएँ नहीं पहुँचतीं--पहुँच ही नहीं सकतीं।

पहली तो बात : तुम्हारी भाषा परमात्मा नहीं समझता। तुम्हारी भाषा तुम्हारी भाषा है; आदमी की ईजाद है। परमात्मा तो मौन की भाषा समझता है। मौन अस्तित्व की भाषा है। हिंदी बोलो, तो हिंदुस्तानियों की भाषा है। अरबी बोलो, तो अरबस्थानियों की भाषा है। चीनी बोलो, तो चीनियों की भाषा है। ये आदमियों की भाषाएँ हैं; इनकी सीमाएँ हैं।

मौन अस्तित्व की भाषा है। मौन की भाषा ही परमात्मा समझता है।

तो तुम ठीक कहते हो : 'तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरुबा, तेरे सामने मेरा हाल है।' सुनाना ही मत; कहना ही मत; बोलना ही मत। रो सको तो रोना। आँसू ज्यादा कुशलता से कह देंगे, जो तुम न कह पाओगे। नाच सको, तो नाचना। नाच सुगमता से कह देगा, जो भाषा न कह पायेगी। नहीं तो चुप बैठ जाना, गूंगे हो जाना। गूंगी प्रार्थनाएँ पहुँच जाती हैं।

'तेरी इक निगाह की बात है, मेरी जिन्दगी का सवाल है।'--यह भी सच है। उसकी एक निगाह की बात है; उसका एक निगाह काफी है। उसकी एक किरण काफी है--मुरदों को जिला देने को। लेकिन उसकी आँख तुम पर उठे, इसके लिए तुम्हें कुछ करना होगा। आँख ऐसे ही न उठेगी।

तुम तो जो कर रहे हो, वे कुछ ऐसे उपाय हैं कि उसकी आँख कभी उठ ही न सके। या अगर उठे भी, तो तुम बच जाओ। अगर वह देखे भी, तो तुम्हारी पीठ उसकी तरफ है। उसकी आँख तभी कारगर होगी, जब तुम्हारी आँख से मिल जाय। इसे समझना।

अगर तुम परमात्मा की तरफ पीठ किये खड़े हो, तो वह देखता भी रहे, तो क्या होगा? पीठ पर तुम्हारे, आँखें नहीं हैं। और हम सब परमात्मा की तरफ पीठ किये खड़े हैं। संसार की तरफ हमारी आँख है और परमात्मा की तरफ

पीठ है।

दूसरे की तरफ हमारी आँख है, स्वयं की तरफ पीठ है। बाहर की तरफ आँख है, भीतर की तरफ पीठ है। नीचे की तरफ आँख है, ऊपर की तरफ पीठ है। और हमारी आँखें जड़ हो गई हैं बाहर की तरफ; भीतर की तरफ जाती ही नहीं।

आँख बंद कर लो, तो भी आँख भीतर नहीं जाती; फिर भी बाहर ही भटकती रहती है। आँख बंद कर लो, तब भी तुम दुकान ही देखते हो। आँख बंद कर लो, तब भी पत्नी, पति, बच्चे, मित्र, शत्रु--वही दिखाई पड़ते हैं। मुकदमा, अदालत, बाजार--वही सब दिखाई पड़ता है। आँख बंद कर लो, तो भी रुपये, धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा--वही दिखाई पड़ती है। गहरी नींद में जब तुम सो जाते हो, तब भी तुम भीतर नहीं देख पाते। तब भी सपनों का जाल फैलता रहता है।

तुम हर हालत में बाहर हो--आँख खुली है, तो बाहर; आँख बंद है, तो बाहर। भीतर कब आओगे? भीतर आओगे, तो परमात्मा से आँख मिल सकती है; क्योंकि परमात्मा कहीं और नहीं, तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है। तुम लौटो घर।

तुम जरा मुड़ो--भीतर की तरफ; प्रतिक्रमण करो; प्रत्याहार करो; लौटो भीतर की तरफ; परमात्मा की तरफ आँख करो। उसकी आँख तुम्हारी आँख मे मिल जाय, तो बस, एक पल का मिलन काफी है। फिर तुम दुबारा लौट न सकोगे--बाहर की तरफ। बँधे रह जाओगे--कीलित--हिल न सकोगे। फिर बाहर कुछ बचता ही नहीं खोजने को। जिसको हम बाहर खोज रहे थे, वह भीतर मिल गया।

> यह सुरागी फरोग-ए-मय ये गुलरंग, यह जाम।
> चश्म-ए-साकी की इनायत के सिवा कुछ भी नहीं॥

जीवन में जो अपूर्व मस्ती आती है, आनन्द आता है, जीवन में जो मदहोशी आती है--'चश्म-ए-साकी की इनायत के सिवा कुछ भी नहीं।' वह उसके आँख की कृपा है। वह सिर्फ उसकी आँख का तुम्हारी आँख से मिल जाना है।

मेल नहीं हो रहा है। उसकी आँख तो तुम्हें देखे चली जा रही है।

यह बात सुनी होगी—बचपन से सुनी होगी--कि परमात्मा तुम्हें देख रहा है; कि हर घड़ी देख रहा है; कि तुम जहाँ हो, वहीं देख रहा है; कि तुम जो कर रहे हो, वही देख रहा है। तुम उससे हट कर कहीं जा नहीं सकते।

मैंने सुनी है एक सूफी कहानी। एक सद्गुरु के पास दो युवक आये और उन्होंने कहा, 'हमें परमात्मा से मिला दें। हमें उसकी आँख में आँख डाल कर देख लेना है।'

उस फकीर ने दोनों की तरफ देखा और दो कबूतर, जो उसके पास ही घूम रहे थे, उसके ही पाले हुए कबूतर थे; उठा कर उसने दोनों को एक-एक कबूतर

दे दिया और कहा कि 'एक काम करो; यह तुम्हारी परीक्षा है। तुम ऐसी जगह चले जाओ, जहाँ तुम्हें कोई न देख रहा हो, वहाँ इन कबूतरों को मार डालना। और जब तुम ऐसी जगह पा लो, जहाँ तुम्हें कोई नहीं देख रहा है और कबूतर को मार डालो, तो लौट आना। फिर आगे की बात शुरू होगी।'

दोनों युवक उठे; भागे। एक तो गया पास की गली में; देखा: कोई भी नहीं है; दोपहर थी; लोग सोये थे। गरमी की दोपहर—कौन निकलता है घर से! चारों तरफ देखकर, जल्दी से उसने, दीवाल की आड़ में खड़े होकर कबूतर की गरदन मरोड़ दी। लौट कर आ गया; उसने चरणों में कबूतर रख दिया। कहा कि 'पास गली में ही मार लाया। यह भी कोई बड़ी बात थी! यह कैसी परीक्षा?'

गुरु ने कहा, 'तुझसे मेरा मेल न बैठ सकेगा। तू किसी और को खोज। मैं तुझे परमात्मा की आँख में आँख डालने का उपाय न बता सकूँगा।'

दूसरा युवक तो महीनों तक न लौटा। कहते हैं: साल बीतने लगा, तब वह आया। तब तो उसे पहचानना ही मुश्किल हो गया। दाढ़ी बढ़ गई थी; रूखे बाल। कपड़े जो पहने था, फट गये थे। धूल-धँवास से भरा हुआ। पहचानना मुश्किल था; काला पड़ गया था; और कबूतर जिंदा ले आया था। गुरु के चरणों में कबूतर रख दिया और उसने कहा कि 'मुझे क्षमा करें; मैं हार गया। यह परीक्षा मैं पास न कर सका; और यह परीक्षा मैं पास न कर सकूँगा। साल भर जो भी मैं कर सकता था, मैंने कर के देख लिया। ऐसी जगह न पा सका, जहाँ कोई भी न देख रहा हो। अँधेरी गलियों में गया; तलघरों में उतरा; वीरानों में चला गया; रेगिस्तानों में गया। तलघरों के भीतर जाकर अँधेरे से अँधेरे में खड़ा हो गया, लेकिन वहाँ भी कबूतर देख रहा था! टकटक उसकी आँखें! तो मैंने कबूतर की आँखों पर पट्टियाँ बाँध दीं। लेकिन मैं देख रहा था। तो फिर मैंने अपनी आँखों पर भी पट्टियाँ बाँध लीं। लेकिन तब मुझे याद आया कि परमात्मा तो देख ही रहा है। मैं ऐसी जगह कहाँ खोजूँगा, जहाँ परमात्मा न देख रहा हो? यह तो आपने बेबूझ पहेली दे दी। यह कबूतर अपना वापस ले लें; मुझे क्षमा कर दें। मैं हार गया; मैं दुखी हूँ कि एक छोटा-सा काम न कर सका, जो आपने दिया था। मैं अयोग्य हूँ; मैं अपात्र हूँ।'

गुरु ने उसे गले लगा लिया और कहा कि 'तू रुक; काम हो गया; तू परीक्षा में पार उतर गया। तेरा पहला साथी हार गया। वह तो घड़ी भर में मार कर आ गया था। गया था! घड़ी भी न लगी थी। वह तो बगल की गली में मार कर आ गया था। उसे तो कुछ होश ही न था; उसे तो कुछ समझ ही न थी कि यह क्या कर रहा है। तुझे होश है; तुझे समझ है। तेरी आँख परमात्मा की तरफ है; मिलन हो जायेगा।

इतना ही जिसे याद है कि परमात्मा देख रहा है, फिर बहुत कठिनाई नहीं है। प्रतीक्षा करो।...

पहली बात : भीतर की तरफ मुड़ो; और दूसरी बात : प्रतीक्षा करो।

मय कशो! मय की कमी-बेशी पर नाहक जोश है।
यह तो साकी जानता है, किसको कितना होश है ।।

नाहक शिकायतें मत करो कि मेरे प्याले में बहुत कम डाला; दूसरे के प्याले में बहुत ज्यादा भर दी है शराब।

मय कशो! मय की कमी-बेशी पर नाहक जोश है।
यह तो साकी जानता है, किसको कितना होश है ।।

उसे पता है कि तुम्हारी कितनी जरूरत है अभी; तुम कितनी पी सकोगे, तुम कितनी झेल सकोगे।.. तो अपनी तैयारी बढ़ाये जाओ। जैसे-जैसे तुम्हारी पात्रता बढ़ती है, तुम्हारा पात्र गहरा होता है, वैसे-वैसे उसकी शराब तुममें ज्यादा उतरने लगेगी। अपनी आँख साफ किये जाओ, जैसे-जैसे तुम्हारी आँख साफ होने लगेगी, वैसे-वैसे उसकी आँख तुम्हारी आँख में झाँकने लगेगी। जिस दिन तुम्हारी आँख परिपूर्ण शुद्ध हो जाती है, उस दिन तुम चकित हो कर हैरान होओगे कि तुम्हारी आँख और उसकी आँख दो नहीं है---एक ही है।

बड़े अपूर्व संत एकहार्ट ने कहा है कि 'जब मैंने परमात्मा को वस्तुतः देखा, तो मैं चकित हो गया, क्योंकि मैंने उसे बाहर नहीं देखा; मैंने देखा कि वह मेरी आँख से झाँक रहा है। वहीं देख रहा है। वही मेरे भीतर देखनेवाला है; वही द्रष्टा है।'

परमात्मा कभी दृश्य नहीं बनता; परमात्मा तो तुम्हारे भीतर छिपे हुए द्रष्टा का नाम है। तुम्हारी आँख से भी जो देख रहा है, वह परमात्मा ही है। लेकिन यह तो आँख की परम शुद्धि की बात है--जब आँख पूरी तरह मुड़ी होती है, और आँख पर से सारे बादल हटा दिये गये होते हैं।

मगर कभी-कभी क्षण भर को झलक मिल जायेगी---उसकी आँख की। अशुद्ध आँखों को भी कभी-कभी उसकी क्षण भर को झलक मिलती है। नहीं तो फिर तो कोई उपाय ही न था।

अंधों को भी कभी-कभी उसकी किरण दिखाई पड़ती है। बहरों के कान में भी कभी-कभी उसकी आवाज पड़ जाती है। क्योंकि वस्तुतः तुम बहरे नहीं हो; बहरे बने हुए हो। और वस्तुतः तुम अंधे नहीं हो; आँख बंद किये बैठे हो। लेकिन कभी-कभी भूलचूक से तुम्हारी भी आँख खुल जाती है; और भूलचूक से तुम्हारे कान भी सुन लेते हैं।

परमात्मा से मिलने के पहले---इसके पहले कि उसकी शराब तुम्हारे जीवन में

उतरे, कई बार छोटी-छोटी झलकें आयेंगी।

देखा किये वे मस्त निगाहों से बार-बार।
जब तक शराब आये, कई दौर हो गये।।

परम समाधि के पहले बहुत से दौर हो जायेंगे। कई बार तुम बहुत करीब आ जाओगे; करीब से करीब आ जाओगे। क्षणभर को एक ज्योति चमकेगी और खो जायेगी, जैसे बिजली चमकती है अंधेरी रात में।

अब बिजली की रोशनी में कोई रास्ता नहीं खोज सकता। आई--और गई। लेकिन रास्ता दिख तो जाता है। एक क्षण को तो सब रोशन हो जाता है; सारा जंगल रोशन हो जाता है। एक बात तो पक्की हो जाती है--कि रास्ता है। फिर अँधेरा छा जाता है। फिर टटोलना पड़ेगा। फिर खोजना पड़ेगा। लेकिन एक बात तो आस्था बन गई कि रास्ता है; और वही आस्था अन्ततः मंजिल तक पहुँचा देती है।

इसके पहले कि सुबह हो, बहुत बार बिजली कौंधेगी। लेकिन आदमी ने क्या किया है! बिजली कौंधती भी है, तो उसे झुठला देता है।

मेरे पास अनेक बार लोग आते हैं, जिनके जीवन में बिजली कौंधी है और उन्होंने उसे झुठला दिया। उन्होंने सोच लिया--कि मन की कल्पना होगी। उन्होंने सोच लिया कि मालूम होता है : मैं पागल हो रहा हूँ! उन्होंने अपने को समझा लिया है। न केवल समझा लिया है, उन्होंने खींच-तान कर अपने को वापस अपनी स्थूल दुनिया में वापस बुला लिया है।

न मालूम कितनी बार तुम्हें मौके आते हैं, जब तुम बहुत करीब होते हो रोशनी के। लेकिन तुम्हारे जीवन भर के अनुभव और रोशनी का अनुभव इतने विपरीत हैं...। और तुम्हारे जीवन के अनुभव का बाहुल्य है, बहुमत है।

जैसे एक आदमी ने निन्यानबे अनुभव तो संसार के किये और फिर एक अनुभव परमात्मा का आया। तो निन्यानबे की भीड़ के कारण एक अनुभव झुठला दिया जाता है।

फिर एक और तकलीफ है कि जब बिजली चमकती है, तो तुम्हारे हाथ से नहीं चमकती। अगर कोई कहे : फिर से चमकाओ, तो तुम नहीं चमका सकते। पुनरुक्ति नहीं हो सकती। यह कोई टॉर्च तो नहीं है तुम्हारे हाथ की--कि बटन दबा दी; जला ली---बुझा ली। यह विराट् की बिजली है। चमकती है, तब चमकती है।

समझो कि तुम बैठो हो और तुमने देखा : परम प्रकाश तुम्हारे भीतर---तुम्हारे बाहर! तुम भागे और तुमने अपनी पत्नी से कहा कि 'मुझे प्रकाश दिखाई पड़ा है।' तो उसने कहा, 'तो बैठो, मुझे दिखला दो।' अब यह कोई टॉर्च तो नहीं है!

एवररेडी टॉर्च तो नहीं है कि बटन तुम दबा दो।

सच तो यह है कि अब अगर तुम बैठे, तो एक बात पक्की है कि यह नहीं होगा; क्योंकि पहली बार जब तुम बैठे थे, तो कुछ करने नहीं बैठे थे। अब तुमने एक नई चीज जोड़ दी--चेष्टा। अब तुम एक तरह का प्रयास कर रहे हो, जो पहली घटना में मौजूद नहीं था। और इतना प्रकाश भरा था कि तुम्हें पूर्ण विश्वास है कि फिर से आ सकता है। पत्नी भी देखेगी; तुम भी देखोगे; पड़ोसी भी देख लेंगे। यह फिर से न आयेगा; तब तुम हारे हुए अनुभव करोगे।

पत्नी हँसेगी और कहेगी: 'मैं पहले से ही जानती थी कि तुम्हारा दिमाग ऊल-जलूल बातें सोचता है; कि तुम ये किताबें पढ़-पढ़कर खराब हुए जा रहे हो; कि तुम अपना होश सम्हालो। बाल-बच्चेदार आदमी हो; काम-धंधा करना है। कहाँ का प्रकाश? कहाँ की बातें? कुछ वहम हो गया होगा।'

फिर तो तुम्हें भी शक होने लगता है कि हो न हो वहम ही रहा होगा क्योंकि अब तो दुबारा नहीं हो रहा है। फिर तुम कई बार एकांत में भी कोशिश करते हो कि बैठकर फिर उस प्रकाश को बुला लें। लेकिन वह बुलाने से नहीं आता। वह तो किन्हीं घड़ियों में आता है, जब तुम्हारे भीतर सच में ही तैयारी होती है।

बुलाने से नहीं आता। तुम्हारी चेष्टा से नहीं आता। तुम जब सचमुच ही किसी निर्दोष क्षण में होते हो...। और चेष्टा के कारण निर्दोष तो हो ही नहीं सकते। प्रयास के कारण तुम्हारा मन तो डाँवाडोल है। उत्सुकता भरी है; अपेक्षा भरी है; वासना जगी है--कि हो जाय। निश्चित ही बड़े आनंद का क्षण था। लेकिन बार-बार कोशिश करके जब तुम हार जाते हो, तो तुम्हें भी पक्का हो जाता है कि 'हो न हो कल्पना ही थी। अब क्यों नहीं होती!'

यहाँ रोज ऐसा होता है। ध्यान करने लोग आते हैं; पहली दफा जब उन्हें ध्यान का अनुभव होता है, तो अपूर्व! फिर बस, मुश्किल हो जाती है। पहले ध्यान के अनुभव के बाद बड़ी मुश्किल हो जाती है। जब तक न हुआ था, तब तक भी कम से कम चैन था--कि अपने को अभी हुआ नहीं--होगा।

एकदफा हुआ; एकदफा खुल गये कपाट; अचानक तुमने पाया कि तुम मंदिर के भीतर हो--रसमग्न; सब भाँति डूब गये। अब बड़ी मुश्किल! अब तुम चाहते हो--रोज-रोज ऐसा हो। इतना स्वादिष्ट था अनुभव; ऐसा मधुर था; तुम चाहो न, तो ही आश्चर्य होगा। तुम्हारी चाह स्वाभाविक है। तुम चाहते हो: अब रोज-रोज हो। जब भी ध्यान करूँ, तब हो। अब तुम ध्यान करते हो, और नहीं होता। अब तुम जितनी चेष्टा करते हो बुलाने की, उतना ही मुश्किल होता चला जाता है; क्योंकि तुम्हारी चेष्टा में तुम मौजूद हो जाते हो। और तुम्हारी मौजूदगी ही

बाधा है। और तुम्हारी चेष्टा के कारण ध्यान तो लगता ही नहीं।

ध्यान का तो अर्थ है: निश्चेष्ट हो जाना--वासनाशून्य हो जाना। परमात्मा की वासना भी जब नहीं होती, तभी परमात्मा उतरता है।

तो बुलाने से तो नहीं आता। कभी-कभी आ जाता है--अचानक द्वार पर दस्तक दे देता है; जैसे हवा के झोंके आते हैं; कि सूरज की किरण आती है; कि एक बादल तैरता हुआ आ जाता है; कि रात में बिजली चमक जाती है--अचानक--अनायास--तुम्हारे प्रयास से नहीं। और फिर अड़चन होती है।

फिर जब तुम नहीं ला पाते, बार-बार चेष्टा करके हार जाते हो, तुम्हारा अहंकार बहुत धूल-धूसरित हो जाता है, तो अहंकार कहता है: मैं कहता था कि ये बातें होती नहीं; तुम किसी भ्रांति में पड़ गये; या--या कि किसी ने तुम्हें सम्मोहित कर दिया; या कि भीड़ में लोग थे, और भी लोग इस तरह की भावनाओं में भरे थे; वातावरण था, उस वातावरण में तुम डूब गये। मगर बात सच्ची नहीं हो सकती। सच्ची होती, तो फिर-फिर आती; जब तुम चाहते, तब आती। यही फर्क समझना; विज्ञान और धर्म का भेद यहीं है।

विज्ञान जो अनुभव करता है, वह पुनरुक्ति-योग्य है; उनका फिर-फिर प्रयोग हो सकता है। तो विज्ञान की कसौटी यह है कि जिस प्रयोग को बार-बार दोहराया जा सके, वही सच्चा प्रयोग है। समझो।

सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है। एक दिन तो सौ डिग्री पर बने और दूसरे दिन नब्बे डिग्री पर बन जाय; और तीसरे दिन बने ही नहीं--चाहे तुम दो सौ डिग्री तक गरम करते जाओ! तो फिर कोई विज्ञान का सिद्धांत निर्मित न होगा। तुम लाख चिल्ला कर कहो कि यह बन गया था सौ डिग्री पर एक दिन; अब नहीं बनता; मैं क्या करूँ! तो वैज्ञानिक कहेंगे: तुम किसी भ्रांति में पड़ गये; थर्मामीटर तुम्हारा खराब रहा होगा। या कुछ गड़बड़ हो गई; भूलचूक हो गई। वह पुनरुक्त होना ही चाहिए।

विज्ञान की कसौटी यह है कि वही नियम माना जायेगा, जो पुनरुक्त हो सके। इसी कसौटी के कारण विज्ञान धर्म को नहीं समझ पाता। क्योंकि धर्म का कोई अनुभव पुनरुक्त नहीं हो सकता; हो ही नहीं सकता पुनरुक्त। हो गया--हो गया। नहीं हुआ--नहीं हुआ। और कभी अनायास हो जाता है; कभी बहुत प्रयास से नहीं होता। कभी बिन माँगे बरस जाता है; कभी माँग-माँग कर तुम थक जाते हो और एक बूँद भी नहीं आती।

विज्ञान धर्म के विपरीत इसीलिए है कि उसकी जो मौलिक शर्त है कि हर अनुभव पुनरुक्ति-योग्य होना चाहिये, वह धर्म पूरा नहीं कर सकता। लेकिन धर्म की

भी मजबूरी है; वह पूरा किया नहीं जा सकता।
तो इस कारण बहुत बार अनुभव करने के बाद भी हम उन अनुभवों को झुठला देते हैं या कल्पना मान लेते हैं।

आज से खयाल रखो : जब भी जीवन में कुछ अपूर्व घटे, जिसको न तो तुम समझा सको, और न समझ सको, तो उसे संजो कर रखना। उसे फेंक मत देना। यह दोहरता न हो, तो कल्पना मत कह देना। वह फिर-फिर न आये, तो इनकार मत कर देना।

यह अनुभव ऐसा अपूर्व है कि फिर-फिर आता नहीं। इसे सम्हाल कर रखते जाना। एक अनुभव हुआ, फिर महीनों बीत जायेंगे, दूसरा अनुभव होगा; उसे भी सम्हाल कर रख लेना। ऐसे धीरे-धीरे अनुभव की सम्पदा बढ़ती जायेगी।

इन्हीं अनुभव के छोटे-छोटे ईंट-पत्थर-गारे से परमात्मा का मन्दिर निर्मित होता है। फिर जैसे-जैसे तुम जानने लगोगे कि मेरे माँगने से नहीं होता, तो माँगोगे नहीं--और ज्यादा होगा। जब तुम देखोगे कि बिना माँगे खूब होता है, तो फिर तुम माँगोगे ही क्यों! फिर रोज-रोज होगा। जब तुम बिलकुल जान लोगे यह बात--कि मेरी जरा-सी चेष्टा बाधा बन जाती है, तो तुम बिलकुल निष्चेष्ट हो जाओगे।

अजगर करें न चाकरी, पंछी करें न काम।
दास मलूका कहि गये, सबसे दाता राम।।

फिर तो तुम अजगर जैसे हो जाओगे। फिर तो तुम पंछियों जैसे हो जाओगे। फिर तो तुम कहोगे : परमात्मा देनेवाला है, मैं माँगूँ ही क्यों!

'दास मलूका कहि गये, सबके दाता राम।' वह देता ही है, तो माँगना क्या? माँग कर और भिखारी क्यों बनना?

जैसे जैसे तुम्हारी माँग और वासना क्षीण होती जायेगी, तुम पाओगे : अनुभव रोज बरसने लगा। फिर ऐसी घड़ी आ जाती है, जब अनुभव जाता ही नहीं; रोशनी तुम्हें घेरे ही रखती है; उस घड़ी को ही हम संतत्व कहते हैं। जब सत्य तुम्हारे भीतर चौबीस घड़ी बरसता रहता है, तब तुम संत हुए।

● तीसरा प्रश्न : मैंने सैकड़ों सम्बन्ध बनाये--शारीरिक और मानसिक दोनों, लेकिन आखिर में बढ़ती हुई तृप्ति के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आया। मैं कुछ पकड़ नहीं पाती; सब हाथ से फिसल-फिसल जाता है और मैं बेबस और भयभीत खड़ी देखती रहती हूँ; ऐसा क्यों है?

तुम्हारा कुछ कसूर नहीं। इस जगत् के सारे अनुभव पानी के बुलबुले जैसे हैं, कुछ कभी मिलता नहीं। मृगमरीचिकायें हैं; इन्द्रधनुष हैं। दूर से खूब सुन्दर;

दूर के ढोल बड़े सुहावने। मुट्ठी बाँधो, कुछ भी हाथ न आयेगा।

तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। शारीरिक संबंध या मानसिक सम्बन्ध--इनसे कुछ भी मिलता नहीं। इतना ही मिलता है इनसे--कि इनमें कुछ सार नहीं। मगर यह बड़ी बात है। ये असार हैं--ऐसा अनुभव इनसे मिलता है। यह कोई छोटी शिक्षा नहीं है! क्योंकि जिसने असार देख लिया है, उसको सार देखने में ज्यादा देर न लगेगी। असार को असार की भाँति देख लेना, सार को सार की भाँति देखने का पहला कदम है।

इतना भी साफ हो गया कि इस संसार के सारे सम्बन्ध बनते हैं, मिट जाते हैं; हाथ खाली के खाली रह जाते हैं--बड़ा गहरा अनुभव है। इस अनुभव को स्मरण में रखो। अब बार-बार इनको दोहराये मत जाओ। क्योंकि पुनरुक्ति से कुछ बढ़ेगा नहीं। इनसे कुछ सीखो।

अनुभव से जब तुम कुछ सीखते हो, तो ज्ञान निर्मित होता है। और अनुभव को जब तुम दोहराये चले जाते हो, तो मूढ़ता और जड़ता निर्मित होती है।

दुनिया में बहुत कम लोग हैं, जो अनुभव से सीखते हैं। अनुभव से जो सीख ले, वही समझदार है।

एक दिन क्रोध किया; दूसरे दिन क्रोध किया; हजार बार क्रोध किया, अब तक सीखा नहीं! इतने बार क्रोध करके पाया कि कुछ भी नहीं मिलता, तो अब तो रुको! अब तो जाने दो--इस क्रोध को। अगर हजार बार क्रोध करके भी तुमने इतनी-सी बात सीख ली कि क्रोध में कुछ सार नहीं, तो वे हजार बार का क्रोध भी तुम्हें बहुत कुछ दे गये; वे भी व्यर्थ न गये; उनसे भी तुमने कुछ निचोड़ लिया; कुछ इत्र उनसे भी निचोड़ लिया। अब तुम क्रोध से मुक्त हो जाओ।

हजार बार काम-वासना में उतरे और कुछ भी न पाया, तो अब जागो। और फर्क समझ लेना : मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि काम-वासना को त्यागो। मैं कह रहा हूँ--जागो।

त्यागने का तो मतलब यह है कि अभी भी रस लगा है। रस लगे का मतलब है—अभी भी आशा बँधी है। आशा बँधे होने का मतलब है कि क्या पता : अब तक नहीं मिला, आगे मिल जाय; कल मिल जाय; परसों मिल जाय। तो फिर त्यागना पड़ता है। लेकिन जब तुम जाग कर देख लेते हो कि मिलता ही नहीं; मिल ही नहीं सकता...।

जैसे एक आदमी रेत से तेल निचोड़ने की कोशिश कर रहा हो—वर्षों से—और एक दिन जाग कर देखे कि 'अरे, मैं पागल हूँ; रेत के निचोड़ने से तेल कैसे नकलेगा? तिल निचोड़ने से तेल मिलता है।' तो फिर त्याग करेगा रेत का? बात

खतम हो गई। झाड़ कर उठ बैठेगा। हाथ-पैर से झाड़ देगा रेत; फिर लौट कर भी नहीं देखेगा। बात खतम हो गई। त्याग क्या है इसमें?

जिस दिन तुम्हें लगे : क्रोध में कुछ भी नहीं, काम में कुछ भी नहीं, उठ खड़े हो गये; बात खतम हो गई। त्याग नहीं। तुम व्रत थोड़े ही लोगे जा कर--कि ब्रह्मचर्य का व्रत लूंगा। जिसने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, उसने तो बता दिया कि अभी समझ आई नहीं। व्रत में ही ना-समझी छिपी है। ना-समझों के सिवाय कोई व्रत लेता ही नहीं। समझदार क्यों व्रत लेगा? समझदारी पर्याप्त है; व्रत की कोई जरूरत नहीं है।

इतनी बात समझ में आ गई कि यहाँ कुछ भी नहीं है, बात खतम हो गई। अब व्रत किसके खिलाफ लेना है? व्रत तो अपने खिलाफ लिया जाता है। डर है कि कल शायद फिर लगने लगे कि है कुछ, तो फिर क्या करूँगा? तो व्रत का बन्धन बना लो। कसम खा लो--भीड़ में जाकर--बाजार में--बीच बाजार मे खड़े होकर--कि मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया है। ताकि फिर डर लगे कि अब लोगों से कह चुका; प्रतिष्ठा का सवाल है। अहंकार पर चोट लगे; घबड़ाहट हो कि अब अगर भूलचूक की, तो लोग क्या कहेंगे?

मगर यह तो कुछ जागना न हुआ। जागरणशील व्यक्ति को व्रत की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें अव्रती बनाता हूँ। तुम्हारे जीवन से सारे व्रत समाप्त हो जाने चाहिए, क्योंकि कोई व्रत क्रांति नहीं लाता। समझ क्रांति लाती है।

तो पूछा है--कुसुम ने यह सवाल। 'मैंने सैंकड़ों सम्बन्ध बनाये--शारीरिक और मानसिक, लेकिन आखिर में बढ़ती हुई अतृप्ति के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आया।'

कुछ तो हाथ आया; यह समझ हाथ आई कि अतृप्ति बढ़ती जाती है। तो उन सारे अनुभवों को धन्यवाद दो। उनके बिना यह कैसे समझ में आता! उन सारे अनुभवों को धन्यवाद दो। उनके बिना यह कैसे समझ में आता! उन सारे अनुभवों के प्रति कृतज्ञ अनुभव करो। और अब जाग कर जियो--कि उन अनुभवों को बार-बार दोहराने की जरूरत नहीं है। अर्थहीन हो गये वे। अब उस पुनरुक्ति से बचो : अब उसी-उसी चाक को पकड़ कर मत घूमते रहो।

इस संसार में सभी क्षण-भंगुर है। और इस मन के द्वारा क्षण-भंगुर से ज्यादा किसी चीज से कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता। शाश्वत से जुड़ना हो, तो मन के पार जाना जरूरी है।

इस दिल-ए-मायूसी की वीरानसाजी कुछ न पूछ।
इसने जब और जो चमन ताका बयाँबा हो गया॥

जहाँ भी यह मन देखेगा, वहीं विकृति हो जायेगी। जहाँ यह मन अपनी छाप छोड़ेगा, वहीं राख छूट जायेगी।

इस दिल-ए-मायूसी की वीरानसाजी कुछ न पूछ।
इसने जब और जो चमन ताका बयाँबा हो गया॥

तुमने अगर फूल भी देखे, तो कुम्हला जायेंगे। तुमने हरे-भरे वृक्ष को देखा--सूख जायेगा।

इस मन के द्वारा शाश्वत से कोई संबंध ही नहीं जुड़ता। इस मन का संबंध हो क्षण भर का है। क्षण भर है; अभी है, अभी नहीं है। अभी सब ठीक; अभी सब गलत। अभी प्रेम--अभी घृणा। अभी करुणा--अभी क्रोध। अभी लुटाने को तैयार थे, अब लूटने को तैयार हो गये। इस मन के साथ इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। और इस मन के फैलाव का नाम संसार है।

तो जागो। कहीं ऐसा न हो, जैसा कि अधिकतर होता है। जीवन भर लोग जीते हैं, मगर सीखते कुछ भी नहीं।

चुन लिये औरों ने गुलहा-ए-मुराद।
रह गये दामन ही फैलाने में हम॥
चुन लिये औरों ने गुलहा-ए-मुराद।
रह गये दामन ही फैलाने में हम॥

कहीं ऐसा न हो कि दूसरे तो फूल चुन लें और तुम दामन ही फैलाते रहो और मौत आ जाय।

किन फूलों की बात कर रहा हूँ? उन फूलों की बात कर रहा हूँ, जो इस जीवन के प्रत्येक अनुभव में से निःसृत होते हैं।

क्रोध किया; पाया--व्यर्थ है; एक फूल चुना। काम किया; पाया--व्यर्थ है; एक फूल और चुना। लोभ किया; पाया--व्यर्थ है; एक फूल और चुना। चुनते गये फूल। इन्हीं सारे फूलों की माला एक दिन बन जाती है। उसी माला को ही तो परमात्मा के चरणों में अर्पित करना है।

अगर नहीं चुने फूल; फिर-फिर क्रोध में उतरे, फिर-फिर वासना में उतरे, तो बस, दामन ही फैलाने में समय बीत जायेगा।

तो कुसुम को कहता हूँ : अब जाग। देखा सब; देखना जरूरी था। सिर्फ एक बात का खयाल रखना कि 'कुछ भी नहीं मिलता, व्यर्थता मिलती है और जीवन में बेचैनी बढ़ती है'--यह तेरा अनुभव होना चाहिए। ऐसा न हो कि जल्दबाजी हो। ऐसा न हो कि लोभ के कारण यह प्रश्न लिखा हो, तो चूक हो जायेगी। अक्सर ऐसा भी हो जाता है। संतों की वाणी पढ़ते, संतों के वचन सुनते लोभ

जगता है। और उनकी वाणी के प्रभाव में ऐसा लगता है कि ठीक ही तो कहते है। मगर उनके ठीक से कुछ भी न होगा।

मेरा ठीक, तुम्हारा ठीक नहीं है। तुम्हारा ठीक ही तुम्हारा ठीक है। मेरा बोध, मेरा बोध है; तुम्हारा बोध नहीं बनेगा। मैं लाख कहूँ कि क्रोध में कुछ भी नहीं है, और तुम सुन भी लो, समझ भी लो, बुद्धि से बात जँच भी जाय, मगर इससे कुछ सार न होगा; जब तक कि तुम्हारे जीवन के अनुभव से यह निष्पत्ति न निकले।

तो बस, एक ही बात खयाल रखना : जल्दबाजी मत करना।

मेरे साथ इतना स्मरण रखना सदा जरूरी है कि लोभ में मत पड़ना। हाँ, तुम्हें लग गया हो कि कोई सार नहीं है—शारीरिक सम्बन्धों में, तो बात खतम हो गई। मेरे कहने से मत कर लेना अन्यथा फिर लौट कर आयेगी यह वासना। फिर बुलायेगी; फिर खींचेगी-तानेगी और दमन शुरू हो जायेगा। और दमन के मैं बिलकुल विपरीत हूँ। जागरण ठीक; दमन तो रोग लाता है।

नहीं यहाँ कुछ मिलने को है, इसलिए जल्दबाजी भी करने की जरूरत नहीं है। कुछ मिलता ही नहीं है, तो फिर घबड़ाना क्या!

तुम्हारे तथाकथित महात्मा बड़े घबड़ाये होते हैं। घबड़ाहट भी क्या? यहाँ कुछ मिलने को तो है नहीं। तुम रेत से ही तेल निचाड़ रहे हो; और थोड़ी देर निचोड़ो। कुछ मिलने को नहीं है; कुछ खोने को नहीं है। मगर तुम्हारे ही भीतर यह किरण उतर आये, कि यह रेत है, तभी छोड़ देना; उसके पहले मत छोड़ना। अधकच्चे मत गिर जाना वृक्ष से, नहीं तो कड़वे रह जाओगे।

इसलिए तुम्हारे तथाकथित महात्मा बड़े कड़वे रह जाते हैं। जीवन का माधुर्य नहीं होता, कड़वाहट होती है। क्रोध से भरे होते हैं; निन्दा से भरे होते हैं; क्योंकि जिस-जिस बात को छोड़ दिया है, वह छूटी तो नहीं थी अभी। छोड़ बैठे हैं। अभी भी राग है; अभी भी भीतर रंग उठता है; अभी भी वासना उद्वेलित होती है। उस वासना से लड़ने के लिए रोज उस वासना को गाली देना पड़ता है।

अगर तुम किसी महात्मा को सुनने जाओ और वह कामिनी और काँचन को ही गाली देने की बात कर रहा हो, तो समझ लेना कि कामिनी-काँचन उसके पीछे अभी भी पड़े हैं। नहीं तो क्या जरूरत है—चौबीस घंटे कामिनी-काँचन के पीछे पड़े रहने की!

> वक्त की कुछ पीढ़ियों के बाद आखिर क्या मिलेगा?
> उम्र की इन सीढ़ियों के बाद आखिर क्या मिलेगा?
> पत्थरों को सर झुकाने का चला है सिलसिला।
> पाप की परछाइयों में पुण्य है फूला फला॥

> रामनामी ओढ़ने के बाद आखिर क्या मिलेगा?
> दूरियों को पास लाने की बड़ी है कशमकश।
> बर्फ में बरसों सुलाने की हुई है पेशकश॥
> श्वास की इन सरदों के बाद आखिर क्या मिलेगा।
> वक्त की कुछ पीढ़ियों के बाद आखिर क्या मिलेगा॥

क्या मिलने को है यहाँ? जैसे दिन गये, अभी और दिन जायेंगे। जैसे वक्त बीता, और वक्त बीतेगा। समय में कुछ मिलता ही नहीं। समय एक सपना है, जो सिर्फ बीतता है—मिलता कुछ भी नहीं।

मगर अगर इतनी ही बात मिल जाय—कि समय में कुछ नहीं मिलता, तो हीरा हाथ लगा; तो बड़ा बहुमूल्य हीरा हाथ लगा। फिर इसी हीरे के सहारे तो तुम परमात्मा तक पहुँच सकते हो। मगर कच्चा न हो हीरा। हीरा कच्चा हो—तो कोयला। कोयला पक जाय—तो हीरा।

तुम्हें पता है न कि कोयला और हीरा दोनों एक ही तरह की चीजें हैं। उनमें फर्क कच्चे और पक्के का है। हीरे और कोयले का रसायन बिलकुल एक जैसा है। दोनों एक ही तत्त्व से बने हैं। जिसको तुम हीरा कहते हो, वह हजारों-हजारों साल पृथ्वी के अन्तर्गर्भ में दबा हुआ कोयला है। दबता—दबता—दबता—दबता—उस दबाव के कारण इतना मजबूत और सख्त हो गया है कि अब हीरा है। कोयला ही था पहले। कोहेनूर भी कोयला था; लाखों वर्षों की प्रक्रिया और दबाव के बाद हीरा बन गया है।

कोयला और हीरा में फर्क नहीं है। पक जाय, तो हीरा। तो पक जाने का खयाल रखो। तुम्हारा काम पक जाय, तो राम। तुम्हारा क्रोध पक जाय, तो करुणा।

जिन्दगी पकने का एक अवसर है।

● चौथा प्रश्न : ओम। समझ में कुछ नहीं आता; प्रभुश्री समझायें। राम तो बस, राम ही हैं; राम किसके गीत गाये?

जिस दिन ऐसा समझ में आ जायेगा—कि 'राम तो बस, राम ही हैं; राम किसके गीत गायें'—उस दिन एक गीत तुमसे उठेगा, जो सिर्फ गीत होगा; 'किसी का गीत' नहीं—बस, गीत होगा। एक सुगन्ध उठेगी—अनिर्वचनीय; एक सौन्दर्य जगेगा—अव्याख्य।

राम का गीत तो तभी तक गाना पड़ता है, जब तक राम से दूरी है। फिर तो राम ही तुम्हारे भीतर गायेंगे; अपना ही गीत गायेंगे—स्व-गीत।

यह सारा जो विराट् चल रहा है, यह राम अपना ही गीत गा रहे हैं। वृक्ष में राम हरे हैं; पक्षियों के कंठ में राम अनेक-अनेक ध्वनियों में प्रगट हुए हैं। सरिताओं

में, सागरों की कलकल में राम का कलकल नाद है।

यह सारा नाद ब्रह्मनाद है। यह अनाहत ही चल रहा है। जिस दिन पहचानोगे, उस दिन पाओगे : राम अपना ही गीत गा रहे हैं। और किसका गीत गाने को है?

राम अपना ही नाच नाच रहे हैं। राम गुनगुना रहे हैं। लेकिन जब तक यह पहचान नहीं हुई, तब तक तुम्हें लगता है : राम अलग––तुम अलग। तब तक राम का गीत गाना है। जब तक दूरी है, तब तक राम का गीत गाना है। ऐसा राम का गीत गाते-गाते दूरी मिट जायेगी। जिस दिन दूरी मिट जायेगी, तुम राम के गीत हो जाओगे, तुम राम हो जाओगे।

वही तो मलूक ने कहा : साहब––साहब हो गये। थे वही––वही हो गये। थोड़ी देर बीच में भूल गये थे––कि मैं कौन हूँ। थोड़ी देर आत्म-विस्मरण हो गया था।

परमात्मा तुमसे दूर नहीं है, सिर्फ आत्म-विस्मरण हो गया है।

तुम पूछते हो : 'समझ में कुछ नहीं आता।' समझ में आने की बात भी नहीं है। समझ से तो सावधान। समझ––यानी बुद्धि की।

हृदय की समझ जगाओ। हृदय की समझ––यानी प्रेम; बुद्धि की समझ––यानी तर्क; बुद्धि की समझ––यानी विचार। हृदय की समझ––यानी श्रद्धा।

तुम कहते हो : समझ में कुछ नहीं आता। बुद्धि से समझने की कोशिश कर रहे होओगे, तो कुछ भी समझ में न आयेगा। क्योंकि ये बुद्धि-अतीत बातें हो रही हैं; ये मलूकदास––ये बुद्धि के बाहर गये हुए लोग हैं।

यह मस्ती, यह शराब––ये बुद्धि से बाहर जाने के उपाय हैं। यह बुद्धि से समझ में आयेगा न। यह गणित नहीं है, जिसे तुम हल कर लोगे। यह पहेली नहीं है, जिसको तुम सुलझा लोगे। यह जीवन का रहस्य है, इसे तुम जियोगे, तो ही जानोगे। इसका स्वाद लोगे, तो जानोगे। चखो।

'समझ में कुछ नहीं आता, प्रभुश्री समझायें।' लाख समझायें, तो भी समझ में न आयेगा। समझ की यह बात नहीं। कुछ समझ से पार चलो।

समझ पर ही अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता है। समझ पर ही सत्य समाप्त नहीं हो जाता है। समझ ज्यादा से ज्यादा तुम्हें मंदिर के द्वार तक ला सकती है; मंदिर के भीतर न ले जा सकेगी। मंदिर के भीतर जाना हो, तो समझ को वहीं छोड़ देना होगा, जहाँ तुम जूते छोड़ आते हो; वहीं समझ भी रख आनी पड़ेगी; बुद्धि वहीं रख आनी पड़ेगी। भीतर तो निर्बुद्धि होकर जाओगे, बालक की तरह निर्दोष होकर जाओगे, तो ही पहुँचोगे।

जीसस ने कहा है : 'जो बच्चों की भाँति सरल हैं, वे ही केवल मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे और दूसरे नहीं।'

तो तुम पूछते हो : 'समझायें।' रोज तो समझा रहा हूँ। समझ से समझ में आयेगा भी नहीं। फिर भी समझाता हूँ। समझाने से इतना भी समझ में आ जाये कि समझाने से समझ में नहीं आता, तो कुछ बात बनी। तो तुम द्वार पर आ कर खड़े हो गये।

एक दिन तो थक जाओगे––समझने से, समझाने से। एक दिन तो घबड़ा जाओगे––समझने से, समझाने। एक दिन तो कहोगे कि अब बहुत हो गई बुद्धि; अब बुद्धि को छोड़ते हैं। एक दिन तो बुद्धि बोझरूप हो जायेगी। और वह बड़े सौभाग्य का क्षण है, जब बुद्धि बोझरूप हो जाती है; तभी उठती है प्रार्थना; तभी उठता है प्रेम; तभी उठती है पूजा।

जिसकी जिल्लत में भी इज्जत है, सजा में भी मजा।
कुछ समझ में नहीं आता कि मुहब्बत क्या है।।

'कुछ समझ में नहीं आता ... !' प्रेम समझ में थोड़े ही आता है। प्रेम तुमसे बड़ा है; समझ में आयेगा कैसे? तुम्हारी मुट्ठी बहुत छोटी है; प्रेम बड़ा आकाश है––मुट्ठी बाँधी कि खो जायेगा। अगर आकाश चाहिए हो मुट्ठी में, तो मुट्ठी मत बाँधना। खुले हाथ में तो आकाश होता है, बंद हाथ में आकाश खो जाता है।

हृदय को खोलो। खुला हुआ हृदय––और तुम समझ पाओगे। एक और ही तरह की समझ; एक दूसरी तरह की ही समझ; एक पृथक ढंग की ही समझ।

प्रार्थना में लगो। राम को गुनगुनाओ; राम के की गीत गाओ। असली बात तो गीत गाना है––राम तो बहाना है। तुम गीत गा सको, इसके लिए राम की खूँटी का सहारा ले लो। तुम गुनगुना सको; तुम नाच सको; तुम्हारे हृदय में छिपी हुई मुसकराहट ओठों तक आ जाये और तुम्हारे भीतर भरा हुआ मधुकलश छलकने लगे ...।

बस, राम तो बहाना है। राम से कुछ लेना थोड़े ही है; राम से कुछ देना थोड़े ही है। इसलिए कोई भी नाम काम दे देगा। अल्लाह के गीत गाओ; खुदा के गीत गाओ; कि राम के, कि कृष्ण के––इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

गीत गाना सीख लो। प्रार्थना उठने लगे। जीवन से एक ऐसा सम्बन्ध बनने लगे, जो बुद्धि का नहीं है––हृदय का है।

समझो : गुलाब का फूल खिला। तुम उसके पास जा कर खड़े हुए। बुद्धि का सम्बन्ध तो यह है कि तुम सोचो : 'अरे! बड़ा सुन्दर गुलाब! कहाँ से आया? ईरान से आया?––कहाँ से आया? ऐसा गुलाब कभी देखा नहीं; इतना सुन्दर! इतना बड़ा फूल! बहुत देखे गुलाब, मगर ऐसा गुलाब नहीं देखा।' ऐसी बहुत-सी

बातें सोचने लगो, विचार करने लगो, तो गुलाब से यह बुद्धि का सम्बन्ध हुआ।

खिला गुलाब; तुम गुलाब के पास आये। आँखें भर गई गुलाब से। नासापुट भर गये--गुलाब की गंध से। तुम नाचने लगे। ऐसा गुलाब कभी खिला नहीं था! तुम गीत गुनगुनाने लगे। तुमने गुलाब की स्तुति में एक गीत गाया; कि तुम नाचे; कि तुमने बाँसुरी बजाई। यह सम्बन्ध दूसरे ढंग का हुआ; यह बुद्धि का न हुआ।

कभी नाचे हो--गुलाब के फूल के चारों तरफ--मगन हो कर--कि ऐसा फूल खिला? तुमने प्रभु को धन्यवाद दिया है? रोये हो कभी; आनन्द के आँसू बहाये हो कभी--गुलाब के पास खड़े हो कर? तो एक दूसरे तरह का सम्बन्ध बना।

रात को आकाश में चाँद देखा, तो सोचने लगे कि चाँद की लम्बाई-चौड़ाई कितनी है। मिट्टी-पत्थर है--क्या है? खाई-खड्डे हैं--क्या है? वैज्ञानिक सोचता है; चूक जाता है। जो आदमी चाँद पर चल कर आये हैं, वे भी चूक गये। क्योंकि वह सब सोच-विचार का सम्बन्ध है। और भी तरह के लोग इस जमीन पर हुए हैं; कवि हुए हैं, रहस्यवादी हुए हैं; चाँद पर वे कभी नहीं गये। चाँद निकला—पूरा चाँद निकला--और वे नाचे।

पूर्णिमा की रात और तुम नाचो ना, तो जरूर तुम्हारे भीतर कुछ मुरदा जैसा है। पूर्णिमा की रात--और तुम गीत न गाओ! पूर्णिमा की रात और तुम आकाश को एकटक देखते न रह जाओ; भाव विह्वल न हो उठो...! सागर जैसी चीज भी, जड़ चीज भी लहराने लगती है--पूर्णिमा की रात और तुम बिना लहराये रह जाते हो! सागर उत्तुंग तरगें होने लगता है, और तुम्हारे भीतर कोई मद-मस्ती नहीं आती!

बुद्धि ने खूब पथराया है तुम्हें। आँखों ने देखने की क्षमता खो दी है। हृदय में अंकुरण नहीं होता। पूरे चाँद की रात तुम अगर नाच सको, तो एक तरह का सम्बन्ध बना। और मैं तुमसे कहता हूँ कि जो आदमी चाँद पर चलकर आये हैं, उनसे गहरा सम्बन्ध बना। चाँद पर चलने से क्या होगा? तुम चाँद के ज्यादा करीब पहुँच गये; तुमने चाँद की आत्मा को छूआ।

जिन्होने इस देश में कहा था कि चाँद में देवता का निवास है, वे ज्यादा सच थे। चाँद में देवता का निवास उसी क्षण हो जाता है, जिस क्षण चाँद तुम्हारे हृदय को आंदोलित कर देता है। उस क्षण चाँद फिर चाँद नहीं रह गया--चंद्रदेव हो गया।

सूरज को जिन्होंने नमस्कार किया था इस देश में; पानी का अर्घ्य चढ़ाया; सुबह-सुबह नदी के तट पर खड़े होकर ओंकार की ध्वनि की, उन्होंने ज्यादा सूरज

को समझा था। वह समझ और ढंग की है। खयाल कर लेना। वह समझ वैज्ञानिक नहीं है; बुद्धिगत नहीं है। उन्होंने देखा, सूरज में--जीवन को उगते। सूरज हमारा जीवन है; उसके बिना हम न हो सकेंगे। हम सूरज की किरणें हैं। हम सूरज के बिना एक क्षण न हो सकेंगे।

जो हमारा स्रोत है, उसको देख कर हम नाचें न! और जो हमारा स्रोत है, उसको देख कर हम झुकें न, तो चूक हो गई। यह एक और तरह का देखना है; यह एक और तरह का समझना है।

तो मैं तुमसे यही कहूँगा...। और जिसने पूछा है यह प्रश्न, उनका नाम है—स्वामी प्रेम सागर! तुम्हें नाम ही दिया--प्रेम सागर! अभी भी तुम समझने की बातें कर रहे हो? अब तो समझने की नासमझी छोड़ो। अब तो प्रेम की ना-समझी पकड़ो।

तुम मुझे दे दो महकती गंध जीवन के लिए
माँगता हूँ आज कुछ अनुबंध जीवन के लिए
याचना मेरी धरोहर सी रहे बनकर सदा
तुम मुझे दो आज यह सौगंध जीवन के लिए
दर्द में डूबी हुई मन की सतह को ढूंढ दें
चाहता है ऐसे सहज सम्बन्ध जीवन के लिए
जी बिना बोले गुजर जाती तुम्हारे पास से
तुम मुझे दे दो वही मकरन्द जीवन के लिए
जिन्दगी का गीत भी अब तक अधूरा ही पड़ा
नेह में डूबे हुए दो छंद जीवन के लिए
तुम मुझे दे दो महकती गंध जीवन के लिए।

अब तो प्रभु से उस गंध को माँगो, जो जीवन को महका दे। अब तो प्रभु से उस छंद को माँगो, जो तुम्हारी जिन्दगी को गीत बना दे।

अभी तो राम का गीत होगा--शुरूआत--बारहखड़ी--क, ख, ग। अभी तो राम का गीत होगा। अभी तो राम तुम्हें पराया मालूम पड़ेगा, तो उसके गीत गाओगे। अभी तो भक्त बनोगे--भगवान् दूर। फिर धीरे-धीरे करीब आओगे। फिर बहुत करीब आओगे। फिर एकदम भगवान् के आरपार हो जाओगे। और तब तुम न पहचान सकोगे कि कौन भक्त है--और कौन भगवान्। तब भी गीत उठेगा, लेकिन तब राम ही अपना गीत गायेंगे; तब प्रभु ही नाचेंगे।

इसके पहले कि प्रभु तुम्हारे भीतर नाच सकें, और तुम प्रभु में नाच सको, नाच तो सीख लो।

● आखिरी प्रश्न :

जब हम होते तब तू नहीं,
अब तू ही है मैं नाही।

तो फिर मिलन कहाँ हुआ? कैसा हुआ? और किससे किसका हुआ?

मिलन और मिलन में भेद है। दो कंकड़ों को पास रख दो; बिलकुल पास रख दो--सटाकर पास रख दो। तो एक तरह का मिलन हुआ। दोनों अभी अलग-अलग हैं; सिर्फ परिधि छूती है। बाहर का जरा-सा हिस्सा छूता है। भीतर दोनों अलग-अलग हैं। मिलकर भी टूटे है। दो तो अभी दो हैं, तो मिले कहाँ?

फिर पानी की दो बूंदों को पास ले आओ। सुबह जाओ; घास के पत्तों पर जमी हुई ओस की बूंदों को पास ले आओ। पास आती बूंदें--पास आई--आई, जब तक बिलकुल पास न आईं, तब तक दो हैं। जैसे ही पास आ गईं, एक हो गईं।

एक यह भी मिलन है। यहाँ अद्वैत हो गया। दो दो न रहे। यही वास्तविक मिलन है; क्योंकि दो कंकड़ पास आकर भी कहाँ पास थे? एक दूसरे के प्राण में नहीं डूबे थे। एक दूसरे के केंद्र से मिले नहीं थे। बाहर-बाहर परिधि-परिधि मिली थी। ये जो दो बूंद ओस की आकर पास खो गईं, ये जो शबनम की दो बूंदें एक दूसरे में लीन हो गईं, अब पहचानना भी मुश्किल है कि कौन-कौन है। अब तुम उन्हें दुबारा अलग न कर सकोगे--पुराने ढंग से-- कि यह पुरानी नम्बर एक, यह नम्बर दो। अब तो मेल हो गया।

परमात्मा दूसरे ढंग का मिलन है। जैसे दो ओस की बूंदें मिलतीं--ऐसा। इस संसार का प्रेम दो कंकड़ जैसा प्रेम है। जैसे पति-पत्नी मिलते, मित्र मिलते। ये सब 'दो कंकड़' करीब आते--बस; बहुत करीब आ जाते, तो भी दूर बने रहते, अलग बने रहते, थलग बने रहते।

परमात्मा ऐसे है, जैसे बूंद सागर में उतरती है। लीन हो गई। सच है; इसलिए संतों ने कहा है कि 'जब तक मैं हूँ, तब तक तू नहीं। और जब तू होता है, तो मैं नहीं होता।' एक ही बचता है।

कबीर ने कहा है : 'प्रेम गली अति सांकरी, तामे दो न समाय।' ये दो जहाँ नहीं समाते, उस गली में ही समा जाने का नाम भक्ति है। भक्त और भगवान एक हो जाते हैं।

इसलिए तुम्हारा पूछना--कि तो फिर मिलन कहाँ हुआ, एक अर्थ में ठीक है। अगर तुम पहले मिलन का हिसाब रखते हो, तो दूसरा मिलन मिलन नहीं। अगर तुम दूसरे को मिलन कहते हो, तो पहला मिलन मिलन नहीं। तुम समझ लो; तुम्हें जो कहना हो। शब्दों में कुछ सार नहीं है।

कैसा हुआ? किसका हुआ? कहाँ हुआ?

तुम 'मिलन' शब्द के ये दो अर्थ खयाल में ले लो। दो कंकड़ों का मिलन; अगर तुम उसको मिलन मानते हो, तो फिर परमात्मा से मिलन को मिलन नहीं कहना चाहिए। अगर तुम कहते हो, मिलन की वही परिभाषा है--और किसी ढंग का मिलन स्वीकार नहीं होगा, तो फिर परमात्मा और भक्त का मिलन मिलन नहीं कहा जा सकता; लीनता कहो; विसर्जन कहो; नाम से कुछ फर्क नहीं पड़ता।

अगर तुम कहते हो कि दूसरा मिलन ही वास्तविक मिलन है, क्योंकि पहले मिलन में तो मिलन हुआ कहाँ! दो तो दो ही बने रहे। पास आ गये; मिलन कहाँ हुआ? अगर दूसरे का मिलन कहते हो, तो भी चलेगा। तो फिर पहले को मिलन मत कहो; संग-साथ कहो--मिलन मत कहो। संबंध कहो--मिलन मत कहो।

मगर भाषा में अब तक दोनों प्रयोग होते रहे हैं। मिलन के दोनों अर्थ हैं : एक संबंध का—और एक विसर्जन का।

भाषा पर मत अटकना; शब्दों पर मत अटकना; सार को ग्रहण करना।

जहाँ भी भाषा बाधा बने, वहाँ स्मरण रखना। जहाँ शब्द बहुत अतिशय हो जाय, वहाँ खयाल रखना।

यह परमात्मा की यात्रा--भाषा के बाहर यात्रा है; यह शब्दातीत है। यहाँ शब्द पीछे छोड़ जाने हैं। इसलिए शब्दों के साथ बहुत माथा-पच्ची मत करना अन्यथा तुम कभी भी इस परम निगूढ़ सत्य को न समझ पाओगे।

इसलिए परमात्मा के संबंध में जितने शब्द उपयोग किये गये हैं--सब विरोधाभासी हैं। कहते हैं--परमात्मा से मिलन--लेकिन विरोधाभासी बात है, क्योंकि न तो मिलने वाला बचा; न वह बचा--जिससे मिलना है। दोनों खो गये।

कहते हैं : परमात्मा बहुत दूर; और यह भी कहते हैं कि परमात्मा बहुत पास; दोनों बातें कैसे साथ होंगी? कहते हैं : परमात्मा को खोजना है; और यह भी कहते हैं कि परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है। ये दोनों बातें साथ कैसे होंगी? पर ये दोनों बातें साथ हो रही हैं।

हमारी भाषा द्वन्द्वात्मक है; हमारी भाषा में हर चीज में द्वन्द्व है। और परमात्मा का अस्तित्व निर्द्वन्द्व है। निर्द्वन्द्व के लिए, द्वन्द्वातीत के लिए हमारी भाषा समर्थ नहीं है--प्रगट करने में। इसलिए जो भी हम बोलते हैं--परमात्मा के संबंध में, उसे बच्चे की तुतलाहट समझना। जो भी कहा गया है, परम से परम ज्ञानियों ने भी जो कहा है, वह बच्चों की तुतलाहट है। ऐसा स्मरण रहे, तो तुम्हारे मन में व्यर्थ की झंझटें खड़ी न होंगी और व्यर्थ के प्रश्न न उठेंगे।

निष्शब्द हो गया चित्त ही उसके प्रति खुलता है।

आज इतना ही।

परमात्मा को रिझाना है

तीसरा प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १३ मई, १९७७
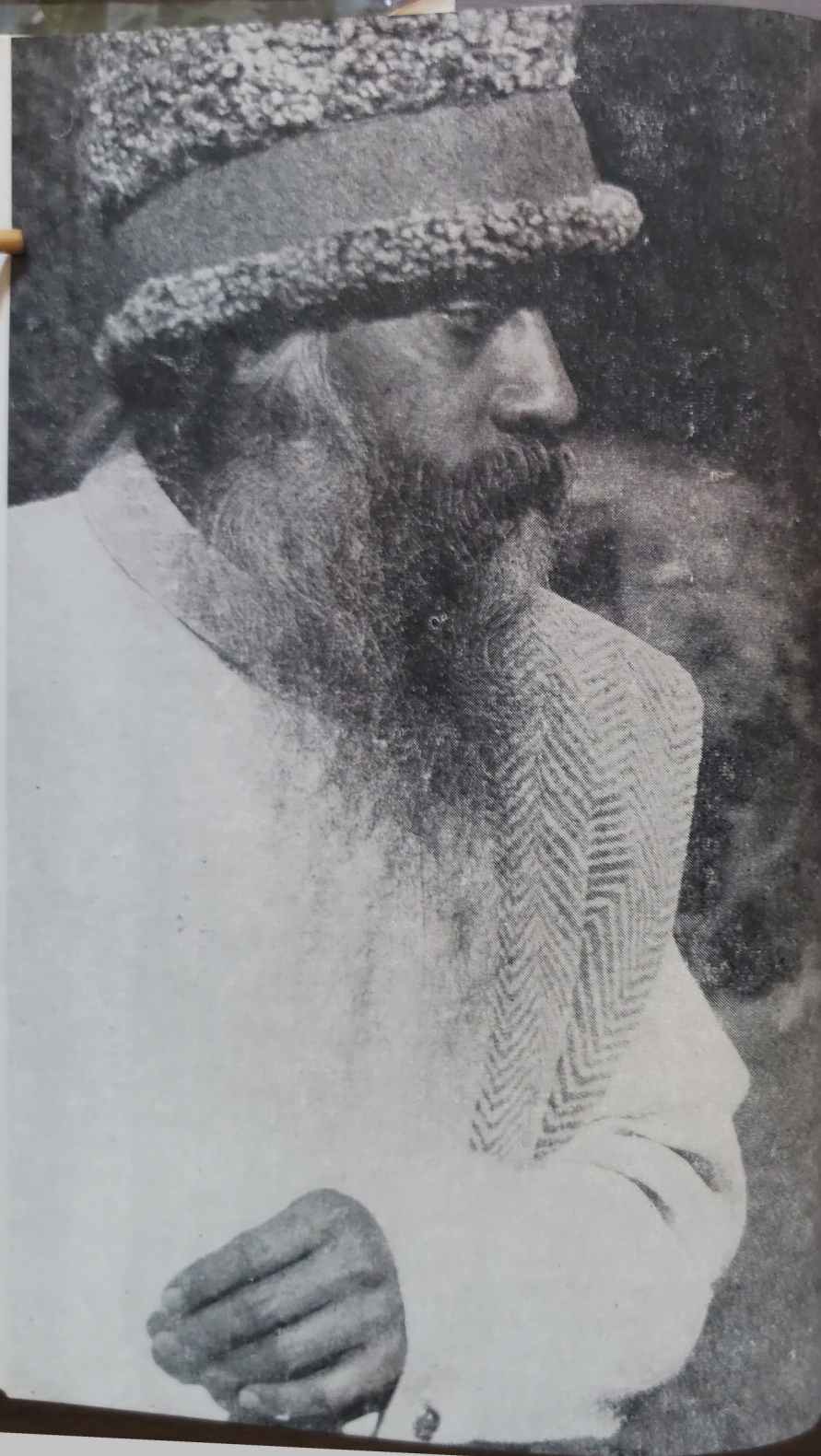
ना वह रिझै जप तप कीन्हें, ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टाँगे, ना काया के पखारे॥
दया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना-सा दुःख सब का जानै, ताहि मिलै अविनासी॥
सहै कुसब्द बादहू त्यागै, छाँड़ै गर्व-गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दिवाना॥

राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे।
अवसर न चूक भोंदू, पायो भला दांव रे॥
जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।
जनम सिरानो जात तेरो, लोहे कैसो ताव रे॥
राम जी के गाव गाव, राम जी के तू रिझाव।
राम जी के चरन कमल, चित्त माँहि लाव रे॥
कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।
आनन्द मगन होइके तैं हरिगुन गाव रे॥
राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे।

बाबा मलूकदास भक्त हैं--ज्ञानी नहीं; प्रेमी हैं--ध्यानी नहीं। सत्य को उन्होंने हृदय के माध्यम से, हृदय के द्वारा जाना है।

जीवन के सत्य को पहचानने की दो व्यवस्थाएँ हैं : एक बुद्धि का जागरण हो; सोयी हुई चेतना जागे--बुद्ध का मार्ग। मस्तिष्क के विकार दूर हों, विचार दूर हों; बुद्धि निर्मल बने--दर्पण बने। वैसे सत्य यदि जाना जाय, तो सत्य का नाम परमात्मा नहीं। 'परमात्मा' प्रेमी के द्वारा दिया गया नाम है। इसलिए बुद्ध के मार्ग पर परमात्मा की कोई जगह नहीं है। न महावीर के मार्ग पर परमात्मा की कोई जगह है। 'परमात्मा' शब्द सार्थक नहीं है--ध्यान की व्यवस्था में।

दूसरा मार्ग है : हृदय जागे; हृदय के विकार दूर हों; हृदय की संवेदनशीलता बढ़े; हृदय की भावना प्रगटे; प्रेम जगे।

बुद्धि जगे, तो जो मिलता है, उसे हम कहते हैं--सत्य। हृदय जगे, तो जो मिलता है, उसे हम कहते हैं--प्रभु।

मिलता तो एक ही है; नाम दो हैं। दो अलग ढंग से खोजे गये मार्ग से, एक ही सत्य को दो अलग ढंग से देखा गया है; एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए परमात्मा और सत्य की बात में कोई विरोध नहीं है। लेकिन पहुँचने वाले अलग-अलग द्वार से आये हैं।

परमात्मा तक जो आया है--वह प्रेम की पगडंडी से आया है। सत्य तक जो आया है, वह बुद्धि के राज-पथ से आया है। और ध्यान रखना : बुद्धि को मैं कह रहा हूँ--राज-पथ और प्रेम को मैं कह रहा हूँ--पगडंडी। सकारण।

बुद्धि का राज-पथ है--साफ-सुथरा है; सीधा है; विधि-विधान हैं; तर्कयुक्त है। महावीर के वचन अति तर्कयुक्त हैं। वैसे ही बुद्ध के वचन हैं। बुद्ध से विवाद करके जीतना संभव नहीं है। बुद्ध की बात माननी ही पड़ेगी। बुद्ध की बात तर्कातीत नहीं है। तर्कातीत की चर्चा ही नहीं की है। जो तर्क में आ सके, उसका ही निर्वचन हुआ है। तो बुद्ध से नास्तिक भी राजी हो जायेगा। अनेक नास्तिक राजी

हुए। कितना ही बुद्धिमान व्यक्ति हो, कितनी ही बुद्धि का विलास हो, बुद्ध के पास आ कर झुक जायेगा।

भक्त की भाषा अटपटी है; तर्क के पार है; प्रेम की है; पगडन्डी की तरह है--इरछी-तिरछी है। कब बायें घूम जाती है, कब दायें घूम जाती है--कहना मुश्किल है। विरोधाभासी है। केवल वे ही समझ पायेंगे, जो श्रद्धा का सूत्र पकड़ कर चलेंगे।

बुद्ध के मार्ग पर--बुद्धि के मार्ग पर श्रद्धा अनिवार्य नहीं है। बुद्धि के मार्ग पर सुविचार अनिवार्य है। श्रद्धा पीछे आयेगी; अनुभव के बाद आयेगी; अनुभव से आयेगी। पहले अपेक्षा नहीं है।

प्रेम के मार्ग पर श्रद्धा पहली सीढ़ी है। प्रेम--श्रद्धा से ही शुरू होता--अतर्क्य श्रद्धा; अनुभव पीछे होगा। अनुभव श्रद्धा से निकलेगा।

बुद्धि के मार्ग पर जो अंतिम है--प्रेम के मार्ग पर वह प्रथम है। बुद्धि के मार्ग पर भी समर्पण होता है, लेकिन अंत में। मंजिल जब बिलकुल करीब आ जाती है, तब समर्पण होता है।

बुद्धि का रास्ता राज-पथ की तरह है--साफ-सुथरा है। असुरक्षा नहीं है। प्रेम का रास्ता पगडन्डी की तरह है; बीहड़ से गुजरता है; सुरक्षा नहीं है।

प्रेमी के लिए साहसी होना जरूरी है। प्रेम साहस मांगता है। जो बुद्धि में बहुत कुशल हैं, इतना साहस नहीं जुटा पाते। प्रेम के रास्ते पर पागल जाते हैं। प्रेम के रास्ते पर पहला ही चरण समर्पण का है--अपने को मिटा डालने का है।

मलूकदास प्रेमी हैं : इस बात को पहले खयाल में ले लेना।

फिर मैंने कहा : बुद्धि का मार्ग राज-पथ जैसा है, क्योंकि बुद्धि सभी के पास है--और एक जैसी है। बुद्धि के नियम एक जैसे हैं। दो और दो--चार, मेरे लिए ही नहीं होते, तुम्हारे लिए भी दो और दो चार होते हैं। और दो और दो चार, भारत में ही नहीं होते, तिब्बत में भी होते हैं, जापान में भी होते हैं, चीन में भी होते हैं। चाँद-तारों पर भी अगर आदमी होगा, तो दो और दो चार ही होंगे। कहीं भी होगा आदमी, कहीं भी बुद्धि होगी, तो दो और दो चार होंगे।

बुद्धि के नियम सार्वभौम हैं--यूनिव्हर्सल हैं। इसलिए हजारों लोग बुद्धि के मार्ग पर साथ-साथ चल सकते हैं। सहमति हो जायेगी। प्रेम के मार्ग पर भीड़-भाड़ नहीं चलती। प्रेम के मार्ग पर अकेला चलना होता है, इसलिए--पगडंडी।

मेरा प्रेम, बस, मेरा प्रेम है। उस जैसा प्रेम दुनिया में कहीं भी नहीं है। तुम्हारा प्रेम--तुम्हारा प्रेम है; उस जैसा प्रेम न पहले कभी हुआ है, न फिर कभी होगा। प्रेम वैयक्तिक है। प्रेम का स्वाद व्यक्ति का स्वाद है। प्रेम गणित जैसा नहीं

है--कि दो और दो चार। प्रेम काव्य है। प्रेम में निजता है। हर प्रेमी का प्रेम उसके हस्ताक्षर लिए होता है। इसलिए--पगडंडी।

इसलिए बुद्ध के वचन, शंकराचार्य के वचन, महावीर के वचन में तालमेल बिठाया जा सकता है। कोई अड़चन नहीं है। लेकिन मलूकदास, मीरा और चैतन्य में तालमेल बिठाना बहुत कठिन मालूम होगा।

प्रेम की निजता है। प्रेम का अनूठापन है--अद्वितीयता है, इसलिए--पगडंडी। छोटा-सा, सँकरा-सा रास्ता है। कबीर तो कहते हैं : इतना सँकरा है कि--तामे दो न समाय। एक ही चल पाता है। इसलिए जब तक भक्त रहता है, भगवान् नहीं हो पाता। दो के लायक भी जगह नहीं है। 'प्रेम गली अति साँकरी।' अब भक्त मिट जाता है, तो भगवान् हो पाता है। जगह ही इतनी है! दो के लायक भी स्थान नहीं है। इसलिए--पगडंडी। बड़ी छोटी, संकीर्ण पगडंडी।

प्रेम के मार्ग पर केवल मतवाले जाते हैं--दीवाने जाते हैं। इसलिए मैंने कहा कि मलूकदास पियक्कड़ हैं। शराबी हैं। प्रेम का नशा चाहिए।

बुद्धि होशियारी से चलती है; प्रेम लड़खड़ा के चलता है। प्रेम में एक मस्ती है; बुद्धि में साफ-सुथरापन है। प्रेम में एक रस है; बुद्धि रूखी-सूखी है। बुद्धि का राज-पथ मरुस्थल से गुजरता है। प्रेम की पगडन्डी हरे जंगलों, फूलों, पक्षियों के कलरव से; झीलों, सरोवरों के पास से गुजरती है।

प्रत्येक व्यक्ति को निर्णय करना होता है कि क्या उसके हृदय के साथ, क्या उसके व्यक्तित्व के साथ, क्या उसकी बुद्धि के साथ मेल खाता है। और कोई दूसरा निर्णायक नहीं हो सकता है। प्रत्येक को अपने भीतर ही निर्णय करना होता है। जिस बात से तुम्हारे भीतर उमंग उठ आती हो, जिस बात को सुन कर तुम्हारे भीतर रोमांच हो जाता हो, जिस बात को सुनकर तुम्हारे भीतर श्रद्धा उमड़ती हो--वही तुम्हारा मार्ग है। उसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

और भूल कर भी दूसरे के मार्ग पर मत चलना। क्योंकि दूसरे के मार्ग से कोई कभी नहीं पहुँचता; अपने ही मार्ग से पहुँचता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं : स्वधर्मे निधनं श्रेयः--अपने धर्म में मर जाना भी श्रेयस्कर है। उसका यह मतलब मत समझना कि--हिन्दू धर्म में या मुसलमान धर्म में। उसका अर्थ होता है : जो तुम्हारी निजता है, स्वधर्म है...। अगर भक्ति तुम्हारी निजता है, तो उसमें मर जाना भी बेहतर है। अगर ज्ञान तुम्हारी निजता है, तो उसमें मर जाना बेहतर है। पर धर्मो भयावहः--दूसरे का धर्म बहुत भयानक है; भूल कर मत जाना। और इसीलिए बड़ा उपद्रव है--जगत् में।

तुम अपनी सुनते ही नहीं! तुम अपनी गुनते ही नहीं। दूसरे जैसा कहते हैं,

वैसा मान कर चल पड़ते हो।

यह संयोग की बात है कि तुम जैन घर में पैदा हुए, कि हिंदू घर में पैदा हुए। इससे धर्म तय नहीं होता। तुम्हें धर्म तो तय करना पड़ेगा।

धर्म इतना सस्ता नहीं है, कि जन्म से तय हो जाय। धर्म के लिए तो स्वयं निर्णय लेना होता है। जिसने स्वयं निर्णय नहीं लिया, वह चलता रहता है--दूसरों की मान कर; पर-धर्म मान कर चलता रहता है। और उसका जीवन व्यर्थ है; उसकी मृत्यु व्यर्थ है। अवसर खो जाता है।

धर्म की शुरुआत ही तब होती है, जब तुम निर्णय लेते हो कि मेरा स्वयं का मार्ग क्या है।

मैं ऐसे जैनों को जानता हूँ, जो नाचना चाहेंगे। लेकिन महावीर के सामने नाचने की मनाही है। जो हाथ में दीये जला कर गुनगुना चाहेंगे; जो वीणा उठा कर गीत गाना चाहेंगे। लेकिन महावीर के सामने उसकी मनाही है। नग्न महावीर के सामने बाँसुरी बजाओगे--भली लगेगी भी नहीं!

मैं ऐसे हिन्दुओं को भी जानता हूँ, जो राधा-कृष्ण की मूर्ति के सामने बाँसुरी बजाते हैं, लेकिन उनकी बुद्धि को यह बात पटती नहीं है। बजाते हैं; गाते हैं; गुनगुनाते हैं; बुद्धि को बात पटती नहीं है। झूठा प्रपंच करते रहते हैं। किसी घर में पैदा हो गये हैं, तो ढोते हैं--बोझ की तरह।

और धर्म अगर बोझ की तरह ढोया जाय, तो तुम्हें क्या खाक मुक्त करेगा? धर्म जब पंख बनता है, तो मुक्त करता है। धर्म जब आनंद और उल्हास होता है, तब मुक्त करता है। धर्म जब तुम चुनते हो, तब मुक्त करता है।

जिन लोगों ने महावीर के पास आ कर शरण ली थी, उन्होंने चुना था। अब उनके घर में जो बच्चे पैदा हो कर जैन हो रहे हैं, उन्होंने चुना नहीं है। जो मीरा के साथ दीवाने हो कर नाचे थे, उन्होंने चुना था। अब तुम परंपरागतरूप से मीरा के गीत गुनगुना रहे हो; न उनमें प्राण रह गया, न श्वास रह गयी; लाश ढोये चले जा रहे हो!

दुनिया में इतना अधर्म है, उसका मौलिक कारण यही है कि लोग अपने स्व-धर्म की चिंता ही नहीं कर रहे हैं। जन्मगत धर्म के साथ बंधे हैं।

इधर हम जो प्रयोग कर रहे हैं, वह यही है ताकि तुम फिर से स्व-धर्म की चिंता कर सको। फिर से चुनो। चुनाव अभी हुआ ही नहीं है।

जन्म से तय कुछ होता ही नहीं है। जन्म से शरीर मिलता है--आत्मा नहीं। आत्मा तो तुम लेकर आते हो--लम्बी-लम्बी यात्रा से। उस लम्बी यात्रा में न मालूम क्या-क्या तुमने सीखा है! क्या-क्या तुमने किया है। उस सारी सिखावन

के आधार पर निर्णय होगा : कौन-सी बात तुम्हें रुचती है। जो बात तुम्हें रुच जाय, वही तुम्हारा स्व-धर्म है। फिर सब छोड़ कर——हिसाब-किताब——स्व-धर्म के पीछे चल पड़ना। अगर स्व-धर्म भटका भी दे, तो भी पहुँच जाओगे। और पर-धर्म अगर पहुँचा भी दे, तो नहीं पहुँच पाओगे। इसे खयाल में लेना; यह सूत्र बहुमूल्य है।

स्व-धर्म में अगर तुम डूब भी जाओ, तो भी पहुँच जाओगे। लेकिन परधर्म में अगर तुम सुरक्षा से चलते भी रहो, तो भी कहीं न पहुँचोगे। दूसरे के माध्यम से कोई पहुँचता नहीं है। न तो दूसरे के द्वारा तुम भोजन कर सकते हो; न दूसरे की आँख से देख सकते हो; न दूसरे के पैर से चल सकते हो। तो दूसरे की आत्मा से कैसे तुम परमात्मा को झाँकोगे? अपनी ही खिड़की खोलनी पड़ती है।

मलूकदास प्रेम की खिड़की को खोलकर खड़े हैं। इस बात को खयाल में लेकर उनके सूत्रों को समझना।

'ना वह रीझै जप-तप कीन्हें, ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टाँगे, ना काया को पखारे।।'

उस परमात्मा को तुम रिझा न सकोगे——न तो जप से, न तप से; न आत्मा को जलाने से——पीड़ा देने से; न छुआ-छूत——शुद्धि के विचार से——वर्ण-धर्म से; और न काया की शुद्धि से।

पहली बात समझने की है : 'ना वह रीझै...।' रीझै शब्द भक्त का है; उसमें भक्ति की कुंजी छिपी है।

परमात्मा को पाना नहीं है; परमात्मा को रिझाना है। समझो : इसका अर्थ हुआ——कि परमात्मा है : इस पर तो भक्त को संदेह ही नहीं है। परमात्मा के होने में तो श्रद्धा है ही।

परमात्मा के लिए भक्त प्रमाण नहीं मांगता। भक्त यह नहीं कहता कि सिद्ध करो : परमात्मा है। जो कहे : सिद्ध करो——परमात्मा है, उसके लिए भक्ति का मार्ग नहीं है। भक्त के लिए परमात्मा ही है। और सब चीजें असिद्ध हैं, सिर्फ परमात्मा सिद्ध है। यह बात बिना किसी प्रमाण के उसे स्वीकार है। ज्ञानी को अखरेगी यह बात——कि यह क्या अंधापन हुआ! लेकिन ज्ञानी के लिए जो आँख है, वह भक्त के लिए आँख नहीं है। और ज्ञानी के लिए जो अंधापन है, वह भक्ति के लिए आँख है।

श्रद्धा बड़ी कला है। श्रद्धा कोई छोटी-मोटी घटना नहीं है। श्रद्धा का अर्थ होता है : संदेह से प्राण व्यथित नहीं होते।

हर बच्चा श्रद्धा लेकर पैदा होता है। श्रद्धा स्वाभाविक है। जब बच्चा अपनी माँ के स्तन पर मुंह रखता है और दूध पीना शुरू करता है, तो श्रद्धा से——संदेह

से नहीं। संदेह हो, तो मुँह अलग कर ले। पता नहीं——जहर हो। पहले प्रमाण चाहिए। स्तन से पोषण मिलेगा——इसका प्रमाण क्या है? इसके पहले तो बच्चे ने कभी स्तन से पोषण पाया नहीं है। पहली दफा स्तन को पीने चला है। प्रमाण कहाँ है? जिसके स्तन से पीने चला है दूध, वह जहरीली न होगी, इसका सबूत क्या है?

नहीं; बच्चा पीना शुरू कर देता है। एक सहज श्रद्धा है; एक आस्था है, जो अभी संदेह से मलिन नहीं हुई है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होगा, श्रद्धा संदेह से मलिन होने लगेगी। वह अपने बाप पर भी संदेह करेगा, अपनी माँ पर भी संदेह करेगा। जैसे-जैसे बड़ा होगा, वैसे-वैसे संदेह भी बड़ा होगा।

संदेह हम सीखते हैं; श्रद्धा हम लाते हैं। कुछ धन्यभागी लोग हैं, जो अपनी श्रद्धा को बचा लेते हैं; नष्ट नहीं हो पाती। बड़ा साहस चाहिए——श्रद्धा को बचाने के लिए। कौन-सा साहस?...

संदेह में कोई बड़ा साहस नहीं है। संदेह तो भय के कारण ही पैदा होता है। इसे थोड़ा समझो।

संदेह आता है——भय की छाया के कारण। जब तुम डरते हो, तभी तुम संदेह करते हो। संदेह का मतलब होता है : पता नहीं, दूसरा लूट लेगा; चोरी करेगा; मारेगा; क्या होगा! जब तुम भयभीत होते हो, तब संदेह आता है। जब तुम निर्भय होते हो, तब श्रद्धा होती है।

जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होगा, भयभीत होगा। परिचित होगा उनसे, जो अपने नहीं हैं। परिवार के बाहर जायेगा। लोग लूट लेंगे कभी; लोग मार देंगे कभी; कभी लोग धोखा देंगे। धीरे-धीरे संदेह बढ़ेगा। धीरे-धीरे शकालु दृष्टि पैदा होगी। धीरे-धीरे अपने संदेह में घिरा रहने लगेगा। सजग होकर चलेगा——कि कोई लूट न ले; कोई धोखा न दे दे। और ऐसे धीरे-धीरे मनुष्यता पर भरोसा खो देगा; अस्तित्व पर भरोसा खो देगा। इस भरोसा खो देने को कोई बड़ी गुणवत्ता नहीं कहा जा सकता। यह तो इसी बात का सबूत है कि भय बहुत घना हो गया है।

निर्भय व्यक्ति ही श्रद्धा को उपलब्ध होते हैं। और 'श्रद्धा को उपलब्ध होते हैं' कहना ठीक नहीं; निर्भय व्यक्ति अपनी श्रद्धा को खण्डित नहीं होने देते। जिस श्रद्धा को जन्म के साथ लेकर आये थे, उसे बचाये रखते हैं——धरोहर की तरह।

परमात्मा पर श्रद्धा का इतना ही अर्थ है——जैसे माँ पर श्रद्धा। माँ से तुम्हारा जन्म हुआ है, इसलिए माँ से जो भी मिलेगा, वह पोषण होगा। इस अस्तित्व से हमारा जन्म हुआ है, इसलिए अस्तित्व हमारा शत्रु नहीं हो सकता। यह अस्तित्व हमारी माँ है।

इस अस्तित्व को ही हमने अगर शत्रु मान लिया, तो हद हो गयी! जिससे हम पैदा हुए हैं, वह हमारे विपरीत नहीं हो सकता है। और जिसमें हम फिर पुनः लीन हो जायेंगे, यह हमसे विपरीत नहीं हो सकता। हम उसी के फैलाव हैं। जैसे सागर में तरंगें हैं, ऐसे हम परमात्मा की तरंगें हैं। भक्त को यह बात प्रगाढ़ रूप से प्रगट है। इसके लिए किसी प्रमाण की जरूरत नहीं है। ऐसा उसे स्पष्ट अनुभव होता है। और इस अनुभव में कोई खामी मुझे दिखायी नहीं पड़ती; कोई भूलचूक दिखायी नहीं पड़ती।

ये वृक्ष पृथ्वी पर भरोसा किये हैं; पृथ्वी में जड़ें फैला रहे हैं। जानते हैं कि पृथ्वी रसवती है; माँ है। ये वृक्ष आकाश में सिर उठा रहे हैं; ये सूरज को छूने के लिए चले हैं; जानते हैं कि सूरज पिता है; उसकी किरणों में प्राण है; जीवन है। इस श्रद्धा के बल पर ही ये जी रहे हैं। किसी वृक्ष को अश्रद्धा हो जाय, वह मरना शुरू हो जायेगा। डर हो जाय पैदा--कि पता नहीं : पृथ्वी से रस मिलेगा कि मौत; कि सूरज है भी, कि नहीं—ऐसा भयभीत हो जाय वृक्ष, तो सिकुड़ जायेगा--अपने में बंद हो जायेगा। खण्डित होने लगेगी--उसकी जीवन धारा। जीवन के रस-स्रोत सूख जायेंगे।

भक्त रसपूर्ण है। भक्त की पहली शर्त है--कि परमात्मा है। इसमें वह प्रमाण नही माँगता। इसलिए कहते है मलूक : 'ना वह रीझे...।' इसलिए यह तो सवाल ही नहीं उठाना कि है परमात्मा या नहीं। यह भक्त के लिए सवाल नहीं है।

अगर यह सवाल तुम्हें उठता हो, तो भक्ति तुम्हारा मार्ग नहीं है। फिर तुम्हारा मार्ग ज्ञान है। फिर तुम्हें संदेह कर कर के ही लम्बी यात्रा करनी पड़ेगी—संदेह की। इतना संदेह करना पड़ेगा कि धीरे-धीरे ऐसी घड़ी आ जाय कि तुम्हें संदेह पर भी संदेह हो जाय, तब तुम्हें श्रद्धा पैदा होगी; उसके पहले नहीं। वह बड़ी लम्बी यात्रा है। संदेह पर भी जब तुम्हें संदेह पैदा हो जायेगा, जब संदेह पर संदेह आ आयेगा, तब तुम्हें श्रद्धा पैदा होगी।

भक्त की श्रद्धा कुँवारी है; मौजूद है; है ही; उसे लाने की जरूरत नहीं है। परमात्मा है—इसलिए अब सवाल क्या है! सवाल यह है कि परमात्मा को कैसे रिझायें?

ज्ञानी का सवाल है--कि परमात्मा है या नहीं।

केशवचन्द्र रामकृष्ण के पास गये, तो उन्होंने पूछा--'परमात्मा है या नहीं?' वह ज्ञानी का सवाल है। और रामकृष्ण खूब हँसने लगे। उन्होंने कहा, 'यह सवाल कभी मुझे कभी उठा हो नहीं! परमात्मा है या नहीं?—इसका उत्तर मैंने कभी खोजा नहीं, क्योंकि यह सवाल मुझे कभी उठा नहीं। परमात्मा तो है ही। उसके

अतिरिक्त और कौन है! जो है--वह परमात्मा का रूप है।'

केशवचन्द्र बहुत विवाद करने लगे। तर्कनिष्ठ व्यक्ति थे। और रामकृष्ण बड़े प्रफुल्लित होने लगे; बड़े आनन्दित होने लगे। और जब विवाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचने लगा, तो रामकृष्ण ने उठ कर केशव को गले लगा लिया। केशव तो बहुत हैरान हुए—कि यह मामला क्या है! वे तो खण्डित कर रहे थे। उन्होंने पूछा, 'आप यह क्या कर रहे हैं परमहंसदेव? लोग कहते हैं कि आप पागल हैं, क्या सच ही कहते हैं? क्योंकि मैं तो खण्डन कर रहा हूँ।' रामकृष्ण ने कहा, 'खण्डन?' सुन कौन रहा है! मैं तुम्हें देख रहा हूँ। तुम्हें देख कर मुझे परमात्मा का भरोसा आ रहा है। ऐसी प्रतिभा, परमात्मा के बिना हो कैसे सकती है?'

फर्क समझना। 'इतनी प्रतिभा--कि परमात्मा को भी खण्डित कर सके, परमात्मा के बिना कैसे हो सकती है? तुम्हारे भीतर अपूर्व परमात्मा प्रकाश हो रहा है। केशव, तुमने नहीं देखा। मैं देख रहा हूँ; रामकृष्ण ने कहा। 'तुम्हें मैं गले लगाता हूँ। तुमने लौट कर नहीं देखा--अपना प्रकाश, वह तुम्हारी मरजी। लेकिन मैं तुम्हारे भीतर बड़ा प्रकाश देखता हूँ।'

केशवचन्द्र हारे हुए लौटे! इस आदमी से जीतने का उपाय नहीं है। सोचते-विचारते लौटे कि बात क्या है! ऐसा तो कभी उनके जीवन में कोई अनुभव न आया था। वे विवाद कर रहे थे। विवाद का उत्तर दिया जाना चाहिए था। उत्तर दिया भी गया। पर बड़ा अनूठा उत्तर दिया गया--कि तुम्हारे विवाद करने की क्षमता, परमात्मा का सबूत है। तुम्हारे तर्क की यह प्रगाढ़ता, वह त्वरा--परमात्मा का सबूत है।

कहते हैं मलूकदास; 'ना वह रीझे...।' रीझने से बात शुरू होती है। रिझाना है। प्रेमी तो है। जानने की बात नहीं है। है ही। उसका हमें पता ही है। वह मौजूद ही है। अब सवाल इतना है कि कैसे उसे रिझायें।

फर्क समझना।

जब ज्ञानी बड़े-बड़े प्रमाण जुटा कर तय कर लेता है कि ठीक, सत्य है; तब वह कहता है : अब मैं सत्य को कैसे पाऊँ?

भेद समझना।

रिझाने की तो बात उठ ही नहीं सकती--ज्ञानी के मन में। रिझाने जैसा पागलपन--ज्ञानी सोच भी नहीं सकता। ज्ञानी सोचता है कि पहले तो सत्य है या नहीं, अगर सिद्ध हो जाता है--तर्क और गणित से—कि है, तो फिर वह पूछता है कि मैं सत्य को कैसे पाऊँ।

ज्ञानी की दृष्टि अपने पर होती है। भक्त पूछता है : तुम्हें कैसे रिझाऊँ। यह

तो वह पूछता ही नहीं--कि तुम्हें कैसे पाऊँ। यह तो सवाल ही नहीं है। तुम्हें पाया ही हुआ है। अब बात इतनी ही है कि किस ढंग से नाचूँ कि तुम्हारे मन में, मेरे प्रति, प्रसाद बरस जाय--तुम्हारी तरफ से। कैसे तुम्हें प्रसन्न कर लूँ?--तुम रूठे हो जैसे।

फर्क देखना।

ज्ञानी सोचता है : मैंने किये होंगे पाप-कर्म, इसलिए परमात्मा मुझे नहीं मिल रहा है; सत्य मुझे नहीं मिल रहा है। भक्त कहता है : परमात्मा रूठ कर बैठे हैं। खेल चल रहा है। जैसे प्रेमी रूठ जाता है। परमात्मा रूठ कर बैठे हैं, इन्हें कैसे मनाऊँ, कैसे रिझाऊँ; किस विधि नाचूँ; किस विधि गाऊँ--कि यह रूठना परमात्मा भूल जायें?

'ना वह रीझै जप-तप कीन्हें, ना आतम को जारे।'

और कहते हैं मलूक कि तुम कितना ही जप करो--कितना ही तप, उसे रिझा न पाओगे। यह कोई रिझाने की बात हुई! यह तो और रुठा दोगे!

अब कोई आदमी बैठा है--और जप कर रहा है। जप यानी विधि। फर्क समझना। भक्त भी भगवान् का नाम लेता है। आगे मलूकदास कहेंगे : 'राम कहो, राम कहो बावरे।' लेकिन वह जप नहीं है। जप है--विधि, टेकनीक।

एक आदमी जप करने बैठा है। वह कहता है : राम--राम--राम। इसमें कोई रस नहीं है; कोई प्रेम नहीं है। दोहराता है इसे--यंत्रवत; एक विधि की भाँति। इसे कर रहा है, क्योंकि कहा गया है कि इस तरह मंत्र को दोहराने से विचार शांत हो जायेंगे, मन शून्य होगा--और उस शून्य में परमात्मा के दर्शन होंगे। यह विधि है। अगर उससे कहा गया होता कुछ और, तो वह वही करता।

बहुत विधियाँ हैं--दुनिया में।

पश्चिम के बहुत बड़े कवि लॉर्ड टेनिसन ने लिखा है अपने संस्मरणों में कि मुझे बचपन से ही न मालूम कैसे यह विधि हाथ आ गई कि जब भी मैं अकेला बैठा होता, तो अपना ही नाम दोहराने लगता--टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन। और उसके दोहराने से मुझे बड़ा रस आता। बड़ी मस्ती छा जाती। मैं किसी से कहता भी नहीं था, क्योंकि लोग पागल समझेंगे। फिर तो धीरे-धीरे रस इतना बढ़ने लगा कि यह दैनिक कृत्य हो गया। घंटों बैठा रहना और टेनिसन--टेनिसन--टेनिसन दोहराता रहता। दोहराते--दोहराते एक घड़ी आ जाती कि बड़ी शांति आ जाती।

अब अपना ही नाम दोहराने से भी अगर शांति मिल जाती हो, तो अपना ही नाम दोहरा लेगा। विधि का सवाल है; कोई राम के नाम से क्या लेना-देना है! कोई भी शब्द काम दे देगा। कोई भी शब्द दोहराने से काम हो जायेगा। इसलिए

ओंकार दोहराओ, कि राम दोहराओ, कि अल्लाह दोहराओ--या तुम अगर चाहो तो संख्या ही दोहरा सकते हो : दो--दो--दो--दोहराते जाओ, उससे भी वही परिणाम होगा।

ज्ञानी के लिए शब्द शब्द में कोई भेद नहीं है। शब्द तो विधि है। लेकिन प्रेमी के लिए बड़ा भेद है। प्रेमी के लिए शब्द विधि नहीं है; शब्द उसके हृदय का भाव है।

तुम अगर प्रेमी से भी कहोगे कि दो--दो--दो-- दोहराने से भी शांति हो जायेगी, ध्यान लग जायेगा, तो प्रेमी कहेगा : मुझे ध्यान नहीं लगाना है; मुझे राम दोहराना है। ज्ञानी को कहोगे कि दो से भी वही काम हो जाता है, वह कहेगा : तब ठीक है, कोई हर्जा नहीं है; दो दोहरा लेंगे। फर्क समझने की कोशिश करना।

ज्ञानी के लिए जप विधि है--भक्त के लिए भजन है। भजन में रस है, भाव है। ज्ञानी के लिए वैज्ञानिक तकनीक है, तो करता है। और कोई बेहतर तकनीक मिल जायेगी, तो उसे करेगा। लेकिन भक्त के लिये...? भक्त कहेगा : इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।...

ऐसा समझो कि एक बेटे से तुम कहो कि तेरी जो माँ है, इससे भी सुन्दर माँ तुझे दे देते हैं। तो वह कहेगा : छोड़ो भी। मेरी माँ से सुन्दर और कौन माँ हो सकती है? यह बात ही मत करो। कितनी ही सुन्दर स्त्री को लाकर खड़ा कर दो, इससे भी बच्चा उसके पास नहीं चला जायेगा--कि वह उसकी माँ से ज्यादा सुन्दर है, तो चलो इसे चुन लें। लेकिन तुम अगर वेश्या को खोजने गये हो--बाजार में; रुपये देकर वेश्या लेनी है, तो फिर तुम सुन्दर को चुन लोगे, असुन्दर को छोड़ दोगे। असुन्दर का क्या प्रयोजन है? जब सुन्दर मिलती हो--उतने ही दाम में, तो तुम सुन्दर को चुन लोगे।

वेश्या का चुनाव गणित से होगा; माँ का चुनाव गणित से नहीं होता; गणित के बाहर है।

किसी बेटे को अपनी माँ असुन्दर लगती ही नहीं। किस माँ को अपना बेटा असुन्दर लगता है? एक रस-भाव है; एक भावना है।

खयाल रखना : कहते हैं मलूकदास : 'ना वह रीझै जप-तप कीन्हें,' तो कितना ही लाख सिर पटको और जपते रहो--राम-राम-राम, लेकिन अगर इसमें रस नहीं है, अगर यह मात्र सूखी विधि है, अगर तुम माला जप रहे हो और सिर्फ हाथ माला पर फेर रहे हो...।

तुम्हें पता होगा : तिब्बत में उन्होंने ज्यादा अच्छी विधि खोज ली। तुम माला जपते हो; एक सौ आठ गुरिये सरकाओ; समय लगता है। उन्होंने एक सौ आठ

आरे वाला चका बना लिया है तिब्बत में, उसको वे प्रार्थना-चक्र कहते हैं। अपना काम करता रहता है आदमी और एक धक्का मार देता है--उस चके को, वह चका घूम जाता है। जितनी बार वह चका घूम जाता है, उतनी माला का लाभ हो गया! यह विधि है।

एक बार एक तिब्बती लामा मेरे पास मेहमान था। उसके पास मैंने उसका चका देखा। वह उसे रखा रहता। किताब भी पढ़ता रहता, तो बीच-बीच में चके को, जब मन हो जाता, तो घुमा देता। वह दस-पन्द्रह चक्कर लगा कर चका रुक जाता। दस-पन्द्रह माला का लाभ हो गया!

मैंने उससे कहा : 'पागल, इसमें तू बिजली क्यों नहीं जोड़ लेता?' उसे बात जँची! 'अगर हाथ से ही चलाने का मामला है, तो बिजली से जोड़ दे। बटन भी तो हाथ से ही दबानी पड़ेगी न। फिर दबा दी। चौबीस घन्टे चला दिया, तो लाखों का लाभ हो जायेगा।'

एक घर में मैं मेहमान था, उन्होंने बड़ा पुस्तकालय बना रखा है। बस, वे कापियों पर राम-राम, राम-राम लिखते रहते हैं। इकट्ठी करते जा रहे हैं कापियाँ। कोई साठ पैंसठ साल की उनकी उम्र है; कोई चालीस साल से यह काम कर रहे हैं। सारा घर भर डाला है। वे बड़े प्रसन्न होते हैं; दिखाते हैं--कि देखो, कितना राम-राम लिख डाला!

मैं जब उनके घर गया, तो मैंने कहा कि 'तुमने कितनी कापियाँ खराब कर डालीं : रामजी के सामने मत पड़ जाना कभी, नहीं तो वे कहेंगे : इतने बच्चे...! अगर स्कूल में किताबें बाँट दी होतीं, तो काम आ जातीं। तुमने व्यर्थ खराब कर डालीं। ये राम-राम लिखना--यह क्या फिजूल की बात है!'

बंगाल में एक बहुत बड़ा व्याकरणाचार्य हुआ, उसके पिता ने उससे कहा कि 'तू राम-राम कब जपेगा?' उसने कहा : 'बार-बार क्या जपना! एक दफा बहुवचन में कह दूंगा। एक वचन में कहते रहो--राम--राम--राम। लाखों बार कहो। बहुवचन में एक दफा कह दिया, बात खतम हो गयी।'

गणित है जहाँ वहाँ बात अलग है।

मैंने सुना है : एक वकील रोज रात को प्रार्थना करता। उसकी पत्नी ने सुना कि प्रार्थना बड़े जल्दी खतम हो जाती है। एक सैकेण्ड नहीं लगता। बस, वह जल्दी से प्रार्थना करके कम्बल ओढ़ कर सो जाता। पत्नी ने कहा : 'मैं भी करती हूँ प्रार्थना, तो कम से कम दो मिनट तो लगते हैं! तुम्हें तो एक सैकेण्ड नहीं लगता!' उसने पूछा वकील से कि 'तुम इतनी जल्दी प्रार्थना ...?' उसने कहा कि 'बार-बार क्या करना। वही की वही प्रार्थना। भगवान् भी जानता; मैं भी जानता।

मैं कहता हूँ--डिट्टो--और सो जाता हूँ।'

वकील है, तो वकालत के ढंग से सोचता है।

मलूकदास कह रहे हैं कि ऐसे जप-तप से कुछ भी न होगा। तप का अर्थ होता है--तपाना : उपवास करना, धूप में खड़े होना, कि शीत में खड़े होना, कि काँटों पर लेट जाना। मलूकदास कहते हैं : यह भी क्या पागलपन है! तुम अपने को सताओगे, इससे परमात्मा प्रसन्न होगा? कौन माँ अपने बेटे को भूखा देख कर प्रसन्न होती है? कौन माँ अपने बेटे को धूप में खड़ा देखकर प्रसन्न होती है? कौन माँ अपने बेटे को काँटों पर लेटा देखकर प्रसन्न होगी? अगर ऐसी कोई माँ होगी, तो पागल होगी।

तुम तपा-तपा कर परमात्मा को रिझाने चले हो? तुम और दूर हुए जा रहे हो। और जितना ही कोई व्यक्ति तपस्वी बनता है, तपाता है अपने को, उतना ही अहंकार बढ़ता है--परमात्मा नहीं बढ़ता। उतनी अकड़ बढ़ती है--कि देखो, मैंने इतने उपवास किये, इतने जप किये, इतने तप किये। देखो, कितना मैंने अपने को सताया। उसकी शिकायत और उसका दावा बढ़ता है। वह दावेदार बनता है। अगर परमात्मा उसे मिल जायेगा, तो उसका हाथ पकड़ लेगा--कि बड़ी देर हुई जा रही है; अन्याय हो रहा है। मैं कितने दिन से तपश्चर्या कर रहा हूँ। आखिर कब तक? मेरा मोक्ष और कितनी दूर है?

मलूकदास कहते हैं : न होगा जप से, न होगा तप से, क्योंकि परमात्मा अगर प्रेम है, तो यह बात ही बेहूदी है कि तुम अपने को सताओगे, इससे उसे पा लोगे। और अगर तुमने अपने को सता-सता कर परमात्मा को अपने पास बुला भी लिया, तो क्या वह प्रसन्नता से आयेगा? बहुत लोगों का यह तर्क है। तुम इसे समझना। तुम्हारे जीवन में यह तर्क खूब काम करता है। स्त्रियों के मन में यह तर्क बड़ा गहरा बैठा है।

पति से प्रेम नहीं मिलता, तो पत्नी बीमार हो जाती है। स्त्रियों की पचास प्रतिशत बीमारियाँ झूठी हैं। चाहे उन्हें भरोसा ही क्यों न हो कि ये बीमारियाँ सच हैं, तो भी झूठी हैं, कल्पित हैं।

मैं बहुत घरों में मेहमान होता रहा। मैं चकित होता कि मुझसे, बैठी पत्नी बात कर रही थी; पति के आने से ही बिस्तर पर लेट गई। और सिर में दर्द शुरू हो गया! मैं थोड़ा हैरान होता कि बात क्या है! और ऐसा भी नहीं कि पत्नी बिलकुल झूठ कह रही हो; पति को देखते ही सिर में दर्द शुरू हो जाता है। पुराना अभ्यास; रोज-रोज का अभ्यास--बस, यह संकेत की तरह काम कर जाता है : पति का हॉर्न बजा नीचे, गाड़ी का, कि पत्नी के सिर में दर्द शुरू हुआ।

यह उसने कैसे सीख लिया है ? उसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं । उसने पति को और कभी अपने तरफ प्रेम भरे नहीं देखा । जब तक वह बीमार न हो, तब तक पति उसके पास नहीं बैठता । जब तक सिर में दर्द न हो, सिर में हाथ नहीं रखता । सिर पर हाथ रखे, उसकी आकांक्षा है । तो सिर दर्द धीरे-धीरे, धीरे-धीरे प्रक्रिया बन गई है--पति सिर पर हाथ रखे--इसका, इसका उपाय बन गया है ।

चौंके होंगे शंकर; निश्चित चौंके होंगे। एक दफा खयाल आया कि बात तो ठीक ही है। अगर देह इसकी अशुद्ध है, तो मेरी कहाँ शुद्ध है! सच यह है कि वेद यही कहते हैं कि हर आदमी शूद्र की तरह ही पैदा होता है। कोई आदमी ब्राह्मण की तरह थोड़े ही पैदा होता है । ब्राह्मण तो होना होता है। शूद्र की तरह हम सभी पैदा होते हैं। जो ब्रह्म को जान लेता, वह ब्राह्मण हो जाता है । नहीं तो हम सभी शूद्र ही हैं। बात तो याद आयी होगी ।

फिर उसने पूछा कि 'अगर आप कहते हैं कि नहीं, देह के छूने के कारण कोई सवाल नहीं है। तो क्या मेरी आत्मा अशुद्ध है? आत्मा अशुद्ध हो सकती है महानुभाव? सुना तो मैंने यही है कि आत्मा शाश्वत रूप से शुद्ध है। आपसे ही सुना है; आप जैसे बुद्धिमानों से सुना है; ऋषि-मुनियों से सुना है--कि देह सदा अशुद्ध है और आत्मा सदा शुद्ध है। अब मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि किसके छूने से आप परेशान हो गये हैं? देह के छूने से? तो देह आपकी भी अशुद्ध है। अशुद्ध अशुद्ध देह से छू गई, तो क्या बिगड़ गया? आत्मा के छूने से अशुद्ध हो ही गये ? तो न तो मेरी आत्मा अशुद्ध है, न आपकी आत्मा अशुद्ध है ।'

कहते हैं शंकर ने झुक कर प्रणाम किया उस शूद्र को और कहा : 'तूने मुझे खूब चेताया। जो मैं शास्त्रों से न जान सका, वह तूने मुझे जगाया। मैं अनुगृहीत हूँ।'

'ना वह रीझै धोती टाँगे...।' तो तुम जब छुआ-छूत...। और मैं ब्राह्मण और वह शूद्र; और मैं हिन्दू और वह मुसलमान; और मैं आर्य--और वह म्लेच्छ--ऐसी मूढ़तापूर्ण बातों में पड़ते हो, तो तुम यह मत सोचना कि तुम परमात्मा को रिझा पाओगे।

'ना काया के पखारे...।' और लोग हैं कि काया को पखारने में लगे हैं!—हठयोगी नौलि-धौति कर रहे हैं; आसन-व्यायाम कर रहे हैं! सब तरह से लगे हैं उपाय में कि काया शुद्ध हो जाय! काया शुद्ध हो भी जायेगी, तो क्या होगा? और काया शुद्ध हो नहीं सकती । तुम कितना ही काया को शुद्ध करो, काया के होने का ढंग...। भोजन तो करोगे; फिर वही हो जायेगा। और मल-मूत्र तो बनेगा ही। और लहू और मांस-मज्जा तो बनेगी ही। कैसे शुद्ध करोगे इसे? और शुद्ध करने से होगा भी क्या?

अगर परमात्मा को शुद्ध काया ही बनानी होती, तो सोने-चांदी की बना देता! लोहे की बना देता--कम से कम। गरीबों की लोहे की बना देता; अमीरों की सोने चांदी की बना देता। लेकिन मांस-मज्जा-चमड़ी की बनाई! इसको शुद्ध करने से क्या होगा? कैसे यह शुद्ध होगी? नहीं; इस तरह तुम सिर्फ उसका अपमान कर रहे हो ।

मलूकदास कहते हैं: यह सब अपमान हैं परमात्मा के। उसने काया जैसी बनाई, वैसी स्वीकार करो। उसकी ही दी हुई काया है। तुमने तो बनाई नहीं। स्वीकार करो। अहोभाव से स्वीकार करो।

दया करै, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना सा दुःख सब का जानैं, ताहि मिलैं अविनासी॥

तो फिर कैसे उसे रिझायें? कहते हैं मलूक--दया करै...। उसके पाने का सूत्र एक ही है--दया, करुणा, प्रेम। चारों तरफ वही मौजूद है, तो जितना बन सके, उतनी दया करो। जितना बन सके, उतना प्रेम करो। जितना बन सके, उतनी करुणा करो।

'दया करै...।' और दूसरे पर ही नहीं, अपने पर भी दया रखना। कहीं ऐसा न हो कि दूसरे पर दया करने लगो और स्वयं पर बहुत कठोर हो जाओ।

महात्मा गांधी ने कहा है: 'दूसरों पर तो दया करे, अपने पर कठोर हो।' लेकिन यह थोड़ा समझना पड़ेगा।

अगर तुम दूसरे पर दया करो और अपने पर कठोर हो जाओ, तो तुम ज्यादा देर दूसरों पर दया न कर पाओगे। क्योंकि जो अपने पर दया नहीं करता, वह कैसे दूसरों पर दया कर पायेगा? वह चोरी-छिपे रास्तों से दूसरों पर भी कठोर हो जायेगा।

यह एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है। जो आदमी अपने पर कठोर होता है, वह दूसरों पर भी कठोर हो जाता है। तरकीब से कठोर होता है। समझो कि तुम कठोर हो अपने पर और तुम लम्बे उपवास करते हो, तो दूसरा आदमी जो लम्बे उपवास नहीं कर सकता, उसके प्रति तुम्हारे मन में यह भाव तो होगा ही कि वह हीन है। तुम्हारे मन में यह भाव तो होगा ही कि वह पतित है। तुम्हारे मन में यह भाव तो होगा ही--कि बेचारा! मैं श्रेष्ठ, वह अश्रेष्ठ। इसीलिए तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों की आँखों में तुम सदा अपनी निंदा पाओगे। एक गरूर उनके भीतर होगा--कि मैं इतना कर रहा हूँ, तुम कुछ भी नहीं कर रहे! पापी!

तुम जाओ, अपने महात्माओं की आँखों में गौर से झाँक कर देखना, उनकी आँख में तुम्हारी तरफ इशारा है कि तुम पापी हो। और उनकी भाषा में, उनकी

वाणी में, उनके उपदेश में तुम जगह-जगह यह पाओगे कि तुम्हारी निंदा है। और हजार तरह की वे व्यवस्थाएँ बनायेंगे, जिसमें कि तुम भी अपने पर कठोर हो जाओ। वे भी तुमसे कहेंगे : दूसरों पर दया करो; अपने पर कठोर हो जाओ। ये दूसरे कौन है?

अगर हम आदमी उनकी मान ले और अपने पर कठोर हो जाये, और दूसरे पर दया करे, तो ये दूसरे कौन है! दूसरा तो कोई बचा नहीं।

जो दूसरों पर दया करता है और अपने पर कठोर है, उसकी दया थोथी हो जायेगी। इस बात को खयाल में लेना : तुम दूसरों के साथ वही कर सकते हो, जो जो तुम अपने साथ कर सकते हो।

जीसस ने कहा है : प्रसिद्ध वचन है : 'अपने पड़ोसी को अपने जैसा प्रेम कर।' --अपने जैसा। मगर पहले तो अपने को कर, तभी अपने पड़ोसी को कर सकेगा। नहीं तो कैसे करेगा! क्योकि सबसे निकट के पड़ोसी तुम हो--अपने। यह देह मेरी सबसे करीब है। यह मेरी सबसे करीब की पड़ोसी है। फिर इसके बाद दूसरे पड़ोसी हैं। फिर यह सारा संसार है। इस देह--इस पड़ोसी को पहले प्रेम करो।

जीसस ने कहा है : 'अपने शत्रुओं को अपने जैसा प्रेम कर।' लेकिन पहले तो अपने को प्रेम कर। जिसने अपने को ही प्रेम नहीं किया, वह किसी को भी प्रेम नहीं कर पायेगा।

तुम ऐसे लोगों को जगह-जगह खोज लोगे। इस तरह के लोग असंभव आदर्श बना कर जीते हैं। खुद पर बड़े कठोर--और तब दूसरे पर भी बड़े कठार हो जाते हैं। उनकी कठोरता ऐसे ढंग से आती है कि तुम पहचान भी नहीं पाते।

अब जैसे महात्मा गांधी के आश्रम में कोई चाय नहीं पी सकता। कोई एक-दूसरे के प्रेम में नहीं पड़ सकता। अब यह अतिशय कठोरता है। मगर सिद्धांत के नाम पर चलेगा। सिद्धांत बिलकुल ठीक है। और सिद्धांत को मान कर चलना है। सिद्धांत आदमी के लिए है--ऐसा नहीं है; आदमी सिद्धांतों के लिए हो जाता है। महात्माओं के हाथ में आदमी का मूल्य नहीं है, सिद्धांतों का मूल्य है। सिद्धांत को मान कर चलो, तो ही तुम ठीक हो। सिद्धांत को मान कर नहीं चले, तो तुम गलत हो। और तुम गलत हो, यही तो सबसे बड़ा अपराध है। तुम्हारे भीतर अपराध की भावना पैदा होगी।

अब जरा समझा : अगर किसी ने चाय पी ली--गांधीजी के आश्रम में, तो उसके भीतर पाप की आग जलेगी। वह डरेगा, घबड़ायेगा--कि बड़ा पाप हो गया! छोटी-सी चीज, चाय से--उससे इतना बड़ा पाप जोड़ दिया! खूब तरकीब से आदमी को सता लिया। अब वह रात सो न पायेगा कि कहीं पता न चल जाय।

बात कुछ न थी; बात कुछ भी न थी। चाय कितनी ही पीयो, क्या पाप हो जाने वाला है! और अगर चाय पीने में पाप हो गया, तो फिर जीना असंभव हो जायेगा। फिर हर चीज में पाप है। फिर उठने-बैठने में पाप है; बोलने-चालने में पाप है।

और ऐसी घटनाएँ घटी हैं--मनुष्यजाति के इतिहास में, जब हर चीज पाप हो गई। तुमने तेरापंथी साधु देखे हैं--मुँह पर पट्टी बाँधे हुए! बोलने में पाप है, क्योंकि बोलने में गरम हवा निकलती है मुँह से, उससे कीड़े इत्यादि, अगर हवा में हों, तो मर जाते हैं। तो बोलने में पाप है।

साँस लेना पाप हो गया! जीना पाप हो गया! उठना-बैठना पाप हो गया! यह तो बड़ी कठोरता हो गई आदमी के साथ। यह तो आदमी के साथ ज्यादती हो गई। लेकिन जो अपने साथ ज्यादती करेगा, वह दूसरे के साथ भी ज्यादती करेगा ही।

जब तुम किसी नियम को पालन कर लेते हो, तो तुम यह मानते हो कि सभी को करना चाहिए। अब जो आदमी रात तीन बजे उठ आता है, वह मानता है--सभी को उठाना चाहिए। क्यों?--क्योंकि वह उठ आता है! अब यह हो सकता है कि उन सज्जन को नींद न आती हो ठीक से। बूढ़े हो गये हों। बुढ़ापे में नींद कम हो जाती है। फिर हर आदमी की जीवन व्यवस्था अलग-अलग है।

जब बीमार होता है कोई, तभी हम उसके पास जाते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब बच्चा बीमार हो, तब बहुत ज्यादा प्रेम मत दिखलाना, अन्यथा तुम उसे जीवन भर बीमार रखने का उपाय कर रहे हो। जब बच्चा स्वस्थ हो, तब ज्यादा प्रेम दिखलाना, ताकि स्वास्थ्य और प्रेम का संबंध हो जाय, बीमारी और प्रेम का संबंध न हो जाय। लेकिन हम उलटा ही करते हैं।

बच्चा स्वस्थ है, तो कौन फिक्र करता है! न माँ देखती है; न बाप देखता है; न किसी को लेना-देना है। जब ठीक ही है, तो क्या लेना-देना है? जब बच्चा बीमार होता है, तो माँ भी पास बैठी है--बाप भी। बच्चा बड़ा प्रसन्न होता है देख कर--कि बड़े-बड़े पास बैठे हैं। इशारे पर चलाता है। चाय ले आओ। यह करो; वह करो। डॉक्टर भी आता है, तो बच्चा बड़ा प्रसन्न होता है। वह सबसे ऊँचे पद पर बैठा है। जब तक बीमार रहता है, तब तक यह पद रहता है। जैसे ही बीमारी गयी, यह पद समाप्त हुआ। फिर कोई उसकी फिक्र नहीं करता। फिर उसके अहंकार को तृप्त होने का दुबारा अवसर तभी मिलेगा, जब वह बीमार हो जाय। धीरे-धीरे बीमारी में रस आ जायेगा।

बहुत लोग बीमारी में रस ले रहे हैं, इसलिए दुनिया इतनी बीमार है। और बहुत लोग दुःख में रस ले रहे हैं, इसलिए दुनिया इतनी बहुत दुःखी है।

मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं : 'सुखी होना है।' लेकिन जब मैं उनसे पूछता हूँ कि 'सच, सुखी होना है? तो पहले तुमने दुःख में जो-जो नियोजन किया है, इन्व्हेस्टमेंट किया है, उसको हटा लेना पड़ेगा; तुम्हें पूरी प्रक्रिया देखनी पड़ेगी अपने जीवन की—कि तुमने दुःख में कहाँ कहाँ अपने स्वार्थ जोड़ रखे हैं।'

अब जिस पत्नी ने जाना ही पति का हाथ—अपने सिर पर तभी है, जब सिर में दर्द हुआ, यह कैसे सिरदर्द छोड़ दे। लाख दो तुम इसे—एस्प्रो, एनासिन; सिर-दर्द कैसे छोड़ दे? यह कोई छोटी बात नहीं है। सिरदर्द नहीं छुड़ा रहे हो; तुम इससे इसका प्रेम छुड़ा रहे हो। इसने और कोई प्रेम जाना ही नहीं है, इसी बीमारी के माध्यम से जाना है। यह बीमारी ही इसके प्रेम का द्वार है। यह कैसे छोड़ दे!

तुमने देखा कि लोग अपनी बीमारी की खूब चर्चा करते हैं। क्योंकि बीमारी की चर्चा करते हैं, तभी लोग सहानुभूति प्रगट करते हैं। नहीं तो कोई सहानुभूति प्रगट नहीं करता। तुम किसी स्वस्थ आदमी के पास थोड़े ही सहानुभूति प्रगट करने जाते हो। दुःखी आदमी के पास सहानुभूति प्रगट करते हो। यह मनोवैज्ञानिक अर्थों में गलत हिसाब है।

बच्चा बीमार हो, तो उसकी फिक्र तो करो, लेकिन फिक्र ऐसी अतिशय मत कर देना कि बीमारी में उसे स्वाद पैदा हो जाय। नहीं तो फिर बीमारी से कभी छूट न सकेगा। पत्नी बीमार हो, तो दवा देना, इलाज कर देना, लेकिन इतना अतिशय प्रेम मत उंडेल देना कि बीमारी से ज्यादा मजा तुम्हारे प्रेम में आ जाय। कि बीमारी का कष्ट छोटा पड़ जाय और बीमारी का मजा ज्यादा हो जाय। जिस दिन यह हो गया, उस दिन फिर पत्नी ठीक न हो सकेगी। और तुम जिम्मेवार हुए—बीमारी के लिए।

परमात्मा के साथ भी हम यही तरकीब करते हैं। मलूकदास कहते हैं : 'ना वह रीझै जप-तप किन्हें, न आतम को जारे।' और तुम कितना हो जलाओ अपनी आत्मा को, कितना ही सताओ अपने को, इससे तुम उसे रिझा न सकोगे। शायद इन्हीं उपायों के कारण तुमने उसे रुठा दिया है।

अगर तुम परमात्मा के हिस्से हो, तो जब तुम अपने को कष्ट दोगे, तो तुम्हारा कष्ट उसी में पहुँच रहा है। तुम उसी को कष्ट दे रहे हो। इस बात की बड़ी गरिमा है। इसे खूब खयाल में लेना।

जब भी तुमने अपने को कष्ट दिया, परमात्मा को ही कष्ट दिया है, क्योंकि वही है। लहर ने अपने को कष्ट दिया, तो सागर को ही मिलेगा। और अगर हम परमात्मा के हिस्से हैं, तो अपने को सताया, तो हमने परमात्मा को ही सताया।

भक्त कहता है : अपने को प्रेम करो, क्योंकि तुमने भी परमात्मा का ही हाथ

है। अपना आदर करो, समादर करो, अपना सम्मान करो। इस देह में भी पर-मात्मा विराजमान है, इस देह का अनादर मत करो। यह देह उसका ही घर है, उसका ही मंदिर है। इस देह की भी पूरी फिक्र करो, देखभाल करो। जैसे मंदिर की देखभाल करते हो, ऐसे देह की देखभाल करो।

भक्त की दृष्टि बड़ी अलग है; तुम्हारे तथाकथित तपस्वी से बड़ी भिन्न है; विपरीत है। इसलिए तुम बहुत हैरान होते हो। तुम देखोगे भक्त को : वह तिलक-चंदन लगाये, बड़े बाल बढ़ाये, सुंदर रेशम के वस्त्र पहने, सुगंधित इत्र लगाये, फूल की माला डाले भगवान् की पूजा कर रहा है! तुम्हें लगता है : यह क्या पूजा हो रही है!

भक्त की दृष्टि तुम नहीं समझ रहे हो। भक्त इस देह को अपनी देह नहीं मानता; परमात्मा की ही देह है। तो इस देह को भी नहलाता है, धुलाता है; इत्र छिडकता है; चंदन लगाता है; फूल की माला पहन लेता है; रेशम के वस्त्र पहन के परमात्मा के सामने नाचता है।

भक्त कहता यह है कि जब तुम परम स्वास्थ्य की दशा में हो, परम सौंदर्य की दशा में हो—अपने में मुग्ध, तभी तुम उसे रिझा पाओगे। उसे रिझाना हो—सुंदर बनो। उसे रिझाना हो—रसमय बनो। उसे रिझाना हो, तो इस योग्य बनो कि वह रीझे; रीझना ही पड़े। कुछ गाओ मधुर; कुछ गुनगुनाओ मधुर; कुछ जीओ मधुर।

तो भक्त का जीवन है—माधुर्य का जीवन। त्यागी-तपस्वी का जीवन है—अपने को सताने का जीवन। और ध्यान रखना : त्यागी-तपस्वी के खिलाफ आधु-निक मनोविरान भी है। आधुनिक मनोविज्ञान कहता है : ये त्यागी-तपस्वी और कुछ नहीं, मैसोचिस्ट हैं। ये अपने को सताने में रस ले रहे हैं; इन्हें परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है। इन्हें हिंसा में रस आ रहा है।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे, जिन्हें दूसरों को सताने में रस आता है, अडोल्फ हिटलर, जिन्हें देख कर मजा आ जाता है—दूसरे को तड़पते देख कर। और दूसरे वे हैं, जिन्हें अपने को सताने में मजा आता है, महात्मा गांधी। इनमें बहुत फर्क नहीं है। इनका फर्क बहुत ऊपरी है।

दूसरे को भूखे रखने में तुम्हें मजा आये, तो कोई भी इसे पुण्य नहीं कहेगा। कहेगा—यह पाप हुआ। और अपने को भूखा रखने में तुम्हें मजा आये, तो लोग इसे पुण्य कहते हैं। यह कैसे पुण्य हुआ? अगर दूसरे को रखने में पाप है, तो अपने को भी भूखा रखने में पाप ही होगा। एकदम से गणित बदल कैसे जायेगा! आखिर दूसरे को भूखा रखने में पाप क्यों है? अगर उपवास पुण्य है, तो तुमने

दूसरे आदमी को उपवास का मौका दे दिया; वह खुद नहीं जुटा पा रहा था, तुमने जुटा दिया। बाँध कर रख दिया उसको—घर के भीतर––पंद्रह दिन भूखा, तो इसमें पाप कहाँ है? यह बेचारा खुद कमजोर था; वह साहस नहीं जुटा पाता था; व्रत-नियम नहीं मान पाता था; तुमने इसका सहयोग दे दिया। तुमने इसे परमात्मा के पास ला दिया। परमात्मा खूब रीझ जायेगा इस पर! लेकिन हम जानते हैं कि दूसरे को भूखा रखने में तो पाप है। फिर स्वयं को भूखा रखने में कैसे पुण्य हो जायेगा? जो तुमने दूसरे की देह के साथ किया, वही तो तुम अपनी देह के भी साथ कर रहे हो। और देह तो सभी पराई हैं। दूसरे की देह भी उतनी ही पराई है, जितनी मेरी देह पराई है। तुम्हारी देह जरा दूर; मेरी देह जरा पास; लेकिन फर्क क्या है? न तो मैं अपनी देह हूँ; न तुम्हारी देह हूँ।

देह को सताना पुण्य नहीं हो सकता। इसलिए भक्त भोग लगाता है। उपवास पर उसका जोर नहीं है। भक्त भगवान् को भोग लगाता है—स्वादिष्ट भोजन का। और भक्त अपने को भी भोग लगाता है––स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन का।

भक्त का जीवन रस का जीवन है; माधुर्य का जीवन है। भक्त का जीवन स्वस्थ मनस् का जीवन है।

> ना वह रीझै जप-तप कीन्हें, ना आतम को जारे।
> ना वह रीझै धोती टाँगे, न काया के पखारे।।

और कुछ लोग हैं कि अपनी धोती सम्हाल-सम्हाल कर चल रहे हैं—किसी को छू न जाय। 'ना वह रीझै धोती टाँगे ...।'––कि कहीं शूद्र को न छू जाय। कि कहीं इसको न छू जाय; कहीं उसको न छू जाय। वही है अगर––तो तुम किसे शूद्र कह रहे हो!

कहते हैं कि शंकराचार्य स्नान करके निकले गंगा से। सुबह का समय होगा; पाँच बजे––ब्रह्म-मुहूर्त। गुनगुनाते वेद-मंत्र सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं और एक आदमी आ कर छू गया। पूछा: 'कौन है?' उस आदमी ने कहा, 'क्षमा करें; मैं शूद्र हूँ।' शंकर तो नाराज हो गये। भूल गये––अद्वैत। गई बातें वे––कि सारा जगत् एक है; कि एक ही ब्रह्म सब कुछ है, बाकी सब माया है। भेद––माया है: यह भूल गये।

शास्त्र पर व्याख्या करनी एक बात है, जीवन में उस व्याख्या को जीना बड़ी दूसरी बात है।

नाराज हो गये उस शूद्र पर। उस शूद्र ने कहा: 'क्षमा करें। लेकिन एक बात मैं पूछ लूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ––आप कौन हैं। आप मनीषी––शंकराचार्य हैं। आप महा दार्शनिक शंकराचार्य हैं। महा व्याख्याकार शंकराचार्य हैं। आप से एक बात पूछ लूँ। मेरे छूने में गलती क्या हो गई? मेरी देह अशुद्ध है? तो क्या आप

सोचते हैं कि आपकी देह शुद्ध है? अगर मेरी देह मल-मूत्र से भरी है, तो आपकी कोई स्वर्ण, चाँदी, हीरे-जवाहरातों से भरी है?'

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हर आदमी की नींद की जरूरत भी अलग-अलग है। और यह भी खोजा गया है कि हर आदमी के नींद के गहराई के घन्टे भी अलग-अलग होते हैं। कुछ लोग दो और तीन के बीच गहरी से गहरी नींद सोते हैं। कुछ लोग चार और तीन के बीच। कुछ लोग पाँच और चार के बीच गहरी से गहरी नींद सोते हैं। दो घंटे कम से कम रात में बड़ी गहरी नींद के होते हैं। वे सबके अलग-अलग होते हैं।

अब जिस आदमी का, समझो, तीन और पाँच के बीच गहरे घंटे हों––सोने के, उसको अगर तुम तीन और पाँच के बीच उठा दोगे, वह दिन भर परेशान रहेगा। उसको पाँच के बाद ही उठने में सुगमता है। लेकिन जिस आदमी के गहरे घंटे एक और तीन के बीच पूरे हो गये, वह तीन बजे उठ सकता है। जब वह उठ आता है और वह कहता है कि उसके उठने से कोई तकलीफ नहीं होती, बल्कि दिन भर ताजगी रहती है, तो वह कहता है––तुम भी उठो।

व्यक्ति-व्यक्ति के भेद हैं। लेकिन महात्मा भेद नहीं मानते।

विनोबा के आश्रम में तीन बजे रात सभी को उठ आना चाहिए। यह ज्यादती है; यह निहायत ज्यादती है। चिकित्सकों से पूछ सकते हैं कि यह ज्यादती है।

पुरुष और स्त्रियों के नींद में अलग-अलग भेद हैं। पुरुषों की नींद आमतौर से तीन और पाँच या ज्यादा से ज्यादा चार और छः के बीच पूरी हो जाती है। जो दो घंटे गहरी नींद के हैं, उस समय मनुष्य के शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है, दो डिग्री नीचे गिर जाता है। चौबीस घंटे में दो डिग्री नीचे गिर जाता है तापमान, वे सबसे गहराई के नींद के घंटे हैं। उनमें अगर सो लिये तो दिन भर ताजगी रहेगी; उनमें अगर न सो पाये, तो दिन भर गैर-ताजगी रहेगी; नींद आयेगी; जम्हाई आयेगी; परेशानी रहेगी।

स्त्रियाँ आमतौर से पाँच और सात के बीच या चार और छः के बीच उस गहरी नींद को लेती हैं। पुरुष घंटे भर पहले उठ सकते हैं। इसलिए पश्चिम में रिवाज ठीक है कि पुरुष सुबह की चाय तैयार करे; स्त्रियाँ न करें। यह बिलकुल ठीक है। स्त्रियों का घंटे भर बाद उठने का सहज क्रम है।

और जो नींद के संबंध में सही है, वही भोजन के संबंध में सही है। जो एक के लिए भोजन है, दूसरे के लिए जहर हो सकता है। जो एक के लिए पर्याप्त मात्रा है, दूसरे के लिए बिलकुल अपर्याप्त हो सकती है। लेकिन लोग ज्यादती पर उतर जाते हैं। और जो आदमी अपने साथ कठोर है, वह मान लेता है कि मैं ही नियम

हूं, इसलिए सब को मेरे जैसा होना चाहिए। यह भ्रांति है; यह हिंसा है।

और तुम्हारे तथाकथित महात्मा काफी हिंसा से भरे हुए लोग हैं।

'दया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।'

समझना यह सूत्र। इस सूत्र को ही लेकर मैंने सारे संन्यास की धारणा खड़ी की है। 'धरम मन राखै'--मन रहे धर्म में। 'धरम रहे मन में, घर में रहे उदासी।' --घर से भाग न जाय; भगोड़ा न बन जाय। क्योंकि असली बात मन की है; असली बात स्थान की नहीं है; स्थिति की नहीं है--मनःस्थिति की है।

तुम जंगल में चले जाओ--क्या होगा! अगर तुम्हारा मन धर्म में नहीं है, तो जंगल में भी बैठ कर तुम हिसाब-किताब की बातें सोचोगे; दुकान की बातें सोचोगे; बैंक की बातें सोचोगे। सोचोगे कि चले ही जाते। अब लोकसभा के चुनाव हो रहे हैं; लड़ ही लेते। कहाँ आ गये! कहाँ फँस गये? किस झंझट में आ गये? ये पहाड़ पर बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? तुम यही सोचोगे न, जो तुम सोच सकते हो। तुम्हारा मन तो तुम्हारा है; जंगल में जाने से कहाँ मन छूट जायेगा! मन को कहाँ छोड़ कर भाग पाओगे।

घर से भाग सकते हो; घर बाहर है। मन तो भीतर है। तुम जहाँ जाओगे, मन साथ चला जायेगा। तुम तो अपने साथ ही रहोगे ना। तुम अपने को छोड़ कर कहाँ भाग जाओगे? और तुम ही हो असली प्रश्न। न तो पत्नी है प्रश्न; न पति, न बेटे, न बच्चे; न दुकान, न बाजार।

'धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।' और यह 'उदासी' शब्द भी समझ लेना। यह शब्द बड़ा विकृत हो गया। इसका मौलिक अर्थ खो गया। यह गलत आदमियों के हाथ पड़ गया। अच्छे से अच्छे शब्द भी गलत आदमियों के साथ पड़ जायें, खराब हो जाते हैं।

इस शब्द की बड़ी दुर्गति हो गई। तुमने सुना न--कि संग-साथ सोच कर ही करना चाहिए। इस शब्द ने गलत लोगों का संग-साथ कर लिया।--शब्द ने! वह तक नरक में पड़ गया। 'उदासी' का मतलब हो गया--जो उदास है। मौलिक अर्थ इसका बड़ा अद्भुत है। इसका मौलिक अर्थ है : 'उद् आसीन'। 'उद् आसीन' का अर्थ होता है : परमात्मा के पास बैठा हुआ। वही अर्थ 'उपवास' का भी होता है। उप वास--उसके पास बैठा हुआ। वही अर्थ 'उपनिषद्' का भी होता है।--उसके पास बैठा हुआ--उपनिषद्।

परमात्मा के जो पास बैठा हुआ है--वह उदासी--उद् आसीन।

अब यह बड़े मजे की बात है कि जो परमात्मा के पास बैठा है, वह उदास तो हो ही नहीं सकता। वह तो छलकेगा--वह तो रस से भरा हुआ छलकेगा। वह

तो नाचेगा।

परमात्मा के पास बैठ कर अगर उदास हो गये, तो फिर छलकोगे कहाँ! फिर नाचोगे कहाँ? फिर उत्सव कहाँ मनाओगे? अगर परमात्मा के पास भी उदास हो गये, तो यह तो परमात्मा का साथ न हुआ--नरक का साथ हो गया। नरक में 'उदासी' हो जाओ तो ठीक।

परमात्मा के पास बैठा हुआ आदमी तो अलमस्त हो जायेगा। उसे तो मिल गई--परम मधुशाला। उसे तो मिल गई ऐसी शराब, जो पीयो तो चुकती नहीं। और पीयो--और एक दफा बेहोशी आ जाय, तो फिर कभी होश नहीं आता लौट कर। गये--सो गये। डूबे--सो डूबे।

ऐसा आदमी न केवल खुद अपूर्व उत्फुल्लता से भर जायेगा, उसके पास भी जो आयेगा, इस पर भी उसकी किरणें पड़ेंगी; उसके छींटे उस पर भी पड़ेंगे। वह भी नाचता हुआ लौटेगा। उसके भीतर भी गीतों का जन्म हो जायेगा। उसके पैरों में भी घूंघर बँधने लगेंगे। उसकी वीणा पर भी तार छिड़ने लगेंगे।

तो 'उदासी' शब्द तो बड़ी अजीब हालत में पड़ गया। इसका मतलब होता है--परमात्मा के पास; परमात्मा के पास--इसका मतलब होता है : समाधिस्थ। समाधिस्थ का अर्थ होता है : परम आनन्द को उपलब्ध--सच्चिदानन्द को उपलब्ध। और उदासी शब्द का जो आम-अर्थ हो गया है, वह यह--कि जो बैठे हैं सिर मारे; आँखों में कीचड़; मुरदे की तरह; मक्खियाँ उड़ रही हैं! उदासी!!

ये तो परमात्मा से सबसे ज्यादा दूर पड़ गये। यह तो उलटी ही बात हो गई!

'दया करै, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।' घर में ही रह कर परमात्मा के पास होने की कला है। उसका स्मरण करते रहो--जहाँ हो--उसके नाम का गीत गाओ; उसकी याद को गहराओ।

'धरम मन राखै . .।' शुरू करना होता है--धर्म में मन लगाओ : ऐसी शुरुआत। धर्म में मन--इससे शुरुआत होती है। और एक दिन ऐसा आता है कि मन में धर्म समा जाता है; तब अंत आ गया। प्रारम्भ और अंत इन दो बातों में समा जाते हैं।

धर्म में मन--पहली सीढ़ी। मन में धर्म--अंतिम सीढ़ी आ गई।

शुरुआत करो--याद करने से, बार-बार याद करने से, पुनः पुनः याद करने से। फिर धीरे-धीरे तुम पाओगे : अब उपाय ही न रहा--भूलने का। अब याद करने की भी जरूरत न रही--याद बनी ही रहती है--सतत; जैसे श्वास चलती रहती है, ऐसी याद बनी रहती है।

'दया करै, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।'

छोटा-सा सूत्र है। तीन बातें कह दीं : प्रेम बरसाता रहे; ध्यान प्रभु में लगाता रहे और घर में रह कर परमात्मा को खोजता रहे।

'अपना सा दुःख सबका जानै, ताहि मिलै अविनासी।' और 'अपना सा दुःख सबका जानै'--जो अपना दुःख है, वही सबका दुःख है--ऐसा जान कर जिये। तो न तो खुद को दुःख दे; न दूसरे को दुःख दे। ताहि मिलै अविनासी--उसे मिल जाता वह परम सूत्र। वह रिझा लेता परमात्मा को। यह हुई कला रिझाने की।

'सहै कुसब्द वादहूँ त्यागै, छाँड़ै गर्व गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दीवाना।।'

'सहै शब्द, वादहूँ त्यागै, छाँड़ै गर्व गुमाना।' छोड़ो अहंकार--कि मैं ऐसा, कि मैं वैसा; कि मेरे पास धन, कि मैंने त्याग किया; कि मैंने इतने उपवास किये--इतने व्रत किये। हिसाब-किताब छोड़ो। उसके सामने हिसाब-किताब लेकर मत खड़े हो जाओ। उसके सामने तो झुको। सब अहंकार उतार कर रख दो; कर्ता का भाव उतार कर रख दो।

'सहै कुसब्द वादहूँ त्यागै...।' और संसार की निंदा तो मिलेगी--ऐसे आदमी को। उसे बड़े कुशब्द सहने पड़ेंगे। क्योंकि संसार गलत की धारणा पर जी रहा है। भीड़ भ्रांति में जी रहा है। इसलिए जो भी आदमी सचाई में जीना शुरू करेगा, भीड़ नाराज होगी। कुशब्द सहने पड़ेंगे; अपमान सहना पड़ेगा।

अकारण तो नहीं है कि जीसस को सूली लगती; कि सुकरात को जहर पिला दिया जाता; कि मंसूर के लोग हाथ-पैर काट डालते!

लोग इतने झूठ में जी रहे हैं कि जब भी सत्य मिलेगा, उसके साथ वे दुर्व्यवहार करेंगे। यह स्वाभाविक है।

तो कहते मलूक : 'सहै कुसब्द ...।' सुन लो; सह जाओ; पी जाओ; फिर भी दया रखो; फिर भी परमात्मा के पास अपना आसन जगाये रहो। डाँवाडोल मत होओ। और जो लोग अपमान करें, जो लोग गालियाँ दें, इनके साथ व्यर्थ विवाद में पड़ने की भी कोई जरूरत नहीं है। तुम इन्हें विवाद से समझा न पाओगे। ये समझना ही नहीं चाहते हैं, तो तुम समझा कैसे पाओगे! इसलिए इनकी फिक्र ही छोड़ दो। ये जानें, इनका काम जाने। अगर इन्होंने ऐसे ही जीना चाहा है, तो ऐसे जियें। इनकी मरजी। लेकिन तुम अपनी दया को इन पर से मत हटाना। दया को तो जारी रखना। तुम्हारा दयाभाव तो बना रहे। तुम्हारा प्रेम तो बरसता रहे। इनके अपमान मिलते रहें, तुम्हारा प्रेम बरसता रहे।

'यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दीवाना।' यह दीवाना मलूक कहता है कि 'यही रीझ मेरे निरंकार की'--यह मेरे परमात्मा को रिझाने की कला है।

अब समझना। मलूक अपने को कहते हैं : दीवाना--पागल! परमात्मा में जो पागल न हो जाय, उसे परमात्मा का कुछ पता ही नहीं। परमात्मा के साथ संबंध जुड़ जाय--और तुम होश सम्हाल लो अपना! तो बात ही फिर हुई नहीं।

होश सम्हाल सकते हो, तभी तक, जब तक परमात्मा से साथ नहीं जुड़ा। परमात्मा से साथ जुड़ने में तो ऐसा हो जाता है, जैसे बूंद में सागर उतर आये। बूंद सागर न हो जायेगी तो और क्या होगा! जैसे अंधे को अचानक आँख मिल जाय; मुरदा अचानक जाग उठे और जी जाय। ये भी कुछ नहीं हैं--तुलनायें।

जब परमात्मा का मिलन होता, तो जनमों जनमों की प्यास तृप्त होती।

सांझ हुई
वन्शी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई
खपरेलों पर धुआँ उठा
लहरों पर बिछले गीत
पनघट पर मेला जुड़ आया
लहरी चुनरी पीत
शिशुओं ने सज लिए घरौंदे
फूल उठी अंगनाई
सांझ हुई
वन्शी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई।
तुलसी-चौरे घी के दीपक
सधवाओं ने बाले
नई वधू ने गूँथी वेणी
हँसते गजरे डाले
चौमुख दियना बाल चांद ने
फूंकी री शहनाई
सांझ हुई
वन्शी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई
चारों कोन खुशी भर आई
फैली शीतल छाया
बाँट रही विश्राम कुटी से

किस तपसी की माया
कण-कण क्षण हर चीज अभी सब
लगती है मदिराई
सांझ हुई
बन्शी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई।

एक मदिरा है; लेकिन हम तो जीवन का आनंद भूल गये हैं। हमारे जीवन में तो कभी बन्सी बजती नहीं। साँझ हो जाती है, लेकिन बन्सी नहीं बजती। सुबह हो जाती है, लेकिन बन्सी नहीं बजती। बन्सी बजनी ही बंद हो गई है। तो हम बन्सी की भाषा ही भूल गये हैं।

हमारा मदिरा से संबंध ही छूट गया है। आनंद से हमारा कोई नाता ही नहीं जुड़ता। जिये जाते हैं--रोते--दुःख भरे। दुःख ही छलकता--हमारी गागर से; सुख कभी छलकता नहीं। हमारी आँखों में कभी सुख की चमक--सुख की बिजली नहीं कौंधती। और हमारे प्राणों में कभी ऐसा नहीं होता--कि हम धन्यभागी हैं कि जीवन मिला। शिकायत--और शिकायत!

तो इसका अर्थ इतना ही है कि हम परमात्मा के पास बैठना अभी तक नहीं सीखे। अभी तक हमने उदासीन होने की कला नहीं सीखी।

परमात्मा से जितने दूर--उतना दुःख। उसी अनुपात में दुःख। परमात्मा के जितने पास--उतना सुख; उसी अनुपात में सुख।

कण-कण क्षण हर चीज अभी सब
लगती है मदिराई
सांझ हुई
बन्शी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई।

और परमात्मा के पास बैठ गये कि साँझ हो गई। अब कोई यात्रा न रही। घर आ गये। रात करीब आयी--विश्राम के लिए। अब हम परमात्मा में चादर ओढ़ कर सो जा सकते हैं।

'सहै कुसब्द वादहूँ त्यागै, छाँड़ै गर्व गुमाना।' गर्व और गुमान हमें बड़ी तरह बुरी तरह घेरे हुए हैं। धन का गर्व, पद का गर्व, त्याग का गर्व।

मैंने सुना है: एक यहूदी रबाई एक यहूदी सम्राट के साथ प्रार्थना कर रहा है। कोई पवित्र दिन है यहूदियों का और सम्राट पहला आदमी है, जो सिनागॉग में, मंदिर में आया है प्रार्थना करने। यह उसका हक है। सम्राट प्रार्थना करता है,

और कहता है: 'हे भगवान्, मैं ना-कुछ हूँ।' उसके बाद धर्मगुरु प्रार्थना करता है और कहता है: 'हे भगवान्, मैं ना-कुछ हूँ।' और तभी उन दोनों ने चौंक कर देखा कि वह जो झाड़ू-बुहारी लगाने वाला है मंदिर का, वह भी उनके पास बैठ कर अँधेरे में कहता है कि 'भगवान्, मैं ना-कुछ हूँ।'

यह बात धर्मगुरु को जँची नहीं। उसने सम्राट से कहा: 'जरा देखो तो, कौन कह रहा है कि मैं ना-कुछ हूँ!' ना-कुछ कहने में भी सम्राट कहे, तो जँचती है बात। धर्मगुरु ने बड़े व्यंग से कहा: 'जरा देखो तो, कौन कह रहा है कि मैं ना-कुछ हूँ! यह पागल, झाड़ू-बुहारी लगाने वाला परमात्मा से कह रहा है--मैं ना-कुछ हूँ।'

तुम खयाल रखना: आदमी जब अपने को कहे--ना-कुछ हूँ, तब भी अहंकार ही भीतर काम करता है। सम्राट कहे तो जँचता--कि मैं ना-कुछ हूँ। इस ना-कुछ में भी भीतर वही अहंकार खड़ा है, वही अकड़ खड़ी है--कि देखो, मैं इतना बड़ा सम्राट और मैं अपने को ना-कुछ कह रहा हूँ! मैं इतना बड़ा धर्मगुरु और अपने को ना-कुछ कह रहा हूँ! अब यह झाड़ू-बुहारी लगाने वाला आदमी--यह भी अपने को ना-कुछ कह रहा है। यह मजा देखो। यह तो ना-कुछ है ही। इसके कहने को क्या है?

इसीलिए तुम त्याग भी नापते हो, तो धन से नापते हो। अगर गरीब आदमी त्याग करे, तो तुम कहते हो: क्या त्यागा! था ही क्या? अमीर त्यागे, तो तुम कहते हो: हाँ, त्याग हुआ। तो त्याग को भी मापने की कसौटी धन ही है।

तब रोक न पाया मैं आँसू।
जिसके पीछे पागल हो कर
मैं दौड़ा अपने जीवन-भर
जब मृगजल में परिवर्तित हो
मुझ पर मेरा अरमान हँसा
तब रोक न पाया मैं आँसू।

एक दिन ऐसा होगा, जब तुम्हारे जीवन जीवन, जनमों जनमों के गर्व और गुमान तुम पर हँसेंगे।

तब रोक न पाया मैं आँसू
जिसने अपने प्राणों को भर
कर देना चाहा अजर-अमर
विस्मृति के पीछे छिप कर मुझ पर
वह मेरा गान हँसा
तब रोक न पाया मैं आँसू।

मेरे पूजन-आराधन को
मेरे सम्पूर्ण समर्पण को
जब मेरी कमजोरी कह कर
मेरा पूजित पाषाण हँसा
तब रोक न पाया मैं आँसू ।

आदमी जीवन भर जिस अहंकार को पालता है, पोषता है, उस अहंकार को एक बार गौर से तो देखो। वह अहंकार तुम्हारा संगी-साथी नहीं है। वह अहंकार तुम पर हँसेगा; वह तुम्हारी कब्र पर हँसेगा। वह तुम्हारे जीवन भर की व्यर्थता पर हँसेगा। और जिसके लिए तुमने सब समर्पित कर दिया था, अंत में उसी का अट्टहास तुम्हारे प्राणों में तीर की तरह चुभेगा।

इसलिए 'राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे।' हम तो कहते हैं : मैं--मैं--मैं। मलूक कहते हैं : राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे। पागलो, अगर कहना ही है, तो ये मैं--मैं कहना बंद करो। इस मैं की जगह राम को बसाओ, राम को पुकारो।

'अवसर न चूक भोंदू, पायो भला दाँव रे।' और बहुत चूक हो गई। अब तक चूकता आया। अब तो न चूक। यह मौका मिला फिर जीवन का। इस जीवन को दाँव पर लगा के परमात्मा को पा ले। इस जीवन को खोकर भी परमात्मा मिले, तो पा ले। यह सब दाँव पर लगाने जैसा है।

'अवसर न चूक भोंदू...' हे मूढ़, अब मत चूक। 'पायो भला दाँव रे।' मुश्किल से यह मौका मिलता--आदमी होने का, मनुष्य होने का। यह छोटा-सा अवसर है, जन्मों-जन्मों के लिए फिर खो सकता है। पशु-पक्षी परमात्मा की याद नहीं कर सकते हैं। पौधे-पत्थर परमात्मा की याद नहीं कर सकते हैं। सिर्फ मनुष्य उस चौराहे पर खड़ा होता है, जहाँ से अगर वह चाहे, तो परमात्मा की तरफ उठ जाय; और चाहे तो फिर प्रकृति में खो जाय। प्रकृति और परमात्मा का चौराहा है मनुष्य।

'अवसर न चूक भोंदू, पायो भला दाँव रे।'

राम को पुकारने की बात का क्या अर्थ है? जप का तो विरोध किया। लेकिन अब कहते हैं : 'राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे।' जप नहीं--प्यार और प्रेम की पुकार।

कहते हैं : तारे गाते हैं।
सन्नाटा वसुधा पर छाया
नभ में हमने कान लगाया
फिर भी अगणित कंठों का यह

राग नहीं हम सुन पाते हैं
कहते हैं : तारे गाते हैं।
स्वर्ग सुना करता यह गाना
पृथ्वी ने तो बस यह जाना
अगणित ओस-कणों में
तारों के नीरव आँसू आते हैं
कहते हैं : तारे गाते हैं।
ऊपर देव, तले मानव गण
नभ में दोनों--गायन-रोदन
राग सदा ऊपर को उठता
आँसू नीचे झर जाते हैं
कहते हैं : तारे गाते हैं।

सारा अस्तित्व गा रहा है। सारा अस्तित्व गुनगुना रहा है। एक विराट् गीत। काश! तुम प्रेम की आँखों से देख सको, तो फूल गा रहे हैं; चाँद-तारे गा रहे हैं; पक्षी गा रहे हैं। काश! तुम प्रेम के भाव से देख सको, तो तुम पाओगे--यह विराट प्रार्थना चल रही है। इस प्रार्थना में तुम भी सम्मिलित हो जाओ। 'राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे' का यही अर्थ है।

तुम इस प्रार्थना में अलग-थलग खड़े न रह जाओ। तुम एक द्वीप बन कर न रह जाओ। इस विराट प्रार्थना में सम्मिलित हो जाओ। और तुम्हें एक अपूर्व अवसर मिला है। क्योंकि पक्षी गा रहे हैं--बेहोशी में; चाँद-तारे गा रहे हैं--मूर्च्छा में। तुम होश में गा सकते हो। तुम धन्यभागी हो।

अगर पशु-पक्षी न पहुँच सकें परमात्मा को, तो उनका कोई दोष नहीं। तुम न पहुँचे, तो दोषी हो जाओगे। तुम्हारा उत्तरदायित्व बड़ा है।

जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।
जनम सिझाने जात तेरो, लोहे कैसो ताव रे।।

जैसे लोहे को अगर पीटना हो, कुछ बनाना हो लोहे से, तो जब गरम हो तभी पीटना चाहिए। जब ठन्डा हो जाय, तो फिर व्यर्थ हो जाता है। तो जीवन की जब तक गरमी है, तब तक कुछ कर लो। इस गरमी को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दो।

लोग मरने की राह देखते हैं। लोग कहते हैं : मरते वक्त ले लेंगे--राम का नाम। कि मरते वक्त पी लेंगे गंगाजल। कि मरते वक्त सुन लेंगे--वेद के मंत्र--गायत्री। जब लोहा ठन्डा हो जाय, तब लाख पीटो, कुछ न बन पायेगा।

'जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।' जहाँ से जन्म हुआ––उस स्रोत की भी तूने स्तुति न की! जिससे सब मिला, उसको तूने धन्यवाद भी न दिया!

'जनम सिरानो जात तेरो'––और रोज-रोज राख आती जा रही है, अंगार ठन्डा होता जा रहा है। 'लोहे कैसो ताव रे।'––याद रख कि लोहा ठन्डा हो जायेगा, तो फिर प्रार्थना व्यर्थ होगी। अभी कुछ कर ले, जब लोहा गरम हो। जब जीवन ऊष्मा से भरा हो; कुछ करने की सामर्थ्य हो, तब सारी ऊर्जा को परमात्मा के चरणों में जो रख देता, उसके जीवन में क्रांति घटती है।

> राम जी को गाव-गाव रामजी को तू रिझाव।
> रामजी के चरण कमल, चित्त मांहि लाव रे।।

और ध्यान रहे रिझाने पर––जैसे प्रेयसी रिझाती है। जैसे प्रेमी रिझाता है। 'रिझाना' शब्द बड़ा प्यारा है। परमात्मा रूठा है, क्योंकि तुमने जो अब तक किया है, उसमें धन्यवाद भी नहीं दिया है! तुमने परमात्मा का अनुग्रह भी स्वीकार नहीं किया है। शिकायत तो बहुत बार की है, अनुग्रह का भाव प्रगट नहीं किया है।

मन्दिर भी गये प्रार्थना करने, तो कुछ माँगने गये हो––धन्यवाद देने नहीं गये हो। जो है––उसके लिए धन्यवाद नहीं दिया है; जो नहीं है––उसके लिए शिकायत जरूर की है। और शिकायत का प्रार्थना से क्या सम्बन्ध? प्रार्थना का अर्थ तो धन्यवाद होता है। इतना दिया है! इतना दिया है!!

तुम जरा हिसाब तो लगाओ: कितना तुम्हें मिला है! एक-एक श्वास अमूल्य है।

सिकंदर ने जब सारी दुनिया जीतने का सपना करीब-करीब पूरा कर लिया, तो वह एक फकीर को मिला––भारत से बाहर जाते वक्त। उस फकीर से उसने कहा कि 'मैंने दुनिया को जीतने का सपना पूरा कर लिया।' वह फकीर हँसने लगा। उसने कहा: 'सिकंदर, तुझे अभी भी होश नहीं आया! अगर तू एक मरुस्थल में भटक जाये और तुझे प्यास लगी हो, तो एक गिलास पानी के लिए तू कितना राज्य का हिस्सा देगा?' सिकंदर ने कहा, 'अगर ऐसी हालत हो कि मैं मर रहा होऊँ, तो आधा राज्य दे दूंगा।' लेकिन फकीर ने कहा कि 'समझ कि मैं आधे राज्य में बेचने को तैयार न होऊँ।' तो सिकंदर ने कहा: 'पूरा राज्य दे दूंगा।' तो वह फकीर हँसने लगा; कहा, 'फिर सोच, एक गिलास पानी के लिए आदमी पूरे साम्राज्य को दे सकता है––पूरे पृथ्वी के साम्राज्य को––जीने के लिए। और जीना मिला है, उसके लिए परमात्मा को तूने धन्यवाद दिया है? मुफ्त मिला है। सारे जगत् का राज्य देने को तू तैयार है, कि अगर थोड़ी देर और जीने को मौका मिल जाय। लेकिन जीवन तुझे मिला है, वर्षों से तू जी रहा है और तूने कभी

धन्यवाद दिया?'

एक श्वास लेने के लिए तुम क्या देने को राजी न हो जाओगे!

और ऐसी घड़ी आयी कि सिकंदर जब चला गया, तो वह सोच-विचार में मग्न था। बात तो ठीक थी। वह अपने घर नहीं पहुँच पाया; बीच में उसकी मौत हो गई। और बीच में जब उसकी मौत करीब आयी और चिकित्सकों ने कह दिया कि वह बच न सकेगा। तब वह अपने गाँव से केवल चौबीस घंटे के फासले पर था। चौबीस घंटे बाद वह अपनी माँ को मिल लेगा, अपनी पत्नी को मिल लेगा, अपने परिवार को मिल लेगा। उसकी आकांक्षा थी। उसने अपने चिकित्सकों से कहा कि 'जो भी खर्च हो, उसकी फिक्र न करो। लेकिन मुझे चौबीस घंटे जिला लो। मैं अपने घर तो पहुँच जाऊँ। वहाँ जाकर मर जाऊँ।' उन्होंने कहा, 'हम असमर्थ हैं। चौबीस घंटे तो दूर, चौबीस मिनट भी हम न जिला सकेंगे।'

सिकंदर ने कहा: 'मैं सब देने को तैयार हूँ।' तब उसे उस फकीर की बात याद आयी––कि वह ठीक ही कह रहा ता। वह कल्पना न थी––मरुस्थल की। वह घटी जा रही है बात। लेकिन क्या करेगा चिकित्सक!

सिकंदर ने कहा कि 'मैं अपना सारा राज्य देने को तैयार हूँ; मुझे चौबीस घंटे बचा लो। मैं अपनी माँ की गोद तक पहुँच जाऊँ। वह देख तो ले अपने बेटे को—दुनिया जीत कर आ गया। फिर मैं मर जाऊँ, कोई बात नहीं।' लेकिन चिकित्सक ने कहा, 'क्षमा करें। हम क्या कर सकते हैं! मौत अब आ ही गई द्वार पर।'

घर नहीं पहुँच पाया सिकंदर। चौबीस घंटे का फासला था। सारा राज्य देने को तैयार था। लेकिन तुम्हें यह जीवन मिला, इसके लिए कभी परमात्मा को धन्यवाद दिया?

> जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।
> जनम सिरानो जात तेरो, लोहे कैसो ताव रे।।
> राम जी को गाव-गाव, राम जी को तू रिझाव।
> राम जी के चरण कमल चित्त मांहि लाव रे।।

रिझाओ प्रभु को। रिझाने का अर्थ है: पुकारो हृदय से––रोओ। आँसू बन जायें तुम्हारी प्रार्थनाएँ।

> यह पपीहे की रटन है।
> बादलों की घिर घटाएँ
> भूमि की लेती बलाएँ
> खोल दिल देतीं दुआएँ
> देख किस उर में जलन है?

यह पपीहे की रटन है।
जो बहादे नीर आया
आग का फिर तीर आया
वज्र भी बेपीर आया
कब रुका इसका वचन है
यह पपीहे की रटन है :
यह न पानी से बुझेगी
यह न पत्थर से दबेगी
यह न शोलों से डरेगी
यह वियोगी की लगन है
यह पपीहे की रटन है।

जब तुम्हारा प्राण पपीहे की रटन जैसी--पी कहाँ?--पी कहाँ?--की पुकार से भर जाये...।

नानक के जीवन में उल्लेख है : वे जवान थे। उस रात क्रांति घटी। वे बैठे हैं। प्रभु का स्मरण कर रहे हैं। आधी रात हो गई। आधी रात भी बीतने लगी। मां उनकी आई और कहा कि 'उठो अब; सो जाओ।' और तब नानक ने कहा : 'चुप; सुन जरा।'

बाहर एक पपीहा पुकार रहा है : पी कहाँ? पी कहाँ? और नानक ने कहा : अगर यह न रुकेगा, तो मैं भी रुकने वाला नहीं। जब इसे आधी रात का पता नहीं चल रहा है, तो मुझे क्यों पता चले! जब यह पुकारे जा रहा है, तो मैं भी पुकारे जाऊँगा। आज तो तय किया है कि पपीहा रुकेगा, तो मैं रुकूंगा अन्यथा मैं रुकने वाला नहीं। इसका प्यारा खो गया है। मेरा प्यारा भी खो गया है। और इसका प्यारा तो शायद इसे मिल भी जायेगा। मेरा प्यारा तो न मालूम मिले--कि न मिले! मुझे तो देर तक पुकारना है। दिन हो कि रात, मुझे तो पुकारते ही रहना है।

उस रात वे रात भर पुकारते रहे। उसी रात क्रांति घटी। उसी रात उन्हें पहली झलक मिली परमात्मा की। उसी रात नानक आदमी न रहे; आदमी से ऊपर उठ गये। एक तरंग आई--उन्हें डुबा गई।

यह पपीहे की रटन है
यह न पानी से बुझेगी
यह न पत्थर से दबेगी
यह न शोलों से डरेगी

यह वियोगी की लगन है
यह पपीहे की रटन है।

ऐसा हो जाय, तो रिझाव पैदा होता है।

'कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।
आनन्द मगन होइ के तैं हरि गुन गाव रे।
राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे।'

'कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।' अब संसार से और आशा मत रख, कि यहाँ कुछ मिलेगा। इसी आशा के कारण परमात्मा को हम नहीं पुकारते।

पिया को कैसे पुकारें? अभी रुपैय्या की पुकार तो बन्द हो, तो फिर पिया की पुकार शुरू हो। यह रुपैय्या तो तो अभी सारे प्राणों को पकड़े है। अभी हम कैसे उस परम प्यारे को पुकारें? अभी तो छोटी-छोटी चीजें हमारे पुकार का आधार बनी हैं।

'कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।' इस संसार से न कभी कुछ किसी को मिला है, न मिलेगा। यहाँ सब आशाएँ निराशाओं में परिणित हो जाती हैं। और यहाँ सब कल्पनाएँ धूल-धूसरित हो जाती हैं। यह संसार टूटे हुए इन्द्रधनुषों का ढेर है। यहाँ सपने टूटते हैं--पूरे नहीं होते। यहाँ टूटने को ही सपने बनते हैं; पूरे यहाँ होने को बनते ही नहीं। संसार मृगमरीचिका है।

कोई नहीं, कोई नहीं
यह भूमि है हाला भरी
मधुपात्र मधुबाला भरी
ऐसा बुझा जो पा सके
मेरे हृदय को प्यास को
कोई नहीं, कोई नहीं।
दिखती हैं बहुत मधुशालाएँ
दिखती हैं बहुत मधुबालाएँ
दिखते हैं बहुत मधुपात्र
दिखते हैं बहुत मधुकलश
कोई नहीं, कोई नहीं।
यह भूमि है हाला भरी
मधुपात्र मधुबाला भरी
ऐसा बुझा जो पा सके
मेरे हृदय की प्यास को
कोई नहीं, कोई नहीं।

लेकिन हृदय की प्यास इस जगत की किसी मधुशाला में बुझती नहीं। कोई मधुपात्र इस प्यास को बुझाता नहीं। कोई मधुबाला इस प्यास को बुझाती नहीं।

सुनता समझता है गगन
वन के विहंगों के वचन
ऐसा समझ जो पा सके
मेरे हृदय उच्छ्वास को
कोई नहीं, कोई नहीं।

पुकारते रहो, चिल्लाते रहो। संसार की सब पुकारें सूने आकाश में खो जाती हैं।

ऐसा समझ जो पा सके
मेरे हृदय उच्छ्वास को
कोई नहीं, कोई नहीं।
मधुरित समीरण चल पड़ा
वन ले नए पल्लव खड़ा
ऐसा फिरा जो ला सके
मेरे गए विश्वास को
कोई नहीं, कोई नहीं।

अगर तुम जरा ही गौर से देखोगे इस संसार में, तो तुम्हारी आशाएँ सब निराशाएँ हो जायेंगी।

इस संसार में आस्था उठ जाय, तो परमात्मा में आस्था बैठनी शुरू हो जाती है। इस संसार की तरफ पीठ हो जाय, तो परमात्मा की तरफ मुख हो जाता है। संसार के जो विमुख हुआ, वह परमात्मा के सन्मुख हुआ। या संसार की जिसे समझ आ गई, संसार की व्यर्थता दिखाई पड़ गई, उसे फिर दौड़ नहीं रह जाती; यह तृष्णा का लंबा जाल नहीं रह जाता।

'कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।
आनंद मगन होइ के तैं हरि गुन गाव रे।।'

और फिर आनंद मगन हो कर ...। उदास हो कर नहीं। संसार से जो उदास हो गया, वह परमात्मा में तो आनंद मगन हो जायेगा। इसलिए उदास हो जाने से कोई 'उदासी' नहीं हो जाता। तथाकथित उदासी—कि बैठे हैं; लंबे चेहरे; थके-माँदे; हारे।

नहीं; जैसे ही संसार से कोई निराश हुआ, उसके जीवन में परम आनंद का उत्सव प्रगट होता है। 'आनंद मगन होइ के तैं हरि गुन गाव रे, तैं हरि को रिझाव रे। राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे।' और तब परमात्मा से एक संबंध

बनना शुरू होता है, जो प्रेमी और प्रेयसी का संबंध है।

छाँह तो देते नहीं
मधुमास लेकर क्या करूँगी
बाँह तो देते नहीं
विश्वास ले कर क्या करूँगी
टूट कर बिखरी हृदय को
कुसुम-सी कोमल तपस्या
स्वप्न झूठे हो गये हैं
आरती के दीप का
मधुनेह चुकता जा रहा है
फूल जूठे हो गये हैं
आ गई थी द्वार पर
तो साधना स्वीकार करते
अब कहा जाऊँ बताओ
तृप्ति तो देते नहीं
यह प्यास ले कर क्या करूँगा
छाँह तो देते नहीं
मधुमास लेकर क्या करूँगी
बाँह तो देते नहीं
बिश्वास लेकर क्या करूँगी।

भक्त तो प्रेयसी है। परमात्मा तो प्रेमी है। वह कहता है: बाँह दो; बातों से न होगा। 'बाँह तो देते नहीं, विश्वास ले कर क्या करूँगी?'

विचारों और सिद्धांतों से न होगा। 'तृप्ति तो देते नहीं, छाँह तो देते नहीं, मधुमास ले कर क्या करूँगी?'

आज धरती से गगन तक
मिलन के क्षण सज रहे हैं
चाँदनी इठला रही है
स्वप्न सी वंशी हृदय के
मर्म गहरे कर रही है
गंध उड़ती जा रही है
मंजरित अमराइयों में
मदिर कोयल कूकती है

पर अधर मेरे जड़ित हैं
गीत तो देते नहीं
उच्छ्वास ले कर क्या करूँगी
बाँह तो देते नहीं
विश्वास लेकर क्या करूँगी ?

भक्त तो लड़ने लगता है। एक बार प्रेम की पुकार उठती है, तो भक्त तो लड़ने लगता है। सिर्फ भक्त ही लड़ सकता है—भगवान् से। क्योंकि भक्त को कोई डर नहीं है—भगवान् का। प्रेम में कहाँ भय है!

गीत तो देते नहीं
उच्छ्वास ले कर क्या करूँगी
बाँह तो देते नहीं
विश्वास लेकर क्या करूँगी
डूबती है सांझ की
अन्तिम किरण-सी आस मेरी
और आकुल प्राण मेरे
किस क्षितिज की घाटियों में
खो गये प्रतिध्वनित होकर
मौन, मधुमय गान मेरे
चरण हारे, पन्थ चलते
मन उदास, तन थक-सा
कौन दे तुम बिन सहारा
सांस तो देते नहीं
उल्लास ले कर क्या करूँगी
बाँह तो देते नहीं
विश्वास ले कर क्या करूँगी ?

भक्त फिर एक वार्ता में लीन होता है। परमात्मा के साथ भक्त की प्रार्थना जप नहीं है—एक वार्ता है; प्रेमी के साथ प्रेमी की वार्ता है; प्रेमी के साथ प्रेमी का रुठना-मनाना है।

रामकृष्ण के जीवन में ऐसे उल्लेख आते हैं—कि कई बार वे प्रार्थना बन्द कर देते। द्वार-दरवाजा बन्द कर देते दक्षिणेश्वर का। दो-चार दिन नदारत ही हो जाते। खबर मिली मन्दिर के ट्रस्टियों को, उन्होने रामकृष्ण को बुला कर कहा कि 'यह क्या मामला है! प्रार्थना तो रोज नियम से होनी चाहिए। यह कोई

ढंग हुआ!'

उन्होंने कहा : 'ढंग हो या न ढंग हो। फिर कोई और पुजारी खोज लो। क्योंकि जब मैं नाराज हो जाता हूँ, तो फिर मैं प्रार्थना नहीं करूँगा। अभी नाराज हो गया—दो दिन से। इतना चीखा-चिल्लाया—और सुनते ही नहीं! तो चीखने चिल्लाने से क्या सार! मैं मनाता हूँ; कभी-कभी उनको भी मजबूर कर देता हूँ—मुझे मनाने को। जब दो-चार दिन मैं दरवाजा बन्द करके रख देता हूँ, भोग भी नहीं लगाता, तब वे मेरे पीछे घूमने लगते हैं। वे कहते हैं : रामकृष्ण, आ जा। चल आ जा। अब ठीक।'

रामकृष्ण के जीवन में जो परम क्रांति घटी, वह घटी ऐसे ही।—कि एक दिन उन्होंने प्रार्थना शुरू की और वे प्रार्थना करते ही रहे। जो मंदिर में प्रार्थना सुनने आये थे, वे कब के थक गये और चले गये। मंदिर खाली हो गया। भर दुपहरी हो गई। कोई मंदिर में न बचा। सन्नाटा छा गया। मगर वे अपनी प्रार्थना ही किये जा रहे हैं। वे रोये ही चले जा रहे हैं। आखिर में उन्होंने कहा कि 'बस, अब आखिरी दिन आ गया; अब तू दर्शन देता—कि नहीं? अब तू प्रगट होता—कि नहीं? या तो प्रगट हो जा, या फिर जो तलवार टँगी है—काली की, यह लेकर मैं अपनी गरदन काटे देता हूँ। बहुत हो गया। तू मानता नहीं है! और किसी चढ़ाव से मानोगे, तो गरदन चढ़ा देता हूँ।'

झपट कर तलवार खींच ली और तलवार मारने को ही थे अपनी गरदन में कि तलवार हाथ से छूट कर गिर गई। विराट् प्रकाश फैल गया। रामकृष्ण बेहोश हो गये। छः दिन तक होश न आया। लेकिन उसके बाद जब होश में आये, तो जो आदमी बेहोश हुआ था, वह जा चुका था; दूसरा आदमी आ गया था। यह बात ही और थी। रामकृष्ण विदा हो गये थे। परमहंस का आविर्भाव हो गया था।

बात यहाँ तक पहुँच गई; लड़ाई पर यहाँ तक पहुँच गई कि अब नहीं मानते, तो तलवार से गरदन काट देता हूँ। उसी क्षण घटना घट गई। इसको ही दाँव लगाना कहते हैं।

परमात्मा को रिझाना है, मनाना है। परमात्मा को प्रेम पातियाँ लिखनी हैं। परमात्मा से प्रेम का संबंध बनाना है।

मलूक का सारा गीतों का सार—सारे सूत्रों का सार इतना ही है। 'यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दिवाना।'

रिझाना—इस शब्द को खूब याद रखना। अगर तुम थोड़ा-सा भी रिझाने की कला सीख जाओ, तो परमात्मा दूर नहीं है। परमात्मा पास ही है, तुमने पुकारा नहीं। परमात्मा बहुत पास है, तुमने आँख ही उठा कर नहीं देखा। तुमने प्रेम का

शब्द ही नहीं उठाया अभी तक।

ये दो मार्ग हैं : एक ज्ञान का मार्ग; एक भक्ति का मार्ग।

भक्ति का मार्ग बड़ा अनूठा मार्ग है।

तुममें जो दीवाने हों, उनके लिए निमंत्रण है।

आज इतना ही।

भक्ति की शराब • स्वभाव की उद्घोषणा • समानुभूति
धारणा और भक्ति • त्वरा और सातत्य
जीवन-उत्सव

चौथा प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १४ मई, १९७७
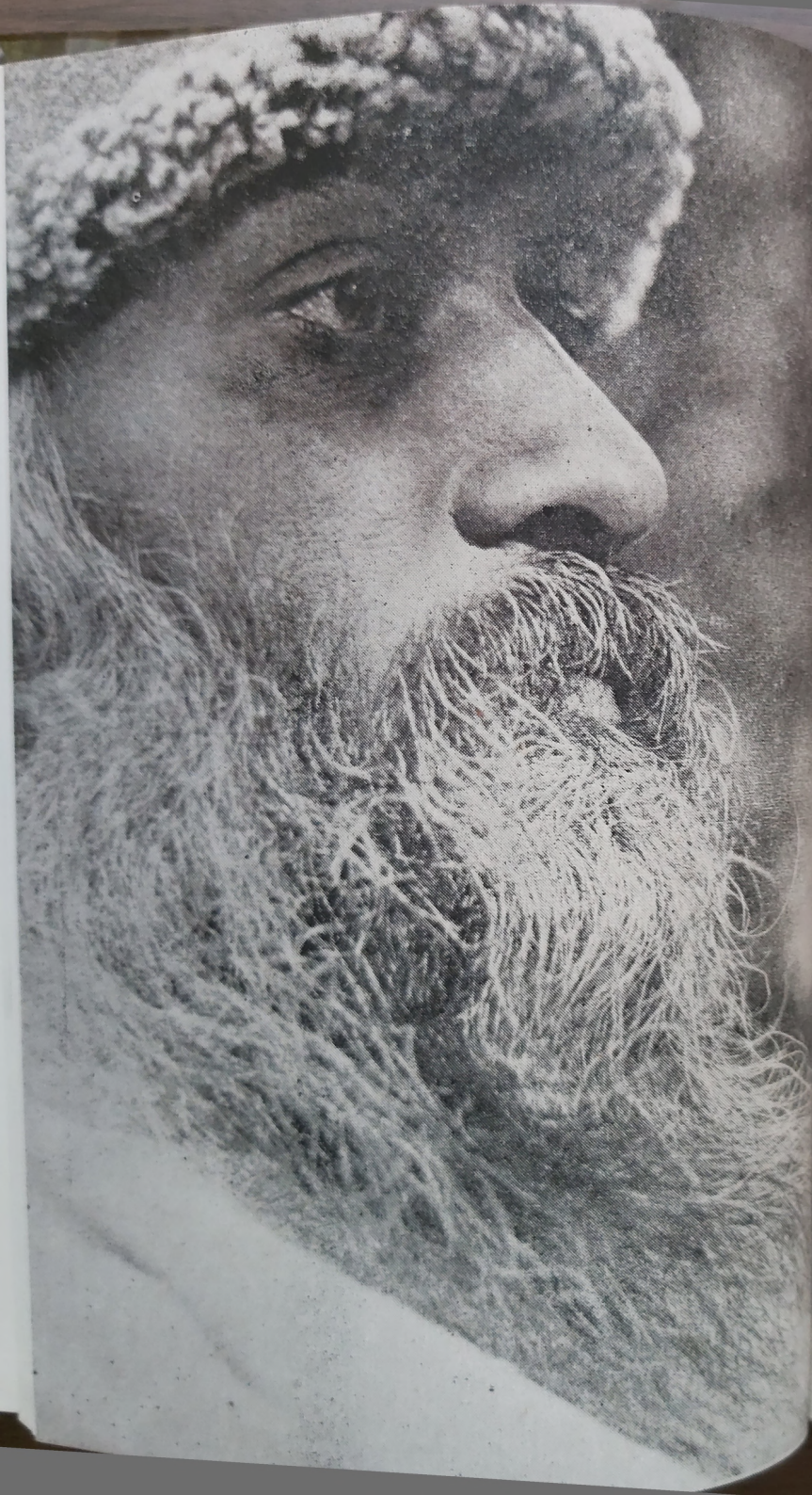
प्रश्न-सार

- भक्ति के लिए शराब की उपमा आप क्यों देते हैं?
- मध्ययुगीन सन्त गरीब और पिछड़े वर्ग से क्यों आये?
- दूसरों के दुःख को अपना मानना कब सम्भव?
- मिलन असम्भव क्यों लगता है?
- अनेक साधनाएँ करके भी घटना क्यों नहीं घटी?
- मृत्यु के रहते उदासी से कैसे मुक्त रहा जा सकता है?

● पहला प्रश्न : कृपा करके शराब की तो बात न करें। क्या प्रभु-भक्ति के लिए आप और कोई उपमा नहीं ढूँढ सकते हैं?

शराब से सुन्दर कोई उपमा नहीं है। शराब शब्द से चौंकें मत। भक्ति एक अनूठी शराब है; अंगूर की नहीं—आत्मा की। और भक्ति और शराब में कुछ गहरा तालमेल है।

शराब भुलाती है; भक्ति मिटाती है। शराब क्षण भर को करती है वही काम, जो भक्ति सदा के लिए कर देती है। शराब क्षण-भंगुर भक्ति है; और भक्ति शाश्वत शराब है।

शराब का इतना आकर्षण है—सदियों से, सदा से; क्योंकि आदमी जब अहंकार से बहुत पीड़ित और परेशान और चिंताओं से बहुत ग्रस्त और संतापों से बहुत बोझिल हो जाता है, तो एक ही उपाय मालूम पड़ता है कि किसी तरह अपने को भुला बैठो। थोड़ी देर को सही।

थोड़ी देर को भूल जाय यह अहंकार, भूल जायें ये चिंतायें, भूल जाये यह विषाद। शराब थोड़ी देर को अहंकार पर परदा डाल देती है; तुम्हें याद नहीं रहती है कि तुम कौन हो। थोड़ी देर को डुबकी लग जाती है। झूठी है डुबकी। फिर लौट आओगे। शराब मिटा नहीं सकती, सिर्फ धोखा दे सकती है। फिर लौटोगे और चितायें कम भी न होंगी, शायद इस बीच बढ़ भी जायेंगी। क्योंकि जितनी देर तुम शराब में डूबे रहे, चितायें खाली नहीं बैठी रहीं। उनका काम जारी है; उनका उलझाव बढ़ रहा है। उतने समय में उनमें और नये पत्ते निकल आयेंगे, और नयी शाखायें निकल आयेंगी; तुम और भी चिंतित हो जाओगे। शायद और चिंता में और ज्यादा शराब पी लोगे। एक दुष्टचक्र पैदा होगा।

लेकिन भक्ति की शराब भी, है तो शराब ही। उसमें अहंकार भूलता नहीं, अहंकार बिनष्ट ही हो जाता है।

शराब में विस्मरण है; भक्ति में विसर्जन। फिर तुम लौटकर कभी भी वही न

हो पाओगे, जो तुम थे। अहंकार गया—सो गया और अहंकार के साथ गई सारी गाँठें—चिंता की, दुःख की, पीड़ा की।

अहंकार ही मूल गाँठ है। मैं हूँ—यही सारे उपद्रवों की जड़ है। मैं नहीं हूँ—ऐसी प्रतीति, 'परमात्मा है'—इस प्रतीति का द्वार बन जाती है। इसलिए मैं तो भक्तों को शराबी कहता हूँ। और इससे बेहतर उपमा सम्भव नहीं है। और मैं ही कह रहा हूँ, ऐसा भी नहीं है। बड़े पुराने दिनों से यह बात अनुभव की गई है कि इस पृथ्वी पर शराब ही ऐसा तत्त्व है, जो थोड़ी-सी खबर देता है—उस परलोक की।

कुरान कहता है कि बहिश्त में, स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं। वह भी प्रतीक है। उसका अर्थ है : अपूर्व आनन्द के झरने बह रहे हैं, जिनमें डुबकी लगा ली, तो सदा के लिए खो गये। एक बार गोता लग गया, तो खो गये। विस्मरण के झरने बह रहे हैं। शराब के झरने का इतना ही अर्थ होता है।

स्वर्ग अगर आत्म-विस्मरण न हो, तो और क्या होगा?

फिर बाबा मलूकदास के साथ तो और भी इस प्रतिमा का तालमेल है। मलूक कहते हैं कि भक्त ऐसे चलता, संन्यस्त ऐसे चलता, जैसे मस्त हाथी, पागल हाथी। किसी अपूर्व रस से भरा झलकता चलता, छलकता चलता।

> कोई किस तरह राज-ए-उलफत छुपाये।
> निगाहें मिलीं और कदम डगमगाये।

परमात्मा से आँख मिल जाय, तो फिर छिपाओगे कहाँ? लाख छिपाओ, पता चल-चल जायेगा। उठते-बैठते, बोलते न बोलते, सोते-जागते पता चल जायेगा। कोई कभी छिपा पाया परमात्मा को जान कर? कोई उपाय नहीं है—छिपाने का।

यह तो ऐसे है, जैसे अँधेरी रात में किसी ने दीया जलाया हो, और दीये को छिपाने की कोशिश करे। कैसे छिपायेगा? फूल खिला हो, और फूल सुगन्ध को छिपाने की कोशिश करे, कैसे छिपेगी?

'कोई किस तरह राज-ए-उलफत छिपाये।' यह प्रेम का रहस्य छिपाये छिपता नहीं। 'निगाहें मिलीं और कदम डगमगाये।' और जब पहली खबर मिलती है कि परमात्मा से कुछ सम्बन्ध जुड़ा, वह कदम के डगमगाने से मिलती है। एक मस्ती बहने लगती है। इसलिए मैंने शराब की बात कही।

और तुमसे मैं यह भी कह दूँ कि इस संसार में मिलने वाली शराब तुम तब तक छोड़ न सकोगे, जब तक तुम परमात्मा की शराब का स्वाद न ले लो। जिस दिन परमात्मा की शराब का स्वाद आ गया, सब शराबें फीकी और तिक्त कड़वी हो जाती हैं। फिर कोई शराब जँचती नहीं। जिसने उस परम को पी लिया, फिर

और कोई चीज कन्ठ में उतरती नहीं; फिर रास नहीं आतीं। फिर सब चीजें छोटी पड़ जाती हैं।

परमात्मा से आँख मिल गई, तो फिर इस जगत में किसी की आँख से आँख मिलाने का भाव चला जाता है। परमात्मा से आँख मिल गई, तो इस जगत में फिर किसी से भी कोई आसक्ति और प्रेम नहीं रह जाता। बड़ा प्रेम आ जाय, तो छोटा अपने से चला जाता है। सूरज निकल आये, तो जो दीया अँधेरे में छिपाये न छिपता था, सूरज के निकलने पर अपने आप छिप जाता है। उसका पता ही नहीं चलता। देखते नहीं, रोज रात आकाश तारों से भर जाता है। सुबह तारे कहाँ चले जाते हैं? क्या तुम सोचते हो : कहीं चले जाते हैं? अपनी जगह हैं। लेकिन सूरज निकल आया है; विराट् प्रकाश फैल गया है। उस विराट् प्रकाश में छोटे-छोटे टिमटिमाते तारों का प्रकाश खो जाता है। वे अपनी जगह हैं। जब सूरज विदा हो जायेगा, तब वे फिर टिमटिमाने लगेंगे। अभी भी टिमटिमा रहे हैं, लेकिन बड़े प्रकाश के सामने छोटा प्रकाश छिप जाता है।

भक्त तो मस्ती में है। भक्त तो बेहोशी में है। और इस बेहोशी का मजा कुछ ऐसा कि बेहोशी बढ़ती है और होश भी बढ़ता है। यही तो चमत्कार है, यही तो रहस्य है! एक तरफ भक्त की बेहोशी बढ़ती है, और एक तरफ भक्त का होश बढ़ता है। बेहोशी आती अहंकार की तरफ; और आत्मा की तरफ होश आता। एक तरफ भक्त गँवाने लगता, दूसरी तरफ कमाने लगता। अहंकार के सिक्के खोने लगते हाथ से और आत्मा के सिक्के हाथ में पड़ने लगते।

> चाल है मस्त, नजर मस्त, अदा में मस्ती।
> जैसे आते हैं वो, लौटे हुए मैखाने से॥

मंदिर से भक्त को आते देखो! पूजागृह से भक्त को आते देखो। या पूजागृह की तरफ जाते भक्त को देखो। उसकी धुन सुनो। उसके हृदय के पास थोड़ा कान लगाओ। उसके पास तुम तरंगें पाओगे——शराब की।

भक्त के साथ रहो, तो धीरे-धीरे तुम भी डूबने लगोगे। भक्त का संग-साथ तुम्हें भी बिगाड़ देगा। मीरा ने कहा है : 'सब लोक-लाज खोई——साध संगत।' साधुओं के संग में सब लोग-लाज खो गई।

मीरा राज-घराने से थी; फिर राजस्थानी राज-घराने से! जहाँ घूँघट उठता ही नहीं। फिर सड़कों पर नाचने लगी। शराब न कहोगे, तो क्या कहोगे? पागल हो उठी। दीवानी हो गई। राहों पर, चौराहों पर नृत्य चलने लगा। जिस राजरानी का चेहरा कभी किसी ने न देखा था, भीड़ और बाजार के साधारण जन उसका नृत्य देखने लगे! घर के लोग अगर परेशान हुए होंगे, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

और उन्होंने अगर जहर का प्याला भेजा, तो मीरा से दुश्मनी थी——ऐसा नहीं। मीरा को पागल समझा। और घर की प्रतिष्ठा भी दाँव पर लगाये दे रही है!

लेकिन जिसको परमात्मा की शराब चढ़ जाय, फिर कोई और प्रतिष्ठा मूल्य नहीं रखती।

उर्दू, पर्शियन, अरबी संतों ने बहुत शराब की उपमा का प्रयोग किया है। उमर खय्याम तो जग जाहिर है। और तुम चकित होओगे जान कर कि उमर खय्याम कभी शराब पिया ही नहीं। वह तो परमात्मा की शराब की बात कर रहा है। उमर खय्याम के साथ बड़ा अनाचार हो गया है। फिटजराल्ड ने जब पहली दफा उमर खय्याम का अंग्रेजी में अनुवाद किया, तो फिटजराल्ड ठीक से समझा नहीं कि बात क्या है। वह समझा——कि शराब यानी शराब। जैसा कि प्रश्न पूछनेवाले ने समझ लिया है कि शराब यानी शराब।

फिटजराल्ड के अनुवाद के कारण सारी दुनिया में एक भ्रांति फैल गई है। क्योंकि उसी के अनुवाद से उमर खय्याम जाहिर हुआ। अनुवाद अनूठा है, लेकिन भ्रांतियों से भरा है।

पहली भ्रांति तो यही है...। उमर खय्याम एक सूफी फकीर है, एक अलमस्त फकीर है। बाबा मलूकदास से मिल बैठता, तो दोनों की खूब छनती। दोनों एक दूसरे की बात समझ लेते। शायद कहने की जरूरत भी न पड़ती। शायद बोलते भी न; साथ-साथ डोलते। शायद नाचते। कौन कहे! कौन जाने! ऐसे अनूठे लोग मिल जायें, तो उनकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

उमर खय्याम सूफी फकीर था। शराब की बात में तो वह परमात्मा की बात कर रहा है। मधुशाला से मतलब है——परमात्मा का घर। साकी से मतलब है——खुद परमात्मा।

> साकिया तशनगी की ताब नहीं,
> जहर दे दे अगर शराब नहीं।

और अगर परमात्मा ही पिलाने वाला हो, तो फिर कौन फिक्र करता है। अगर जहर भी पिला दे, तो ठीक।

'साकिया तसनगी की बात नहीं।' तू फिक्र मत कर। अगर शराब न हो, तो जहर दे दे। 'जहर दे दे, अगर शराब नहीं।' चलेगा। तेरे हाथ से जो मिल जायेगा, वही अमृत है।

> वाइज न तुम पियो, न किसी को पिला सको।
> क्या बात है तुम्हारी शराब-ए-तहूर की॥

इसलाम कहता है कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं। पूछना चाहिए कि

क्या करोगे, इन शराब के चश्मों का! क्योंकि यहाँ तो तुम लोगों को सिखाते हो —शराब न पीयो। जो शराब पीते हैं, वे तो नरक जायेंगे! वे तो बहिश्त जायेंगे नहीं। जाहिर है—गणित साफ है। जो यहाँ शराब नहीं पीते, शराब छोड़े हुए हैं, जीवन का सब राग-रंग तोड़ा हुआ है, गृहस्थ नहीं हैं—विरागी हैं, उदासी हैं—वे जायेंगे स्वर्ग। मगर वे करेंगे क्या वहाँ—शराब के चश्मों का—जिन्होंने कभी पी ही नहीं।

'व इज न तुम पियो'—धर्म-गुरु न तो तुम पीते हो, न किसी को पिला सको।' —और न तुम किसी को पिला सकते हो; 'क्या बात है तुम्हारी शराब-ए-तहूर की;' फिर सार क्या हुआ—तुम्हारे स्वर्ग की शराब का? न तुम खुद पीओगे, न किसी को पिला सकोगे। न पीने की हिम्मत है, न पिलाने की हिम्मत है, और वहाँ जो लोग होंगे, वे न पीने वाले होंगे। कसमें खाये हुए लोग होंगे। वहाँ शराब के चश्में बहाने से सार भी क्या है!

ये पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर तुम्हें परमात्मा के जीवन में कभी प्रवेश करना हो, तो उदास हो कर प्रवेश मत करना। इस जीवन में जहाँ भी, जैसे भी, जितना भी, क्षण-भंगुर सही, जो सुख मिलता हो, उसका स्वाद लो। उस स्वाद में भी परमात्मा का स्वाद अनुभव करो। बूँद सही, लेकिन बूँद में भी है तो सागर ही। क्षण-भंगुर सही, लेकिन क्षण-भंगुर में भी छाया तो पड़ती शाश्वत की।

इसलिए भक्त कहता है: जीवन से भागो मत; जीवन को छोड़ो मत; जीवन को जीओ।

मलूक कहते हैं: 'घर में रहे उदासी।' भागो मत कहीं; बीच बाजार में रहो। 'घर में रहे उदासी।'

और उदासी का अर्थ मैंने समझाया—उदास नहीं। उदासी का अर्थ है—उद् आसीत—परमात्मा के पास बैठा रहे। रहे बाजार में, लेकिन मन परमात्मा के पास रहे। बैठक उसके पास लगी रहे। शरीर बाजार में रहे और प्राण उसके पास रहें। ऐसे आदमी का नाम उदासी।

नाचो—गाओ—गुनगुनाओ। वसंत है तो खिलो—फूलों जैसे। और जब वृक्ष नाचते हों हवाओं में, तो तुम भी नाचो। और जब सूरज उगे, तो गुनगुनाओ—गीत गाओ, प्रार्थना करो। सब तरह से अपने जीवन को आनन्द से भरो और हर आनन्द में परमात्मा का अनुग्रह स्वीकार करो, तो ही तुम किसी दिन स्वर्ग के आनन्द को पाने के योग्य बन सकोगे। नहीं तो स्वाद ही नहीं रहेगा!

जरा सोचो तो, तुम्हारे सब उदासी—तथाकथित उदासी और विरागी और

संन्यासी—सब स्वर्ग पहुँच जायें, तो स्वर्ग की हालत नरक से भी बदतर हो जाय। हो गई होगी अब तक। तुम्हें नरक में चाहे थोड़े भले आदमी भी मिल जायें—मुसकराते, गुनगुनाते, गीत गाते, नाचते, मगर स्वर्ग में कहाँ मिलेंगे!

स्वर्ग बड़ा उदास हो गया होगा! स्वर्ग में धूल जम गई होगी। स्वर्ग में कोई उत्सव तो नहीं हो रहा होगा।

ये पंक्तियाँ ठीक ही हैं कि—'वाइज, न तुम पीयो, न किसी को पिला सको। क्या बात है तुम्हारी शराब-ए-तहूर की!'

पीना तो यहीं सीखो। संसार पाठशाला है। संसार छोटा-सा आँगन है, जिसमें तुम उड़ना सीखो, ताकि एक दिन तुम विराट् के आँगन में भी उड़ सको।

इस संसार में और परमात्मा में कोई अनिवार्य विरोध नहीं है। यह परमात्मा की ही सीढ़ी है। होना ही चाहिए। उसका है, तो उसकी ही सीढ़ी होगी। उसका हो कर उसके विपरीत कैसे होगा! इन सीढ़ियों का उपयोग करो। निश्चित इसके पार जाना है। सीढ़ियों पर अटक नहीं जाना है। लेकिन इसका उपयोग करो।

तुम्हें बेचैनी शराब शब्द से हुई, क्योंकि तुम्हें लगा—कि शराब तो सांसारिक चीज है!

अगर ठीक से समझो, तो संसार के अतिरिक्त हमारे पास कोई दूसरे शब्द ही नहीं हैं। तुम जो भी शब्द उपयोग करोगे, वे सभी सांसारिक होंगे। शास्त्र कहते हैं: परमात्मा को पा लेने का आनन्द है—ऐसा—जैसे करोड़ गुना विषयानन्द। तो सांसारिक हो गया! संभोग से सुख मिलता है, उसका करोड़ गुना; लेकिन बात संभोग की हो गई।

हम कहते हैं: संसार क्षण-भंगुर; परमात्मा शाश्वत। लेकिन शाश्वत को नापने का उपाय भी क्षण-भंगुर! हम कहते हैं: यहाँ जो जरा-सी देर को मिलता, परमात्मा में सदा को मिल जाता। लेकिन हमारी भाषा तो यहीं की होगी।

भाषा मात्र पृथ्वी की है। आकाश को समझाने चलोगे, तो भी पृथ्वी की भाषा का ही उपयोग करना पड़ेगा।

'शराब' कुछ बुरा शब्द नहीं है। प्यारा शब्द है। अर्थ समझो। अर्थ इतना ही है—कि ऐसी डुबकी लगाओ परमात्मा में—उसके नाम में ऐसे डूबो कि तुम्हें अपना स्मरण न रह जाय। मैं हूँ—यह भाव खो जाय। और तब तुम समझोगे कि मैं किस शराब की बात कर रहा हूँ।

> मिरी शराब की क्या कद्र तुझको ऐ वाइज।
> जिसे मैं पी के दुआ दूं वह जन्नती हो जाये।।

जिस शराब की मैं बात कर रहा हूँ, 'मिरी शराब की क्या कद्र तुझको ऐ वाइज'

--हे धर्मगुरु, तुझे मेरे शब्द 'शराब' का कुछ भी पता नहीं है; उसकी तुझे बद्र भी नहीं हो सकती। तू समझ ही न पायेगा। 'जिसे मैं पी के दुआ दूँ, वह जन्नती हो जाये।' जिसे मैं पी कर दुआ दे दूँ, स्वर्ग के पाने का उसे मजा आ जाय।

बाबा मलूकदास उस मस्ती की बात कर रहे हैं कि तुम अगर उस मस्ती की छाया में क्षण भर विश्राम भी कर लो, तो रूपान्तरित हो जाओ।

यह बात तुम्हें जान कर हैरानी होगी कि शराब का आविष्कार एक ईसाई सन्त ने किया। इसी तरह चाय का आविष्कार एक बौद्ध भिक्षु ने किया। दोनों बातें बड़ी प्रतीकात्मक हैं।

बौद्धों की परंपरा है--ध्यान की। चाय जगाती है; नींद को तोड़ती है। प्रतिकात्मक है। झपकी नहीं आने देती। आती हो झपकी, तो झपकी चली जाती है। जम्हाई आती हो, तो जम्हाई चली जाती है।

चाय का संबंध जुड़ा है--बोधिधर्म से। बोधिधर्म कोई अट्ठारह सौ साल पहले चीन गया। बौद्ध सद्‌गुरु था--अपूर्व! वह टाह नाम के पहाड़ पर वर्षों तक बैठा रहा; ध्यान करता रहा। टाह पहाड़ का नाम था, इसीलिए--टी। और 'टाह' का एक उच्चारण 'चा' भी है चीन में--इसीलिए 'चाय'। उस पहाड़ से इसका संबंध जुड़ा।

कहानी बड़ी मधुर है। कहानी तो कहानी है...। लेकिन है अर्थपूर्ण। एक रात बोधिधर्म जागरण के लिए बैठा है; पूरी रात जागरण करना है; और झपकी आने लगी। तो उसने गुस्से में अपनी आँख की दोनों पलकें उखाड़ कर फेंक दी। न रहेंगी पलकें, न झपकी आयेगी। न कुछ झपकने को ही बचेगा, तो झपकी कैसे आयेगी! न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। उसने पलकें उखाड़ कर फेंक दीं। और कहानी बड़ी मधुर है; कहते हैं: उन्हीं पलकों से पहली दफा चाय का पौधा पैदा हुआ। वे पड़ी रहीं जमीन में; गल गईं और उनसे जो पौधा पैदा हुआ, वह चाय बनी।

उस चाय को अब भी तुम पीते हो, तो नींद टूट जाती है। वह नींद तोड़ने के लिए ही फेंकी थीं बोधिधर्म ने।

लेकिन बात सोचने जैसी है। बौद्ध है--ध्यान का मार्ग। इसलिए बौद्ध भिक्षु को चाय पीने की मनाही नहीं है। बौद्ध भिक्षु और कुछ न करे, चाय तो जरूर पीता है। चाय तो दिन में कई बार पीता है। सुबह का ध्यान चाय से शुरू होता है; ध्यान का अन्त चाय से होता है।

तुम शायद चकित होओगे जानकर--कि चाय और बौद्ध भिक्षु! चाय तो नहीं पीनी चाहिए। लेकिन सदियों से बौद्ध भिक्षु पीता रहा है। और उसका उपयोग करता रहा है। और जापान में उन्होंने चाय को बिलकुल ही धार्मिक मूल्य और

महत्त्व दे दिया है। चाय पीने को ही ध्यान की प्रक्रिया बना ली है। चाय बनाना; चाय भेंट करना; चाय पीना; इसमें घन्टों लग जाते हैं। और इसको इतने बोधपूर्वक किया जाता है कि चाय की प्रक्रिया से ही ध्यान का काम हो जाता है।

'टी सेरेमनी' कहते हैं जापान में तो वे--'चाय का उत्सव'। जिनके पास कोई सुविधा है...। जैसे हिन्दुस्तान में लोग घर में छोटा-सा मन्दिर बना लेते हैं, ऐसे जापान में जिनके घर में थोड़ी सुविधा है, उनका चाय-घर अलग होता है: बगीचे के एक कोने में; दूर एकान्त में; जहाँ लोग ऐसे जाते, जैसे मन्दिर में जा रहे हैं। क्योंकि ध्यान--जागरण...।

और शराब की खोज की कथा है कि एक ईसाई फकीर ने की; डायोनिसस उसका नाम था। यह बात भी ठीक है, क्योंकि ईसाइयत भक्ति का मार्ग है। ये प्रतीक बड़े ठीक हैं।

भक्ति के मार्ग पर--विस्मरण; ध्यान के मार्ग पर--होश। भक्ति के मार्ग पर डूबना है; ध्यान के मार्ग पर जागना है। अंतिम परिणाम एक ही होता है। अगर तुम ध्यान के मार्ग पर चल-चल कर जागते रहे, जागते रहे, तो एक तरफ तुम जागोगे, और एक तरफ तुम पाओगे--खोते जा रहे हो। तुम्हारा ध्यान जागने पर रहेगा और खोने की घटना छाया की तरह घटेगी।

भक्ति के मार्ग पर तुम खोते जाओगे, और तुम पाओगे: एक तरफ जागरण आ रहा है। एक तरफ खोते जा रहे हो, एक तरफ जागरण आ रहा है। खोना तुम्हारी प्रक्रिया होगी; जागना परिणाम होगा। अंत में खोना और जागना एक साथ घट जाते हैं, जैसे कि एक ही सिक्के के दो पहलू।

भक्त का एक तरफ ध्यान रहता है; ध्यानी का दूसरी तरफ ध्यान रहता है। लेकिन सिक्का तो वही है।

तो चूँकि मैं मलूक की बात कर रहा हूँ, इसलिए शराब का प्रतीक चुना है। उसे समझना।

● **दूसरा प्रश्न :** ऐसा लगता है कि जहाँ प्राचीन युग के भारतीय संत और प्रज्ञापुरुष श्री संपन्न और श्रेष्ठ कुलों से आया किये हैं, वहाँ मध्ययुगीन संत प्रायः दरिद्र और पिछड़े वर्गों में ही पैदा हुए हैं। क्या इस ऐतिहासिक तथ्य पर कुछ प्रकाश डालने की अनुकंपा करेंगे?

ऐसा हुआ। होने का कारण भारत की वर्ण व्यवस्था थी। भारत वर्ण व्यवस्था से पीड़ित रहा है। अभी भी छुटकारा नहीं हुआ है। इसलिए भारत में जो पहले संतों की परंपरा हुई, वह ब्राह्मणों की थी। ऋषि-मुनि--वेद और उपनिषद के--ब्राह्मण हैं। श्रेष्ठतम वर्ग ही धर्म के जगत् में प्रवेश करने के योग्य था और पात्र

था--ऐसी मान्यता थी। इस मान्यता के कारण हजारों, लाखों, करोड़ों लोग परमात्मा से संबंधित होने से वंचित रह गये।

जो भी मनुष्य है, वह परमात्मा को पाने के लिए योग्य है। मनुष्य होने में ही वह योग्यता मिल गई है। अब मनुष्य के अतिरिक्त और किसी योग्यता की जरूरत नहीं। ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं है।

लेकिन इस देश की जो धारणा थी, वह यह थी--कि ब्राह्मण ही इतना शुद्ध है कि परमात्मा की तरफ जा सके। इसलिए उसको ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण यानी जो ब्रह्म की तरफ जा सके। बाकी क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को तो काट दिया। ब्रह्म से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

लेकिन यह बात ज्यादा दिन नहीं चल सकती थी। स्वभावतः पहली पहली बगावत हुई--बुद्ध और महावीर के समय में। बगावत क्षत्रियों से आई। वे नंबर दो थे। बगावत हमेशा नंबर दो हो आती है।

ध्यान रखना: लोग सोचते हैं कि बगावत नीचे से आती है। बगावत नीचे से कभी नहीं आती। बगावत नंबर दो से आती है। इंदिरा को हटाना हो, तो मोरारजी देसाई हटाते हैं। वे नंबर दो हैं।

बगावत हमेशा नंबर दो से आती है। आखिर में जो खड़ा है, उसको तो इतनी आशा भी नहीं होती, भरोसा भी नहीं होता कि वह हटा पायेगा। वह जो नंबर दो है, वही खतरनाक सिद्ध होता है, क्योंकि नंबर दो को ऐसा लगता है कि बस, एक ही कदम की बात है कि मैं नंबर एक हो सकता हूँ। ज्यादा दूर नहीं है मंजिल; इतने करीब है कि अगर मैं चूका, तो मैं ही जिम्मेवार हूँ, कोई और जिम्मेवार नहीं है।

इसलिए सबसे बड़ा खतरा, जो पास होते हैं, उनसे होता है; जो दूर होते हैं, उनसे नहीं होता।

ब्राह्मण के निकटतम थे क्षत्रिय। वह नम्बर दो का वर्ग था। और क्षत्रियों को लगने लगा--कि यह भी क्या बात है!--कि ब्राह्मण ही ब्रह्म को पा सके? इसके प्रति बगावत करनी जरूरी थी।

ब्रह्म उन दिनों में सबसे ऊँची बात थी, जो पाने योग्य थी। और सब तो गौण है। तो क्षत्रियों ने बगावत की: जैन धर्म और बौद्ध धर्म उस बगावत के परिणाम हैं। जैनों के चौबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। उनमें एक भी ब्राह्मण नहीं है। बुद्ध क्षत्रिय हैं; और बुद्ध ने अपने चौबीस जन्मों की जो कथाएँ कही हैं, उनमें हर बार वे क्षत्रिय हैं। वे किसी भी बार ब्राह्मण नहीं हैं।

यह बड़ी बगावत थी। इसलिए हिन्दू धर्म जितना नाराज जैनों और बौद्धों पर

रहा है, उतना नाराज किसी से नहीं है। हो भी नहीं सकता। और एक ऐसा वक्त आया कि क्षत्रियों ने बिलकुल ही ब्राह्मण-केन्द्रित धर्म को बुरी तरह क्षत-विक्षत कर डाला।

यह बगावत क्षत्रियों से आई। लेकिन जब क्षत्रिय ज्ञानी होने लगे...। पहले तो ब्राह्मणों ने उसे बिलकुल स्वीकार नहीं किया। महावीर के नाम का भी उल्लेख नहीं किया। महावीर के नाम का भी उल्लेख नहीं किया है--ब्राह्मण शास्त्रों में। कैसे उल्लेख करो! बुद्ध का उल्लेख भी किया है, तो बड़ी चालबाजी से किया है, बड़ी कूटनीति से किया है। बुद्ध का उल्लेख करना पड़ा। क्योंकि बुद्ध का इतना प्रभाव पड़ा कि उस प्रभाव को एकदम अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। महावीर का तो प्रभाव इतना बड़ा नहीं था। छोटा दायरा था महावीर का। उनकी प्रक्रिया ऐसी थी कि बहुत भीड़ उसमें जा नहीं सकती थी; कठोर थी। बुद्ध की प्रक्रिया सुगम थी, उसमें करोड़ों लोग जा सकते थे। तो करोड़ों लोग गये। यह बात इतनी बड़ी थी कि इनकार तो की नहीं जा सकती थी। मगर बड़ी तरकीब से इनकार की गई।

तो ब्राह्मणों ने एक कथा गढ़ी--कि भगवान् ने जब सृष्टि रची तो उसने नरक बनाया, स्वर्ग बनाया। नरक पर शैतान को बिठाया--पहरेदार की तरह। लेकिन हजारों करोड़ों साल बीत गये और नरक में कोई आये ही न! क्योंकि कोई पाप ही न करे: तो शैतान गया भगवान् के चरणों में और उसने कहा: 'मुझे काहे के लिए वहाँ बिठा रखा है! न कोई कभी आता, न कभी कोई जाता। बन्द करो यह दफ्तर। मुझे छुटकारा करो। मैं नाहक बँधा हूँ। कोई काम भी नहीं है, कोई धाम भी नहीं है।'

तो परमात्मा ने कहा: ठीक, तेरे लिए उपाय करता हूँ।' तो परमात्मा ने बुद्धावतार लिया! और बुद्धावतार ले कर लोगों को भ्रष्ट किया। जब लोग भ्रष्ट हो गये, नरक जाने लगे। तब से नरक में ऐसी भीड़ है कि क्यू लगा है! जगह नहीं मिलती स्वर्ग की तरफ तो लोग जाते ही नहीं।

तो बड़ी होशियारी की बात है। बुद्ध को दसवाँ अवतार स्वीकार कर लिया और साथ में एक तरकीब लगा दी कि बुद्ध की मानना मत। माना कि अवतार भगवान् के हैं, लेकिन भ्रष्ट करने आये हैं।

देखते हैं: राजनीति कैसे चाल चल सकती है! बुद्ध के प्रति सम्मान भी दिखा दिया। दिखाना ही पड़ा, क्योंकि इतने करोड़ों लोगों ने जिसे पूजा, उसके प्रति अगर सम्मान न दिखाये, तो भी खतरा है। लेकिन सम्मान हार्दिक तो नहीं हो सकता। क्योंकि ब्राह्मण बड़े क्रुद्ध थे। और उन्होने शंकराचार्य के समय में बदला लिया।

बुद्ध धर्म को उखाड़ फेंका।

जैन धर्म सिकुड़ कर रह गया--जरा-सा धर्म, नगण्य। और बुद्ध धर्म को तो उन्होंने भारत से बिलकुल उखाड़ फेंका।

यह तो बात ही ब्राह्मणों की कल्पना के बाहर थी कि कोई क्षत्रिय--और घोषणा करे कि हम अवतार हैं; घोषणा करे कि हम तीर्थंकर हैं! तीर्थंकर--और अवतार--और परमात्मा के वंशज और हकदार तो केवल ब्राह्मण थे। लेकिन जब एक दफा क्षत्रिय चढ़ गये सीढ़ी, तो नम्बर दो वैश्य थे। बगावत वहाँ से शुरू हो गई। उन्होंने कहा : जब क्षत्रिय जा सकता है, तो हमारा क्या कसूर है कि हम नहीं जा सकते!

तो दूसरी क्रांति घटित हुई वैश्यों की तरफ से। तो वैश्य संत पैदा हुए, वणिक संत पैदा हुए। जब एक दफा वैश्य संत होने लगे, तो फिर शूद्र भी करीब आ गया पद के। तो फिर शूद्र संत हुए। फिर रैदास, और गोरा--और शूद्र संत हुए।

मध्ययुग में जो संत हुए, वे वैश्य और शूद्र थे। पहले वैश्य--फिर शूद्र। मगर यह होना जरूरी था। इस तरह मनुष्य ने अपने स्वभाव की उद्घोषणा की।

परमात्मा सभी का अधिकार है--जन्मसिद्ध अधिकार है। न तो ब्राह्मण का अधिकार है, न क्षत्रिय का अधिकार है--न वैश्य का, न शूद्र का। सभी का अधिकार है।

परमात्मा के ऊपर किसी का दावा नहीं हो सकता। परमात्मा किसी की मिलकियत नहीं है; स्वामित्व नहीं है। इसलिए ऐसा हुआ।

लेकिन अभी भी पुराने ढाँचे एकदम छूट तो नहीं गये हैं। इसलिए ब्राह्मण कबीर को संत मानने में झिझकता है। इसलिए ब्राह्मण नानक को अवतार मानने में झिझकता है। सिक्ख धर्म को अलग टूट जाना पड़ा। क्योंकि नानक को स्वीकार नहीं किया जा सकता। और फिर रैदास चमार को तो बिलकुल स्वीकार नहीं किया जा सकता।

एक बार मुझे एक नगर में चमारों ने रैदास पर बोलने बुलाया। मैं जिनके घर में ठहरा था, उन्होंने मुझे बहुत समझाया कि 'वहाँ जाओ ही मत। कहाँ चमारों में बोलने जा रहे हैं!' वे बड़े धनपति थे। पर मैंने कहा कि 'उन्होंने बुलाया है, तो मैं जा रहा हूँ।' वे सब जगह मेरे साथ जाते थे। वे सांझ कहने लगे कि 'आज जरा काम है।' मैंने कहा, 'मुझे पता है कि काम बिलकुल नहीं है। तुम चमारों में जाने में डर रहे हो।'

उनकी पत्नी मेरे पीछे लगी फिरती थी, जहाँ भी मैं जाता था। उस दिन वह भी...। उसने कहा कि 'नहीं, आप क्षमा करें।' ड्राइव्हर के साथ मुझे अकेला

भेज दिया। वहाँ भी मैं चकित हुआ देख कर कि चमारों के अतिरिक्त वहाँ एक आदमी सुनने नहीं आया था। दस बीस चमार थे। उसी नगर में मैं बोलता था, तो बीस हजार लोग, पच्चीस हजार लोग सुनते थे। एक दिन पहले ही पच्चीस हजार लोगों ने सुना था और दूसरे दिन पच्चीस लोग भी नहीं थे!

अभी भी हमारी धारणाएँ तो वही हैं। चमारों की सभा में कौन जाय! और चमारों के साथ कौन बैठे! और यह तो हम मान ही नहीं सकते कि रैदास को भी परमात्मा उपलब्ध हो गया है।

परमात्मा पर हमने दावे कर रखे हैं।

मध्ययुग में बड़ी से बड़ी क्रांति हुई भारत में। निम्न वर्गों से घोषणा आई इस बात की कि कोई भी परमात्मा हो सकता है। तुम क्या करते हो, तुम किस घर मे पैदा हुए हो, तुम्हारा रंग-रूप कैसा है, तुम्हारे पास धन, पद, प्रतिष्ठा है या नहीं, इससे परमात्मा का कोई लेना-देना नहीं है। तुम अगर प्यास से भरे हो और आतुर होकर पुकारोगे, तो परमात्मा सुनेगा। आतुरता सुनी जाती है। प्यास सुनी जाती है। हृदय की आवाज सुनी जाती है।

● तीसरा प्रश्न : 'अपना-सा दुःख सबका मानै, ताहि मिलैं अविनासी।' अविनासी से मिलने की बाबा मलूक की यह शर्त तो वास्तव में असंभावना जैसी लगती है। कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई बुद्ध और कोई रजनीश इस कसौट पर भला खरे उतर जायँ, लेकिन क्या यह सचमुच संभव है कि कोई साधारण व्यक्ति सब पराये दुःख को अपना समझ ले?

पहली बात : मलूक के वचन का अर्थ ठीक से समझे नहीं। 'अपना-सा दुःख सब का मानै, ताहि मिलैं अविनासी', इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो सामान्य अर्थ है कि दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानो। यह सीधा-सीधा अर्थ है। अगर इतना ही अर्थ हो इस वचन में, तो प्रश्न बिलकुल ठीक है : यह असंभव है। कैसे दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानोगे?

दूसरे के सिर में दर्द होता है, इसे तुम अपने सिर का दर्द कैसे मानोगे? और तुम्हारे पैर में बिवाई न पड़ी हो, तो दूसरे के पैर में पड़ी बिवाई की पीड़ा का तुमको पता ही नहीं हो सकता। काँटा तुम्हें गड़े, तो तुम्हें पता चलता है; दूसरे को गड़े, तो दूसरे को पता चलता है।

दूसरे के दुःख को अपना कैसे मानोगे? और अगर मान लिया जबरदस्ती, तो उसके कोई परिणाम न होंगे। ऐसे कहीं अविनाशी मिला है?

यह अर्थ अगर होता, तो बात असंभव हो जाती। फिर क्या अर्थ हो सकता है? अर्थ है ..एक घटना से समझो।

रामकृष्ण दक्षिणेश्वर में गंगा पार कर रहे हैं--एक छोटी-सी नाव पर सवार, उस तरफ जा रहे हैं। साथ में दो-चार भक्त हैं और माझी है। अचानक बीच मझधार में रामकृष्ण चिल्लाने लगे : 'मुझे मारो मत। मुझे क्यों मारते हैं? भक्तों ने कहा कि 'पागल तो नहीं हो गये! कौन मार रहा है!' वे तो चौंक कर खड़े हो गये। उन्होंने कहा, 'परमहंसदेव, आप कहते क्या हैं! हम--और आपको मारेंगे! कौन मार सकता है आपको? कौन मार रहा है आपको?'

लेकिन रामकृष्ण की आँखों से आँसू बहे जाते हैं। और रामकृष्ण ने अपनी चादर उघाड़ कर बताई कि मेरी पीठ तो देखो।' और वहाँ दो कोड़े के निशान हैं! लहूलुहान! घबड़ा गये भक्त भी--कि किसने मारा है! लेकिन कोई है भी नहीं यहाँ मारने वाला; हम ही चार भक्त हैं। और सब एक दूसरे को देख रहे हैं कि कौन मारेगा!

रामकृष्ण ने कहा, 'उस तरफ देखो।' और उस तरफ घाट पर कुछ आदमी एक आदमी को मार रहे हैं। नाव लगी; भक्त उतरे; जाकर उस आदमी के पास पहुँचे जिसको मारा गया है; उसकी कमीज उठाई। ठीक वैसे ही दो कोड़े के निशान उसकी पीठ पर बने हैं। रामकृष्ण की चादर उठाई, बड़े हैरान हो गये। कोड़े के निशान बिलकुल एक जैसे हैं। हूबहू। एक दूसरे की कॉपी हैं।

इसको क्या कहेंगे?

अंग्रेजी में दो शब्द हैं : सिम्पैथी और एम्पैथी। सिम्पैथी का अर्थ होता है--सहानुभूति। मनोविज्ञान इस पर बड़ा विचार करता है। सहानुभूति का तो अर्थ होता है : जब तुम दूसरे का दुःख देखते हो, अनुमान करते हो कि इसके सिर में दर्द है। माथे पर पड़ी सिकुड़न देखते हो; आँखों में आई उदासी देखते हो; चित्त का विषाद देखते हो, अनुमान करते हो कि इसके सिर में दर्द है। इसके चेहरे का भाव देख कर तुम अनुमान करते हो कि ऐसा भाव जब मुझे होता है, तब मेरे भीतर भी सिर में दर्द होता है। मगर हो सकता है कि यह आदमी अभिनय कर रहा हो।

आखिर अभिनेता करते ही क्या हैं? सिर में दर्द नहीं होता है और सिर में दर्द दिखा देते हैं। हृदय में प्रेम नहीं होता और प्रेम दिखा देते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक नाटक देखने गया था। और उसकी पत्नी उसे बार-बार कोहनी मारने लगी, और कहने लगी, 'देखो!' क्योंकि वह जो नायिका है, उसको नायक इतना प्रेम करता है! सदा घुटनों पर हाजिर है। देवी, देवी पुकारता है। तो स्वभावतः पत्नी टेहनी मारने लगी कि 'जरा देखो, इसको कहते हैं--प्रेम। तुमको ऐसी सूझ कभी नहीं आती!'

नसरुद्दीन ने कहा, 'चुप भी रह। तुझको मालूम है, उसको इसके कितने पैसे मिलते हैं? हमसे मुफ्त में ही चलवा रही है काम!'

'लेकिन', पत्नी ने कहा, 'तुमको मालूम होना चाहिये कि वे वस्तुतः पती-पत्नी भी हैं।'

नसरुद्दीन ने कहा, 'हाय राम! अगर ये वस्तुतः भी पति-पत्नी हैं, तब तो निश्चित ही यह अभिनेता मजबूत है; गहरा--बड़ा अभिनेता है।' असली पति-पत्नी हैं अगर ये और यह इतना प्रेम दिखला रहा है...। क्योंकि असली पति-पत्नी के बीच कहाँ प्रेम! और किसी के बीच हो जाय; असली पति-पत्नी के बीच कहाँ प्रेम?

तो नसरुद्दीन ने कहा, 'निश्चित ही यह अभिनेता बड़ा है। इसके अभिनय की कुशलता बड़ी गहरी है। हृदय में बिलकुल नहीं है और दिखला रहा है! और इतनी कुशलता से दिखला रहा है कि जँच रहा है कि होना चाहिए।'

अभिनय का अर्थ ही यही है--जो नहीं है, उसे दिखला देना।

तो यह हो सकता है कि दूसरे आदमी के सिर में दर्द हो ही ना। वह सिर्फ अभिनय कर रहा हो। पेट में दर्द हो ही न; सिर्फ मुद्रा बना रहा हो--पेट के दर्द की। मगर तुम्हारे पास एक ही उपाय है अनुमान करने का कि तुमको भी अगर ऐसी ही मुद्रा बनी थी, जब पेट में दर्द हुआ था, तो तुम सोचेगे : इसके भी पेट में दर्द है। यह अनुमान है। इस अनुमान में, अगर तुम्हारा लगाव है इस आदमी से, तो सहानुभूति होगी। अगर तुम्हारा बेटा है, तो सहानुभूति होगी। तुम्हारा पिता है, तो सहानुभूति होगी। तुम्हारी माँ है, तो सहानुभूति होगी। लेकिन यह सहानुभूति है। यह अनुमानज है।

समानुभूति--ऐम्पैथी--बड़ी और बात है। समानुभूति का अर्थ है : जो इसे हो रहा, ठीक ऐसा तुम्हें हो जाय।

यह कब होता है? यह तब होता है, जब तुम्हें 'मैं' 'तू' का भाव नहीं रह जाता। जब अहंकार की बीच में दीवाल नहीं रह जाती।

रामकृष्ण को यह जो घटना घटी, इसीलिए घटी। बीच में कोई दीवाल ही नहीं है। जब उस आदमी को मारा गया, तो रामकृष्ण को ऐसा नहीं हुआ कि 'क्यों उस बेचारे को मारते हो।' वे चिल्लाये : 'क्यों मुझे मारते हो?' यह फर्क समझना। यह समानुभूति है।

इस समानुभूति पर बहुत प्रयोग किये गये हैं। तुमने शायद कुछ घटनाएँ सुनी हों; जिनको ईसाई फकीर स्टिगमैटा कहते हैं। ऐसा सदियों से होता रहा है और अभी भी ऐसे लोग मौजूद हैं, जिनको यह घटना घटती है।

बवेरिया में एक महिला अभी भी जिन्दा है, जिसको स्टिगमैटा उभरते हैं।

स्टिगमैटा का अर्थ होता है : जिस तरह जीसस को सूली पर लगाया गया और उनके हाथ में खीले ठोंके गये, पैर में खीले ठोंके गये, और उन्हें सूली पर लटकाया गया; कभी-कभी किन्हीं ईसा के भक्तों को उसी तरह के घाव अनायास हाथ और पैर में उभर आते हैं और खून बहने लगता है। घाव बनाने नहीं पड़ते, उभर आते हैं; हजारों के सामने उभर आते हैं। खून बहने लगता है। और फिर घाव खो जाते हैं; खून बंद हो जाता है।

बवेरिया मे एक महिला है--थेरेसा न्यूमॅन। आज तीस साल से उसका अध्ययन हो रहा है। हर शुक्रवार को, जिस दिन जीसस को सूली लगी, उसके हाथ में और पैर में घाव उभर आते हैं और खून बहने लगता है। इन तीस सालों मे इतना खून बहा है, लेकिन जरा भी वह महिला कमजोर नहीं हुई। और बड़ा आश्चर्य तो यह है कि सब तरह के परीक्षण कर लिए गये हैं, डॉक्टरों ने सब तरह के परीक्षण किये हैं, कि कोई धोखा-धड़ी न हो जाय। ठीक चौबीस घंटे खून बहता रहता है और चौबीस घंटे के बाद घाव ऐसे भर जाते हैं, ऐसे तिरोहित हो जाते हैं, जैसे हुए ही न हों! दाग भी नहीं छूट जाता। यह एम्पैथी है।

जीसस के साथ इतना तादात्म्य, जीसस के साथ ऐसी भाव-विभोरता--कि जीसस अलग न रहे--मैं ही जीसस हूँ--यह भाव अगर बहुत प्रगाढ़ हो जाय, यह इतना प्रगाढ़ हो जाय, कि बीच में कोई दीवाल न रह जाय; दीवाल क्या बीच में कोई परदा भी न रह जाय, कोई चिलमन भी न रह जाय, तो परिणाम हो जायेगा।

आदमी के मन की बड़ी क्षमता है। तुम वही हो जाते हो, जैसा सोचते हो। तुम्हारे जीवन में वही घटने लगता है, जो तुम्हारे विचार में बीज की तरह पड़ जाता है।

अब अगर किसी को ऐसा प्रगाढ़ भाव हो जाय कि मैं जीसस के साथ एक हूँ, तो कोई आश्चर्य नहीं कि इसके शरीर की वही दशा हो जाय, जो जीसस के शरीर की दशा हुई थी। दो हजार साल बाद भी...। इससे जीसस का कुछ लेना-देना नहीं है। इसी स्त्री की भाव-दशा है।

इसको कहते हैं : समानुभूति।

मलूक का यह वचन : 'अपना-सा दुःख सबका मानै, ताहि मिलैं अविनासी'--सहानुभूति का ही सूत्र नहीं है; समानुभूति का भी सूत्र है। मलूक यह कह रहे हैं कि तुम और दूसरे दो नहीं हैं। यहाँ एक ही विराजा है। मेरे भीतर जो बोल रहा है और तुम्हारे भीतर जो सुन रहा है, ये दो नहीं हैं। इधर वही बोल रहा है, उधर वही सुन रहा है। यह सारा वार्तालाप--एकालाप है। परमात्मा ही परमात्मा से बोल रहा है। वही वृक्ष में हरा हुआ है; वही फूल में लाल हुआ है; वही पक्षी

की तरह आ कर गीत गुनगुना रहा है।

यह सारा जगत् एक है; अखंड रूप से एक है। इस अखंड के बोध की तरफ इशारा कर रहे हैं मलूकदास--'ताहि मिलैं अविनासी।' जिसको इस अखंड की प्रतीति होने लगेगी कि हम एक ही हैं; यहाँ दूसरा कोई है ही नहीं; पराया है ही नहीं; पराया भ्रांति है। न तो कोई 'स्व' है, न कोई 'पर' है। उस एक की ही जगह-जगह अनेक-अनेक रूपों में अभिव्यक्ति, अभिव्यंजना हुई है। वह एक ही बहुत-बहुत रूपों में आया है। ये सब रूप उसके हैं; वह बहुरूपिया है।

'अपना-सा दुख सबका जानै, ताहि मिलैं अविनासी', उसे मिल जायेगा अविनाशी। इसमें खयाल रखना कि वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम चेष्टा कर करके दूसरे के दुःख को अपना मानने लगो। वे यह कह रहे हैं कि धीरे-धीरे तुम स्व और 'पर' की दीवालें गिराओ, ताकि जो दूसरे के भीतर है और तुम्हारे भीतर है, वह अलग-अलग न मालूम पड़े।

ये सीमाएँ थोथी हैं। ये सीमाएँ ऐसी हैं, जैसे हम अपनी जमीन के आसपास एक बागुड़ लगा देते हैं। कहते हैं : यह मेरी जमीन; वह जमीन पड़ोसी की। जमीन एक है। तुम्हारे बागुड लगाने से जमीन कटती नहीं, अलग नहीं होती।

हिन्दुस्तान की सीमा खींच देते हैं नक्शे पर; कहते हैं : यह हिन्दुस्तान, यह पाकिस्तान। एक दिन पहले यह हिन्दुस्तान था पूरा, एक दिन बाद हिन्दुस्तान पाकिस्तान अलग हो जाते हैं। पंद्रह अगस्त को सीमा खिंच जाती है। जमीन वहीं की वहीं है; जमीन कटती नहीं, सिर्फ नक्शे पर सीमा हो जाती है। मगर फर्क समझते हो! बड़ा फर्क हो गया। भेद पैदा हो गया। अब अगर पाकिस्तान में कुछ गड़बड़ हो जाय, तो तुम प्रसन्न होते हो। पाकिस्तान में दुर्दिन आ जायँ, तो तुम प्रसन्न होते हो। भारत में दुर्दिन आ जायँ, तो पाकिस्तान में लोग प्रसन्न होते हैं!

पाकिस्तान से बंगलादेश टूट गया, तो भारत बड़ा आह्लादित था। ये सीमाओं के कारण...अन्यथा सब वहीं का वहीं है। न कुछ टूटता है, न कुछ जुड़ता है। मगर आदमी बड़े खेल बना लेता है। आदमी खेलने में बड़ा कुशल है और धीरे-धीरे भूल हो जाता है कि खेल 'खेल' है।

तुमने देखा न : शतरंज खेलते-खेलते तलवारें खिंच जाती हैं। अब शतरंज में कुछ भी नहीं है। हाथी घोड़े भी झूठे हैं। मगर शतरंज पर भी प्राण दाँव पर लग जाते हैं। शतरंज भी तुम ऐसे खेलते हो, जैसे जीवन दाँव पर लगा है। शतरंज में दुश्मनियाँ हो गई हैं; पीढ़ी-दर-पीढ़ी दुश्मनी चल गई है। और तुम सोचते नहीं कि लकड़ी के खिलौने बना कर रख लिये हैं, या चलो पैसेवाले हुए, तो हाथीदांत के हैं। पर सब खेल-खिलौने हैं।

जैसे समाज में तुमने रेखाएँ खींच रखी हैं : ये हिन्दू, ये मुसलमान; ये ब्राह्मण, ये शूद्र––रेखा पर रेखाएँ खींचते चले जाते हो और तब सिकुड़ कर रह जाते हो––छोटे से––मैं। यह 'मैं' सिर्फ रेखा के कारण मालूम पड़ रहा है। रेखा को हटा दो, तो तुम एक तरंग हो––इस विराट् सागर की।

'अपना-सा दुःख सबका माने, ताहि मिलै अविनासी'––इसका अर्थ है––गहरा अर्थ––कि जो मैं तू के भाव को भूल जाय; जिसे मैं में तू दिखाई पड़े, तू में मैं दिखाई पड़े, उसे अविनाशी मिल जाता है। मिल ही गया। फिर तुम्हें इसमें कुछ असंभावना न दिखाई पड़ेगी।

और जिस दिन तुम दूसरों के दुःखों को अपना मान लोगे, उस दिन दूसरों के सुख भी तुम्हारे अपने हो जायेंगे; उस दिन दूसरों का प्रेम तुम्हारा हो जायेगा; दूसरों का आनंद भी तुम्हारा हो जायेगा। तुम नाहक कृपण बने बैठे हो––छोटी-सी सीमा में बंद; सारा विराट् का खेल तुम्हारा हो सकता है।

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे : 'एक आँगन छोड़ दिया, तो सारा विश्व मेरा हुआ।'

सीमा छोड़ो; असीम के साथ नाता जोड़ो। जहाँ-जहाँ सीमा दिखे, वहाँ-वहाँ समझ लेना कि कुछ भ्रांति हो रही है। क्योंकि यहाँ कोई भी सीमा नहीं है। सीमा है ही नहीं। हम यहाँ बैठे हैं इतने लोग; तुमने श्वास ली, तब तुम्हारी हो गई; तुम कहते हो : 'मेरी श्वास।' क्षण भर पहले तुम्हारा पड़ोसी ले रहा था उसी श्वास को। क्षण भर बाद फिर कोई और लेगा।

तुम्हारा क्या है? श्वास भी अपनी नहीं है। श्वास तक अपनी नहीं है! मेरी श्वास तुम्हारे भीतर थी; अब मेरे फेफड़ों में है। घड़ी भर बाद––घड़ी क्या, क्षण भर बाद फिर किसी और के फेफड़ों में होगी।

जिस देह को तुम अपना मान रहे हो, वह कल मिट्टी की तरह पड़ी थी। कल फिर मिट्टी की तरह पड़ जायेगी। अभी जो फल वृक्ष पर लगा है, नासपाती लगी है, अभी वृक्ष की है; तुम उसे खा लोगे; चौबीस घंटे बाद तुम्हारी हो जायेगी। पच जायेगी; मांस-मज्जा बनने लगेगी : तुम्हारी हो गई; अब 'तुम' हो गई! अभी चौबीस घंटे पहले नासपाती तुम्हारी न थी। फिर एक दिन तुम मर जाओगे; जमीन में तुम्हारी कब्र बन जायेगी; और उस कब्र पर नासपाती का पेड़ बनेगा! और फिर तुम नासपाती बनोगे और तुम्हारे बेटे-पोते फिर उस नासपाती को खायेंगे।

कहाँ सीमा है? सब संयुक्त है। अभी तुमने जो नासपाती खाई है, कौन जाने, तुम्हारे दादा-परदादा की हो!

हम एक दूसरे को खा रहे हैं; हम एक दूसरे को पचा रहे हैं; हम एक दूसरे

से जुड़े हुए हैं। क्षण भर पहले जो विचार मेरे भीतर था, मैंने तुमसे कह दिया, तुम्हारा हो गया। अब मेरी उस पर कोई मालकियत न रही। तुम मालिक हो गये। तुम किसी और को कह दोगे, वह मालिक हो जाएगा। ऐसे विचारों का संतरण चलता है। ऐसे प्राणों का भी संतरण चलता है; ऐसे ही देह का भी संतरण चलता है। हम सब यहाँ संयुक्त हैं।

तुम जरा सोचो तो : अगर तुम बिलकुल अकेले छोड़ दिये जाओ, तुम बच जाओगे––एक क्षण भी बच सकोगे? सूरज न निकले, ठन्डे हो जाओगे। हवा न आये, गला रुंध जायेगा। भोजन न मिले, मरने लगोगे। पानी न मिले––गये। जुड़े हो।

नदियों में तुम्हारा प्राण बह रहा है, क्योंकि उनसे ही तुम्हारी प्यास तृप्त होती है। हवाओं में तुम्हारा प्राण बह रहा है, क्योंकि उससे ही तुम्हें जीवन मिलता है। सूरज की किरणों में तुम्हारा प्राण बह रहा है, क्योंकि उससे ही तुम्हारे प्राण संचालित होते हैं। सब जुड़ा है। जो देखते हैं ठीक से, वे कहते हैं : सारा अस्तित्व जुड़ा है। एक घास के पत्ते को हिलाओ, और दूर के चाँद-तारे हिल जाते हैं। सब जुड़ा है।

ऐसा ही समझो, जैसे मकड़ी का जाला है। उपनिषद् के ऋषियों कहा है : संसार मकड़ी का जाला है। और बड़ा ठीक प्रतीक चुना है। क्योंकि मकड़ी अपने जाले को अपने भीतर से ही निकालती और फैलाती है। तो परमात्मा ने संसार को अपने भीतर से निकाला और संसार हुआ; जाले की तरह है। परमात्मा बड़ी मकड़ी है। और अपना जाला बुन देता है।

फिर तुमने देखा : मकड़ी के जाले को एक तरफ से पकड़ कर जरा-सा हिलाओ पूरा जाला हिल जाता है। दूर तक के छोर हिल जाते हैं। ऐसा ही अस्तित्व है।

तुमने अगर किसी को दुःख दिया, तो तुम हैरान होओगे कि वह दुःख तुम तक ही लौट आयेगा, क्योंकि तुम भी उसी जाले पर बैठे हो। इसलिए कर्म के सिद्धान्त की बड़ी अर्थवत्ता है। दूसरे को दुःख मत देना, क्योंकि वह अनजाने अपने को ही दुःख देने की व्यवस्था है। और दूसरे के लिए गड्ढा मत खोदना, क्योंकि तुम ही उस गड्ढे में किसी दिन गिरोगे। दूसरा गिरा, तो भी तुम ही गिरे।

लेकिन हम बच्चों जैसे हैं। छोटे बच्चे को देखा, अगर उसके हाथ से कुछ भूल हो जाती है, तो उस हाथ को दूसरे हाथ से एक चाँटा लगा देता है। खुद से कोई भूल हो जाती है, तो खुद को एक चाँटा मार लेता है। खुद का ही हाथ है, खुद का ही गाल है। लेकिन सजा दे देता है।

हम भी जब दूसरे को सजा दे रहे हैं, तो अपने ही गाल पर चाँटा मार रहे हैं।

दूसरा यहाँ कोई है नहीं।

इस ऐक्य को देख लेना, इस अखण्डता को देख लेना, इसको पहचानना; इसको धीरे-धीरे जीना; तो अविनाशी मिल जाता है। असम्भव नहीं है।

हाँ, अगर तुमने सोचा कि ऐसा मान कर चलेंगे, तो भूल हो जायेगी। धर्म के जगत् में जो बड़ी से बड़ी भूल होती हैं, वह यही है।

महावीर को दिखाई पड़ा : सब एक है, उस 'सब एक है' से अहिंसा पैदा हुई : अहिंसा का अर्थ है : अब किसकी हिंसा करना! कैसे करना? यहाँ दूसरा कोई है नहीं, मैं ही हूँ। तो सब हिंसा आत्म-हिंसा ही होगी। आत्म-हिंसा कौन करना चाहता है?

तो महावीर कदम फूंक-फूंक कर रखने लगे कि कोई चींटी न दब जाय। कि चींटी को महावीर अपना ही हिस्सा मानने लगे। रात करवट न लेते, कि कहीं रात अँधेरे में करवट ली, कोई कीड़ा-मकोड़ा नीचे पड़ा हो, दब जाय! माँसाहार छोड़ दिया। क्षत्रिय घर से आये थे, तो मांसाहार करते रहे होंगे। मांसाहार छोड़ दिया। मांसाहार तो छोड़ा ही छोड़ा, कच्चे फल भी नहीं लेते थे। जो पका फल अपने से गिर जाय वृक्ष से, वही लेते थे। क्योंकि कच्चे फल को तोड़ने में वृक्ष को थोड़ी पीड़ा तो होगी। अभी वृक्ष देने को राजी नहीं था, यही तो कच्चे का मतलब होता है। अभी झपटना पड़ेगा; तो हिंसा होगी। तो जरा प्रतीक्षा करो; फल तो अपने से ही पक जाते हैं; इतनी जल्दी क्या है! पक कर गिर जाते हैं; वृक्ष खुद ही दे देता है, तब तुम ले लेना।

यह अहिंसा अखंड--ऐक्य भाव से पैदा हुई। फिर जैन भी अहिंसा करता है; वह भी पानी छान कर पीता है, पैर फूंक कर रखता है। लेकिन उसकी अहिंसा में अखंड का भाव नहीं है। उसकी अहिंसा अहिंसा नहीं है। वह तो डर के मारे कर रहा है--कि कहीं यह चींटी मर न जाय, नहीं तो नरक में सड़ना पड़ेगा। यह भय है; इसमें कोई बोध नहीं है। अगर उसको पक्का हो जाय कि नियम बदल गये हैं और अब चींटियों को मारने से कोई नरक में नहीं सड़ता है, तो वह सब फिक्र छोड़ देगा। चींटी से कुछ लेना-देना नहीं है; चींटी से कुछ मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। चींटी का दुःख अपना दुःख है--ऐसा उसे दिखा भी नहीं है। लेकिन चींटी मारने से कहीं मुझे दुःख न झेलना पड़े, बाद में, उस वजह से--परिणाम की फिक्र में वह डरा हुआ है।

इसलिए अकसर ऐसा हो जाता है, कि जैन युवक जब पश्चिम में जाते हैं, वे सब मांसाहार इत्यादि करने लगते हैं। उसका कारण है। कम से कम अंडे तो खाने ही लगते हैं। देखते हैं कि इतने लोग खा रहे हैं, इतने लोग पी रहे हैं, ये सब नरक

जायेंगे? यह बात जँचती नहीं। इतने सब नरक अगर जा रहे हैं, तो कोई हरजा नहीं; हम भी चले जायेंगे इस भीड़-भाड़ में।

वह जो श्रद्धा यहाँ काम करती थी, पश्चिम में जा कर काम नहीं करती। क्योंकि दिखाई पड़ता है : सभी लोग खा पी रहे हैं। यह तो नहीं हो सकता कि अरबों लोग सब नरक ही जायेंगे! वह श्रद्धा टूटने लगती है। वह श्रद्धा झूठी थी, इसलिए टूटती है।

मेरे पास एक जैन मुनि मिलने आये थे, तो वे कह रहे थे कि 'जो युवक पश्चिम जाते हैं, वे मांसाहार करने लगते हैं; इसको रोकने का कोई उपाय?' मैंने कहा, 'इसको रोकने का उपाय कुछ भी नहीं है। इससे सिर्फ एक बात जाहिर होती है कि जो यहाँ रह रहे हैं, उनके भी मांसाहार न करने पर बहुत भरोसा मत रखना। वे सिर्फ परिस्थितिवश नहीं कर रहे हैं। वे भी कर लेंगे। सिर्फ उनको परिस्थिति नहीं मिली है। यहाँ का संस्कार, यहाँ की हवा, यहाँ का पारिवारिक भय उनको रोके हुए है। लेकिन बोध से नहीं रुके हैं; भय से रुके हैं। भय से कहीं कोई क्रांति घटती है जीवन में?'

तो महावीर की अहिंसा और जैन की अहिंसा में फर्क है। जैन की तो बात ही छोड़ो, जैनियों के जो मुनि हैं, उनकी अहिंसा में और महावीर की अहिंसा में भी उतना ही फर्क है। जैन मुनि भी डर के मारे पानी छान कर पीता है; रात चलता नहीं; अँधेरे में उठता-बैठता नहीं; भय के कारण। बोध नहीं दिखाई पड़ता। सिकुड़ा-सिकुड़ा है; डरा-डरा है।

और ध्यान रखना : डरने से कोई धार्मिक नहीं बनता। डरने से तो आदमी सिकुड़ता है; संकुचित होता है। फैलने से आदमी धार्मिक बनता है; और फैलाव अभय में आता है--भय में नहीं आता।

तुमने खयाल किया : जब भी तुम भयभीत होते हो, सिकुड़ जाते हो, छोटे हो जाते हो। जब तुम निर्भय होते हो, फैल जाते हो, छाती फूल जाती है।

जिसका अभय पूरा हो गया, उसकी छाती इतनी बड़ी हो जाती है जितना बड़ा यह विराट् विश्व है। वह पूरे विश्व पर फैल जाता है; वह विश्वमय हो जाता है।

● **चौथा प्रश्न** : यूँ मिले थे, मुलाकात हो न सकी। ओंठ काँपे मगर बात हो न सकी। तथा आप अपने प्रवचन में अकसर कहते हैं कि इस बात पर ध्यान करो, इसे गुनो--और अभी--यहीं; लेकिन मुझे लगता है : कभी नहीं।

अगर तुम्हें लगता है, तो वैसा ही होगा, जैसा तुम्हें लगता है। मेरे कहे नहीं होगा; तुम्हारे लगने से ही होगा। अगर तुमने कोई निषेधात्मक धारणा बना ली है, तो वही होगा।

अगर तुम कहते हो : कभी नहीं होगा, ऐसी तुम्हारी मान्यता है, तो कैसे हो सकता है! तुम्हारी मान्यता को परमात्मा भी तोड़ नहीं सकता। कहते हैं कि जो सर्वशक्तिमान है, उसकी भी इतनी शक्ति नहीं है कि तुम्हारी मान्यता को तोड़ दे।

अगर तुम यह मान कर बैठे हो कि यह होनेवाला नहीं है; समाधि मुझे लगेगी नहीं; परमात्मा का दर्शन मुझे होगा नहीं; अविनाशी से मिलन मेरा होनेवाला नहीं है; अगर तुमने ऐसी धारणा बना रखी है, तो नहीं होगा।

वही होता है, जिसके लिए तुम धारणा बनाते हो। खयाल रखना इस पर। तुम्हारी धारणा तुम्हारा भविष्य है। तुम्हारी धारणा तुम्हारी नियति है। इसलिए नकारात्मक धारणाएँ मत बनाना।

नास्तिक को परमात्मा कभी नहीं मिलता। इसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा नहीं है। नास्तिक यही सोचता है कि अगर होता, तो मिलता। अब तक नहीं मिला, तो नहीं है। नास्तिक को परमात्मा नहीं मिलता--नास्तिकता की धारणा के कारण।

नास्तिकता की धारणा--अगर परमात्मा मिल भी जाय, तो भी उसे देखने न देगी; वह कुछ और देख लेगा; वह व्याख्या कुछ और कर लेगा।

मैंने सुना है : शिरडी के साँईबाबा तो मसजिद में पड़े रहते थे। किसी को पक्का पता नहीं कि वे हिन्दू थे, कि मुसलमान थे। किसी संत का किसको पता चल सकता है?--कि हिन्दू, कि मुसलमान? सीमाएँ नहीं, वहीं तो सँत है।

मसजिद में आने के पहले एक मंदिर में ठहरना चाहा था उन्होंने, लेकिन मंदिर से पुजारी को पक्का नहीं हुआ कि यह आदमी कौन है, कैसा है, तो उसने हटा दिया। तो वे मसजिद में ठहर गये। क्या मंदिर, क्या मसजिद! सब अपने हैं। मसजिद में किसी ने हटाया नहीं, तो रुके रहे; वही घर बन गया।

लेकिन एक ब्राह्मण साधु रोज उनके दर्शन करने आता था और दर्शन के बाद ही जाकर भोजन करता था। कभी-कभी ऐसा हो जाता, कि भीड़ होती भक्तों की और दर्शन में देर हो जाती, लेकिन जब तक वह पैर न छू ले, तब तक भोजन न करता। कभी-कभी साँझ भी हो जाती, तब दर्शन हो पाते, पैर छू पाता; लौटता; तब कहीं जा कर भोजन कर पाता।

साँईं बाबा ने एक दिन उसे कहा कि 'प्यारे, तू इतना परेशान न हो; मैं वहीं आ कर तुझे दर्शन दे दूँगा।' वह तो सड़ा खुश हुआ। उसने कहा, 'तो कल मैं वहीं प्रतीक्षा करूँगा। धन्यभाग मेरे कि आप मुझे वहाँ दर्शन दे देंगे!'

दूसरे दिन जल्दी ही सुबह-सुबह नहा-धो कर भोजन तैयार करके बैठ गया अपने द्वार पर--साँईं बाबा के दर्शन करने के लिए। कोई आया नहीं; आया एक कुत्ता।

और कुत्ता भीतर घुसने की कोशिश करने लगा और वह डन्डा लेकर उसको भगाने की कोशिश करने लगा--कि कहीं यह सब अपवित्र न कर दे और कहीं भोजन में मुँह न लगा दे। और साँईं बाबा अभी आये नहीं। उसने दो-चार डन्डे भी कुत्ते को जमा दिये। कुत्ता बड़ी कोशिश किया; डन्डे खाने के बाद भी भीतर घुसने की कोशिश कर रहा था।

जब साँईं बाबा नहीं आये, साँझ होने लगी, तो भागा हुआ ब्राह्मण आया। और उसने कहा कि 'आप आये नहीं! वचन दिया; पूरा नहीं किया।' उन्होंने कहा, 'मैं गया था। और यह मेरी पीठ देख! चार डन्डे तूने लगा दिये। और मैं फिर भी घुसने की कोशिश करता था, मगर तू घुसने ही नहीं देता था।'

तब तो वह रोने लगा। तब उसे याद आया; तब उसे याद आया--कि उसने गौर से नहीं देखा। कुत्ते में कुछ खूबी तो थी; कुत्ता कुछ साधारण तो नहीं था। अब याद आया; पीछे से लौट कर याद आया। कुछ बात अजब की थी कुत्ते में; कुछ ध्वनि गजब की थी। कुछ ऐसा ही एहसास हुआ था, जैसा साँईं बाबा की उपस्थिति में अहसास होता हैं। लेकिन मैं ना-समझ; मैं मन्दबुद्धि; समझा क्यों नहीं! रोने लगा। कहा, 'क्षमा करें। कल एक बार और मौका दें। अब ऐसी भूल न करूँगा।'

साँईं बाबा ने कहा, 'तेरी मरजी; कल आयेंगे।'

तो वह बैठा--अब वह कुत्ते की राह देखता बैठा। हमारी धारणाएँ! अब वह देख रहा है कि कहीं कोई कुत्ता आ जाय! कोई कुत्ता दिखाई न पड़े! दूर दूर तक सन्नाटा। ऐसे कभी-कभी आवारा कुत्ते निकलते भी थे; हिन्दुस्तान में कुछ कमी भी नहीं है--आवारा कुत्तों की। उस दिन सब नदारत ही हो गये! वह बैठा है थाली सजाये कि आज कुत्ता आये, तो थाली से लगा दूं। पहले कुत्ते को भोजन कराऊँ, फिर मैं करूँ।

कुत्ता नहीं आया--सो नहीं आया। आया एक भिखारी, और वह भी कोढ़ी। और बड़ी दुर्गन्ध उससे आती थी। और वह चिल्लाया दूर से कि 'भाई, इधर न आ! बाहर रह। आगे जा। अभी हम दूसरे की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तू यहाँ खड़ा ही मत हो।' मगर फिर भी उसने घुसने की कोशिश की। तब तो वह नाराज हो गया, ब्राह्मण। उसने कहा, 'मैं कहता हूँ : आगे जा, अन्दर मत घुस। सिर फोड़ देंगे। अभी हम किसी और की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अपशकुन मत कर।'

साँझ हो गई; साँईं बाबा का कोई पता नहीं। वह फिर पहुँचा। साँईं बाबा ने कहा, 'भाई, तू न पहचानेगा। हम आये थे; तूने घुसने न दिया।' उन्होने कहा, 'महाराज, आप गलत कह रहे हैं; मैं बिलकुल टकटकी लगा कर देखता रहा। एक

भिखारी जरूर आ गया था बीच में; उसको मैंने हटाया कि कहीं इसकी बातचीत में और मैं चूक न जाऊँ कि आप आयें कुत्ते के रूप में और निकल जायें, और फिर चूक हो जाय।'

साँई बाबा ने कहा, 'मैं उसी भिखारी के रूप में आया था।'

हम वही देखते हैं, जो हमारी धारणा है। अगर तुमने मान लिया कि ईश्वर नहीं है, तो ईश्वर नहीं है। फिर ईश्वर लाख उपाय करे, नाचे तुम्हारे सामने आकर, तुम कहोगे--नहीं है। तुम कुछ और देखोगे। तुम व्याक्या कर लोगे कुछ। तुम समझोगे, कोई आदमी पागल हो गया है। या तुम समझोगे कि मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा हूँ, कि मैंने कुछ भाँग इत्यादि तो नहीं खा ली है? यह हो कैसे सकता है?

अगर तुमने मान लिया है कि कभी नहीं होगा, तो कभी नहीं होगा। तुम मालिक हो। तुम्हारे विपरीत यहाँ कुछ भी नहीं हो सकता।

मैं तुमसे यही कहता हूँ कि अभी हो सकता है, यहीं हो सकता है। तुम्हारी मरजी।

'यूँ मिले थे, मुलाकात हो न सकी। ओंठ काँपे मगर बात हो न सकी।' बात करने को भी क्या है? परमात्मा मिलेगा, तो क्या बात करोगे? कुछ कहने को होगा? ओठ कँप जायँ, काफी है। ओठ कँप जायँ, काफी से ज्यादा। और क्या करोगे? कहने को है क्या? आँसू बह जायँ--बस बहुत। नाच लो--बस बहुत।

'यूँ मिले थे, मुलाकात हो न सकी।' मुलाकात का क्या है? कहने को कुछ भी तो नहीं है हमारे पास। देने को कुछ भी नहीं है हमारे पास। पूछने को कुछ भी नहीं है हमारे पास।

लेकिन अगर तुम 'मुलाकात' में उत्सुक हो, तुम अगर परमात्मा का कोई साक्षात्कार' लेना चाहते हो, तो चूक हो जायेगी।

परमात्मा जिस रूप में आये, जैसा आये; और जिस रूप में तुम्हारे भीतर उस क्षण सहज स्फुरण हो, वही सच है, वैसा ही सच है।

'ओठ कँप जायँ--बहुत। न कंपें, तो भी बहुत। चुप रह जाओ--बहुत। आँख खुल जायँ--बहुत। आँख बंद हो जायँ--बहुत। बोलो--तो ठीक; न बोलो--तो ठीक।

इतनी भर श्रद्धा चाहिए—कि होगा।

और तुम पहले से आयोजन मत बनाओ कि क्या कहेंगे। क्योंकि कोई रिहर्सल काम न पड़ेगा। और सब रिहर्सल झूठे होते हैं।

परमात्मा से मिलन कोई अभिनय नहीं है। तुम पहले से तैयारी न कर सकोगे। जो भी तैयार कर लोगे, वह झूठा सिद्ध होगा। तुम तो सीधे, निष्कपट, बच्चे की

भाँति जाओ। तुम तो सरल चित्त से उसकी तरफ आँखें उठाओ।

अगर तुम मलूक से पूछोगे राह, तो मलूक की राह तो प्रेमी की राह है।

जो तिरे पास से आता है, मैं पूछूँ हूँ यही
क्यों जी, कुछ जिक्र हमारा भी वहाँ होता था!

भक्त तो यह मान कर ही चलता है कि जैसे मैंने उसे स्वीकार किया, वैसे उसने मुझे स्वीकार किया। उसका हूँ मैं; अस्वीकार करेगा भी कैसे? भक्त तो यह मान कर चलता है कि कुछ मुझे ही थोड़े उससे मिलने की आग लगी है; उस तरफ भी आग लगी है। कुछ इसी तरफ थोड़े ही प्यास है, उस तरफ भी प्यास है। और खयाल रहे, अगर हमारे ही तरफ प्यास होती, तो मिलन हो नहीं सकता था। उसकी तरफ से उपेक्षा होती, तो मिलन कैसे होता? दोनों हाथ ताली बजती है। भगवान और भक्त जब दोनों एक दूसरे की तरफ दौड़ते हैं, तब मिलन होता है। भक्त ही दौड़ता रहे और भगवान् को फिक्र ही न हो, तो भी नहीं होने वाला।

भगवान् तो दौड़ ही रहा है, तुम्हारी तरफ। वह तुम्हारे प्राणों का प्राण है। अन्यथा होगा भी कैसे? तुम जरा उसकी तरफ आँख उठाओ। एक कदम तुम उठाओ, हजार कदम उसने उठाये ही हुए हैं।

जो तिरे पास से आता है, मैं पूछूँ हूँ यही
क्यों जी, कुछ जिक्र हमारा भी वहाँ होता था!
क्या बुरी चीज है मुहब्बत भी
बात करने में आँख भर आई।

ओठ फड़फड़ा गये—बहुत। आँख भर आई--बहुत। ज्यादा क्या करोगे? लोभ मत करो। झलक मिल जाय--बहुत। झलक तो दूर, उसकी याद ही आ जाती है, यह भी कुछ कम नहीं। कितने अभागे हैं, जिनको याद भी नहीं आती, जिनके मुँह पर कभी राम नाम नहीं आता! जिनके प्राण में कभी राम नाम नहीं गूँजता।

सौभाग्यशाली हो कि कम से कम उसका नाम तो आता है; याद तो आती है; सोचते तो हो।

चलो यही सही--सोचते हो कि कभी मिलन नहीं होगा; फिर भी सोचते तो हो! यह भी कम सौभाग्य नहीं। कुछ तो ऐसे हैं, जो यह भी नहीं सोचते।

दुनिया में तीन तरह के लोग हैं। एक तो वे, जो सोचते हैं: मिलन होगा, होकर रहेगा। अडिग है--उनका भाव। तो होकर ही रहेगा। दूसरे वे, जो सोचते हैं: मिलन नहीं होगा। नहीं होगा। लेकिन फिर भी कम से कम सोचते तो हैं। कुछ तो सही। नकारात्मक ही सही।

तीसरे ऐसे हैं, जो उपेक्षा से भरे हैं, जो सोचते ही नहीं; उनकी हालत और

भी अजीब है। उनके लिए परमात्मा कभी प्रश्न ही नहीं बनता। अगर तुम उनसे परमात्मा की बात करो, तो वे ऐसे देखते हैं कि 'कहाँ की व्यर्थ की बातें कर रहे हो! अरे, कुछ काम की बात करो। कुछ मतलब की बात करो।' वे इतना भी नहीं कहते कि परमात्मा नहीं है।

नीत्शे ने लिखा है कि दिन थे, जब लोग परमात्मा को मानते थे; और दिन थे, जब लोग परमात्मा को नहीं मानते थे। अब तो ऐसा वक्त आ गया है कि लोग परमात्मा को विचारणीय भी नही मानते!

'नहीं' कहने की भी कौन झंझट लेता है! लोग कहते हैं : 'हाँ जी, होगा। चलो, काम की बात करें।'

तुम्हारी धारणा पर सब निर्भर है। और जब धारणा पर ही सब निर्भर है, तो क्यों नकारात्मक धारणा बनाओ। क्यों न विधायक धारणा हो! और भक्ति तो विधायक धारणा है।

शब वही शब हैं, दिन वही दिन हैं,
जो तिरी याद में गुज़र आये।

याद करो। तुम फ़िक्र छोड़ो मिलने—न मिलने की। तुम सिर्फ करो। तुम सिर्फ पुकारो।

सबा, यह उनसे हमारा पयाम कह देना
गये हो जब से, यहाँ सुबह-ओ-शाम ही न हुई।

याद जब आ जाये, तो पुलक से भर जाना। जब याद खो जाये, तो रोना और कहना :

सबा, यह उनसे हमारा पयाम कह देना
गये हो जब से, सुबह-ओ-शाम ही न हुई।

लेकिन फिर भी मैं तुमसे इतना कहूँगा कि नकारात्मक धारणा भी अच्छी है— उपेक्षा से। कुछ तो है; चलो, दुश्मनी ही सही।

कत्अ कीजे न तअल्लुक हमसे
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही।

चलो, दुश्मनी ही सही। चलो, नकारात्मक सम्बन्ध ही सही। पीठ ही किये हो परमात्मा की तरफ; चलो, कम से कम पीठ तो किये हो! पीठ है, तो कभी मुँह भी हो जायेगा।

लेकिन सरल हो जाय बात। क्यों न सरल बना दो इसे; क्यों न उन्मुख हो जाओ!

मैं तुमसे जो बार-बार कहता हूँ : अभी हो सकता है—यहीं हो सकता है, उसका

केवल इतना ही प्रयोजन है कि भाव तुम्हारे भीतर प्रगाढ़ हो जाय कि जब तुम चाहोगे, तभी हो सकता है। तुम्हारी चाहत की पूर्णता चाहिए। तुम्हारी चाहत में त्वरा चाहिए। तुम्हारी चाहत में बल चाहिए।

और जब तुम्हारा मिलन होगा, तब तुम चकित होओगे : तुम ही मिलने को उत्सुक नहीं थे; वह भी उत्सुक था। सदियों तुम ही नहीं तड़पे, तुमने उसे भी तड़पाया।

जब सुना, तुम भी मुझे याद किया करते हो
क्या कहूँ, हद न रही कुछ मिरी हैरानी की!

जान कर तुम कितने न चकित हो जाओगे उस दिन, जिस दिन तुम पाओगे : परमात्मा भी तुम्हारी याद कर रहा था; अस्तित्व तुम्हें पुकार रहा था।

हम जिससे दूर हो गये हैं, हमने भी कुछ नहीं खोया है, उसने भी कुछ खोया है।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ : अभी घटना घट सकती है। अगर अकेले तुम्हारी ही यात्रा की बात होती, तो शायद कभी नहीं घट सकती थी। मैं तुम्हारे प्रश्न का ऐसा ही अर्थ लेता हूँ।

तुम यह सोच रहे हो कि अपने ही प्रयास से करना है, परमात्मा का कुछ पता नहीं। सोचता भी हो, न सोचता हो! उसे हमारा पता भी हो, न पता हो! उसे रस भी हो हमसे मिलने में या न हो। हम ही को चलना है। तो फिर रास्ता बड़ा लम्बा हो जायेगा। रास्ता अकेला हो जायेगा, इसीलिए लम्बा हो जायेगा।

लेकिन सारे संतों के अनुभव का सार यही है कि जिसने भी उससे मिलन पाया, उसने लौट कर यही कहा : 'हम ही उसको याद नहीं करते थे; वह भी हमें पुकारता था।'

इसलिए कहता हूँ : ध्यान दो; गुनो। अभी हो सकता है, यहीं हो सकता है। यह बात तुमसे मैं दोहराये जाऊँगा, ताकि यह पड़ती रहे चोट, पड़ती रहे चोट; बूँद-बूँद सागर बन जाता है

● पाँचवाँ प्रश्न : मैं जप, तप, भक्ति, ध्यान—सब कर चुका हूँ। लेकिन कहीं कुछ नहीं मिला। अब आपकी शरण आया हूँ। मुझे उबारें।

तुमने जो भी किया होगा—किया नहीं। बस, ऐसे ही टाल दिया होगा। नहीं तो जप, तप, भक्ति, ध्यान सब कर लेते और न मिलता! अरे, एक ही कर लेते तो मिल जाता। इतनी दवाइयाँ पीने की जरूरत न थी। ऐसी कोई बीमारी नहीं है तुम्हारी।

तुम कहते हो कि तुम पूरा दवाखाना पी गये!

इतनी जरूरत ही न थी; इतने कुएँ नहीं खोदने थे।

जलालुद्दीन रूमी एक दिन अपने शिष्यों को लेकर आश्रम के पास के खेत में गया और उसने अपने शिष्यों को कहा कि 'कुछ पाठ सीखो। देखो, यहाँ क्या हो रहा है!' खेत का किसान कुछ झक्की रहा होगा। उसे कुआँ खोदना था, तो उसने एक कुआँ खोदा—आठ, दस फीट खोदा; फिर उसने कहा: 'अरे, यहाँ पानी नहीं मिलता!' तो उसने दूसरा कुआँ खोदा। ऐसे वह कोई दस कुएँ खोद चुका। पूरा खेत ही खराब कर डाला। और अब ग्यारहवाँ खोद रहा था!

जलालुद्दीन ने कहा, 'जरा इस किसान से कुछ सीखो। अब यह ग्यारहवाँ खोद रहा है। और आठ-दस फीट फिर खोदेगा और फिर पायेगा कि पानी नहीं मिलता।' आठ-दस फीट में कहीं पानी मिलता है! पचास फीट जाना चाहिए। और अगर यह एक ही कुआँ खोदता रहता, तो कभी का पानी मिल गया होता। मगर वह खोदता है एक; छोड़ देता है बीच में। देखता है कि मिट्टी ही मिट्टी आती जाती है; पानी तो आता नहीं। पहले मिट्टी ही आती है।

सच तो यह है कि जब तुम कुआँ खोदते हो, तो पहले तो कूड़ा-करकट हाथ आते हैं। फिर रूखी मिट्टी हाथ आती है। फिर गीली मिट्टी हाथ आती है। पानी की खबर मिलने लगी। जब से मिट्टी गीली होती है—पानी की खबर मिलने लगी।

जब से तुम्हारी आँखों में आँसू आने लगते और हृदय गीला होने लगता—पानी की खबर मिलने लगी।

फिर पानी भी आता है, तो पीने-योग्य नहीं होता। गन्दा होता है; मटमैला होता है।

मगर जब पानी आ गया, तो पीने-योग्य भी आ जायेगा। खोदे जाओ। फिर जल्दी ही निर्मल झरने उपलब्ध हो जाते हैं। मगर खुदाई चाहिए।

मुझे ऐसा लगता है ..कि तुम कहते हो: 'मैंने जप, तप, भक्ति ध्यान—सब किया।' तुमने कई गड्ढे खोदे, लेकिन कुआँ नहीं खोदा। 'लेकिन कहीं कुछ नहीं मिला।'

तो तुम्हारी शिकायत ऐसी लगती है, जैसे परमात्मा ने तुम्हें धोखा दिया! 'कहीं कुछ नहीं मिला!'

अब तुम यहाँ आ गये हो. चलो कोई हरजा नहीं। यहाँ कुआँ खोदना, गड्ढा मत खोदना।

और तुम पहले से होशियारी कर रहे हो! अब तुम कह रहे हो: 'आपकी शरण आ गया हूँ; मुझे उबारें।' तुम यह कह रहे हो कि अब मैं कुआँ खोदूँ।

तुम अपनी पुरानी तरकीब छोड़ो। कुआँ तुम्हीं को खोदना पड़ेगा। मैं इतना ही आश्वासन दे सकता हूँ कि बीच में छोड़ने न दूँगा। भागने लगोगे; पुरानी

आदत; इतने जप-तप तुमने किये हैं; दो-चार दिन बाद तुम कहोगे कि अब चले! इतना ही आश्वासन दे सकता हूँ कि रोकने की पूरी कोशिश करूँगा। कुआँ तो तुम्हीं को खोदना पड़ेगा।

यह कुआँ ऐसा है कि दूसरे के खोदे नहीं बनता। यह तुम्हारी आत्मा का कुआँ है। यह तुम्हें अपने भीतर खोदना है।

त्वरा चाहिए। एकजुट भाव चाहिए। सातत्य चाहिए। धीरज चाहिए। प्रतीक्षा चाहिए। प्रार्थना चाहिए। और लग गये एक बार तो लौटने की जल्दबाजी नहीं चाहिए।

क्या जल्दी है लौटने की? लौट कर भी क्या मिलेगा?

बहुत लोग हैं. यही करते रहते हैं। दो दिन कुछ किया; चार दिन कुछ किया। बड़ी जल्दी में हैं! एकदम चाहते हैं। जल्दबाजी के कारण कहीं भी कुछ बात पूरी नहीं हो पाती। किसी पौधे की ठीक-ठीक जड़ें नहीं निकल पातीं।

तुमने छोटे बच्चों को देखा। कभी कभी आम की गुठली को गाड़ आते हैं। मगर चैन नहीं उनको! थोड़ी देर बाद खोद कर देखते हैं कि अभी तक आम का पौधा निकला कि नहीं! रात नींद नहीं आती। कई दफा खयाल आ जाता है कि पौधा शायद निकल आया हो! सुबह उठ कर फिर खोद कर देख लेते हैं।

पौधा कभी न निकलेगा। जरा जमीन में गुठली को पड़े तो रहने दो; गलने तो दो। उखाड़-उघाड़ कर बार-बार मत देखो।

पाने की बहुत जल्दी मत रखो। मिलेगा। तुम अपना श्रम पूरा करो। तुम अपनी तरफ से कमी मत करो।

फिर इतनी दवाइयों की जरूरत भी नहीं है। कभी-कभी बहुत दवाइयाँ फायदे की जगह नुकसान कर जाती हैं। और जो दवाई तुम्हारे लिए न हो, वह दवाई हानिकर होती है।

अब तुमने जप, तप, ध्यान, भक्ति सब कर डाला। जरा यह तो सोचना चाहिए कि मेरे अनुकूल क्या है। मेरी तरंग किससे बैठती है। मेरे भाव की गाँठ किससे बँधती है। जरा इसे देखना चाहिए। जल्दी ही खोदने मत लग जाओ।

जरा देख भी तो लो कि यहाँ जल मेरे लिए मिलेगा? या यह जो जल मिलेगा, वह मेरे लिए होगा? थोड़ा देख कर, थोड़ा परख कर, थोड़ा समझपूर्वक...।

अगर तुम्हारे भीतर प्रार्थना सरलता से उठती हो, सुगमता से उठती हो, श्रद्धा का बहाव सहज हो; संदेह करने में तुम्हें कठिनाई होती हो, और श्रद्धा सरलता से आती हो, तो भक्ति, प्रार्थना, पूजा, अर्चना—उस तरफ लगो।

अगर तुम्हें संदेह बड़ी तीव्रता से आता हो, श्रद्धा बिठानी मुश्किल पड़ती हो;

लाख उपाय करो, श्रद्धा खिसल-खिसल जाती हो; पैर फिसल-फिसल जाते हों, तो फिर तुम भक्ति की फिक्र छोड़ो। फिर ध्यान। फिर बोध का मार्ग पकड़ो, जहां श्रद्धा अनिवार्य शर्त नहीं है।

लेकिन पहले अपनी जरा ठीक से पहचान कर लो। इसके पहले कि तुम यात्रा पर निकलो, थोड़ा अपना आत्म-निरीक्षण कर लो। और कठिन नहीं है यह बात। तुम अगर जरा ही शांत बैठ कर विचार करोगे, तो तुम्हें यह बात दिखाई पड़ने लगेगी कि तुम्हारे लिए क्या उचित और अनुकूल होगा।

> हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे
> प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है।
> पपिहे पर वज्र गिरे, फिर भी उसने अपनी
> पीड़ा को किसी दूसरे जल से नहीं कहा
> लग गया चाँद को दाग, मगर अब तक निशि का
> आँगन तजकर वह और न जाकर कहीं रहा।
> हर एक यहाँ है अडिग, अचल अपने प्रण पर
> फिर तू ही क्यों भटका फिरता है इधर-उधर
> मत बदल-बदल कर राह सफर तय कर अपना।
> हर पथ मंजिल की दूरी नहीं घटाता है।
> हर देहरी पर मत अपनी भक्ति चढ़ा पागल!
> हर मंदिर का भगवान् न पूजा जाता है!
> हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे
> प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है।

पहले ठीक से पहचान तो लो। जहर किसी बीमारी में अमृत हो जाता। और किसी बीमारी में अमृत भी जहर हो जाता है।

तुम्हारी बीमारी क्या है?

तुम संदेह की बीमारी से भरे हो, तो ध्यान की औषधि काम आयेगी। फिर तुम श्रद्धा के मार्ग पर न चल सकोगे।

अगर तुम्हारे भीतर श्रद्धा का झरना कलकल बह रहा है, सुगमता से तुम श्रद्धा कर लेते हो; चाहे कोई लूटे, कोई धोखा दे, चाहे कोई कुछ भी तुम्हारे साथ कर ले, फिर भी तुम्हारी श्रद्धा अखण्ड बनी है, टूटती नहीं, मिटती नहीं, तो फिर भक्ति के रास्ते से तुम ऐसे उतर जाओगे, कि पतवार भी न चलानी पड़ेगी। जैसे पाल खोल देते हैं न नाव का; और बैठ जाते हैं—हवा के रुख को देख कर—और नाव चल पड़ती; हवा ले जाती।

विपरीत मत लड़ो। जो तुम्हारे अनुकूल न हो, उससे मत उलझो।

ऐसा लगता है कि तुम उलझे होओगे—व्यर्थ की विपरीतताओं से।

'जप, तप, भक्ति, ध्यान सब कर चुका।' एक से ही काम हो जाता। इतने द्वार-दरवाजे बदलने की जरूरत नहीं है।

मैं पहली बात तुमसे जो कहना चाहता हूँ, वह बुनियादी है, उसके बाद ही ठीक कदम उठते हैं। पहले अपनी पहचान कर लो।

दुनिया में दो तरह के स्वभाव हैं: पुरुष का स्वभाव और स्त्री का स्वभाव। सारा अस्तित्व दो में विभाजित है—स्त्री और पुरुष। और मनुष्य की दुविधा यही है कि मनुष्य का निर्माण दोनों से मिल कर हुआ है। तुम्हारा आधा हिस्सा तुम्हें माँ से मिला है और आधा हिस्सा पिता से मिला है। तो तुम्हारे भीतर दोनों मौजूद हैं—स्त्री भी मौजूद है, पुरुष भी मौजूद है। तो कोई पुरुष अकेला पुरुष नहीं है; पुरुष के साथ-साथ स्त्री भी है। और कोई स्त्री अकेली स्त्री नहीं है; स्त्री के साथ-साथ पुरुष भी है। जो अन्तर है, वह मात्रा का है। हो सकता है: तुम पचपन प्रतिशत पुरुष हो और पैंतालीस प्रतिशत स्त्री हो। बस, इस, इतना ही अंतर है। या कि तुम साठ प्रतिशत स्त्री हो और चालीस प्रतिशत पुरुष हो। बस, अंतर मात्रा का है; अंतर गुण नहीं है।

इसीलिए तो कभी-कभा ऐसी घटना घट जाती है कि कोई पुरुष पुरुष था और फिर अचानक रूपांतरण हो जाता है और स्त्री हो गया। कि स्त्री थी, और अचानक रूपांतरण हो गया और पुरुष हो गया।

और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि दिक्कत नहीं है। हारमोनल परिवर्तन से स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाया जा सकेगा। और भविष्य में, इस सदी के बीतते-बीतते बहुत लोग इस परिवर्तन से गुजरेंगे। क्योंकि ऊब जाते लोग! स्त्री रहते-रहते ऊब गये; पुरुष हो गये। पुरुष रहते-रहते ऊब गये; स्त्री हो गये। ज्यादा स्वतंत्रता हो जायेगी। एक ढंग का जीवन देख लिया, दूसरे ढंग का जीवन देख लें।

यह रूपांतरण संभव है, क्योंकि तुम दोनों हो। मनुष्य बायसेक्सुअल है।

इसका मतलब यह हुआ कि धर्म के जगत् में भी तुम्हारे भीतर से दो राहें निकलती हैं—एक पुरुष की, एक स्त्री की। पुरुष की राह है ध्यान की, स्त्री की राह है प्रेम की।

तो तुम अपने भीतर ठीक से पहचान लो। और ध्यान रखना: यह मत समझना कि तुम शारीरिक रूप से स्त्री हो, इसलिए तुम्हें अनिवार्य रूप से प्रेम का मार्ग ठीक पड़ जायेगा। ज्यादा सम्भावना है, मगर अनिवार्य नहीं है। और यह भी मत समझ लेना कि तुम पुरुष हो, शरीर से पुरुष हो, इसलिए तुम्हें ध्यान का

मार्ग सुगम पड़ जायेगा। सम्भावना ज्यादा है, लेकिन अनिवार्य नहीं है। ठीक से अपने भीतर पहचान करनी पड़ेगी।

बहुत पुरुष हैं, जिनके भीतर बड़ी स्त्रैण कोमलता है। और बहुत स्त्रियाँ हैं, जिनके भीतर बड़ी परुष कठोरता है।

कुछ भी बुरा नहीं है; जैसा है--ठीक है। उसको ठीक से पहचान लो और उसके अनुकूल चल पड़ो। या तो ध्यान--या प्रेम। इन दो में से चुनाव कर लेना है। यह चुनाव एक बार ठीक हो जाय, तो फिर पूरी ताकत लगा दो। यहाँ-वहाँ मत भटको। फिर बार-बार गड्ढे अलग-अलग जगह मत खोदो। एक ही दवा काफी है।

और तुम कहते हो : 'अब आपकी शरण आया, मुझे उबारें।' मैं पूरा साथ दूंगा; उबरना तो तुम्हें ही पड़ेगा। क्योंकि इस गड्ढे में तुम गये हो खुद; मैं तुम्हें इस गड्ढे में ले नहीं गया। तुम बिना सहारे इस गड्ढे में गये हो। चाहो तो तुम बिना सहारे भी बाहर आ सकते हो। लेकिन अगर यह कठिन मालूम पड़ रहा हो, तो किसी के हाथ का सहारा पकड़ा जा सकता है। लेकिन फिर भी आना तुम्हीं को बाहर पड़ेगा।

परमात्मा उधार नहीं मिल सकता; किसी और के द्वारा नहीं मिल सकता। और अच्छा है--कि किसी और के द्वारा नहीं मिलता। परमात्मा भी उधार मिलने लगता, तो सारा मूल्य खो जाता। जितना तुम श्रम करोगे उसे पाने के लिए, उतना ही आनंद का अनुभव होगा।

अच्छा है कि परमात्मा तक पहुँचने के लिए हमें पहाड़ की चढ़ाई पर से खुद जाना पड़ता है। सब तरह के बोझ अलग कर देने होते हैं। और धूप, गरमी, और वर्षा और शीत--सब सहनी पड़ती है। अच्छा है कि परमात्मा के शिखर पर ले जाने के लिए कोई हेलिकॉप्टर नहीं है, नहीं तो सब मजा चला जायेगा। ऐसा ही तो हो रहा है—प्रकृति में।

समझो : जब तेनसिंग और हिलेरी पहली दफा एव्हरेस्ट पर गये, तो जो आनंद उन्हें अनुभव हुआ होगा, अगर तुम्हें हेलिकॉप्टर से ले जाकर एव्हरेस्ट पर उतार दिया जाय, तो तुम्हें वह आनंद अनुभव नहीं होगा। क्योंकि आनंद का निन्यानबे प्रतिशत तो यात्रा में है। मंजिल तो यात्रा की ही पूर्णाहुति है। यात्रा के बिना पूर्णाहुति कैसी? वह निन्यानबे प्रतिशत खो गया, तो पूर्णाहुति कैसी?

तुम अगर हेलिकॉप्टर से उतार दिये गये--एव्हरेस्ट पर, तो तुम्हें आखिरी एक प्रतिशत मिलेगा। वह निन्यानबे प्रतिशत तो खो गया। और निन्यानबे प्रतिशत के कंधे पर बैठ कर यह एक प्रतिशत शिखर पर पहुँचता था। यह जमीन पर पड़ा

रह जायेगा; इसका कोई मूल्य नहीं है।

तुम ऐसा ही समझो कि तुम पानी गरम कर रहे हो। तुमने निन्यानबे डिग्री तक पानी गरम किया; अभी भी भाप नहीं बना है। फिर सौ डिग्री तक पानी गरम हुआ और छलाँग लगी; भाप बना। तुमने कहा, 'अरे! सौवीं डिग्री पर बनता है भाप; एक ही डिग्री की तो बात है! निन्यानबे से सौवीं डिग्री--एक ही डिग्री पर भाप बनता है।' मगर यह एक डिग्री निन्यानबे के बाद आनी चाहिए। अगर तुम यही एक डिग्री लेकर बैठे रहे, और पानी को कुनकुनाते रहे, कभी भाप न बनेगा। निन्यानबे डिग्री के कंधे पर बैठ कर आनी चाहिए।

मंजिल यात्रा की पूर्णाहुति है। तो जितनी कठोर, जितनी श्रम साध्य यात्रा है, और जितने आनंद और उत्सव से गीत गा कर तुम पूरा करोगे, उतने ही चरम शिखर पर तुम पहुँचोगे।

परमात्मा तक जाने के लिए कोई हेलिकॉप्टर नहीं है। हो भी नहीं सकता। इसलिए मैं तुम्हें नहीं उबार सकूँगा। तुम उबरोगे, तो ही उबरोगे। बुद्ध ने कहा है : बुद्ध पुरुष इशारा कर सकते हैं, चलना तो तुम्हीं को पड़ेगा।

● आखिरी प्रश्न : आप कहते हैं कि उदासी ठीक नहीं है, लेकिन मृत्यु के रहते उदासी से मुक्त कैसे हुआ जा सकता है?

दृष्टि की बात है। अभी मृत्यु कहाँ! अभी तो तुम जीवित हो। एक बात तो पक्की है : अभी तुम मरे नहीं। अगर जीवन के रहते तुम जीवन के आनंद से नहीं भरे हो, तो फिर मृत्यु की बात उठा कर...।

अभी मृत्यु हुई नहीं है; होगी कभी। और कौन जाने--होगी कि नहीं होगी! क्योंकि जानने वाले तो कहते हैं : मृत्यु बड़े से बड़ा झूठ है। होता ही नहीं; आभास मात्र है। शरीर तो मरता नहीं, क्योंकि शरीर मरा हुआ है। और आत्मा मर नहीं सकती, क्योंकि आत्मा अमर है। दोनों का संयोग टूटता है। संयोग टूटने का नाम मृत्यु है; बस।

ऐसा ही समझो कि सुई धागा, अलग-अलग हो गये। बस इतना। इससे ज्यादा नहीं। सुई भी है; धागा भी है। फिर पिरो लोगे। अगर थोड़ी वासना है, तो फिर धागा सुई में पिरो जाएगा। फिर नया जन्म ले लोगे।

जीवन शाश्वत है। देह जीवित नहीं है। और जो तुम्हारे भीतर जीवित है, वह कभी मृत नहीं हो सकता। मगर यह तो जाननेवालों की बात हुई। तुम्हें भय लगा है। मगर एक बात तो समझो : अभी मौत आयी नहीं। अभी तो जीवन को जी लो।

तुम कहते हो : मौत के रहते आदमी कैसे उदास न हो? मैं कहता हूँ : जीवन के रहते तुम उदास कैसे हो? अगर जीवन के रहते तुम उदास हो, तो मौत का

तो सिर्फ तुम बहाना खोज रहे हो। इधर जीवन बरस रहा है; सब तरफ वसंत है; वृक्षों पर फूल खिले हैं; पक्षियों के कंठों में गीत हैं। सब तरफ चाँद-तारे नाच रहे हैं—और तुम बैठे हो उदास! तुम कहते हो : मौत के रहते ...।

मौत कहाँ है अभी? तुम तो नहीं मरे! जब मरो, तब देख लेना। जब मरो, तब उदास हो लेना। अभी तो नाचो। और मैं तुमसे यह कहता हूँ : अगर तुम अभी नाचो, तो तुम्हारा नाच तुम्हें मृत्यु से मुक्त कर देगा। अगर तुम उत्सव में में पूरे डूब जाओ, तो तुम जान लोगे अमृत को।

अमृत उत्सव में ही जाना जाता है; गहन आनंद के क्षण में ही पहचाना जाता है। उसे पहचान लिया, तो फिर कोई मृत्यु न होगी।

तुम कहते हो : मृत्यु के रहते कैसे उदास न हों? मैं कहता हूँ : जीवन है; जीवन के परम नृत्य में सम्मिलित हो जाओ। जीवन को जानते ही तुम जान लोगे : मृत्यु होती नहीं।

यह जाने का छिन आया
पर कोई उदास गीत अभी गाना ना।

वह जो जानता है, वह तो मृत्यु के क्षण में भी तुमसे कहेगा––कि ठहरो। बुद्ध ने कहा : 'मैं जाता हूँ।' शिष्य रोने लगे। बुद्ध ने कहा : 'यह कैसी बात! चालीस वर्षों तक निरंतर यही समझाया कि मृत्यु नहीं होती। फिर भी तुम रोने लगे! तुमने मुझे सुना या नहीं?' उनका निकटतम शिष्य आनंद भी छाती पीटकर रोने लगा। बुद्ध ने कहा : आनंद, तू पागल हुआ है! चालीस वर्ष छाया की तरह मेरे पीछे रहा; मेरी हर बात सुनी, फिर भी तू रोता है! मेरे जाने से क्या होगा? कौन जा रहा है? कौन जाता है? न कभी कोई गया; न कभी कोई जाता है।'

यह जाने का छिन आया
पर कोई उदास गीत अभी गाना ना।
चाहना जो चाहना
पर उलाहना मन में ओ मीत कभी लाना ना।
वह दूर, दूर, सुनो, कहीं लहर
लाती है और भी दूर––दूर––दूरता का स्वर;
उसमें हाँ मोह नहीं,
पर कहीं बिछोह नहीं,
वह गुरुतर सच युगातीत
रे भूलाना ना।

मृत्यु के क्षण में, जिसने जीवन को खूब जि ।। है, भरपूर जिया है, वह तो सुनेगा :

वह दूर––दूर सुनो, कहीं लहर
लाती है और भी दूर––दूर––दूरता का स्वर।

वह तो सुनेगा : आ गया परम का स्वर, परम का संगीत, परमात्मा की पुकार।

उसमें हाँ मोह नहीं
पर कहीं बिछोह न हीं
वह गुरुतर सच युगातीत
रे भुलाना ना।
यह जाने का छिन आया
पर कोई उदास गीत अभी गाना ना
नहीं भोर संझा
उमगते-निमगते
सूरज, चाँद, तारे
नहीं वहाँ
उझगते-झिझकते
डगमग किनारे
वहाँ एक अंतःस्थ आलोक
अविराम रहता पुकारे
यही ज्योति कवच
है हमारा निजी सच
सार जो हमने पाया
गढ़ा, चमकाया, लुटाया
उसकी सुप्रीत छाया से बाहर ओ मीत
अब जाना ना
कोई उदास गीत ओ मीत अभी गाना ना।

जिसने जीवन को जिया है—भरपूर जिया है, बेझिझक जिया है, समग्र भाव से जिया है, मौत के क्षण में वह देखेगा : जा रहा हूँ उस लोक में—

'नहीं भोर संझा
उमगते-निमगते'...।

जहाँ न सुबह होती, न सांझ। परिवर्तन नहीं है।

सूरज, चाँद, तारे
नहीं वहाँ
उझगते-झिझकते

डगमग किनारे
वहाँ एक अंतःस्थ आलोक
अविराम रहता पुकारे।'

वहाँ तो भीतर का सूरज जलता है।

वहाँ एक अन्तःस्थ आलोक
अविराम रहता पुकारे
यही ज्योति कवच
है हमारा निजी सच

यही हमारी निजी सत्यता है; यही हमारा प्रामाणिक सत्य है। अमृत हमारा प्रामाणिक सत्य है।

वेद कहते हैं : अमृतस्य पुत्रः। हे अमृत के पुत्रों, मृत्यु के झूठ में मत पड़ जाना।

यही ज्योति कवच
है हमारा निजी सच
सार जो हमने पाया
गढ़ा—चमकाया—लुटाया
उसकी सुप्रीत छाया से बाहर ओ मीत
अब जाना ना।

जिसने जाना है जीवन को, जो देखेगा मृत्यु में गहरी आँख से, वह कहेगा : अब जो एक प्रीतिपूर्ण छाया पड़ रही है, अब इसके बाहर नहीं जाना है। मृत्यु उसके लिए समाधि है।

सार जो हमने पाया
गढ़ा—चमकाया—लुटाया
उसकी सुप्रीत छाया से बाहर ओ मीत।
अब जाना ना।
कोई उदास गीत ओ मीत, अब गाना ना
चाहना जो चाहना
पर उलाहना मन में ओ मीत कभी लाना ना।

जिन्होंने जाना है, वे तो कहेंगे : मृत्यु से कोई शिकायत नहीं है; कोई उलाहना नहीं है। मृत्यु कुछ छीनती नहीं है। अगर तुम सजग हो, तो मृत्यु कुछ दे जाती है। मृत्यु इस जीवन का अन्त नहीं है—महाजीवन का प्रारम्भ है।

और तुम कहते हो : 'मृत्यु के रहते हम उदास कैसे न हों!'

मृत्यु है कहाँ? मृत्यु तुमने मान रखी है। और तुम्हारी मान्यता तब तक न

टूटेगी, जब तक तुम जियो न। इसलिए कहता हूँ : उमंग से जियो; मस्ती से जियो; गीत गुनगुनाते जियो; तुम्हारा जीवन एक नृत्य हो—एक उत्सव हो। उस उत्सव की चोट में ही सारी मृत्यु पिघल कर बह जाती है और तुम्हारा जो निजी सच है, यह बिखर कर सामने आ जाता है।

फिर तुम मृत्यु के द्वार पर परमात्मा को अपने से मिलता हुआ पाओगे। मृत्यु का द्वार खुलेगा और तुम पाओगे : तुम परम ज्योति में प्रवेश पा रहे हो। कोई शिकायत न होगी; धन्यवाद होगा। प्रार्थना-पूजा का भाव होगा—मृत्यु के क्षण में भी। क्योंकि तुम मन्दिर के द्वार पर खड़े होओगे।

जियो; जो ठीक से जी लेता, उसके लिए मृत्यु नहीं है। और जो ठीक से नहीं जीता, वह रोज-रोज मरता है, हजार बार मरता है, व्यर्थ ही मरता है।

आज इतना ही।

प्रभु की अनुकम्पा

पाँचवाँ प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १५ मई, १९७७
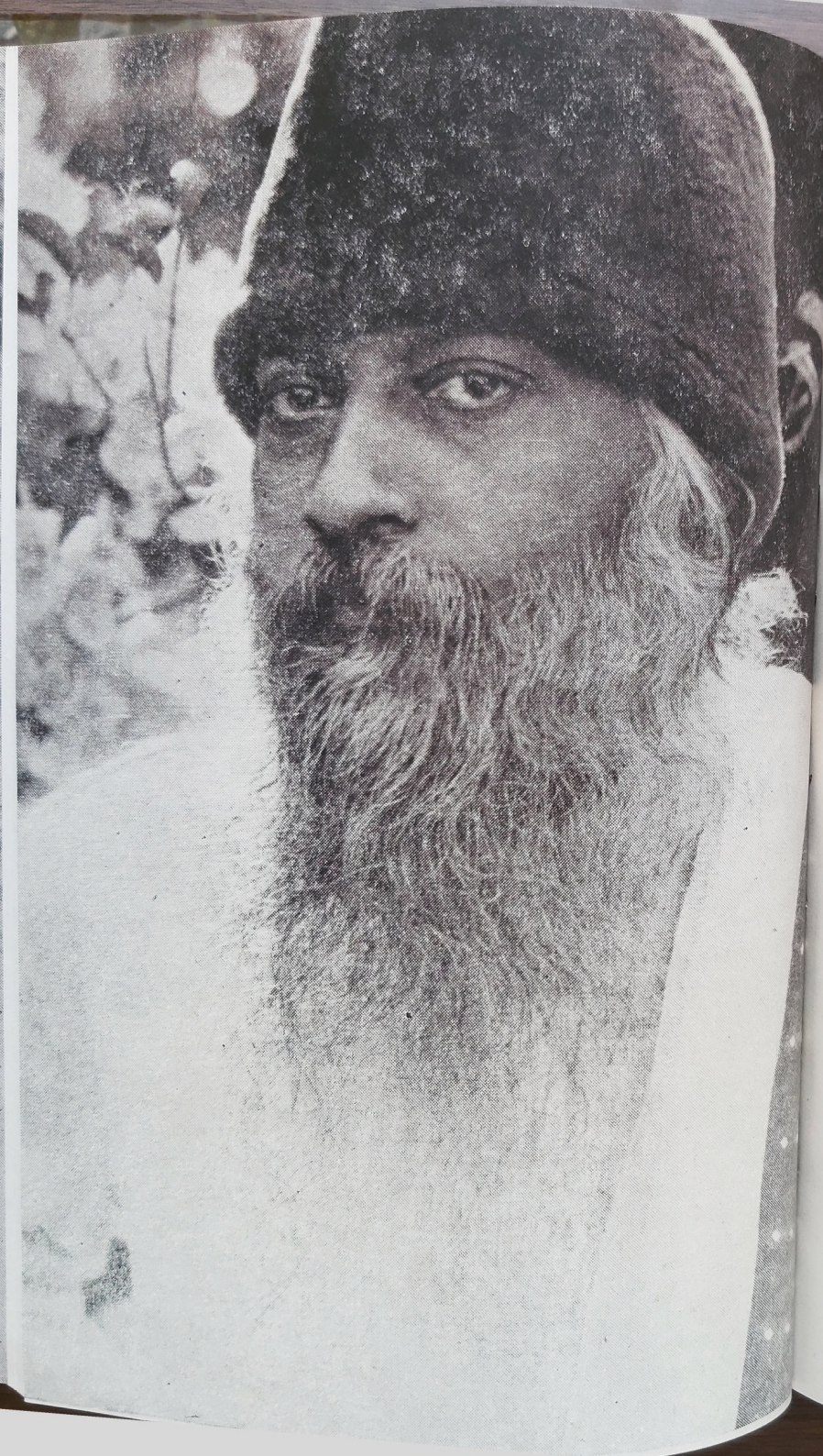
भील कद करी थी भलाई जिया आप जान,
फील कद हुआ था मुरीद कहु किसका ।।
गीध कद ज्ञान की किताब का किनारा छुआ,
ब्याध और बधिक तारा, क्या निसाफ तिसका ।।
नाग कद माला लैके बंदगी करी थी बैठ,
मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका ।।
एतै बदराहों की तुम बदी करी थी माफ,
मलूक अजाती पर एती करी रिस का।।

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ ।
दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिनके साथ ।।
राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस ।
पानी तहाँ न पीजिए, परिहरिये सो देस ।।

बाबा मलूकदास एक अवधूत हैं। अवधूत का अर्थ है--संन्यास की परम अवस्था जहाँ न कोई नियम शेष रह जाते हैं--न कोई मर्यादा; जहाँ न कुछ शुभ है, और न कुछ अशुभ; जहाँ व्यक्ति जीता--सहज समाधि से; जहाँ जो हो, वही ठीक है; जहाँ स्वीकार सम्पूर्ण है; जहाँ कोई निषेध नहीं रहा; क्या करना, क्या न करना--ऐसी धारणाएँ, व्यवस्थाएँ, नहीं रहीं; जहाँ व्यक्ति फिर से छोटे बच्चे की भाँति हो जाता है।

अवधूत की दशा को परम-दशा कहा है; वह पुनर्जन्म है; वह नया जन्म है।

एक जन्म मिलता है माँ से, फिर उस जन्म के साथ आई हुई निर्दोषता, कोमलता, पवित्रता--सब खो जाती है--समाज की भीड़ में, ऊहापोह में, संसार के जंजाल में। बेईमानी सीखनी पड़ती है, धोखा-धड़ी सीखनी पड़ती है, अविश्वास सीखना पड़ता है। तो जिस श्रद्धा को लेकर मनुष्य पैदा होता है, वह धूमिल हो जाती है। फिर उस धूमिल दर्पण में परमात्मा की छबि नहीं बनती। और हजार-हजार विचारों की तरंगें--छबि बिखर-बिखर जाती है। जैसे कभी तरंगें उठी झील में चाँद का प्रतिबिम्ब बनता है; तो बन नहीं पाता; लहरों में टूट जाता है; बिखर जाता है। पूरी झील पर चाँदी फैल जाती है। लेकिन चाँद कहाँ है, कैसा है--यह पता लगाना मुश्किल हो जाता है।

झील चाहिए शांत, झील चाहिए निर्मल, तो चाँद का मुखड़ा दिखाई पड़ता है। ऐसा ही जब चित्त की झील निर्मल होती है, तो परमात्मा का रूप दिखाई पड़ता है।

परमात्मा को जानने के लिए शास्त्र की जानकारी नहीं--शब्द से मुक्ति चाहिए। और परमात्मा को जानने के लिए बहुत गणित और तर्क नहीं--निर्दोष मन चाहिए; फिर से एक जन्म चाहिए।

अवधूत का अर्थ है : जो फिर से जनमा और जिसने फिर से बालक-जैसी सरलता को उपलब्ध कर लिया।

सारा योग, सारी भक्ति, सारे ध्यान इतना ही करते हैं कि जो गंदगी और जो

कचरा समाज तुम पर जमा देते हैं, उसे हटा देते हैं। उनका प्रयोग नकारात्मक है। योग या भक्ति तुम्हें कुछ देते नहीं, समाज ने जो दे दिया है, उसे छीन लेते हैं। तुम फिर वैसे के वैसे हो जाते हो, जैसा तुम्हें होना था।

तो निश्चित ही अवधूत की परमदशा में न तो कुछ पुण्य बचता है, न कोई पाप बचता है। अवधूत की परमदशा में तो फिर से बालपन लौटा। और यह बालपन गहरा है--पहले बालपन से ज्यादा गहरा है। क्योंकि पहला बालपन अगर बहुत गहरा होता, तो नष्ट न हो सकता था। नष्ट हो गया। संसार के झंझावात न झेल सका। कच्चा था; अप्रौढ़ था। सरल तो था, लेकिन बुनियाद बहुत मजबूत न थी उस सरलता की। जरा से हवा के झोंके आये और झील कँप गई। जरा मुसीबतें आईं और चित्त उद्विग्न हो गया। वृक्ष तो था, लेकिन जड़ें नहीं थीं बहुत गहरी, तो जरा-जरा से हवा के झोंके उसे उखाड़ गये।

दूसरा जो बचपन है, वह ज्यादा गहरा होगा, क्योंकि स्वयं उपलब्ध किया हुआ होगा; जागरूक होगा। दूसरा जो बचपन है, उसी को हमने इस देश में 'द्विज' कहा है--दूसरा जन्म।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं...। और यह बँटवारा बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक तो वे, जो एक ही बार जन्मते हैं; उनको ही पारिभाषिक अर्थों में शूद्र कहा जाता है--जो एक ही बार जन्मे हैं; जिन्होंने पहले बचपन को ही सब मान लिया और समाप्त हो गये और जिन्होंने दुबारा जन्म लेने की कोई चेष्टा न की।

जो दुबारा जन्म लेता है--द्विज--ट्वाइस बॉर्न--वही ब्राह्मण है; वही ब्रह्म को पाने का हकदार है।

तो एक हैं : एक ही बार जन्मे--वन्स बॉर्न; और दूसरे हैं : दुबारा जन्मे--द्विज--ट्वाइस बॉर्न।

अवधूत दुबारा जनमा है। तो उसके शरीर की उम्र हो भी सकती है काफी हो--बूढ़ा हो, लेकिन उसके चित्त में कोई उम्र नहीं है, कोई समय नहीं है। उसका चित्त समय से मुक्त है। उसका चित्त छोटे बच्चे की भाँति है।

जीसस एक बाजार में खड़े हैं और किसी ने पूछा...। जिसने पूछा, वह धर्म-गुरु है; कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में कौन प्रवेश करेंगे? कौन होंगे हकदार, कौन होंगे मालिक?

स्वभावतः उस रब्बी ने सोचा होगा; जीसस कहेंगे : तुम। क्योंकि वह धर्मगुरु था; धर्म का ज्ञाता था; प्रतिष्ठित था। लेकिन जीसस ने उसकी तरफ इशारा नहीं किया। पास में एक दूसरा आदमी खड़ा था, जिसकी संत की तरह प्रसिद्धि थी कि वह बड़ा पवित्रात्मा है, पुण्यात्मा है। उसने भी गौर से जीसस की तरफ देखा कि

शायद वे मेरी तरफ इशारा करेंगे, लेकिन नहीं; जीसस ने उसकी तरफ से भी नजर हटा ली। कोई धनी खड़ा था; कोई प्रतिष्ठित था; भीड़ में सभी लोग थे, लेकिन जीसस की नजर जा कर रुकी एक छोटे से बच्चे पर। उन्होंने उसे कंधे पर उठा लिया और कहा, 'जो इस बच्चे की भाँति होंगे, केवल वे ही...।

अवधूत का अर्थ है : जो छोटे बच्चे की भाँति है। तो अवधूत का जो संबंध है परमात्मा से, वह ठीक वैसा ही होगा, जैसा छोटे बच्चे का माँ से होता है। परमात्मा उसके लिए कोई बहुत बड़ी और बहुत दूर की बात नहीं है। परमात्मा के साथ उसका नाता शिष्टाचार का नहीं है--प्रेमाचार का है। और प्रेम कोई सीमा मानता? कि कोई मर्यादा मानता?

छोटा बच्चा माँ से लड़ता भी है; छोटा बच्चा माँ से उलझता भी है; माँ से रूठता भी है; नाराज भी होता है; उछल-कूद भी मचाता है; माँ को मजबूर भी करता है। अगर उसे बाहर जाना है, तो बाहर जाना है। फिर वह सब नियम इत्यादि तोड़ कर माँ को परेशान करता है।

छोटे बच्चे का जो संबंध माँ से है, वही अवधूत का संबंध अस्तित्व से है। अस्तित्व यानी परमात्मा।

इन सूत्रों को तभी समझ पाओगे, जब इस संबंध को खयाल में ले लो। नहीं तो ये सूत्र थोड़े अजीब मालूम पड़ेंगे। थोड़े अशिष्ट भी मालूम पड़ सकते हैं। शिष्टाचार की यहाँ कोई बात नहीं है।

शिष्टाचार--खयाल रखना--औपचारिक नाता है। जिनसे तुम्हारा शिष्टाचार का संबंध है, उनसे तुम्हारा कोई संबंध ही नहीं है। शिष्टाचार संबंध थोड़े ही है। शिष्टाचार तो, संबंध नहीं है--इस बात को छिपाने का उपाय है। तो जब तक दो मित्रों के बीच शिष्टाचार चलता है, तुम जानना कि मित्रता अभी बनी नहीं। जब दो मित्रों के बीच शिष्टाचार खो जाता है, जब दो मित्र एक दूसरे को प्रेम में गाली भी देने लगते हैं, तभी जानना कि मित्रता अब गहरी हुई। अब गाली भी मित्रता को उखाड़ न सकेगी।

जब मित्र शिष्टाचार के सारे नियम तोड़ देते हैं, तो ही जानना कि हार्दिक रूप से करीब आये।

अगर तुम भगवान् के साथ शिष्टाचार का जीवन जी रहे हो, तो तुमने भगवान् को जाना नहीं, पहचाना नहीं। उसके साथ तो नाता प्रेम का ही हो सकता है--शिष्टता का नहीं; सभ्यता का नहीं। उसके साथ तो नाता हार्दिक हो सकता है।

ये सूत्र हृदय के सूत्र हैं। जैसे एक छोटा बच्चा अपनी माँ से झगड़ रहा हो, ऐसे मलूकदास परमात्मा से झगड़ रहे हैं।

इसके पहले कि हम सूत्रों में जायें, कुछ और बातें खयाल में ले लेनी जरूरी है।

दूसरी बात : कर्म का सिद्धांत बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है, लेकिन ज्ञान के मार्ग पर--कर्म के सिद्धांत का अर्थ है कि जो तुमने किया है, वही तुम पाओगे; जो बोया है, वही काटोगे। बुरा किया है, तो बुरे परिणाम होंगे; भला किया है, तो भले परिणाम होंगे। यह बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है, न्याययुक्त मालूम पड़ती है। इसमें कहीं कोई भूल-चूक नहीं है; यह गणित बहुत साफ है।

होना भी ऐसा चाहिए कि जिसने बुरा किया है, वह बुरा भोगे; जिसने भला किया है, वह भला पाये। जिसने दूसरों को सुख दिया है, वह सुख पाये; और जिसने दूसरों को दुःख दिया है, वह दुःख पाये। इसमें कहीं कोई गैर-इन्साफी नहीं है। अगर इससे विपरीत होता हो, तो फिर जगत् में कोई इन्साफ नहीं कहा जायेगा। अगर यहाँ बुरे सुखी हों और भले दुःखी हों, तो जगत् की व्यवस्था अन्यायपूर्ण है।

कर्म का सिद्धांत न्याय का सिद्धांत है। न्याय के तराजू पर प्रत्येक व्यक्ति तौला जायेगा; और कोई विशिष्ट नहीं है, और कोई अपवाद नहीं है। न्याय किसी के साथ पक्षपात नहीं करेगा। कर्म का सिद्धांत निष्पक्ष सिद्धांत है। वह गणित की खोज है; तर्क की खोज है। और हमें भी ठीक लगेगा। लेकिन भक्ति के मार्ग पर कर्म के सिद्धांत की कोई जगह ही नहीं है। और तुम जान कर चकित होओगे कि भक्त किसी दूसरी ही दिशा से यात्रा करते हैं।

भक्त कहते हैं : कर्म से हम जायेंगे स्वर्ग; ठीक, अच्छा करेंगे, तो स्वर्ग मिलेगा; बुरा करेंगे, तो नरक मिलेगा; लेकिन परमात्मा कैसे मिलेगा? अच्छा करने से सुख मिल जायेगा, बुरा करने से दुःख मिल जायेगा; लेकिन परमात्मा कैसे मिलेगा? परमात्मा तो न अच्छा है, न बुरा है। परमात्मा दोनों के पार है। परमात्मा तो अतीत है।

परमात्मा को तुम अच्छा नहीं कह सकते, न बुरा कह सकते। अच्छा-बुरा कहोगे, तो परमात्मा में भी द्वंद्व हो जाएगा। अच्छा-बुरा कहने के कारण ही तो लोगों को शैतान भी खोजना पड़ा है। क्योंकि परमात्मा को अच्छा कहते हो, तो फिर बुरा कहाँ जायेगा? बुरा किसके सिर जायेगा?

तो जिन धर्मों ने परमात्मा को 'अच्छा' कहा है, जैसे ईसाइयत या इसलाम, या यहूदी, उन धर्मों को एक और बात खोजनी पड़ी; फिर बुरे के लिए भी कोई स्रोत खोजना पड़ा। बुरा कहाँ से आयेगा?

परमात्मा से अच्छा-अच्छा आ रहा है, सोना परमात्मा से बरस रहा है; और मिट्टी--और जीवन का नरक, और जीवन की विपदायें, और जीवन के कष्ट? सुबह तो परमात्मा से आ रही है, तो अँधेरी रात? अँधेरी रात को भी जन्म देने

वाला कोई स्रोत चाहिए, नहीं तो बात बड़ी बेबूझ हो जायेगी। तो फिर एक शैतान खड़ा करना पड़ता है।

लेकिन इससे कुछ बात हल होती नहीं; क्योंकि शैतान कहाँ से आता है?

तो ईसाइयत भी मानती है, इसलाम भी मानता है कि वह भी परमात्मा से आता है। वह भी देवदूत है, जो भ्रष्ट हो गया। इसका तो मतलब हुआ कि शैतान के पहले भी भ्रष्ट होने की व्यवस्था थी! अर्थात् शैतान ही भ्रष्टता का स्रोत नहीं हो सकता, क्योंकि शैतान खुद भ्रष्टता से पैदा हुआ। एक देवदूत भ्रष्ट हुआ; तो भ्रष्ट होने की सम्भावना तो देवदूत के होने के पहले थी। इसलिए ईसाइयत, यहूदी, इसलाम--तीनों के पास एक बड़ी से बड़ी झंझट है, जिसको वे हल नहीं कर पाते। वह झंझट यही है कि शैतान को कैसे समझायें!

शैतान भी परमात्मा ने पैदा किया; शैतान भी परमात्मा से आया, तो इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम शैतान से, कहते हो, रात आई। अंततः तो परमात्मा से ही रात आई। परमात्मा से शैतान आया--शैतान से रात आई। परमात्मा से शैतान आया--शैतान से पाप आया, बुराई आई। तो अन्ततः तो जिम्मेदार परमात्मा ही होगा।

इन अर्थों में भारत की दृष्टि, परमात्मा के सम्बन्ध में बहुत अनूठी और साफ है। सब परमात्मा से आया है--बुरा भी, भला भी। इसलिए परमात्मा दोनों के पार है। न तो हम परमात्मा को भला कह सकते, न बुरा कह सकते।

तो भक्त कहते हैं: भला करेंगे, तो भले हो जायेंगे; सज्जन हो जायेंगे; बुरा करेंगे, तो बुरे हो जायेंगे, दुर्जन हो जायेंगे। लेकिन संत कैसे होंगे? संतत्व का तो अर्थ है: भले और बुरे के पार। तो भला कर करके भले के पार कैसे होओगे? और बुरा कर करके बुरे के पार कैसे होओगे?

फिर एक बात और समझ लेने जैसी है कि जब भी तुम सोचते हो कि मैंने भला किया या बुरा किया, तो तुम्हारा मैं मजबूत होता है। बुरा करने से भी मजबूत होता है; भला करने से भी मजबूत होता है।

तुमने खयाल किया: जब तुम थोड़ा भला करते हो, तो बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बतलाते हो। पांच रुपये क्या दे दिये दान में, तुम पचास बतलाते हो। फिर अगर कोई ज्यादा ध्यान न दे रहा हो, तो पाँच-सौ बतलाने लगते हो!

और यह तुम खयाल रखना कि बुराई के साथ भी यही बात है। तुम जा कर कारागृह में देखो। वहाँ जिस आदमी ने पाँच सौ की चोरी की है, वह पाँच हजार की बतलाता है। कारागृह में कैदियों से पूछो; कैदी भी एक-दूसरे से बढ़-चढ़ कर बताते हैं--कि 'अरे, तू क्या जेब काटता है! यह भी कोई बात है! हम डाका

डालते हैं।'

कोई किसी को मारपीट कर जेल में आ गया है, तो उसकी कोई कीमत थोड़े ही होती है। जहाँ बड़े हत्यारे बैठे हों...!

मैंने सुना है: एक जेलखाने में एक नया यात्री आया--एक नया कैदी। जो पहले से कोठरी में आदमी मौजूद था, उसने उससे पड़े ही पड़े पूछा, 'कितने दिन की सजा हुई है?' उसने कहा, 'केवल पाँच साल की।' तो उसने कहा, 'तू दरवाजे पर ही बैठ, क्योंकि हमको पचास साल रहना है। तू दरवाजे पर ही बैठ। पाँच साल तो ऐसे ही चुक जायेंगे। वहीं से जल्दी से निकल जाना।'

कोठरी में ज्यादा भीतर भी नहीं आने दिया--कहा कि 'तू वहीं दरवाजे के पास ही अपना डेरा रख। तुझे जल्दी जाना है। तू भी क्या करके आया है; कुल पाँच साल! अरे, कुछ करना था, तो कुछ मर्द जैसी बात करता।'

बुराई भी आदमी बढ़ा कर बतलाता है; भलाई भी बढ़ा कर बतलाता है! क्योंकि कर्म के साथ कर्ता का भाव है--और कर्ता के भाव में अहंकार है।

भक्ति का शास्त्र कहता है: जहाँ अहंकार है, वहाँ परमात्मा से कैसे मिलोगे? तो भक्ति कहती है कि कर्म की बात ही व्यर्थ है। हम अपने कर्म से परमात्मा से नहीं मिलेंगे, उसकी कृपा से मिलेंगे। इस फर्क को खयाल में लेना। यह बहुत बुनियादी, आधारभूत फर्क है।

ज्ञानी कहता है: हम अपने शुभ कर्मों से मिलेंगे। वहाँ अस्मिता मौजूद है, अहंकार मौजूद है। भक्त कहता है: हमारी क्या बिसात! हमारे किये क्या होगा? हम तो कर करके सब खराब ही किये। हम तो कर करके ही बरबाद हुए--कर्ता बन गये; अहंकार मजबूत हो गया। कभी अहंकार लिया--बड़े पापी होने का; कभी अहंकार लिया--बड़े पुण्यात्मा होने का। कभी दुर्जन, कभी सज्जन; मगर हम रहे अहंकारी ही। कभी इस कोने से उस कोने गये; उस कोने से इस कोने आये; लेकिन अहंकार सदा साथ रहा। उसने छाया की तरह पीछा किया।

हम अपने बल से परमात्मा को पायेंगे, यह बात ही बेहूदी है--भक्त कहता है। भक्त कहता है: उसके प्रसाद से पायेंगे। हमारे प्रयास से नहीं--उसके प्रसाद से; उसकी अनुकंपा होगी--तो। वह राम है, रहीम है, रहमान है; उसकी कृपा होगी--तो।

फर्क समझना। सारा जोर बदल गया।

ज्ञान का जोर है: शुद्ध बनो; भक्ति का जोर है: प्यासे बनो। ज्ञान का जोर है--अपने को पुण्य से भरो; भक्ति का जोर है--अपने को अहंकार से खाली करो। पुण्य भी भक्त के लिए सोने की जंजीर है। पाप है--लोहे की जंजीर; तुम

दोनों को छोड़ दो। भक्त कहता है : तुम दावा मत करो कि मेरे पास कुछ है, जिससे मैं तुझे पाने का हकदार हूँ। हकदार? यह बात ही गलत है। तेरी कृपा हो जाय। मैं रोऊँगा; मैं गिड़गिड़ाऊँगा; मैं चिल्लाऊँगा।

छोटा बच्चा क्या करता है? उसका हक है कुछ? अपने झूले में पड़ा है और रो रहा है और पैर तड़फड़ा रहा है। उसका कोई हक है? माँ दौड़ी आती है—उसके रोने को सुन कर। उसका कोई दावा है? उसके पास कोई भी आधार है, जिसके बल पर वह कह सके कि तुझे आना होगा! कोई दावा नही है; सिर्फ रोता है। धीमे रोता है; नहा सुनती माँ, तो जोर से रोता है। एक ही उसका आधार है—कि मैं पुकारूँ; और एक ही उसका भरोसा है—कि तेरे भीतर प्रेम है; तेरे भीतर करुणा है, तो मेरी पुकार के आधार पर खिंचे हुए चले आओगे; आना पड़ेगा।

भक्त कहता है : हमारी तो कुछ बिसात नहीं; अपने बल तो हम कहीं न पहुँच पायेंगे। अपने बल तो हम इतने छोटे हैं कि जो हम कमा भी लेंगे, वह भी छोटा होगा। जो हम करेंगे, वह हमसे बड़ा तो नहीं हो सकता। तू इतना विराट् है; हम तुझे कैसे पायेंगे! हम करके जो भी पायेंगे, वह सांसारिक ही होगा। तो हम तो पुकारते हैं; हम तो रोते हैं; हम तो रूठेंगे। हमें तेरे रहमान होने पर भरोसा है, तेरे रहीम होने पर भरोसा है। तू दयालु है—यह हमारा भरोसा है; तू कृपालु है—यह हमारा भरोसा है।

अब यहाँ देखने की बात है कि ज्ञान का पथ अगर ठीक से आगे चले, तो परमात्मा की जरूरत नहीं रह जाती। क्योंकि परमात्मा फिर एक व्यर्थ की परिकल्पना मालूम होती है, इसलिए तो जैनों ने और बौद्धों ने परमात्मा को हटा दिया। उनका तर्क भी समझने जैसा है। वह ज्ञान के तर्क की परम अवस्था है। ज्ञान का तर्क अगर उसकी अंतिम स्थिति तक खींचा जाय, तो जो जैन और बौद्ध कहते हैं, वही ठीक है।

जैन और बौद्ध यह कहते हैं कि अगर हम अपने शुभ कर्मों से ही मोक्ष को पाते हैं, तो फिर परमात्मा की धारणा को बीच में रखने की जरूरत क्या है? शुभ कर्म पर्याप्त है।

अगर परमात्मा कुछ कर ही नहीं सकता; शुभ को सुख मिलेगा, अशुभ को दुःख मिलेगा और परमात्मा बीच में कुछ कर ही नहीं सकता; न तो वह अशुभ को सुख दे सकता और न शुभ को दुःख दे सकता, तो फिर परमात्मा की धारणा का प्रयोजन क्या है? फिर यह कर्म का नियम पर्याप्त है। इसलिए जैन और बौद्ध धर्मों में परमात्मा का स्थान कर्म के नियम ने ले लिया। उतना काफी है : यह तर्क-

युक्त बात है।

ज्ञान के मार्ग पर वस्तुतः परमात्मा को माने रखने की कोई खास जरूरत नहीं है; कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।

जैसे कि विज्ञान नियम को मानता है; परमात्मा को नहीं मानता। मानता है कि जमीन में गुरुत्वाकर्षण का नियम है। तुम पत्थर को ऊपर फेंकोगे, जमीन उसे खींच लेगी। ठीक ऐसे ही जो बुरा करता है, वह नीचे की तरफ खिंचेगा; जो भला करता है, वह ऊपर की तरफ उठेगा—यह नियम है। अब और किसी परमात्मा को बीच में लेना ठीक नहीं है, जरूरत भी नहीं है। खतरा है—लेने में। क्योंकि अगर परमात्मा बीच में रहेगा, तो कभी न कभी कुछ गड़बड़ कर सकता है। जहाँ व्यक्ति है, वहाँ भरोसा करना मुश्किल है। हो सकता है—किसी पर दया खा जाय। हो सकता है : किसी को अपना समझ ले; किसी को पराया समझे!

तुम देखते हो न, न्यायाधीश है अदालत में, इसलिए न्याय न्यायाधीश के कारण पूरा नहीं हो पाता। न्यायाधीश की मौजूदगी न्याय में बाधा है। उसके बेटे ने चोरी कर ली, तो न्यायाधीश दिखावा करता है कि न्याय कर रहा है, लेकिन भीतर तो वह जितना कम से कम सजा दे सकेगा, देगा; बचा सकेगा, तो बचाएगा। उसके दुश्मन के बेटे ने चोरी कर ली, तो जितनी ज्यादा से ज्यादा सजा दे सकेगा, देने की कोशिश करेगा। और इसमें काफी भेद हो सकता है। जिस दन्ड के लिए पाँच साल की सजा हो सकती है, उसी दण्ड के लिए दस साल की भी सजा हो सकती है। इतना फर्क तो हो ही सकता है। तरकीब निकाल कर माफ भी किया जा सकता है, तरकीब निकाल कर उलझाया भी जा सकता है, फँसाया भी जा सकता है।

न्यायाधीश की मौजूदगी न्याय में सहयोगी नहीं है। हमारी मजबूरी है, इसलिए न्यायाधीश को रखना पड़ता है। जिस दिन कम्पूटर यह काम कर सकेगा, उस दिन न्याय ज्यादा पूरा होगा। कम्प्यूटर की मशीन वहाँ होगी। उसका न कोई बेटा है, न कोई पत्नी है, न कोई भाई है; निष्पक्ष—मशीन है।

जिस दिन मशीन निर्णय देने लगेगी, उस दिन न्याय में कोई अड़चन न होगी, न्याय सीधा, साफ होगा।

तो जैन और बौद्ध कहते हैं : ईश्वर को मानने में खतरा है। क्योंकि हो सकता है कि कोई आदमी खूब गिड़गिड़ाता रहा, प्रार्थना करता रहा, पूजा करता रहा, आरती-दीप उतारता रहा और इनको किसी तरह प्रसन्न कर लिया; और एक आदमी, जिसने कभी इनकी तरफ देखा नहीं, कभी मंदिर न गया, कभी पूजा न की, कभी प्रार्थना न की, लेकिन शुभ कार्यों में लगा रहा, तो खतरा है।

यही है कि जो प्रार्थना करता था, गिड़गिड़ाता था--हो सकता था शुभ कार्यों में न भी लगा रहा हो, खुशामद की वजह से... ।

स्तुति का मतलब खुशामद होता है। प्रार्थना का मतलब खुशामद होता है। ज्ञानी के मार्ग पर प्रार्थना और स्तुति खतरनाक बातें हैं। इसलिए जैन और बौद्ध धर्मों में प्रार्थना की कोई जगह नहीं है; ध्यान की जगह है, प्रार्थना की कोई जगह नहीं है; स्तुति का कोई स्थान नहीं है । शांत हो जाओ, लेकिन प्रार्थना किससे करनी है? किसलिए करनी है? यह भगवान् के मंदिर में जाकर भोग किसलिए चढ़ाना है? यह तो न्यायाधीश के घर फल की टोकरी भेजने जैसा है। यह तो न्यायाधीश को रिश्वत पहुँचाने जैसा है।

फिर रिश्वत पहुँचाने के ढंग हजार हो सकते हैं: कोई न्यायाधीश को सीधे दे आता है; कोई न्यायाधीश की पत्नी को दे आता है। जो ज्यादा होशियार है, वह पत्नी को दे आता है

तो कोई राम को भज रहा है; कोई सीता को भज रहा है। वह जो ज्यादा होशियार है, वह सीता को भज रहा है। इसलिए तुम देखते हो : भजने वाले राम का नाम पीछे रखते हैं। वे कहते हैं--सीता-राम; राधा-कृष्ण। होशियार हैं। राधा को पहले रखो। राधा राजी हो गई, तो कृष्ण तो राजी हो ही जायेंगे। सीता को मना लो, तो राम तो पीछे चले ही जायेंगे । उलटा जरूरी नहीं है कि राम को मना लो तो सीता चली आये। और राम को मना लो और सीता न मानी हो, तो झंझट भी खड़ी कर देगी--वक्त-बेवक्त ।

स्तुति, प्रार्थना--ध्यान के मार्ग पर, ज्ञान के मार्ग पर अर्थहीन हैं; बाधाएँ हैं। परमात्मा भी बाधा मालूम होता है। नियम पर्याप्त है। एक निर्वैयक्तिक नियम काम कर रहा है--कर्म का नियम।

लेकिन भक्ति के मार्ग पर परमात्मा पर्याप्त है, नियम की कोई जरूरत नहीं है। नियम का तो मतलब ही यह हुआ कि हम अपने भरोसे कर रहे हैं । शुभ किया, शुभ चाहते हैं। जितना किया, उतना चाहते हैं। न्याय चाहते हैं।

भक्त कहता है : न्याय की अगर हम माँग करें, तो हमसे क्या शुभ हुआ है! हम अनुकंपा चाहते हैं--न्याय नहीं चाहते । हम कृपा चाहते हैं। हमारा किया हुआ सब व्यर्थ है। हमारे किये हुए का कोई भी मूल्य नहीं है। इसलिए हम न्याय माँगेंगे, तो भटकेंगे--जन्मों-जन्मों तक और कभी छुटकारा न होगा। हम तो प्रार्थना करते हैं; तेरी अनुकंपा माँगते हैं; तेरा प्रसाद माँगते हैं।

इस भेद को खयाल में रखना, तो समझ में आ जायेगा कि ज्ञान के मार्ग पर संकल्प का मूल्य है; और भक्ति के मार्ग पर समर्पण का मूल्य है । ज्ञान के मार्ग

पर अपने को सजाना है, सँवारना है, शुद्ध करना है, चरित्र लाना है। भक्ति के मार्ग पर उसके चरणों में अपने को गिराने की कला लानी है।

अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?
उठी ऐसी घटा नभ में
छिपे सब चाँद और तारे
उठा तूफान वह नभ में
गए बुझ दीप भी सारे
मगर इस रात में भी लौ
लगाए कौन बैठा है?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?

ऐसे तो अँधेरी रात है; ऐसे तो अहंकार का गहन अँधेरा है। ऐसे तो पाप ही पाप हमसे हुए हैं; पुण्य हमसे क्या हुआ! जिसको हम पुण्य कहते हैं, उसमें भी हजार पाप छिपे हैं।

तुमने अगर कुछ रुपये दान करके मन्दिर बनवा दिया, तो तुम सोचते हो--पुण्य हुआ? वे रुपये आये कहाँ से थे? वे रुपये तुमने शोषण किये थे। उस पुण्य में भी पाप छिपा है। दानवीर होने के लिए पहले शोषक होना जरूरी है। दान के लिए रुपया चाहिए न! पहले चोरी करो; छीना-झपटी करो; लोगों की गरदन काटो--फिर दान करो!

गगन में गर्व से उठ-उठ
गगन में गर्व से घिर घिर
गरज कहती घटाएँ हैं
नहीं होगा उजाला फिर
मगर चिर ज्योति में निष्ठा
लगाए कौन बैठा है?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?

तुम पुण्य क्या करोगे? पुण्य करने में ही पाप छिपा है। बड़ी अँधेरी रात है। अगर हम अपने ही कृत्यों को देखें, तो गहन अँधेरी रात है। इस अँधेरी रात में कोई छुटकारा नहीं मालूम होता; सिवाय इसके कि एक आस्था है--कि जिसने हमें जनमाया है, जिसने हमें उपजाया है, जिसने हमें बनाया है, उसमें माँ जैसा

हृदय होगा। जिससे हम पैदा हुए हैं, उसमें हमारे प्रति प्रेम होगा, करुणा होगी, प्रति लगाव होगा--ऐसी आस्था का दीया जले अँधेरी रात में, तो ही कोई रास्ता है। अन्यथा कोई रास्ता नहीं है।

तिमिर के राज का ऐसा
कठिन आतंक छाया है
उठा जो शीश सकते थे
उन्होंने सिर झुकाया है
मगर विद्रोह की ज्वाला
जलाए कौन बैठा है?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?
प्रलय का सब समां बांधे
प्रलय की रात है छाई
विनाशक शक्तियों की इस
तिमिर के बीच बन आई
मगर निर्माण में आशा
दृढ़ाए कौन बैठा है?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?
प्रभंजन, मेघ दामिनी ने
न क्या तोड़ा, न क्या फोड़ा
धरा के और नभ के बीच
कुछ साबित नहीं छोड़ा
मगर विश्वास को अपने
बचाए कौन बैठा है
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?
प्रलय की रात में सोचे
प्रणय की बात क्या कोई
मगर पड़ प्रेम बंधन में
समझ किसने नहीं खोई!
किसी के पंथ में पलकें

बिछाए कौन बैठा है?
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?

एक प्रेम के पंथ में, एक प्रेम की आशा में दीया जलता है; प्रार्थना में दीया जलता है। इस भरोसे में दीया जलता है कि जिससे हम पैदा हुए हैं, वह हमारे प्रति निरपेक्ष नहीं हो सकता। जिससे हम आये हैं, उसका हमारे प्रति जरूर कोई सूत्र, लगाव का, बाकी होगा। और इस बात के लिए हजार-हजार प्रमाण हैं।

अभी इस लाओत्सु भवन के सामने एक छोटे से वृक्ष पर एक चिड़िया ने दो अंडे रखे हैं। दिनों तक अंडों को बैठी सेती रही। चौबीस घंटे! न तो उसने फिक्र की अपनी भूख-प्यास की; हटी ही नहीं। किस गहन प्रेम में, किस भरोसे! फिर जैसे ही बच्चे अंडों से निकल आये, भाग-दौड़ में लगी है तब से। लाती है खाना; चबाती है; बच्चों के मुँह में डालती है--खिलाती है। दिन भर यही चल रहा है। खुद खाने की अभी भी फुरसद नहीं दिखाई पड़ती उसे। खुद खाती भी है, यह भी नहीं दिखाई पड़ता।

किस प्रबल प्रेम में यह सब चल रहा है!

अगर हम जीवन में चारों तरफ आँखें उठा कर देखें, तो हम हर जगह पायेंगे—प्रबल प्रेम है। जहाँ माँ है, वहाँ प्रेम है। इसलिए माँ को अगर हमने इस देश में अपरिसीम गौरव दिया, गरिमा दी, तो उसका कोई कारण था। उसका कारण सिर्फ इतना ही नहीं था कि माँ ...। उसका कारण बहुत गहरे में यह था कि माँ का सूत्र ही धर्म का सूत्र है।

हम पैदा हुए इस जगत् में, तो परमात्मा हमें सब तरफ से घेरे हुए है; हमारी चिंता-फिक्र कर रहा है; इस भरोसे में ही दीया जलता है; अन्यथा दीया नहीं जलता।

प्रलय की रात में सोचे
प्रणय की बात क्या कोई
मगर पड़ प्रेम बंधन में
समझ किसने नहीं खोई!

जो प्रेम के बंधन में नहीं पड़ा, उसी ने समझ नहीं खोई।

किसी के पंथ में पलकें
बिछाया कौन बैठा है!
अँधेरी रात में दीपक
जलाए कौन बैठा है?

भक्त कहता है : हमारा भरोसा हम पर नहीं है। हम पर तो हमारा भरोसा है ही नहीं। हमने तो अपने पर भरोसा करके बार-बार देखा और गड्ढे में गिरे। जब भरोसा किया, तभी गड्ढे में गिरे। जब अकड़े, जब सोचा कि मैं हूँ, तभी भूल हो गई।

तो भक्त कहता है : अब हम विराट् पर भरोसा करेंगे, इसलिए भक्त के मार्ग पर श्रद्धा पहली शर्त है। श्रद्धा न हो सके, तो कदम ही न बढ़ेगा; हो सके तो ही कदम बढ़ेगा।

ज्ञान के मार्ग पर श्रद्धा पहली शर्त नहीं है। तुम संदेह से भी आगे बढ़ सकते हो; कोई अड़चन नहीं है।

और दुनिया में जिन लोगों को श्रद्धा सहज है, उनके लिए भक्ति का मार्ग। जिनके लिए संदेह सहज है, उनके लिए ज्ञान का मार्ग। अंत में वे दोनों एक ही जगह पहुँच जाते हैं। लेकिन उनके यात्रा-पथ बड़े अलग-अलग हैं।

भक्त की प्रतीति, अपनी कम--परमात्मा की ज्यादा है।

तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए।
मेरे वर्ण-वर्ण विशृंखल
चरण-चरण भरमाए
गूँज-गूँज कर मिटने वाले
मैंने गीत बनाए
कूक हो गई हूक गगन की
कोकिल के कंठों पर
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए।

भक्त कहता है : मैं गाऊँगा--कुछ होगा नहीं। जरा-सी लहर उठेगी--खो जायेगी; क्षणभंगुर होगा परिणाम।

मेरे वर्ण-वर्ण विशृंखल
चरण-चरण भरमाये
गूँज-गूँज कर मिटने वाले
मैंने गीत बनाए

मैं गा भी नहीं पाता कि वे मिट जाते हैं। मैं बना भी नहीं पाता, कि वे बिखर जाते हैं। पानी पर खींची रेखाएँ हैं--मेरे सारे कृत्य। मैं ही क्षण-भंगुर हूँ; मैं ही सीमित हूँ, तो मेरा कृत्य तो कैसे असीम होगा! कैसे शाश्वत होगा?

जब जब जग ने कर फैलाए
मैंने कोष लुटाया

रंक हुआ मैं निज निधि खो कर
जगती ने क्या पाया!
भेंट न जिससे मैं कुछ खोऊँ
पर तुम सब कुछ पाओ
तुम ले लो, मेरा दान अमर हो जाए।
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए।
सुन्दर और असुन्दर जग में
मैंने क्या न सराहा
इतनी ममतामय दुनिया में
मैं केवल अनचाहा
देखूँ अब किसकी रुकती है
आ मुझ पर अभिलाषा
तुम रख लो, मेरा नाम अमर हो जाए।
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए।
दुःख से जीवन बीता फिर भी
शेष अभी कुछ रहता
जीवन की अंतिम घड़ियों में
भी तुमसे यह कहता
सुख की एक साँस पर होता
है अमृत निछावर
तुम छू दो, मेरा प्राण अमर हो जाए।
तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाए।

भक्त कहता है : मैं अपने में ना-कुछ; तुम छू दो, मेरा प्राण अमर हो जाये।

भक्त कहता है : मैं तो सूना हूँ। शून्य हूँ। तुम्हारा आँकड़ा मुझ पर बैठ जाय--मेरे सामने बैठ जाय, तो मुझमें मूल्य आ जाय। मेरा अपना कोई मूल्य नहीं है; मैं निर्मूल्य हूँ। तुम जिस मात्रा में मेरे साथ हो, उतना ही मेरा मूल्य है। 'तुम गा दो, मेरा गान अमर हो जाये।'

यह जो प्रतीति है, स्पष्ट हो जाय, तो मलूकदास के सूत्र समझ में आयेंगे। बड़े अनूठे सूत्र हैं। सीधे-सरल--पर बड़े अनूठे।

भील कद करी थी भलाई जिया आप जान,
फील कद हुआ था मुरीद कहु किसका।।

कहते हैं मलूक : 'भील कद करी थी भलाई जिया आप जान।' याद दिलाते हैं

भगवान् को--कि जरा सुनो, बाल्मीकि ने किसका भला किया था? लुटेरा था; हत्यारा था। तुम्हारा नाम भी कभी सीधा-सीधा नहीं लिया; 'राम-राम जपने की जगह 'मरा-मरा' जपता रहा!

'भील कद करी थी, भलाई जिया आप जान।' तुम्हें याद है; तुम्हें खयाल है कि उस भील ने कभी कोई भलाई की थी किसी की? उस बाल्या भील के नाम कोई भी पुण्य की कथा है?

कोई कथा नहीं है। बाल्या भील हत्यारा ही था; लुटेरा ही था

कहानी तुम्हें पता है: कि नारद निकल रहे हैं और बाल्या उन्हें लूटने को आ गया है। लेकिन नारद कुछ अनूठे व्यक्ति हैं। बाल्या अपनी तलवार निकाल लेता होगा। लेकिन नारद हैं कि वे अपनी वीणा बजाये ही चले जा रहे हैं। वह उनके सामने खड़ा है हत्या करने को और उनकी वीणा रुकती नहीं। तो वह पूछता है, 'तुम पागल तो नहीं हो! क्योंकि मैंने दो तरह के लोग देखे हैं। एक: जो मेरी तलवार देख कर तलवार निकाल लेते हैं और संघर्ष के लिए आतुर हो जाते हैं। दूसरे: जो मेरी तलवार देख कर भाग खड़े होते हैं। मगर तुम तीसरे तरह के आदमी हो। तुम पहली दफा मिले हो। न तुम भाग रहे हो, न तुम तलवार निकाल निकाल रहे हो! और यह क्या लगा रखा है! बंद करो। यह तुम वीणा क्यों बजाये जा रहे हो?' और नारद हँसते हैं और वीणा बजाये चले जाते हैं।

बाल्या चकित है। यह नये आदमी से मिलन हुआ। इस आदमी में भय नहीं है। न तो यह दूसरे को भयभीत करना चाहता है, न खुद भयभीत है। यह आदमी किसी और ही कोटि का है। ऐसी कोटि से बाल्या का कभी मिलना न हुआ था। तो वह भी खड़े हो कर सुनने लगा यह गीत। यह गीत भी मनोरम है। इस गीत में कुछ अनूठा है, क्योंकि यह गीत राम के स्मरण का है।

और जब गीत चुक गया और गान बंद हुआ और संगीत रुका, तो बाल्या ने कहा: 'तुम्हें पता है कि मैं हत्यारा हूँ! और मैं तुम्हें लूटने आया हूँ।' नारद ने कहा: 'तुम लूट लो। लेकिन एक बात का मुझे जवाब दे दो। यह मैं कई बार पूछना चाहता था कि किसी लुटेरे से मिलना हो जाय, तो पूछ लूँ। कि तुम यह लूट-खसोट कर रहे हो, किसके लिए? किस लिए?' बाल्या ने कहा: 'यह भी कोई पूछने की बात है! मेरी पत्नी है, बच्चे हैं, माँ है, पिता हैं--उनके लिए।' नारद ने कहा: 'तो तुम एक काम करो। उनसे पूछ आओ कि इस सब का जो पाप तुम्हारे सिर गिरेगा, वे इसमें भागीदार होंगे?'

बाल्या हँसने लगा। उसने कहा: 'तुमने मुझे समझा क्या है! मैं घर गया, तुम नदारत हो जाओ।' तो नारद ने कहा: 'तुम ऐसा करो, मुझे बाँध दो इस वृक्ष से

भलीभाँति, ताकि मैं भाग न सकूँ। पर तुम घर हो आओ।' बात तो बाल्या को भी जँची। सोचा तो शायद उसने भी कभी-कभी होगा। कौन नहीं सोचता है?

अगर तुम चोरी कर रहे हो अपने बच्चों के लिए, तो कभी-कभी तुम सोचते नहीं क्या मन में कि ये बच्चे अनुग्रह भी मानेंगे! ये बड़े हो कर धन्यवाद भी देंगे? ये बुढ़ापे में याद भी रखेंगे? तुम अगर अपनी पत्नी के लिए डाके डाल रहे हो, तो क्या तुम्हारे मन में यह कभी खयाल नहीं आता होगा कि अगर सच में ही कर्म का सिद्धांत काम करता हो, तो मैं तो नरक में पड़ूँगा; और मेरी पत्नी—क्या वह मेरे साथ होगी? क्योंकि कर तो मैं उसी के लिए रहा हूँ।

इस जगत् में पाप तुम सदा दूसरों के लिए कर रहे हो। अपने लिए कौन पाप करता है? इतना पापी कोई भी नहीं है।

यह जान कर तुम हैरान होओगे: इतना पापी कोई भी नहीं है कि अपने लिए पाप करता हो। सभी लोग दूसरे के लिए पाप कर रहे हैं। पाप के लिए भी कम से कम इतना तो भरोसा चाहिए कि किसी के प्रेम में कर रहे हैं।

पाप भी बिना प्रेम के नहीं हो सकता। पाप के लिए भी प्रेम का सहारा चाहिए। तुम चोरी भी कर सकते हो, हत्या भी कर सकते हो, इतना पक्का हो कि किसी के लिए कर रहे हो, किसी के प्रेम में कर रहे हो।

प्रेम के बिना इस जगत् में कोई कृत्य होता ही नहीं; बुरा कृत्य भी प्रेम के कारण होता है।

तो बाल्या ने भी सोचा तो होगा ही; कितना ही मूढ़ रहा हो, अज्ञानी रहा हो, लेकिन यह बात कई बार मन में तरंगित तो हुई होगी कि 'मैं इतना सब कर रहा हूँ, इस सब का परिणाम मुझे ही तो भुगतना नहीं पड़ेगा?'

तो बात उसे जँच गई है। वह पूछने चला गया। और उसी पूछने के जाल में उलझ गया। नारद का शिष्य हो गया।

क्योंकि घर जाकर जब उसने पूछा, तो पत्नी ने कहा कि 'मुझे क्या पता कि तुम क्या करते हो! यह तुम्हारा कर्तव्य है कि मेरे भरण-पोषण की व्यवस्था करो। मुझे कुछ पता नहीं कि तुम क्या कर रहे हो। और तुम जो करते हो, वह तुम जानो। तुम अच्छे लाते, बुरे लाते यह तुम जानो। इससे हमारा कुछ लेना-देना नहीं। हमने कभी कहा नहीं कि तुम बुरा करो।'

बूढ़े माँ-बाप ने कभी कहा: 'हम बूढ़े हो गये; अब यह कहाँ की झंझट तू हम पर लाता है कि हम इसमें भागीदार होंगे! हमारे दिन कम बचे। परमात्मा से हमारी मुलाकात जल्दी होगी; तेरी तो अभी बहुत देर लगेगी। हमें कुछ पता नहीं है। हमने तुझे जन्म दिया; हमने तुझे बड़ा किया; तू हमारे लिए भोजन जुटाता

है, तो इसमें कोई बड़ा ऐहसान कर रहा है?'

बच्चों से पूछा; बच्चों ने कहा, 'हमें क्या पता; हम तो भोले-भाले। हमने तो कभी कहा भी नहीं।'

बाल्या उदास लौट आया। नारद से उसने कहा कि 'कोई भी मेरे पाप में भागीदार नहीं है।' तो नारद ने कहा, 'फिर तू सोच ले। यह जारी रखना है?'

और उस क्षण एक क्रांति घट गई। और बाल्या ने फेंक दी अपनी तलवार; नारद के चरणों में गिर पड़ा और कहा, 'मुझे भी सिखा दो वह पाठ कि तुम जैसा गीत मुझसे भी पैदा हो सके; कि तुम जैसी शांति और अभय, कि तुम जैसा आनन्द मुझमें भी व्याप्त हो जाय--कि मृत्यु मेरे सामने खड़ी हो और मैं अडिग रहूँ; कि मौत भी मुझे हिला न पाये। क्या है राज इसका?'

नारद ने कहा, 'राज कुछ ज्यादा नहीं है--राम का स्मरण।' बाल्या अपढ़, अज्ञानी था। उसने कहा, 'तो क्या होगा?' नारद ने कहा, 'बस, राम-राम जप; राम की याद कर; सब भूल--राम को स्मरण कर।'

बाल्या जपने लगा--राम-राम-राम। अपढ़ था, अज्ञानी था, कभी राम का नाम जपा न था। और अगर तुम भी जपोगे--राम-राम-राम-राम बहुत जोर से, तेजी से, त्वरा से--एक के पीछे दूसरा राम--तो धीरे-धीरे तुम पाओगे कि शब्द जुड़ गये और राम की जगह 'मरा-मरा' की ध्वनि आने लगी।

वह तो भूल ही गया धीरे-धीरे कि 'राम' शब्द है कि 'मरा' शब्द है। 'मरा' जपते-जपते बाल्या ज्ञान को उपलब्ध हो गया!

बाबा मलूकदास राम से कह रहे हैं, 'भील कद करी थी भलाई जिया आप जान।' आपके जाने कुछ याद है आपको; कुछ होश-हवास है! इस बाल्या भील को बालमीकि बना दिया, ऋषि बना दिया! यह मुक्त हो गया! किस किताब में लिखा है तुम्हारे? कहाँ इसका हिसाब है? 'भील कद करी थी, भलाई जिया आप जान।' तुम्हें कुछ होश है?--कि कुछ भी किये चले जाते हो! 'फील कद हुआ था मुरीद कहु किसका।'

और कहानी है कि गजेन्द्र (गज, हाथी) फँस गया है--एक मगर के पाश में; मगर ने उसका पैर पकड़ लिया है; और उसने प्रभु का स्मरण किया और वह छूट गया। 'फील कद हुआ था मुरीद कहु किसका?' और मैं पूछता हूँ तुमसे कि यह जो हाथी था, यह किसका शिष्य था? यह मुरीद कब हुआ था? इसने किससे शिष्यत्व ग्रहण किया? किससे मंत्र लिया; किसके साथ साधना की; कौन इसका गुरु था? इनके हिसाब-किताब कहाँ है?

इतनी चर्चा सुनते हैं--न्याय--न्याय--न्याय--और कर्म का सिद्धान्त; सच्चाई

कुछ और दिखाई पड़ती है!

मलूक कह रहे हैं: 'गीध कद ज्ञान की किताब का किनारा छुआ!' और वह जटायु! उसने कभी कोई किताब पढ़ी थी, कोई वेद पढ़ा था? 'गीध कद ज्ञान की किताब का किनारा छुआ?' किताब की तो दूर--किताब का किनारा भी उसने कभी छुआ नहीं था। कौन-सा ज्ञान था उसे, जिसके सहारे वह मुक्त हो गया?

'ब्याध और बधिक तारा, क्या निसाफ तिसका?' इस सब का इन्साफ कहाँ है? 'मैं तुमसे यह पूछता हूँ,' मलूक कहते, 'कि इस सब में कहाँ इन्साफ है?'

लोग अपने कर्मों के कारण शुभ को पा रहे हैं, अशुभ को पा रहे हैं, यह बात गलत है। ये नाम--बालमीकि का, और गजेंद्र का, और जटायु का--मलूकदास उठा रहे हैं इसलिए, ताकि यह बात साफ हो सके कि कोई अपने करने से मुक्त नहीं होता है; उसकी अनुकम्पा से मुक्त होता है।

और वे कह रहे हैं कि न्याय असली बात नहीं है; करुणा...। अब खयाल रखना कि न्याय और करुणा के सिद्धान्त अलग-अलग हैं; विपरीत हैं।

इसलिए अकसर न्यायाधीश के सामने यह सवाल उठता है कि न्याय पर ज्यादा जोर दे कि करुणा पर ज्यादा जोर दे।

न्याय बड़ा कठोर है; न्याय में हृदय नहीं है। इसलिए तुम देखते हो: मजिस्ट्रेट अदालत में बैठता है, तो पत्थर की मूर्ति जैसा बैठता है। उसके कपड़े-लत्ते, उसके बैठने का ढग, उसका चेहरा--वह बिलकुल पत्थर की मूर्ति बनकर बैठता है। वह हृदय को बिलकुल सिकोड़ लेता है, तो ही न्याय कर पायेगा। अगर जरा हृदय खुला हो, अगर वह भी मनुष्य की भाँति बैठे, तो न्याय बहुत मुश्किल हो जायेगा; करुणा होगी। क्योंकि कोई आदमी चोरी करके आ गया है। अब अगर वह न्याय ही देखे, तो सिर्फ किताब देखनी है, बस। उसे यह देखने की जरूरत नहीं कि इस आदमी ने चोरी क्यों की। हो सकता है: इसकी पत्नी मर रही हो और दवा के लिए घर में पैसे न हों। और अगर इस आदमी ने जा कर किसी की जेब काट ली; और ऐसे की जेब काट ली, जिसके पास बहुत है; पाँच-दस रुपये कम हो गये, तो कुछ फर्क न पड़ा। जिससे लिये, उसके पाँच-दस कम हुए कोई फर्क न पड़ा। लेकिन इसकी पत्नी बच गई। इसके छोटे-छोटे दुध-मुँहे बच्चे; पत्नी मर जाती तो उनका क्या होता! वे बच गये। तो यह पाँच-दस रुपये का चोरी कोई बहुत बड़ी चोरी है? क्या इसको पाप माना जाय? अपराध माना जाय?

अगर न्याय की किताब कोई देखनी हो, तो फिर करुणा को कोई जगह नहीं है।

न्याय बड़ा कठोर है। न्याय में कोई दया नहीं है।

करुणा बहुत कोमल है। और करुणा में शुद्ध न्याय नहीं हो सकता।

जीसस ने इसके बहुत उल्लेख दिये हैं। जीसस का एक बहुत प्रसिद्ध उल्लेख है कि एक अंगूर के बगीचे के मालिक ने अपने नौकरों को भेजा...। अंगूर पक गये थे और जल्दी उन्हें तोड़ लेना था अन्यथा वे सड़ जायेंगे; तो जितने मजदूर मिल सकें, ले आओ। नौकर गये और बाजार से जितने मजदूर मिल सकते थे--ले आये। लेकिन वे मजदूर काफी न थे।

आधा दिन बीतते-बीतते मालिक को लगा कि इनसे साँझ तक फल कट न पायेंगे, तो उसने कहा, 'और कोई मजदूर मिलते हों, तो ले आओ।' तो भरी दुपहरी में फिर लोग गये, फिर कुछ लोगों को ले आये। लेकिन फिर भी लगा कि साँझ होते-होते काम पूरा न हो पायेगा, तो उसने कहा, 'और ले आओ।' तो लोग फिर गये; फिर कुछ मजदूरों को ले आये। तो यह जो आखिरी किश्त मजदूरों की आई, यह तो करीब सूरज ढलते-ढलते आई।

जब काम पूरा हो गया, और रात जब पैसे बाँटे गये, तो उस मालिक ने सब को बराबर पैसे दिये--जो सुबह आया, उसको भी; जो दोपहर आया, उसको भी; जो साँझ आया, उसको भी। स्वाभाविक था कि जो सुबह आये थे, उन्होंने विरोध किया; उन्होंने कहा, 'यह अन्याय है। हम सुबह से मेहनत कर रहे हैं; और कुछ लोग दोपहर आये, उनको भी उतना ही; और कुछ लोग तो अभी-अभी आये, जिन्होंने कुछ भी नहीं किया करने के नाम पर, सूरज ढलते आये, उनको भी उतना! यह अन्याय है।'

लेकिन वह मालिक हँसने लगा: और उसने कहा, 'तुम्हें जितना दिया, तुम्हारी मजदूरी के लिए पर्याप्त नहीं है क्या!' 'नहीं', उन मजदूरों ने कहा, 'हमारी मजदूरी के लिए पर्याप्त है, लेकिन इनका क्या?' उसने कहा कि 'इनको मैं अपने आधिक्य से देता हूँ। तुम्हारी मजदूरी, तुमने जो की, उतना तुम्हें मिल गया; उसमें कोई कमी नहीं है। दोपहर को जो आये इन्हें मैं इसलिए देता हूँ कि मेरे पास बहुत है देने को। साँझ जो आये, इन्हें भी देता हूँ उतना ही, क्योंकि मेरे पास बहुत है देने को। इनके साथ दया कर रहा हूँ; तुम्हारे साथ अन्याय नहीं कर रहा हूँ। तुम्हें उतना मिल गया, जितना तुम्हें मिलना चाहिए था।'

जीसस यह कहते हैं: 'परमात्मा ज्ञानियों के साथ न्याय करेगा और भक्तों के साथ दया करेगा।' यह बड़ी अजीब बात है। ज्ञानी वे हैं, जो सुबह से लगे हैं; भक्त हो सकता है कि दोपहर आये--कि साँझ आये--कि नहीं भी आये। परमात्मा उन्हें अपने आधिक्य से देगा। ज्ञानी के साथ अन्याय नहीं होगा, यह सच है। उसने जितना किया, उतना उसे मिलेगा। लेकिन इससे वह यह न सोच ले कि जिन्होंने कुछ नहीं किया, उन्हें कुछ नहीं मिलेगा।

'भील कद करी थी, भलाई जिया आप जान।' ये मलूकदास यही कह रहे हैं कि ये साँझ के आये हुए लोग...।

भील कद करी थी, भलाई जिया आप जान,
फील कद हुआ था, मुरीद कहु किसका।।
गीध कद ज्ञान की किताब का किनारा छुआ,
व्याध और बधिक तारा, क्या निसाफ तिसका।।

...इसका न्याय क्या? इसको मैं किस अदालत में ले जाऊँ? इसमें कौन से न्याय की बात है?

'नाग कद माला लै के बन्दगी करी थी बैठ?' उस गजेंद्र ने कब प्रार्थना की थी? कब माला ले कर माला जपी थी?

नाग कद माला लैके बन्दगी करी थी बैठ,
मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका।

और मलूकदास कहते हैं कि 'जब से तुमने अजामिल को मुक्त किया, तब से मुझे बड़ी स्पर्धा है; मुझे हिसका लग गया है।

अजामिल की कथा तो जाहिर है। अजामिल की कथा तो बड़ी अनूठी है; जीसस भी थोड़े चिंतित होंगे; क्योंकि साँझ को भी जो आये थे, कम से कम आये तो थे! साँझ को आये थे, सूरज ढलते आये थे; कुछ उठा-पटक तो की होगी; कुछ तो किया ही होगा। कुछ न किया, तो कम से कम आये और गये तो थे! अजामिल ने तो इतना भी नहीं किया था।

अजामिल ने तो जिंदगी भर भगवान् का नाम ही नहीं लिया था। उसे भगवान् से कुछ लेना ही देना न था। वह तो नास्तिक था। मरण-शैय्या पर पड़ा था। मरते वक्त उसने जोर से अपने बेटे को बुलाया; उसके बेटे का नाम नारायण था।

पुराने दिनों में सभी नाम भगवान् के नाम ही होते थे। जितने नाम होते थे, सब भगवान् के ही नाम होते थे। वह भी बड़ी विचारपूर्ण बात थी कि चलो, इस बहाने ही भगवान् का स्मरण होगा। कोई राम, कोई विष्णु, कोई नारायण, कोई कृष्ण! मुसलमानों में जितने नाम होते हैं, करीब करीब सब में भगवान...। अब्दुल्लाह--तो अल्लाह लगा हुआ है। करीम, रहीम, रहमान--सब परमात्मा के नाम हैं।

हिन्दुओं के पास तो अनूठी किताब है--विष्णुसहस्रनाम, जिसमें भगवान् के हजार नाम हैं; सिर्फ नाम ही नाम दिये हैं। सारे नाम भगवान् के होते थे; क्योंकि सारे रूप भी उसी के हैं, तो नाम भी उसी के होने चाहिए। बात बड़ी अर्थपूर्ण है। और सब रूपों में वही प्रगट हुआ है, तो सभी नाम भी उसी के होने चाहिए। और

फिर कम से कम चलो, इसी बहाने भगवान् की याद होती रहेगी। राम को बुलाया, तो उनकी याद हो गई; नारायण को बुलाया, तो उनकी याद हो गई; विष्णु को बुलाया, तो उनकी याद हो गई। और कौन जाने किस घड़ी, किस मुहूर्त में चोट लग जाय--कौन जाने !

कभी-कभी चोट ऐसी लगती है--अनायास लगती है--कि जिसका हमें कोई पता भी नहीं होता, कि जिसका हमने कोई आयोजन भी नहीं किया होता। मगर चारों तरफ की हवा में भगवान् का नाम गूंजता रहे। पता नहीं किस कोने से हमारे भीतर प्रभु का स्मरण प्रविष्ट हो जाय! तो ऐसी ही घटना अजामिल की है।

अजामिल मर रहा है। भगवान् को मानता नहीं है; लेकिन बेटे का नाम नारायण है। वह भी शायद भूलचूक से रख लिया होगा, क्योंकि और नाम थे ही नहीं उन दिनों में। मरते वक्त बेटे को बुलाया है कि 'नारायण, तू कहाँ है?' साँस टूटी जा रही है; बेटे को बुला रहा है; शायद कुछ बताना होगा कि खजाना कहाँ गड़ा है; कि कुछ हिसाब-किताब की बात समझानी होगी; कि कुछ राज बताना होगा। मौत करीब आ गई है; बेटे को बता जाय।

लेकिन बेटे को सुनाई नहीं पड़ा। जोर-जोर से चिल्लाता-चिल्लाता अजामिल मर गया। कथा यह है कि ऊपर बैठे नारायण--भगवान् को ऐसा लगा कि 'बेचारे ने कितना पुकारा! मुझको कितना पुकारा!' और अजामिल मर कर परम अवस्था को उपलब्ध हुआ।

यह कथा बड़ी अनूठी है; जीसस की इस कथा से आगे जाती है। यह तो न गया--साँझ भी नहीं। यह तो जब नारायण, नारायण बुला रहा था, तब भी इसका परमात्मा से कोई लेना-देना नहीं था।

अब बात यह है कि परमात्मा क्या धोखे में आ गया? क्या परमात्मा को इतनी भी समझ नहीं है--कि यह अपने बेटे को बुला रहा है; मुझे नहीं बुला रहा है? क्या परमात्मा में इतना भी बोध नहीं है? क्या यह धोखा हो सकता है?

यह धोखा अगर हो सकता है, तो इसीलिए हो सकता है, कि परमात्मा किसी भी बहाने अपनी करुणा बाँटने को तैयार है। उसके पास आधिक्य है; उसे देना है, तो कोई भी बहाना पर्याप्त है। जब देना ही हो, तो किसको बुला रहा है--बेटे को बुला रहा है, कि मुझे बुला रहा है, क्या फर्क पड़ता है! चलो, यह खूंटी भी काफी है, इसी पर परमात्मा अपनी कृपा टाँग देगा।

मलूकदास कहते हैं : 'नाग कद माला लैके बन्दगी करी थी बैठ।' उस गजेन्द्र ने कभी माला फेरी नहीं। बैठ कर कभी बन्दगी नहीं की--नमाज नहीं पढ़ी, प्रार्थना-पूजा नहीं की। चलो, छोड़ो, उसको भी जाने दो।

'मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका।' लेकिन अजामिल के साथ तो हद हो गई! उसका धक्का मुझे कभी भी लगता है--कि आखिर फिर मेरा कसूर क्या है!

मलूकदास यह कह रहे हैं कि इन सब के साथ यह तथाकथित न्याय होता रहा है, तो मेरे साथ ज्यादती क्यों हो रही है? मुझे स्पर्धा होती है।

'ऐसे बदराहों की तुम बदी करी थी माफ।' ऐसे सब बदराह--ऐसे सब भूले-भटके लोग...। ऐसे बदराहों की तुम बदी करी थी माफ। मलूक अजाती पर एती करी रिस का।।' तो मुझसे ऐसे कैसे रिसाए बैठे हो? आखिर मेरा कसूर क्या है? इतना बुरा तो मैंने कुछ किया नहीं; ऐसा तो कोई बड़ा पाप मेरा है नहीं। और इतनी भी बात तय है कि तुम्हीं को पुकार रहा हूँ--अपने बेटे को नहीं पुकार रहा!

अजामिल तक मुक्त हो गया! तुम मुक्त करने को ही बैठे हो! तो मेरे ही साथ यह भेद-भाव क्यों चल रहा है?

यह प्रेमी का झगड़ा है। यह परम प्रेम में ही घट सकता है। साधारण आदमी तो हिम्मत नहीं कर सकता—भगवान् से इस तरह की बात करने की; असाधारण अवधूत ही कर सकता है। साधारण तो डरेगा कि कहीं नाराज न हो जायँ। साधारण तो सदा कहता है : तुम पतितपावन, मैं पापी; और जमाने भर की बातें कहता है। वह तो हिसाब की बातें लगाता है। वह तो कहता है : शायद इस तरह मना लेंगे।

लेकिन मलूकदास बड़ी अनूठी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं : 'मलूक अजाती पर एती करी रिस का?' माना कि मेरी जात-पात कुछ ठिकाने की नहीं है, तो किसकी है? माना कि मेरे कर्म कुछ हिसाब के नहीं हैं, तो किसके हैं? और माना कि मैंने तुम्हें पूरे भाव से शायद न भी पुकारा हो, अजामिल के बाबत क्या विचार है?

ये सारी की सारी घटनाएँ मलूकदास याद दिला रहे हैं परमात्मा को; यह बड़े प्रेम का निवेदन है; यह अपूर्व निवेदन है।

'तुम मुझसे क्यों रिसाये बैठे हो? क्या नाराजगी होगी? ऐसा क्या गुनाह मैंने किया होगा! गुनाहों को तो माफ करते रहे हो; बदराहों को माफ करते रहे हो! चलो, मैं बदराह सही; और चलो, मैं बहुत गुनहगार सही। लेकिन ऐसे क्या रिसाये बैठे हो? क्या तुम्हारी करुणा चुक गई? क्या तुम्हारा प्रेम चुक गया? या कि तुम्हारी पुरानी आदतें बदल गईं!--कि अब अजामिल जैसी घटनाएँ नहीं घटतीं? तुम्हारा हृदय सूख गया है क्या?'

जैसे छोटा बच्चा माँ के लिए रोता है और सोचता है : क्यों नहीं आती?...

छोटा बच्चा तो यही सोचता है कि माँ हर घड़ी मौजूद रहनी चाहिए--जब वह पुकारे। रात-आधी-रात पुकारे, तो मौजूद रहनी चाहिए। छोटा बच्चा तो यह मान कर ही चलता है कि माँ मेरे लिए है। उसे यह तो खयाल भी नहीं हो सकता कि उसको और हजार काम हो सकते हैं! कि अभी वह अपने पति की सेवा कर रही हो; कि थक गई हो, सो गई हो; कि बाजार गई हो, सामान खरीद रही हो! और हजार काम हो सकते हैं। बच्चे को यह सवाल ही नहीं उठता। बच्चे को तो एक प्रतीति होती है कि वह मेरे लिए है, मैं उसके लिए हूँ। मैं चौबीस घंटे उसका हूँ; वह चौबीस घंटे मेरी है।

ठीक ऐसा ही भाव भक्त का होता है।

होंगे तुम्हें हजार काम; चलाते होओगे चाँद-तारों को; बड़ी उलझनें होंगी। लेकिन भक्त मानता है कि पहला अधिकार मेरा है।

एतै बदराहों की तुम बदी करी थी माफ,
मलूक अजाती पर एती करी रिस का ।।

भक्त ने सदा इस बात पर भरोसा किया है कि तुम्हारा प्रेम अपार है। और तुम देख-देख कर दान नहीं देते--कि किसने अच्छा किया और किसने बुरा किया। यह भी कोई बात हुई...! यह बड़ी मानवीय बात हो जायेगी कि किसने अच्छा किया--उसको जरा ज्यादा दें; जिसने बुरा किया, उसे थोड़ा कम दें। जिसने अच्छा किया,उसे सुख दें, और जिसने बुरा किया, उसे दुःख दें। यह बड़ी मानवीय बात हो जायेगी; ईश्वरीय न रह जायेगी।

यह मनुष्य का न्याय तो ठीक है, मगर यह ईश्वरीय न्याय न होगा। ईश्वरीय न्याय में तो अनुकम्पा होनी चाहिए--अपार अनुकम्पा होनी चाहिए। हमने क्या किया--यह बात ही फिजूल है। तुम्हारे पास देने को इतना है! सारा का सारा देने को पड़ा है! और तुम दोगे किसको आखिर?

जब मेघ घुमड़ते हैं भादो में, वर्षा से भरे हुए मेघ आते हैं, तो यह थोड़े ही फिक्र करते हैं कि सिर्फ उपजाऊ जमीन पर गिरें! कंकड़-पत्थरों पर भी बरसते हैं। यह थोड़े ही सोचते हैं कि अच्छे आदमी के खेत में ही बरसें; बुरे आदमी के खेत में भी बरसते हैं। सूरज जब निकलता है, तो ऐसी कोई कंजूसी थोड़े ही करता है, कि सज्जन के घर पर ही रोशनी करेगा और दुर्जन के घर पर अँधेरा रखेगा! और जब फूलों की सुगंध उड़ती है, तो संतों के ही नासापुट थोड़े ही खोजती है।

सब को मिलता है--यह भक्त की आस्था है। सब को मिलता है--अकारण मिलता है। कारण से मिले, तो बात बड़ी कंजूसी की हो जायेगी और परमात्मा कंजूस नहीं है।

वह जो कर्म का सिद्धान्त है, वह बड़ी कंजूसी का सिद्धान्त है। वह यह कहता है कि जो करेगा, उसको मिलेगा; जो नहीं करेगा, उसको नहीं मिलेगा। वह बड़ा ओछा सिद्धान्त है; बड़ा संकीर्ण सिद्धान्त है।

भक्त कहता है : यह भी कोई बात हुई; ऐसे ओछे लांछन तो परमात्मा पर मत लगाओ। और तुम जानते हो भलीभाँति; सारा जीवन इस बात का प्रमाण है; जो मलूकदास कह रहे हैं, उसका प्रमाण सारा जीवन है। सूरज देखो; चाँद-तारे देखो; हवाएँ देखो; यह हवा का जो झोंका आया, यह सज्जनों को ही थोड़े मिलेगा; इसमें दुर्जन भी वैसे ही नहायेंगे। कुछ भेद नहीं है। आस्तित्व भेद नहीं नहीं करता।

माँ भेद करती है--उस बेटे में जो उसकी आज्ञा मानता है और उस बेटे में जो उसकी आज्ञा नहीं मानता? हालत हमेशा यह है कि जो आज्ञा नहीं मानता है, उसको ज्यादा देती है। जो बेटे उपद्रवी होते हैं, माँ का प्रेम उन पर ज्यादा होता है; उन पर ज्यादा दया होती है। स्वाभाविक भी है, क्योंकि उसे ज्यादा ममता आती है कि बेचारा, उपद्रवी है। जगह-जगह झकझोरी खाता है; जहाँ गया, वहीं झंझट में पड़ जाता है। उस पर दया स्वभावतः ज्यादा आती है।

जो सज्जन है, वह तो सभी जगह सत्कारा जाता है। जहाँ जाता है, वहीं आदर पाता है। उसके लिए तो आदर की कोई कमी नहीं है; जो मिलता है, वही प्रशंसा करता है।

लेकिन जो बेटा थोड़ा गुमराह है, थोड़ा बदराह है, अनाज्ञाकारी है, थोड़ा बगावती है, उसको तो और कहीं प्रेम मिलेगा नहीं; अगर माँ भी उसे प्रेम न देगी, तो वह प्रेम से वंचित ही रह जायेगा।

प्रकृति का अनूठा नियम है कि सब तरह से सब को बराबर हो जाता है; तो अन्त में सब को बराबर हो जाता है।

तो दूसरे नहीं देते प्रेम, तो माँ उसे प्रेम देती है।

तुमने कभी खयाल नहीं किया : आज्ञाकारी बेटे की तुम प्रशंसा करते हो; आनाज्ञाकारी बेटे की तुम निंदा करते हो। लेकिन प्रेम...?

जीसस की फिर एक कहानी है; और जीसस की कहानियाँ प्रेम के मार्ग की अनूठी कहानियाँ हैं।

जीसस ने कहा...। कोई पूछता है जीसस से कि 'मैं तो योग्य नहीं हूँ; मैं तो भूला-भटका हूँ; मैं तो पापी हूँ; परमात्मा मुझे भी उबारेगा! मैं पुकारूँ? मेरी पुकार उस तक भी पहुँचेगी?'

जीसस ने कहा : 'सुन।' वह आदमी गड़रिया था। इसलिए जीसस ने गड़रिये

की भाषा ही कही। उन्होंने कहा : 'सुन। कभी-कभी तुझे ऐसा हुआ होगा--साँझ जब तू अपनी सारी भेड़ों को इकट्ठा करके घर की तरफ लौटता है और अचानक घर आ कर पाता है कि सौ भेड़ों में निन्यानबे ही हैं और एक भेड़ कहीं छूट गई; जंगल में कहीं भटक गई; तू क्या करता है!'

उसने कहा : 'मैं उन भेड़ों को वहीं छोड़ देता हूँ और भागता हूँ जंगल की तरफ --उस एक भेड़ को खोजने--कि वह कहाँ गई; कोई भेड़िया न खा जाय! कोई जंगली जानवर न खा जाय! मैं निन्यानबे भेड़ों की फिक्र ही छोड़ देता हूँ; उसी एक भेड़ की फिक्र मेरे मन में गूंजने लगती है। मेरा सारा भाव उसी की तरफ दौड़ने लगता है। अँधेरी रात में चिल्ला-चिल्ला कर जंगल-पहाड़ पर उसे खोज कर लाता हूँ।'

जीसस ने कहा : 'एक बात और पूछनी है। तू उसे किस तरह लाता है?' उसने कहा : 'किस तरह लाता हूँ? कन्धे पर रख कर लाता हूँ।'

तो जीसस ने कहा : 'क्या तू सोचता है कि परमात्मा इतना भी प्रेम तेरे लिए नहीं दिखायेगा?'

जीसस यह कह रहे हैं कि पुण्यात्माओं को तो परमात्मा ले आता है--चला कर; पापियों को कन्धे पर रख कर लाता है; भटके हुओं को, गुमराहों को...।

प्रेम का शास्त्र अनूठा है; उसके भरोसे अनूठे हैं; उसकी दिशा अलग है। और अगर प्रेम का शास्त्र न होता, तो मनुष्य के लिए कोई भविष्य न था। मनुष्य इतना कमजोर है, लाख उपाय करके भी कहाँ सज्जन हो पाता है! लाख उपाय करके भी कहाँ संत हो पाता है? और कभी कोई एकात हो भी जाता हो, तो उस पर परमात्मा की कृपा बरसेगी, बाकी सब बरसा से रहित रह जायेंगे--सूखे; और कभी हरे न होंगे? तो प्रकृति बड़ी उदास हो जाती है।

नहीं; तुम चारों तरफ देखो। सूरज की भाषा समझो; चाँद-तारों की भाषा समझो; हवाओं की भाषा समझो। सब को बराबर मिल रहा है। अच्छे और बुरे का कोई भेद नहीं है। हालाँकि तुम्हारे मन में अड़चन होती है, क्योंकि तुम्हारे अहंकार की अड़चन है। तुम सोचते हो : 'अरे! अगर सब को बराबर मिल रहा है, तो फिर हम अच्छा क्यों करें?'

तुम्हें यह लगता है : सब को बराबर मिल रहा है? बुरे को भी बराबर मिल रहा है? तो तुम्हारे मन में बड़ी ईर्ष्या पैदा होती है। ये तुम्हारी अड़चनें हैं। तुम इन अड़चनों के कारण ईश्वर को मत तौलो।

मलूकदास कहते हैं :

एते बदराहों की तुम बदी करी थी माफ,

मलूक अजाती पर एती करी रिस का।।

क्या कर रहे हो आज बैठे-बैठे? हम तो सुनते थे कि भटक गई भेड़ों को कंधों पर रख कर लाते हो! अब ये रहे मलूकदास। हम भटकी भेड़ हैं, अब उठाओ कंधे पर। हमारा कोई दावा नहीं है कि हम पहुँचे हुए संत हैं। भटकी हुई भेड़ हैं। अब तुम कहाँ हो? कहाँ तुम्हारा कंधा है?

तुम कहते हो : माला नहीं जपी; कभी नहीं जपी। लेकिन गजेन्द्र ने जपी थी? तुम कहते हो : वेद-कुरान नहीं पढ़े; कभी नहीं पढ़े। जटायु ने पढ़े थे? तुम कहते हो : मलूकदास, तुमने ठीक-ठीक मेरा नाम नहीं लिया। मलूकदास कहते हैं : तो फिर क्या इरादा है? कहानी को बदल दो; अजामिल की कहानी का क्या हुआ? 'मुझको भी लगा था, अजामिल का हिसका।' और तब से जो मुझे चोट लगी है, अभी तक भरी नहीं। और जब तक तुम मुझे न उठा लो...। अकारण उठा लो, तो ही चोट भरेगी।

यह भक्त की भावदशा समझना।

अकारण उठा लो। मेरे पास कोई कारण नहीं है कि मैं दावा कर सकूं। बुरा-बुरा मेरा है; सब जो मेरा है, बुरा है। इसलिए उस तरफ से कोई दावा नहीं है। मगर जैसा भी हूँ--बुरा-भला--तुम्हारा हूँ।

जग रुठे तो बात न कोई
तुम रूठे तो प्यार न होगा।
मणियों में तुम ही तो हो कौस्तुभ
तारों में तुम ही तो हो चंदा
नदियों में तुम ही तो हो गंगा
गंधों में तुम ही तो हो निशिगंधा
दीपक में जैसे लौ-बाती
तुम प्राणों के संग-संगाती
तन बिछुड़े तो बात न कोई
तुम बिछुड़े सिंगार न होगा
जग रूठे तो बात न कोई
तुम रूठे तो प्यार न होगा।

मलूकदास कहते : तुम क्यों रूठे मुझसे? सारा जग रूठ जाय--चलेगा; तुम तो न रूठो। सारा जग कहे : मैं बुरा हूँ--चलेगा; तुम तो न कहो! तुम्हें तो शोभा नहीं देता।

उमर खय्याम की एक पंक्ति है; किसी मौलवी ने कहा है उमर खय्याम को कि

'अगर तुम ये पीने-पिलाने में पड़े रहे, तो नरक में सड़ोगे :' उमर खय्याम हँसने लगा है और उसने कहा है : तो क्या खयाल है तुम्हारा; अब परमात्मा रहमान न रहा ! अब उसमें दया न बची ? तुम लांछन लगा रहे हो——उसकी दया पर ! तुम यह कह रहे हो कि अब करुणा उसकी चुक गई ! मुझे रहने दो बुरा-भला——जैसा मैं हूँ। मुझे मुझ पर भरोसा ही नहीं है। मुझे तो भरोसा उसकी करुणा पर, उसके रहमान होने पर है, उसके रहीम होने पर है।

भक्त का भरोसा अपने अहंकार पर नहीं है। ज्ञानी का भरोसा अपने व्यक्तित्व पर है। भक्त का भरोसा उसकी कृपा पर है। ज्ञानी का अपने प्रयास पर——भक्त का उसके प्रसाद पर। जब भी वह पाता है : कुछ अड़चन हो रही है, वह प्रार्थना करता है। वह कहता है कि मामला क्या है ! तुम्हारी दुनिया में रह रहा हूँ, तुम्हारा हूँ। और तकलीफ भोग रहा हूँ !

भीग कर भी जल रहा हूँ,
आह मैं बरसात में
मेघ में मधुरस भरा है
या कि यह ठन्डी अगन है
देह को छूते बराबर
हो रही मीठी जलन है
चाँद का भी मुँह घटा ने
ढँक दिया है कुन्तलों से
मैं यहाँ परदेस में
कितना अकेला रात में
भीग कर भी जल रहा हूँ
आह मैं बरसात में।

तुम खयाल करो।

इस तरह छाई उदासी
पलक बोझिल आँख नम है
फिर तुम्हारी याद का यह
दर्द भी तो कुछ न कम है
इस तरह से चल रहा है
काटता हर एक झोंका
जहर जैसे घुल गया है
पश्चिमी मधुपात में

गीत तो उमड़ा हृदय में
पर अभी गाया न जाता
इस तरह घायल हुआ है
मन कि बहलाया न जाता
लग रहा है ऐसे कि जैसे
गीत वाले स्वर-भ्रमर
कैद होकर रह गये हैं
मौन के जलजात में
लाज से दब बिजलियाँ जब
तुम सरीखी मुसकराती
क्या पता तुमको कि वे सब
किस तरतु मुझको जलातीं
बरसता पानी
तरसता है मगर चातक हृदय का
तुम नहीं हो बस
तुम्हारी याद ही है साथ में
भीग कर भी जल रहा हूँ
आह मैं बरसात में
मैं यहाँ परदेस में
कितना अकेला रात में !

कुछ खयाल करो।

भक्त का सारा जोर इस बात पर है कि तुम कुछ करो। और कितना मिटूँ, ताकि तुम्हारी करुणा पा सकूँ ! और कितना भटकूँ, ताकि तुम खोजने निकलो ! और कितना गर्त में पड़ूँ; और कितने अँधेरे में उतरूँ, ताकि तुम्हारी रोशनी की किरण कृपा बन कर मुझे खोजती हुई आ जाय ?

भक्त कहता है कि तुम अगर चाहो, तो सब हो जाय। मेरे चाहे कुछ भी नहीं होता। 'सूत्र बाँधते अगर गीत में, वेदों का वंशज हो जाता।' इतना भरा है मुझमें तुमने कि अगर जरा सूत्र बाँध दो, अगर जरा व्यवस्था जुटा दो, तो मैं जो कहूँ, वे वेद हो जायँ।

सूत्र बाँधते अगर गीत में
वेदों का वंशज हो जाता
हरदम मिट्टी रही तरसती

रखा जन्म से उसको प्यासा
नित्य तिरस्कृत होकर रोया
वीराने में पड़ा उदासा
होनहार सूरज ने कोई
अँधियारे में साँस तोड़ दी
शोकाकुल हो गये तुम
तुमने ठण्डी आह छोड़ दी
दीप जला कर तुमने हरदम
छोड़ दिया बिलकुल अनाथ-सा
बूँद-बूँद भी स्नेह पिलाते
अब तक तो सूरज हो जाता
दीप जला कर तुमने हरदम
छोड़ दिया बिलकुल अनाथ-सा
बूँद-बूँद भी स्नेह पिलाते
अब तक तो सूरज हो जाता
सूत्र बाँधते अगर गीत में
वेदों का वंशज हो जाता।
रही उपेक्षित धरती तुमसे
अपमानित ही लौटे मौसम
किया न तुमने कभी बाग में
श्रम गंगा जमुना का संगम
कभी न पूछी कुशल फूल की
कभी न डाली को दुलराया
कभी न दुर्वा का दुःख जाना
कभी न शबनम को सहलाया
जरा तुम्हारी लापरवाही
बगिया में मधुमास न आया
अगर पाल लेते तुम कलियाँ
फूल फूल पंकज हो जाता
सूत्र बाँधते अगर गीत में
वेदों का वंशज हो जाता।
बूँद-बूँद भी स्नेह पिलाते

अब तक तो सूरज हो जाता
दीप जला कर तुमने हरदम
छोड़ दिया बिलकुल अनाथ-सा।

भक्त कहता है : तुम जिम्मेवार हो, क्योंकि तुम मालिक हो। तुम स्रष्टा हो; मैं तुम्हारी सृष्टि हूँ।

ऐसा ही समझो कि एक मूर्ति मूर्तिकार को पुकारती हो कि यह क्या कर रहे हो! थोड़ा और छैनी लगाओ; थोड़ा मुझे और निखारो——साफ करो : थोड़ा मुझे और चमकाओ।

यह बात तुम्हारी समझ में न आयेगी, अगर संदेह से तुम चलते हो। तो यह बात ही छोड़ देना। यह तुम्हारे काम की नहीं है। फिर बाबा मलूकदास तुम्हारे लिए नहीं हैं।

अगर श्रद्धा का सूत्र तुम्हारे मन में गूँजता है, तो ये सारी बातें बहुत सीधी-साफ हैं। इनमें जरा भी अड़चन नहीं है।

इक दर्द की दुनिया है, इधर देख तो ले
कुछ और नहीं कहते, मगर देख तो ले
जिस दिल को मेरा गम ने किया दिल-ए-दोस्त
उस दिल की तरफ एक नजर देख तो ले।

भक्त पुकारे चला जाता है——कि जरा मेरी तरफ नजर करो।

'भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।'...

यह पहले सूत्रों की एक श्रृंखला पूरी हुई जिसमें मलूकदास परमात्मा को याद दिलाते हैं कि जरा तुम अपनी किताबें तो देखो। हजार तरह के करुणा के कृत्य पहले कर चुके हो, अब कुछ कंजूस होने की जरूरत नहीं है।

यह तो बात भगवान् के लिए।

दूसरी बात भक्त के लिए :

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।
दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिनके साथ॥

सिर्फ वेश से जो फकीर हो गये हों, ऊपर-ऊपर फकीर हो गये हों और भीतर-भीतर जरा भी फकीरी न प्रवेश पाई हो; भीतर विनम्रता न हो ...। समझना। जो ज्ञानी है, वह कभी विनम्र नहीं हो पाता। जो कर्मयोगी है, वह कभी विनम्र नहीं हो पाता। उसका कर्म ही उसके अहंकार को दीप्तमान रखता है।

तुम जरा फर्क देखना। जैन मुनि को तुम देखो और एक सूफी फकीर को देखो। सूफी फकीर में तुम एक विनम्रता पाओगे, जो जैन मुनि में नहीं मिलेगी। कारण

साफ है। जैन मुनि विनम्र होने का कारण ही नहीं मानता। वह तो अपना एक-एक कृत्य साफ कर रहा है, शुद्ध कर रहा है। हर शुद्ध होते कृत्य के साथ अकड़ बढ़ रही है--कि मैं कुछ हूँ।

जैन मुनि तुम्हें हाथ भी जोड़ कर नमस्कार नहीं करेगा। तुम नमस्कार करो, वह नमस्कार नहीं करेगा। वह कैसे नमस्कार कर सकता है! साधारण श्रावकों को, साधारण जनों को कैसे नमस्कार कर सकता है? अकड़ भारी है।

सूफी फकीर तुम्हारे पैर भी छू सकता है, नमस्कार की तो बात छोड़ो। तुम जाओगे, तो तुम्हारे पैर छू लेगा। क्योंकि उसने परमात्मा को ही जाना है--तुममें भी परमात्मा को जाना है। हर चरण परमात्मा का चरण है। यह असली फकीरी है।

फकीरी का मतलब है कि मैं नहीं।

'भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।' और ऊपर-ऊपर से जो फकीर हो गये हैं और अभी अपने मन के भी मालिक नहीं हो सके हैं; अभी मन ही जिनका मालिक है; अहंकार जिनका मालिक बना बैठा है...।

'भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।
दिल फकीरी जे हो रहे, साहेब तिनके साथ।।

यह तो परमात्मा से थोड़ा-सा झगड़ा कर लिया, अब वे अपने शिष्यों में कह रहे हैं कि इस बात का ध्यान रखना : ऊपर-ऊपर फकीरी से काम न चलेगा। भीतर फकीरी चाहिए। मैं ना-कुछ हूँ--ऐसा भीतर भाव चाहिए।

जीसस का प्रसिद्ध बचन है : 'धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का होगा।' 'धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं'...यह फकीरी की परिभाषा है। दरिद्र का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे पास पैसा नहीं है, कि तुम्हारे पास मकान नहीं है। मकान और पैसे से कोई समृद्ध होता, तो न होने से दरिद्र हो सकता था। इस बात का खयाल में रखना।

मकान होने से कोई समृद्ध ही नहीं होता, तो मकान के न होने से दरिद्र कैसे हो जायेगा! धन के होने से कोई समृद्ध नहीं होता, तो निर्धन होने से कोई दरिद्र कैसे हो जायेगा?

अहंकार जाय, तो आदमी 'गरीब' हुआ। अहंकार जाय, तो आदमी वस्तुतः दरिद्र हुआ। भीतर से उतर गया सिंहासन पर से; सिंहासन खाली कर दिया; उसी सिंहासन पर तो परमात्मा विराजमान होगा, जहाँ तुम बैठक लगाये बैठे हो।

'दिल फकीरी जो हो रहे, साहेब तिनके साथ।' और जिन्होंने दिल से फकीरी कर ली, जो भीतर दीन हो गये; जिन्होंने कहा : मैं कुछ भी नहीं हूँ, उसी क्षण--साहेब तिनके साथ।

राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस।
पानी तहाँ न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

कहते मलूकदास कि जहाँ राम राम का गुणगान न होता हो, जहाँ प्रभु की याद न होती हो, जहाँ हवा-हवा में अर्चना की गन्ध न हो, जहाँ वातावरण प्रभु-सिक्त न हो, उस जगह रुकना मत। सूख जाओगे वहाँ। उस जगह ठहरना मत, क्योंकि उस जगह तुम्हें प्राणों का भोजन न मिलेगा; पुष्टि न मिलेगी।

राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस।
पानी तहाँ न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

उस देश को छोड़ देना; वहाँ पानी भी मत पीना, क्योंकि वहाँ पानी भी जहर है।

यह सत्संग के लिए इशारा है। मलूकदास कहते हैं : वहाँ जाओ, जहाँ लोग राम की याद करते हों; जहाँ बैठ कर रोते हों; जहाँ बैठ कर गीत गुनगुनाते हों; जहाँ सत्संग होता हो, वहाँ डुबकी लगाओ। क्योंकि उस डुबकी में ही तुम धीरे-धीरे उस अमृत के साथ सम्बन्ध जोड़ पाओगे, जिसका नाम परमात्मा है।

अकेले तुमसे न हो सकेगा। संग खोजो। अकेले तुम बहुत कमजोर हो। अकेले भटक जाने की बहुत सम्भावना है। संग-साथ खोजो; साधु-संग खोजो; जहाँ प्रभु-वचनों की महिमा गाई जाती हो; जहाँ प्रभु की तरफ याद उठाई जाती हो; जहाँ प्रभु की याद में लोग मगन होते हों, नाचते हों। उस जगह जाओ, उस हवा में जियो, वहाँ श्वास लो, वहाँ पानी पीओ, वहाँ ठहरो, वहाँ आवास करो, तो शायद तुम्हें भी धुन पकड़ जाय।

तुमने यह खयाल किया : जहाँ दस-बीस लोग नाचते हों, वहाँ तुम्हारे पैर भी थिरकने लगते हैं। जहाँ कोई ढंग से तबला बजाता हो, वीणा बजाता हो, वहाँ तुम्हारे हाथ भी थपकने लगते हैं। क्या होता है?

कार्ल गुस्ताव जुंग ने ठीक शब्द उसके लिए खोजा है--सिन्क्रॉनिसिटि। कुछ समतुल घटने लगता है। उदास आदमी को देख कर तुम्हारे भीतर उदासी आ जाती है। क्योंकि हम अलग-अलग नहीं हैं; हम एक-दूसरे के भीतर प्रवेश कर रहे हैं; हमारी तरंगें एक-दूसरे में लीन हो रही हैं। उदास आदमी को देख कर तुम्हें उदासी आ जाती है; प्रसन्न चित्त आदमी को देख कर तुम्हारे भीतर भी प्रसन्नता की किरण फूटने लगती है।

हम अलग-अलग नहीं हैं; हम एक-दूसरे के संग-साथ हैं। जहाँ दस आदमी हँस रहे हों, वहाँ तुम भूल ही जाते हो चिंता; वहाँ तुम भी हँसने लगते हो। पीछे तुम सोचते भी हो कि ऐसा कैसे हुआ! मैं तो इतना चिंतित था, इतना बोझ से भरा था, हँसने कैसे लगा! तुम कितना ही हँसते हुए जाओ, जहाँ दस आदमी उदास बैठे

हों, मुरदे की तरह बैठे हों, जहाँ की हवा में मौत हो--जीवन न हो, तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारी हँसी ठहर गई, ठिठक गई। हँसना मुश्किल पाओगे। इतनी दस आदमियों की उदासी दीवाल की तरह खड़ी हो जायेगी; तुम्हारे ओंठ बंद हो जायेंगे। तुम अचानक पाओगे कि तुम भी डूब गये उस अँधेरे में, जिसमें वे दस डूबे हुए बैठे थे।

मनुष्य एक-दूसरे से जुड़े हैं; एक-दूसरे के हृदय की तरंगें, एक-दूसरे के भीतर जाती हैं, आंदोलन करती हैं। इसलिए साध-संग का बड़ा मूल्य है।

जहाँ तुम जैसे प्रभु को खोजने वाले कुछ दीवाने इकट्ठे होते हों, बैठो उन मस्तों के पास, दीवानों के पास; घड़ी भर तो जरूर निकाल ही लो चौबीस घंटे में। वहीं से तुम्हें धीरे-धीरे रस लगेगा। वहीं से तुम्हारे भीतर प्यास जगेगी; वहीं से तुम्हारे भीतर चुनौती उठेगी।

राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस।
पानी जहाँ न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

उस देश को भी छोड़ देना, जहाँ लोग राम को भूल गये हों। उस समाज को भी छोड़ देना, जहाँ लोग राम का स्मरण न करते हों; वहाँ पानी भी मत पीना। उन हाथों से दिया गया पानी भी घातक है।

जॉर्ज गुरजिएफ कहा करता था कि तुम जैसे एक कारागृह में बंद हो। अकेले अगर तुम जेलखाने के बाहर निकलना चाहो, तो बहुत मुश्किल होगी। लेकिन अगर कारागृह के दस-बीस कैदी इकट्ठे होकर जुट जायँ, तो मुश्किल आसान हो जायेगी। फिर भी अगर सिर्फ कैदी ही आपस में जुट कर निकलने की कोशिश करें, तो भी कठिनाइयाँ होंगी। अगर ये कैदी जेल के बाहर के किसी मुक्त पुरुष से सम्बन्ध बना लें, तो और भी आसानी हो जायेगी।

एक कैदी निकलना चाहे, तो बहुत मुश्किल है, पचास पहरेदार हैं। लेकिन अगर सौ कैदी निकलना चाहें--इकट्ठे--एकजूट--तो पहरेदार कम पड़ जाते हैं। एक निकलता था, तो पचास पहरेदार थे; पचास गुने थे। सौ कैदी निकलना चाहें, तो पहरेदार कम पड़ गये; आधे हो गये। लेकिन फिर भी कठिनाई है। पहरेदारों के पास बंदूकें हैं; पहरेदारों के पास सब साधन हैं। कैदी साधनहीन हैं। लेकिन अगर भीतर के कैदी बाहर के जगत् के किन्हीं लोगों से संबंध बना लें, जिनके पास साधन हैं, और जिनको स्वतंत्रता है, जो जानते हैं कि कब पहरा बदलता है; जो जानते हैं कि कौन-सी दीवाल बाहर से कमजोर हो गई है; जो जानते हैं कि किस कोने से निकल जाने पर आसानी पड़ेगी; जो जानते हैं कि दीवाल के किस हिस्से पर चढ़ जाना सुगम होगा, क्योंकि बाहर से घूम कर जेलखाने को भली-भाँति देख सकते हैं। तो आसानी हो जायेगी।

फिर गुरजिएफ कहता है: अगर यह जो बाहर का आदमी है, कभी जेल में न आया हो, तो उतनी आसानी न होगी। लेकिन अगर कोई कैदी जो जेल में भी रह चुका है और मुक्त हो गया है--अगर उससे तुम्हारा सम्बन्ध जुड़ जाय, तो बहुत आसानी हो जायेगी; उसे भीतर बाहर--सब पता है। वह तुम्हारे बड़े काम का हो जायेगा।

सद्‌गुरु का इतना ही अर्थ है। तुम्हारी ही तरह वह भी कभी एक जेलखाने में था; अब वह बाहर हो गया है। उसे भीतर का सब पता है; उसे बाहर का भी सब पता है। वह स्वतंत्र है। वह सब जाँच-पड़ताल कर सकता है। वह भीतर नक्शे पहुँचा सकता है कि कहाँ से निकलना सुगम होगा; समय बता सकता है कि कि किस समय सुगम होगा; कब पहरेदार रात में सो जाते हैं। कौन-सा द्वार कमजोर है। या किस पहरेदार को मिला लिया गया है और दरवाजा खुला छोड़ दिया जायेगा रात। ये सारी व्यवस्थाएँ हो सकती हैं।

सद्‌गुरु का अर्थ इतना ही होता है: जो संसार से उठ गया, और परमात्मा के साथ एक हो गया है; जो संसार की कारागृह के बाहर है। उसके साथ सम्बन्ध जोड़ लो। और जिन मित्रों को मुक्त होने की आकांक्षा है, उनसे भी सम्बन्ध जोड़ लो।

इसलिए दुनिया में सत्संग पैदा हुए। बुद्ध के पास हजारों लोग इकट्ठे हुए। महावीर के पास हजारों लोग इकट्ठे हुए; सत्संग बने।

यहाँ करोड़ों-अरबों कैदी हैं, लेकिन मुक्त होने की उनकी कोई आकांक्षा नहीं है। अगर तुम उनके साथ ही संग-साथ रखोगे, तो वे तुम्हें भी बंधनों की नई तरकीबें सिखाये जायेंगे। वे कहेंगे: चलो, इस बार इलैक्शन में ही खड़े हो जाओ; कि चलो, एक नई दूकान खोल लो; कि इस धंधे में बड़ा लाभ है। वे तुमसे वे ही बातें करेंगे, जो वे कर सकते हैं। उनका कोई कसूर भी नहीं है।

वहाँ पानी भी मत पीना--मलूकदास कहते हैं: उस देश को भी छोड़ देना। उन लोगों से भी धीरे-धीरे हटना।

'भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।' और बाहर-बाहर से न होगा। 'दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिनके साथ।' भीतर-भीतर की बात है। भीतर की बात है।

राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस।
पानी तहाँ न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

और अगर तुम सत्संग में डूबने लगो, तो तुम पाओगे: परमात्मा धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर प्रवेश पाने लगा।

आँगन में नर्म नर्म फूटती उजास
और हिलती है पंखुड़ी गुलाब की
मेंहदी के पत्तों से देह रचे दिन
आँखों में सुबवन्ती सामे
हलकी-सी एक छुअन पल-छिन
गोरी रातों सी पहचाने
पोर-पोर रंगता है इतना मधुमास
और बात गाँठ खोल रही बात की
कुछ भी अनहोना अब रहा नहीं
सारा अपनापन तो अपना है
रंगों के मेले में एक रंग
पत्थर पर दूब का पनपना है
यह भी क्या कुछ कम
है इतना विश्वास
और साथ-साथ परछाई आपकी।

पहले तो परमात्मा परछाई की तरह आयेगा; लेकिन इतना क्या कम है! 'कुछ भी अनहोना अब रहा नहीं।'...

तुमने देखा—पत्थर पर पर ऊगती हुई दूब को कभी देखा? पत्थर पर दूब ऊग आती है, तो आदमी के हृदय पर परमात्मा न ऊगेगा! यहाँ असंभव होता है।

कुछ भी अनहोना अब रहा नहीं
सारा अपनापन तो अपना है
रंगों के मेले में एक रंग
पत्थर पर दूब का पनपना है
यह भी क्या कुछ कम
है इतना विश्वास
और साथ-साथ परछाई आपकी
आँगन में नर्म-नर्म फूटती उजास
और हिलती है पंखुड़ी गुलाब की

परमात्मा धीरे-धीरे आने लगेगा, जैसे उजास आती आँगन में और खिलने लगता गुलाब; ऐसे ही तुम भी खिलने लगोगे।

सत्संग खोजो; साध-संग खोजो; फिर पता ही नहीं चलता—कब परमात्मा तुम्हारे भीतर किस चुपके से प्रवेश कर जाता है।

इश्क सुनते थे जिसे हम, वह यही है शायद।
खुद-ब-खुद दिल में एक शक समाया जाता॥

आज इतना ही।

जीवन्त अनुभूति • प्रकृति और सद्गुरु • प्रेम की हार
भक्त का निवेदन • परमात्मा की प्यास
भलाई का अहंकार

छठवाँ प्रवचन
श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १६ मई, १९७७
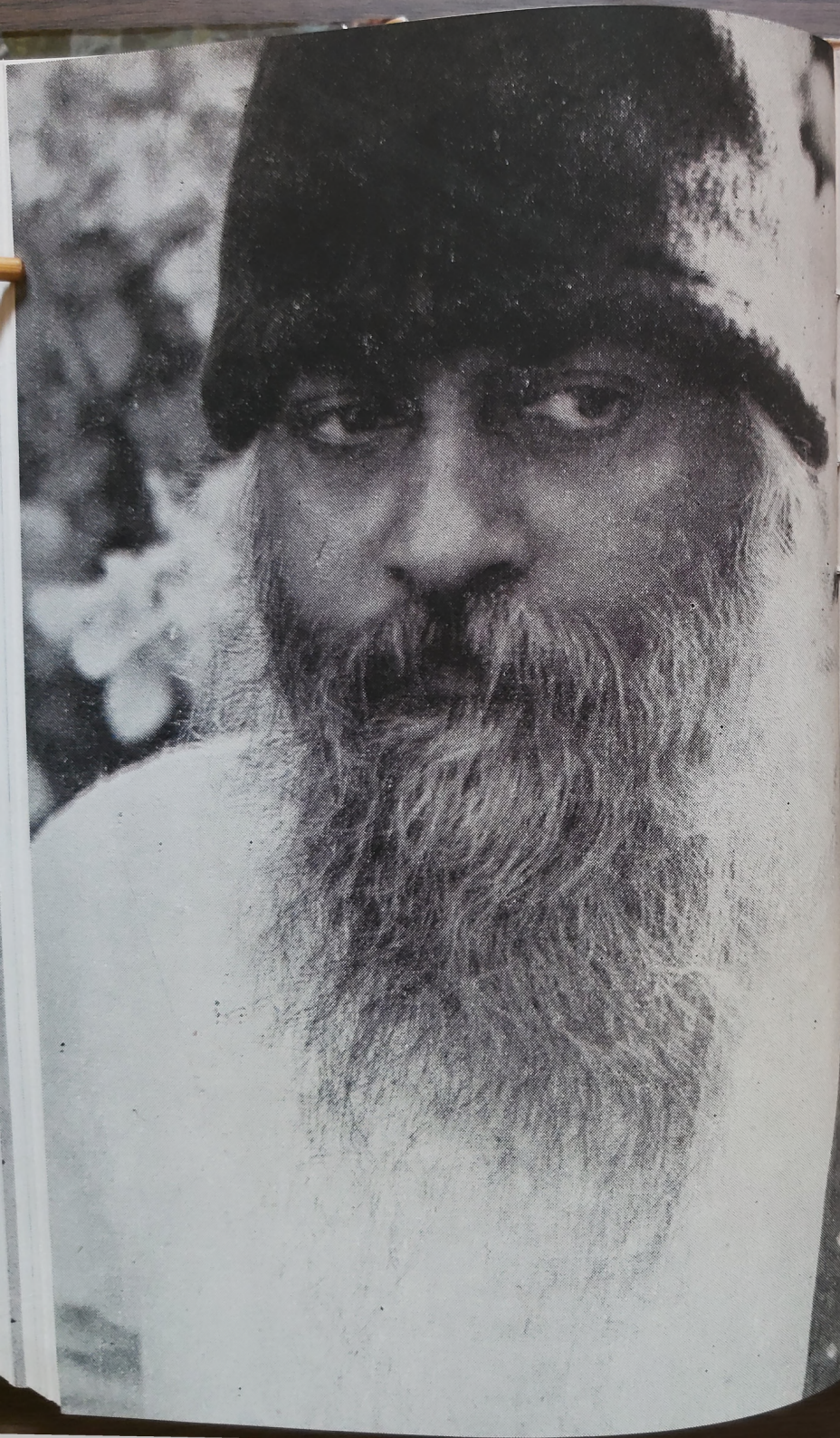
प्रश्न-सार

- आध्यात्मिक अनुभूतियों को कैसे संजो कर रखा जाय?
- प्रकृति सान्निध्य और गुरु सान्निध्य में क्या फर्क है?
- परमात्मा को पाना मनुष्य की जीत है या हार?
- भक्त क्या पाना चाहता है?
- परमात्मा की खोज का साहस मुझमें क्यों नहीं है?
- मैं भलाई करता हूँ, लोग अनुग्रह क्यों नहीं मानते?

● पहला प्रश्न : जीवन में यदि कभी अनुभूति घटित हो, तो उसे उसी रूप में कैसे संजो कर रखा जाय ?

पूछा है श्री शुकदेव ने।

पहली तो बात : अभी अनुभूति घटी नहीं; कभी घटित हो। भविष्य को भी हम पकड़ना चाहते हैं! भविष्य का अर्थ ही है, जो अभी हुआ नहीं; उसको भी तिजोड़ी में बंद कर लेने का आयोजन करना चाहते हैं!

कृपणता की हद है; अतीत को तो हम रखते ही हैं संजो कर; भविष्य की भी चिंता करते हैं कि कैसे... ! 'अगर कभी अनुभूति घटित हो, उसे कैसे संजो कर रखा जाय ?'

तो पहली तो बात : अतीत में भी कुछ घटा हो, तो उसे भी संजो कर रखने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जो जो तुम संजो कर रखोगे, वही-वही बोझ हो जायेगा।

स्मृति ज्ञान नहीं है। जो घट गया--भूल जाओ, विस्मरण करो; उसे ढोने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारी स्मृति अगर उससे बहुत आच्छादित हो जाय, तो फिर दुबारा न घट सकेगा। फिर तुम्हारे दर्पण पर बड़ी धूल जम जायेगी।

जो हुआ, उसे भूलो। जो हुआ, उसे जाने दो। जो हो गया--हो गया। जो हो गया—चुक गया। संजो कर रखने की कोई भी जरूरत नहीं है।

लेकिन हमारी सांसारिक पकड़ें हैं; हर चीज को संजो कर रखते हैं, तो शायद सोचते हैं : कभी समाधि घटेगी, प्रभु का अनुभव होगा, उसको भी सम्हाल कर रख लेंगे।

सम्हाल कर रखेगा कौन ? प्रभु का अनुभव जब होता है, तब तुम तो होते ही नहीं; तुम तो बचोगे नहीं; कौन सम्हालेगा ? क्या सम्हालेगा ?

प्रभु का अनुभव इतना बड़ा है; अनुभूति तुमसे बड़ी है—तुम न सम्हाल सकोगे; तुम्हारी मुट्ठी में न समायेगी। और जो तुम्हारी मुट्ठी में समा जाय, उसे तुम अनुभूति समझना मत।

तो पहले तो भविष्य को पकड़ने की चेष्टा ही व्यर्थ है। ऐसे तुम्हारा मन व्यर्थ की चिंताओं में उलझ जाता है। हवाओं में महल खड़े मत करो।

दूसरे—यदि अनुभव हो भी जाय, तो उसे संजो कर रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। जो हो गया अनुभव--वह हो गया; उसे याद थोड़े ही रखना पड़ता है।

सम्हाल कर तो उसी को रखना पड़ता है, जो हुआ नहीं। समझने की कोशिश करना।

जिसको तुमने जान लिया, याद नहीं रखना पड़ता। जिसको तुमने नहीं जाना है, उसी को याद रखना पड़ता है। विद्यार्थी याद रखता है, क्योंकि समझा तो कुछ भी नहीं है; जाना तो कुछ भी नहीं है। परीक्षा देनी है, तो स्मरण रखता है। परीक्षा के बाद भूल-भाल जायेगा।

अगर तुम्हें ही अनुभव हुआ हो, तो सम्हलना नहीं पड़ता।

क्या सम्हालोगे ? अनुभव हो गया, बात हो गई।

सच तो यह है कि अनुभव हो जाय, तो उसे भूलोगे कैसे ! क्या उपाय है--जाने हुए को अनजाना करने का ? अगर अनुभव सच में हुआ है, तो अनुभव तुम्हारे श्वास-श्वास में समा गया; तुम्हारी रंध्र-रंध्र में विराजमान हो गया। जो जान लिया—वह जान लिया। अब इसका कोई उपाय नहीं है; जरूरत भी नहीं है कि इसे संजो कर रखो।

संजो कर तो उधार बातें रखनी पड़ती हैं, जो अपनी नहीं हैं; दूसरों ने जानी होंगी; हम सिर्फ मानते हैं; उन्हें संजो कर रखना पड़ता है। दूसरों ने जानी होंगी, तो हमें याद रखनी पड़ती हैं। अपना जाना हुआ याद नहीं रखना पड़ता; अपना जाना हुआ, तो याद ही रहता है। बीच रात अँधेरे में कोई जगा कर पूछ ले, तो भी याद रहता है। भूल थोड़े ही जाओगे; यह थोड़े ही कहोगे कि जरा समय दो, मैं याद कर लूँ !

अगर तुम्हें परमात्मा का अनुभव हो जाय, तो क्या तुम कहोगे कि 'जरा समय दो, मुझे सोच-विचार कर लेने दो, तब मैं बताऊँ;' हो गया अनुभव, तो तुम अनुभव के साथ एकरूप हो गये।

नहीं; जीवन की परम घटनाएँ संजो कर नहीं रखनी पड़तीं। जीवन की परम घटनाएँ इतनी बहुमूल्य हैं, इतनी प्रगाढ़ हैं, इतनी गहरी हैं कि तुम्हारे प्राण के गहरे से गहरे हिस्से तक प्रविष्ट कर जाती हैं। तुम्हारी अनुभूति तुम्हारी सुगंध बन जाती है।

और, संजो कर रखना ही मत कुछ।

यह यहाँ रोज अनुभव में आता है। अगर ध्यान की थोड़ी-सी झलक मिली, तो

बस, अड़चन शुरू हुई। फिर आदमी सम्हाल कर रखने लगता है। उस झलक को पकड़-पकड़ कर रखता है। उस झलक के कारण नई झलक मिलनी मुश्किल हो जाती है।

मन खाली चाहिए; मन सदा रिक्त चाहिए; मन के दर्पण पर चित्र नहीं चाहिए। तो जो अनुभव हुआ--हो गया।

कल जो हो चुका है, उसे याद हम इसीलिए रखते हैं कि हमें डर है कि फिर पता नहीं, अब होगा या नहीं!

परमात्मा की एक किरण उतर आये, तो डर नहीं है कोई। तुम अभय हो जाओगे। जो आज हुआ है, वह कल और भी होगा; परसों और भी ज्यादा होगा। जो हुआ है, वह बढ़ता रहेगा। इतना भय नहीं है।

लेकिन हम संसार से अनुभव सीखे हैं : रुपया मिल जाय, सम्हाल कर रख दो; कहीं खो न जाय। आज मिल गया, कल भी मिलेगा--पक्का है?

राह से जाते थे, मिल गई एक थैली रुपयों की। सम्हाल कर रख लो। अब दुबारा-दुबारा बार-बार थोड़े ही राह के किनारे यह थैली मिलेगी!

तो संसार में हम हर चीज को सम्हाल कर रखते हैं; पकड़ कर रखते हैं। हमें परमात्मा का कोई अनुभव नहीं है। जहाँ परमात्मा होना शुरू होता है--एक बूंद हुआ, तो कल दो बूंद होगा। अगर न हो, तो कसूरवार तुम हो। तुम अगर अतीत की बूंद को बहुत पकड़ कर बैठ गये और उसी को गुनगुनाते रहे, उसी की जुगाली करते रहे, तो परमात्मा सामने खड़ा रहेगा--और तुम अपने अतीत में उलझे रहोगे।

तुम अपनी अतीत की अनुभूति संजोने में लगे हुए हो और परमात्मा द्वार खटका रहा है, तो तुम चूकोगे।

अनुभूतियाँ--समाधि की, सत्य की, सम्यक् बोध की, सम्बोधि की--सम्हाल कर नहीं रखनी होतीं। पहली तो बात : तुम्हारे रोयें-रोयें में प्रविष्ट हो जाती हैं; स्मृति नहीं बनती।

स्मृति तो हम बनाते उसी चीज की हैं, जो हमारे रोयें-रोयें में समाती नहीं। समझो : जैसे कि तुमने तैरना सीखा; इसे याद रखना पड़ता है? यह तुम्हारे रोयें-रोयें में समा गया; इसकी कोई स्मृति नहीं है। तुम तीस साल न तैरो, पचास साल न तैरो, और फिर अचानक एक दिन नदी में उतर जाओ, क्या तुम्हें याद करना पड़ेगा--खड़े हो कर--कि कैसे तैरते थे! भूल जाओगे? कोई आज तक भूला नहीं। याद रखना ही नहीं पड़ता--और भूलते भी नहीं। इस रहस्य को समझना।

तैरना एक अनुभव है; इतना गहरा अनुभव है...। और गहरा इसलिए है,

क्योंकि जब तुम नदी मे उतरते हो और तैरना नहीं जानते, तो तैरना जीवन-मरण का सवाल होता है, इसलिए गहरा उतर जाता है।

नदी में उतरे और तैरना नहीं जानते, तो जीवन-मृत्यु का सवाल है। यह कोई ऐसा नहीं है कि दो और दो चार होते हैं। दो और दो पाँच भी हों, तो तुम कोई मरते नहीं हो। दो और दो तीन भी हो जायें, तो कोई जीवन मिलने वाला नहीं है। दो और दो चार होते हैं--होते रहें। कुछ भूलचूक हो जायेगी, तो कुछ अड़चन नहीं है। लेकिन तैरने उतरे नदी में--सीखने उतरे, अगर भूल-चूक हो गई तो प्राणों से हाथ धो बैठोगे। यह बड़ा खतरनाक है। इसलिए तुम्हारा अस्तित्व इसे स्मृति में नहीं रखता; तुम्हारे रोयें-रोयें में रख देता है। तुम्हारे पूरे तन-प्राण पर यह बात प्रविष्ट हो जाती है। फिर पचास साल बाद भी तुम पानी में उतरोगे, तो तुम उतना ताजा पाओगे--तैरना, जितना पचास साल पहले पाया था। जरा भी भूलचूक हीन होगी। वैसा का वैसा पाओगे।

पचास साल न तो संजो कर रखा, न याद किया, न बार-बार पुनरुक्ति की, न अभ्यास किया, फिर भी है।

परमात्मा का अनुभव तैरने जैसा है। वह भी चैतन्य के सागर में तैरना है। और परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ना भी जीवन-मरण का सवाल है। खतरनाक खेल है। कमजोरों के लिए नहीं है।

शुकदेव महाराज! आप कंजूस हैं। आपको जिन्दगी में चीजें सम्हाल कर रखने की आदत है। यह कंजूसी वहाँ न चलओ; यह कंजूसी वहाँ न ले जाओ।

प्रभु जब उतरेगा, तो रहेगा। अपने आप बसेगा। तुम सिर्फ द्वार खोलो।

मगर जिस तरह का प्रश्न पूछा है, ऐसे तो द्वार कभी खुलेगा ही नहीं। तुम तो पहले से इन्तजाम जुटा रहे हो। पूछते हो : 'जीवन में यदि कभी अनुभूति घटित हो, तो उसे उसी रूप में कैसे संजो कर रखा जाय?'

उसी रूप में संजो कर रख कर करना क्या है! और आगे नहीं बढ़ना? एक किरण मिल गई, उससे तृप्त हो जाना है?--सूरज तक नहीं चलना है? एक बूंद मिल गई है, उससे राजी हो जाना है?--सागर को नहीं पाना है? रुकने की इतनी जल्दी क्या! परमात्मा अपार है; पाते चलो--चुकता नहीं। कितना ही पाओ--चुकता नहीं। जितना पाओ, उतना ही पाने को सामने प्रगट हो जाता है।

परमात्मा का कोई ओर-छोर नहीं है। इतनी जल्दी क्या! इतनी कृपणता क्या? इतनी कमजोरी क्या?--कि उसको वैसा का वैसा कैसे सम्हाल कर रख लें!

लगता है : तुम्हारा खयाल है कि फिर दुबारा हो--न हो।

परमात्मा शाश्वत है। प्रतिपल होगा--एक बार हो जाय, एक बार स्वाद लग

जाय। हो तो अभी भी रहा है, तुम्हें स्वाद पता नहीं है, इसलिए पहचान नहीं पाते। खड़ा तो अब भी तुम्हारे सामने है; है तो तुम्हारा पड़ोसी अब भी, लेकिन प्रत्यभिज्ञा नहीं होती। अनुभव नहीं हुआ, तो पहचान नहीं होती। हीरा सामने पड़ा हो और तुम हीरा जानते नहीं कि कैसा होता है, तो पड़ा रहे हीरा।

मैंने सुना है कि एक जौहरी एक रास्ते से गुजरता था और उसने देखा कि एक कुम्हार अपने गधे पर पत्थर लादे हुए आ रहा है। और गधे के गले में उसने एक बहुमूल्य हीरा लटकाया हुआ है! जौहरी तो बड़ा हैरान हुआ। लाखों का हीरा है! और गधे के गले में लटकाया हुआ है! उसने उस कुम्हार से पूछा : 'इस पत्थर का क्या लेगा? हीरा कहना तो ठीक नहीं समझा उसने। हीरा कहे तो झंझट होगी; ज्यादा माँगेगा। और पत्थर ही समझता होगा यह, नहीं तो गधे के लटकाता! 'इस पत्थर का क्या लेगा?' उसने पूछा।

उस कुम्हार ने कहा कि 'आठ आने दे दो।'

जौहरी ने कहा : 'पत्थर के आठ आने! चार आने लेता है?'

आदमी ऐसा कृपण! आठ आने में मिलता था लाखों का हीरा, लेकिन उसने सोचा कि आठ आने क्यों खराब करने; चार आने से ही काम चल जाय।

कुम्हार भी कुम्हार था, उसने कहा कि 'नहीं बच्चे खेलेंगे। आठ आने से एक पैसे कम में नहीं दूँगा। इतना सुन्दर पत्थर, चार आने में माँगते हो!'

जौहरी ने सोचा : 'जाने दो थोड़ा दो-चार कदम आगे। पाँच आने, छः आने तक निपट जायेगा।'

कुम्हार जरा आगे गया; दूसरा जौहरी आता था; उसने देखा--हीरा। उसने कहा : 'क्या लेगा इस पत्थर का?' पत्थर कीमती है--ऐसा कुम्हार को भी एहसास हुआ : उसने कहा : 'एक रुपया नगद लूंगा; इससे कम नहीं।'

उस जौहरी ने जल्दी से एक रुपया दिया और पत्थर ले लिया। तब तक दूसरा जौहरी लौट कर आया। उसने कहा : 'भाई, छः आने ले ले।' कुम्हार ने कहा : 'भाई, बिक गया।' 'कितने में बेच दिया?' उसने कहा : 'एक रुपये में बेच दिया।' जौहरी ने कहा : 'अरे पागल, लाखों का था!'

वह कुम्हार हँसने लगा; उसने कहा कि 'मैं तो पागल हूँ, क्योंकि मुझे पता नहीं। लेकिन तुम्हें तो पता था। तुम आठ आने में लेने को राजी न थे! मूरख कौन है? मुझे तो पता नहीं, इसलिए क्षम्य हूँ। लेकिन तुम अपने को कैसे क्षमा करोगे!'

हीरा भी सामने पड़ा हो, तो पहचान तो चाहिए न कि हीरे कैसे होते हैं, तो प्रत्यभिज्ञा होती है।

परमात्मा तो सामने ही है; आसपास ही है; भीतर-बाहर है; वही है; और तो

कुछ भी नहीं है। लेकिन हमारी आँखों में कोई अनुभव नहीं है। जिस दिन अनुभव हो जायेगा--एक झलक, बस फिर झलक ही झलक खुल जायेगी। फिर इसको सम्हालकर रखोगे? क्या पागलपन की बात कर रहे हो!

और झलक को सम्हाल कर रखा, तो वह तो स्मृति मात्र होगी। वह तो ऐसा होगा : असली आदमी सामने खड़ा था, तुम फोटोग्राफ छाती से लगाये बैठे रहे!

याददाश्त तो फोटोग्राफ है। फोटोग्राफ की तो तब जरूरत होती है, जब कि असली मौजूद न हो। परमात्मा की हमें मूर्तियाँ बनानी पड़ी है, क्योंकि हमें असली परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। जिस दिन दिखाई पड़ जायेगा, उस दिन तुम मूर्ति को थोड़े ही पूजा करोगे! उस दिन तुम मंदिर-मसजिद थोड़े ही जाओगे। उस दिन तो जहाँ तुम देखोगे, वहीं वही है, वहीं तुम्हारी पूजा उठने लगेगी; वहीं तुम्हारी आरती के दीये सज जायेंगे। तब तुम जहाँ बैठोगे, वहीं उपासना, वहीं प्रार्थना। तुम जिस तरफ आँखें उठाओगे, उसी तरफ प्रभु की झलक।

और तुम पूछते हो कि 'उसको उसी रूप में संजो कर कैसे रखा जाय?' तुम्हें अगर अलबम बनाना हो, तुम्हारी मरजी।

कुछ लोग हैं, जो अलबम बनाने में बड़ी उत्सुकता लेते हैं। एक तरह की बीमारी है।

मेरे एक मित्र हैं, बड़े फोटोग्राफर हैं; उनके साथ एक दफा मैं हिमालय गया। तो उन्हें हिमालय देखने की चिंता ही नहीं! उनको तो फोटो लेने की चिंता है। हिमालय सामने खड़ा है; वे उत्तुंग शिखर सामने खड़े हैं; वे फोटोग्राफ ले रहे हैं। मैंने उनसे पूछा भी कि 'फोटोग्राफ ही लेने थे, तो फोटोग्राफ तो कहीं भी मिल जाते थे; बाजार में बिकते हैं; इतने दूर आने की जरूरत न थी।' उन्होंने कहा : 'आप समझते नहीं। घर में बैठ कर शांति से अलबम देखेंगे।'

हिमालय सामने है। यह गंगा बही जा रही है। यह अपूर्व कलकल नाद! यह फोटोग्राफ में तो नहीं होगा। फोटोग्राफ तो मुरदा होंगे।

इसी संदर्भ में यह भी समझ लेना कि अनुभूति और अनुभव में यही भेद है। इन दो शब्दों में बड़ा भेद है। अनुभूति तो कहते हैं, जब सामने घटना घट रही हो--तब। और अनुभव कहते हैं--जो घटना घट गई और उसकी तस्वीर रह गई मन में। अनुभूति कहते हैं--मौजूद को और अनुभव कहते हैं--बीत चुके को।

तुमने सूरज को उगते देखा; जब तुम उगते देख रहे थे; जब सूरज उगता था और तुम सूरज के साथ मौजूद थे और तुम्हारे भीतर भी कोई रोशनी उगती थी और तुम एकलीन हो गये थे; वह तो क्षण है अनुभूति का। फिर तुमने साँझ याद किया; बड़ा प्यारा सूरज था; कितना सुन्दर सूरज था! और तुमने अब फिर

अपनी स्मृति में दोहराया--यह अनुभव है। अनुभव मुरदा अनुभूति है।

अनुभूति में तो प्राण है, आत्मा है; अनुभव में केवल लाश रह गई।

अब तुम पूछते हो कि 'उस अनुभव को उसी रूप में कैसे संजो कर रखा जाय?' तुम लाश को सजा कर रख लोगे। प्राण तो निकल गया। प्राण तो सदा वर्तमान में होता है; अभी और यहाँ होता है।

जैसे कि मैं तुमसे बोल रहा हूँ। अभी जो मैं तुमसे बोल रहा हूँ, इन शब्दों में प्राण है। तुम इनको संजो कर रख लेना। घर जाकर याद करना कि मैंने क्या कहा था, तब इनमें प्राण नहीं रहेगा; तब तुम्हारी स्मृति में दोहराये जायेंगे।

स्मृति तो यंत्र है, जैसे टेपरेकार्डर है; उनमें प्राण नहीं रहेगा। यहाँ कुछ लोग कभी-कभी आ जाते हैं; मैं यहाँ बोलता हूँ, वे अपना नोटबुक निकाल कर लिखने लगते हैं।

एक डॉक्टर यहाँ आते थे, उनको मैंने आखिर बुलाकर कहा कि 'यह मत करो।' उन्होंने कहा : 'नहीं; लेकिन आप ऐसी बहुमूल्य बात कभी कह देते हैं कि संजो कर रखनी है।' मैंने कहा : 'तुम मौजूद, मैं मौजूद; बोलनेवाला मौजूद, सुननेवाला मौजूद; तुम इतने परिपूर्ण प्राण से सुन क्यों नहीं लेते कि उसका पूरा रस तुममें भिद जाय। कागज पर लिख कर क्या करोगे? और अगर मेरे बोलते समय तुम्हारी समझ में नहीं आया, तो तुम इस किताब को जब वापस पढ़ोगे, तुम सोचते हो--तुम समझ लोगे? लाश हाथ रह जायेगी।'

शास्त्र और गुरु का यही तो भेद है। शास्त्र लाश हैं। गुरुओं की लाशें शास्त्र बन जाती हैं। वेद हैं, उपनिषद् हैं; गीता है, कुरान है, बाइबिल है--लाशें हैं।

जब जीसस बोलते थे, जिन्होंने सुना होगा, उनके जीवन में एक पुलक आई होगी। जब उपनिषद् के ऋषियों ने गुनगुनाया होगा और जो सौभाग्यशाली थे उनके पास बैठने के, उन्हें रोमान्च हुआ होगा; कुछ घटा होगा तब। वह तो थी अनुभूति। अब तुम अगर शास्त्र को पढ़ रहे हो, स्मृति को जगा रहे हो, 'अलबम' को देख रहे हो, तो वह है अनुभव।

परमात्मा को संजो कर रखने की चेष्टा ही मत करना।

और अभी तो परमात्मा घटा भी नहीं है। घटने तो दो। अभी तो यह फिक्र करो--ऐसा प्रश्न पूछो--कि कैसे घटे।

तुम्हारे प्रश्न की मूढ़ता तुम्हें दिखाई पड़ती है? अभी घटा नहीं है। यह तुम पूछते नहीं कि कैसे घटे! अभी हीरा मिला नहीं : तुम पूछते नहीं कि हीरा कहाँ है? कैसे मिले? और मिल जाय, तो मैं कैसे पहचानूंगा कि हीरा यही है?--कि असली हीरा है?

यह तो तुम पूछते नहीं। तुम यह पूछ रहे हो कि 'यदि किसी दिन हीरा मिल जाय...।' न तुम्हें खदान का पता है; न तुम्हें हीरे की पहचान है। 'यदि किसी दिन हीरा मिल जाय, तो मैं उसे कैसे गाँठ बाँध कर रखूँगा?--यह बतला दें।'

क्या तुम खाक गाँठ बाँधोगे! गाँठ का मूल्य ही क्या है? तुम जरूर कोई न कोई पत्थर पर गाँठ बाँधकर बैठ जाओगे।

ठीक-ठीक प्रश्न पूछो; सम्यक् प्रश्न पूछो, तो तुम्हारे जीवन में रास्ते बनेंगे। प्रश्न पूछते वक्त स्मरण रखो : क्या पूछ रहे हो।

● दूसरा प्रश्न : गुरु के सतसंग की तो आप रोज-रोज महिमा गाते हैं, पर प्रकृति के सतसंग की कभी-कभी ही चर्चा करते हैं। क्या गुरु प्रकृति से भी अधिक संवेदनशील द्वार है? कृपा करके समझायें।

प्रकृति है--सोया परमात्मा; और गुरु है--जागा परमात्मा।

गुरु का अर्थ क्या होता है? गुरु का अर्थ होता है : जिसके भीतर प्रकृति परमात्मा बन गई।

तुम सोये हो; प्रकृति सोयी है; इन दोनों सोये हुओं का मेल भी बैठ जाय, तो भी कुछ बहुत घटेगा नहीं। दो सोये आदमियों में क्या घटनेवाला है? दो सोयी हुई स्थितियों में क्या घटनेवाला है?

तुम अभी प्रकृति से तालमेल बिठा ही न सकोगे। तुम जागो, तो प्रकृति को भी तुम देख पाओ। तुम जागो, तो प्रकृति में भी तुम्हें जगह-जगह परमात्मा का स्फुरण मालूम पड़े। पत्ते-पत्ते में, कण-कण में उसकी झलक मिले--लेकिन तुम जागो तो। तुम अभी गुलाब के फूल के पास जाकर बैठ भी जाओ, तो क्या होना है! तुम सोचोगे दुकान की। तुम अगर गुलाब के संबंध में थोड़ी बहुत सोचने की कोशिश करोगे, तो वह भी उधार होगा। तुम अभी जागे नहीं। तुम अभी अपने प्रति नहीं जागे, तो गुलाब के फूल के प्रति कैसे जागोगे?

जो अपने प्रति जागता है, वह सब के प्रति जाग सकता है। और जो अपने प्रति सोया है, वह किसी के प्रति जाग नहीं सकता।

और गुलाब का फूल गुरु नहीं बन सकता। क्योंकि गुलाब का फूल तुम्हें झकझोरेगा नहीं। गुलाब का फूल खुद ही सोया है, वह तुम्हें कैसे जगायेगा?

गुरु का अर्थ है--जो तुम्हें झकझोरे, जो तुम्हारी नींद को तोड़े। तुम मीठे सपनों में दबे हो। तुम कल्पनाओं में डूबे हो। जो अलार्म की तरह तुम्हारे ऊपर बजे; जो तुम्हें सोने न दे...। एक बार तुम्हें जागरण का रस लग जाय, एक बार तुम आँख खोल कर देख लो कि क्या है, फिर कोई बात नहीं है। फिर प्रकृति में भी परमात्मा है।

इसलिए कभी-कभी मैं प्रकृति की बात करता हूँ, लेकिन ज्यादा नहीं। क्योंकि तुमसे प्रकृति की बात करनी व्यर्थ है। तुम्हें इन वृक्षों में क्या दिखाई पड़ेगा? वृक्ष ही दिखाई पड़ जायँ, तो बहुत। वृक्षों से ज्यादा तो दिखाई नहीं पड़ेगा। तुम्हें मनुष्यों में नहीं दिखाई पड़ता--मनुष्यों से ज्यादा कुछ! तो वृक्षों में वृक्षों से ज्यादा कैसे दिखाई पड़ेगा; तुम्हें अपने में नहीं दिखाई पड़ता कुछ भी।

शुरुआत अपने से करनी होगी।

और किसी जीवित गुरु के साथ हो लेने में सार है।

गुरु का काम बड़ा धन्यवादशून्य काम है। कोई धन्यवाद भी नहीं देता! नाराजगी पैदा होती है। क्योंकि गुरु अगर तुम्हें जगाये, तो गुस्सा आता है।

तुम गुरु भी ऐसे तलाशते हो, जो तुम्हारी नींद में सहयोगी हों। इसलिए तुम पण्डित-पुरोहित को खोजते हो। वे खुद ही सोये हैं; घुर्रा रहे हैं नींद में; वे तुम्हारे लिये भी शामक दवा बन जाते हैं।

जाग्रत गुरु से तो तुम भागोगे; सदा से भागते रहे हो; नहीं तो अब तक तुम कभी के जाग गये होते। बुद्ध से भागे; महावीर से भागे; कबीर से भागे होओगे। जहाँ तुम्हें कोई जागा व्यक्ति दिखाई पड़ा होगा, वहाँ तुमने जाना ठीक नहीं समझा; तुम भागते रहे हो। तभी तो अभी तक बच गये, नहीं तो कभी के जाग जाते।

तुम पकड़ते ऐसे लोगों का सहारा हो, जो तुम्हारी नींद न तोड़ें। तुम कहते हो: ठीक है। धर्म भी हो जाय, और जैसे हम हैं, वैसे के वैसे भी बने रहें। तुम सोचते हो कि चलो, थोड़ा कुछ ऐसा भी कर लो कि अगर परमात्मा हो, तो उसके सामने भी मुँह लेकर खड़े होने का उपाय रह जाय; कि हमने तेरी प्रार्थना की थी, पूजा की थी। अगर हमने न की थी, तो हमने एक पुरोहित रख लिया था नौकरी पर, उसने की थी; मगर हमने करवाई थी--सत्य-नारायण की कथा। प्रसाद भी बँटवाया था! अगर भगवान् न हो, तो कुछ हर्जा नहीं है; दो-चार-पाँच रुपये का प्रसाद बँट गया; दो-चार-पाँच रुपये पुरोहित ले गया; कोई हर्जा नहीं है। वह जो दस-पाँच का खर्चा हुआ, उसको भी तुम बाजार में उपयोग कर लेते हो; क्योंकि जो आदमी रोज-रोज सत्य नारायण की कथा करवा देता है, उसकी दुकान ठीक चलती है। लोग सोचते हैं: सत्य नारायण की कथा करवाता है, तो कम से कम सत्य नारायण में थोड़ा भरोसा करता होगा। सत्य बोलता होगा। कम लूटेगा। कम धोखा देगा।

यहाँ भी लाभ है--सत्य नारायण की कथा से। लोग समझने लगते हैं: धार्मिक हो, तो तुम आसानी से उनकी जेब काट सकते हो। उनको भरोसा आ जाय कि आदमी ईमानदार है, मंदिर जाता है, पूजा-प्रार्थना करता है, तो सुविधा हो जाती है; प्रतिष्ठा मिलती है।

यहाँ भी लाभ है। और अगर कोई परमात्मा हुआ, तो वहाँ भी लाभ ले लेंगे।

मैंने सुना है: एक आदमी मरा; वह स्वर्ग के द्वार पर गया। द्वारपाल ने उससे पूछा कि 'महाराज, आपने कुछ पुण्य किया है, जो आप सीधे स्वर्ग चले आये?' उसने कहा कि 'हाँ, किया है। एक बुढ़िया को तीन पैसे दिये थे।'

उन्हें भरोसा तो नहीं आया इस कंजूस को, कृपण को देखकर। इसकी खबरें आती रही थीं जमीन से कि यह महा कृपण है। इसने तीन पैसे दिये हों, भरोसा तो नहीं आया। लेकिन खाता-बही देखी। तीन पैसे उसने दिये थे। लिखा था हिसाब--कि तीन पैसे दिये हैं।

तो द्वारपाल अपने सहयोगी से पूछने लगा: 'अब क्या करें!' तो उसके सहयोगी ने कहा: 'इसको तीन पैसे की जगह चार पैसे दे दो--ब्याज सहित वापस--और नरक भेजो।' और क्या करेंगे!

तुमने जो किया है कभी धर्म, वह ऐसा ही है--तीन पैसे जैसा। और तुम ध्यान रखना: चौथा पैसा तुम्हें वापस मिल जायेगा और नरक की यात्रा...!

तुम धर्म को भी हिसाब-किताब से करते हो। लेकिन सद्गुरु के पास रहोगे, तो नींद तो टूटेगी। सपना तो टूटेगा।

कभी-कभी सपना अच्छा भी होता है; सुन्दर भी होता है। सभी सपने दुःख-स्वप्न नहीं होते!

मैंने सुना है: एक रात मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने उसे उठा दिया, कहा कि चोर-चोर; उठो। वह बड़ा नाराज हुआ। उसने कहा: 'भाड़ में जाने दे चोर को। सब खराब कर दिया। अब पता नहीं, दुबारा होगा कि नहीं।' वह जल्दी आँख बन्द करके लेट गया। उसकी पत्नी ने कहा: 'मामला क्या है?' उसने कहा कि मामला यह है...। खराब ही करवा देगी बिलकुल। एक आदमी सपने में सौ रुपये दे रहा था। बेवक्त जगा दिया। अब पता नहीं, आँख बन्द करूँ, तो वह दे--न दे; मिले--न मिले!

तुम्हारे सपने भी हैं, उनमें भी तुम कल्पनाओं को बाँध रहे हो।

तो गुरु तुम्हारे दुःख-स्वप्न तो तोड़ेगा ही; तुम्हारे सुख-स्वप्न भी तोड़ देगा।

प्रकृति से यह काम न हो पायेगा। प्रकृति खुद ही सोयी है, तुम्हें कैसे जगायेगी? हाँ, प्रकृति के पास जाओगे, तो थोड़ी राहत मिलेगी, शांति मिलेगी, क्योंकि प्रकृति उद्विग्न नहीं है।

कश्मीर की झीलों में, कि हिमालय की वादियों में हरे वृक्षों के साथ बैठ कर, चाँद-तारों के नीचे; कि दूर--उत्तुंग--उठती सागर की लहरों को देख कर तुम

थोड़े शान्त हो जाओगे; क्योंकि मनुष्य का उत्पात नहीं है; मनुष्य के रुग्ण चित्तों की तरंगें नहीं हैं। बस, इतना ही होगा। लेकिन यह कोई बड़ी उपलब्धि नहीं है।

शुरू शुरू जाओगे हिमालय तो दो-चार दिन शांति लगेगी, फिर अशांति शुरू हो जायेगी। फिर तुम हिमालय को भूल जाओगे; फिर तुम्हारा मन वापस लौट आयेगा; फिर तुम्हारा मन पुराने गणित में उलझ जायेगा; फिर तुम सोचने लगोगे : बाजार की, संसार की जगत् की बातें। फिर तुम उतरोगे पहाड़ से; तुम कहोगे : चलो घर--वापस; अब यहाँ ऊब आने लगी।

प्रकृति के पास थोड़ी देर शांति मिल सकती है। विश्राम के लिए ठीक है। प्रकृति के पास थोड़ी निद्रा मिल सकती है, क्योंकि प्रकृति बड़ी गहन निद्रा में सोयी है। इसलिए तो समुद्र में, पहाड़ में, एकान्त में, सन्नाटे में अच्छा लगता है; नींद जैसा अच्छा लगता है; लेकिन जागरण कैसे मिलेगा? जागरण तो कोई जागा हो, उसी के पास मिल सकता है।

सूरज आया द्वार री
सपनों की ये ओढ़नी
अब तो परे उतार री
सूरज आया द्वार री।
गीले पोंछ कपोल री
नयन उठा कुछ बोल री
बिखरा वेश संवार री
सूरज आया द्वार री।
चिड़ियाँ रह रह गा रहीं
सुधियाँ पास बुला रहीं
मन का छेड़ सितार री
सूरज आया द्वार री।

गुरु के पास सूरज द्वार पर आ जाता है।

सपनों की यह ओढ़नी
अब तो परे उतार री।

ओढ़नी सपनों की डाले बैठे हैं? घूंघट मारे बैठे हैं--सपनों का, उसकी वजह से जो है, वह दिखाई नहीं पड़ता। गुरु तुम्हारी ओढ़नी उतार लेगा? तुम्हारी आँखों को नग्न कर देगा? धुआँ सपनों का हटा लेगा। मगर यह भी तभी हो सकता है, जब तुम सहयोग करो। यह तुम्हारे विरोध में नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हारे समर्पण के बिना नहीं हो सकता। जबरदस्ती नहीं हो सकती इसमें।

मोक्ष जबरदस्ती नहीं मिल सकता। और मोक्ष क्या--अगर जबरदस्ती मिले! जबरदस्ती तो जो भी मिलता है, वह परतंत्रता ही होगी? स्वतंत्रता जबरदस्ती नहीं मिलती। स्वतंत्रता तो तुम चाहो, सहयोग करो, तो मिलती है। लेकिन अक्सर ऐसा होता है :

एक तो तुम गुरु के पास न पहुँचोगे--डरोगे। तुम सस्ते गुरु खोजोगे, जो तुमसे भी गये-बीते हैं? जिनसे तुम्हें कोई भय नहीं ? जिन्हें तुम खरीद सकते हो? जिनसे तुम्हें कोई चिंता नहीं? जो तुम्हारी नींद न तोड़ सकेंगे। तुम भलीभाँति जानते हो ? तुम्हारे नौकर-चाकर हैं।

अगर तुम कभी भूलचूक से किसी सदगुरु के पास भी पहुँच जाओ, तो तुम सहयोग न करोगे? तुम असहयोग करोगे। तुम सब तरह के प्रतिरोध खड़े करोगे। तुम लाख उपाय करोगे कि उनकी आवाज तुम्हें सुनाई न पड़ पाय। या सुनाई भी पड़ जाय, तो तुम उसकी ऐसा व्याख्या करोगे कि उसकी आवाज में जो जोर था--तुम्हें जगाने का--वह शांत हो जाय।

तुम्हारा सहयोग--इसके बिना कोई सद्गुरु भी कुछ नहीं कर सकता है।

प्रकृति तो यह न कर पायेगी; हाँ, प्रकृति से कुछ पाठ सीखे जा सकते हैं। जैसे सहज होने का पाठ; सरल होने का पाठ। मगर वह भी तुम सीखोगे, तब ना!

पशु-पक्षियों से कुछ सीखा जा सकता है। गाय की आँखों में झाँक कर कुछ सीखा जा सकता है। झरनों को देख कर कुछ सीखा जा सकता है। वृक्षों के पास बैठकर कुछ सीखा जा सकता है। लेकिन तुम्हीं सीखोगे, तब ना!

और अगर तुम सीखने को ही तैयार हो, तो इस जगत् में सद्गुरु से ज्यादा महिमापूर्ण कोई घटना नहीं है। क्योंकि चेतना के फूल खिल गये। इससे बड़े और फूल कहाँ खिलेंगे! इसलिए तो हमने कहा : सहस्रदल कमल खिल जाये जिसका, उसको सद्गुरु कहा--जिसकी चेतना का कमल खिल जाय--हजार पंखुड़ियों वाला कमल खिल जाय।

जरूर प्रकृति में बहुत सुन्दर कमल हैं, सुन्दर से सुन्दर कमल हैं, लेकिन मनुष्य की चेतना में जो खिलता है, उसकी तुलना में तो कुछ भी नहीं हैं।

कुछ सीख सकते हो प्रकृति से, इसलिए कभी-कभी बात करता हूँ।

ये पथराये ओंठ
उनीन्दे दृग
धुँधलाई दृष्टि मलिन
इतना थका-थका तन ले कर
कैसे शुरू करूँगा दिन

साथ दिये के जागा
लेकिन साथ न उसके सो पाया
उसका काम हुआ पूरा
पर मेरा काम न हो पाया
चुभते रहते आँख में मेरी
निशि-भर टूटे हुए सपन
और वक्ष को रहा रौंदता
बोझिल-बोझिल सूनापन
चारों ओर उदासी
मेरी ही मुझको यूँ दीख रही
जैसे चिटके हुए आइने में
प्रतिछाया अनगिन
एक-एक कर मेरी सब
उम्मीदों ने दम तोड़ दिया
सभी प्रतीक्षाओं ने मेरा
हाथ सहम कर छोड़ दिया
अब मैं हूँ
या बिदा माँगता हुआ दिये का धुआँ विकल
मेरे सब संकल्प अधूरे
मेरा पूरा सृजन विफल
बीतराग मैं अपनी ही
रचनाओं के आकर्षण से
लगते मुझे एक-जैसे ही
अपना अर्जन, अपने ऋण
काश, कि मैं भी सहजरूप से
जीऊँ और यों मर जाऊँ
जैसे कलियाँ खिल उठती हैं
जैसे कुम्हला जाते तृन।

अगर तुम प्रकृति से इतना ही सीख लो:

काश, कि मैं भी सहजरूप से
जीऊँ और यों मर जाऊँ
जैसे कलियाँ खिल उठती हैं

जैसे कुम्हला जाते तृन।

न कोई चिंता है, न कोई भय है; न कोई लगाव है, न कोई मोह है, न कोई लोभ है। अगर तुम प्रकृति से इतना ही सीख लो तो बहुत। मगर वह तुम कैसे सीखोगे!

तुम्हें चाहिए कोई, जो झकझोर दे; तुम्हे चाहिए कोई, जो तुम्हारी नींद को तोड़ दे; कोई तुम्हें पुकारे जोर से। ये फूल चुप-चुप बोलते हैं। ये वृक्ष भी बोलते हैं, लेकिन बड़ा मौन है इनका स्वर। और तुम इतने कोलाहल से भरे हो कि जब तक कोई तुम्हें घरों की मुंडेर पर चढ़ कर न चिल्लाये, तुम शायद ही सुनो।

जीसस ने अपने शिष्यों से कहा है: 'जाओ, और घरों की मुंडेरों पर चढ़ जाओ और चिल्लाओ, ताकि शायद कुछ लोग जो सुनना चाहते हैं, सुन लें। 'लोग बहरे हैं,' जीसस ने कहा, 'लोग अन्धे हैं। जाओ और चिल्लाओ, ताकि उनके शोरगुल में थोड़ी-सी बात पहुँच जाय--शायद पहुँच जाय। अगर हजार के द्वार खटखटाओ, शायद एकात का हृदय खुला मिल जाय।'

सद्गुरु हजार पर कोशिश करता है, तब कहीं एक जागने को राजी हो पाता है। नौ सौ निन्यानबे तो दुश्मन हैं अपने ही। वे सब तरह की व्यवस्था कर लेते हैं कि कोई उन्हें जगा न सके।

● तीसरा प्रश्न: परमात्मा को पाना मनुष्य की जीत है या हार?

जीत भी--और हार भी। क्योंकि परमात्मा को पाने में पहले मनुष्य को हारना सीखना होता है और हारने के ही द्वार से आती है जीत। हार है उपाय--जीत है परिणाम। हार है विधि। जो हारने को राजी है, वही जीतता है।

प्रेम के जगत् में हार ही एकमात्र उपाय है। प्रेम के जगत में जो जीतना चाहता है, वह तो हार जाता है; और जो हारने को तत्पर है, वह जीत जाता है।

प्रेम का जगत् बड़ा विरोधाभासी जगत् है। और परमात्मा का अर्थ है: प्रेम की आत्यंतिक ऊँचाई, प्रेम की चरम अवस्था।

तुम्हारा प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है; उठा होगा इसी डर से कि अगर जीतना है जीवन में तो फिर क्या हारने से शुरू करें! यह बात जँचती नहीं; गणित में बैठती नहीं; तर्क के प्रतिकूल है। तर्क तो यह कहता है: अगर जीतना है, तो जीतने से शुरू करो। जाना है पूरब और पश्चिम जाओगे, तो कैसे पूरब पहुँचगे? जीतना है, तो जीतने से शुरू करो। अगर हारने से शुरू किया, तो फिर पछताओगे; आखीर में हार जाओगे। तर्क तो यही कहता है, लेकिन जीवन तर्क से बड़ा है।

जीवन का तर्क बड़ा अनूठा है। जीवन का तर्क कहता है: अगर जीतना है, तो हार जाओ। जल्दी जीतना हो, जल्दी हार जाओ। पूरा जीतना हो, पूरे हार जाओ।

परमात्मा के चरणों में जो सिर रख देता है, उसके हृदय में परमात्मा विराजमान हो जाते हैं। इतना ही नहीं; वह भी परमात्मा के हृदय में विराजमान हो जाता है।

समय का पहिया
औ' धीरज की धुरी लगी
जीवन के रथ में हैं
साँसें ही सारथी
आशा का अश्व
और राहें अनजान री
चाहों के चौराहे
सीमा पहचान री
अब तो कुछ भेद नहीं
मन में कुछ खेद नहीं
किसकी फिर पूजा हो
किसकी हो आरती
अँधयारा हरने को
जलता है स्नेह रे
कहते हैं कंचन को
माटी की देह रे
पागल है प्रीत वहाँ
घायल हर गीत वहाँ
ऐसे में साँस स्वयं
साँसों पर भार थी
करुणा के सागर में
सीपों का गाँव रे
आते कुछ काम नहीं
नाविक या नाव रे
डूबी जब तल तक तो
पाया मन-मोती
इसको मैं जीत कहूँ
या कि मेरी हार थी
डूबी जब तल तक तो

पाया मन-मोती
इसको मैं जीत कहूँ
या कि मेरी हार थी।

जो सागर में डुबकी लगायेगा गहरे, वह गहरे मोती लायेगा।

हारना डुबकी लगाने का उपाय है।

जीसस ने कहा है : जो अपने को बचायेगा, वह अपने को खो देगा; और जो अपने को खोने को राजी है, वह अपने को बचा लेगा।

प्रेम हार का गणित है। तुम्हें जब तक यह अहंकार है कि मैं जीतूंगा, मैं जीत कर रहूँगा, तब तक तुम प्रेम की दुनिया में प्रवेश न कर सकोगे। देखते हो न, भक्तों ने कहा : 'हारे को हरिनाम।' जो हार गया है, उसको ही हरिनाम उत्पन्न होता है। लेकिन ध्यानियों ने नहीं कहा यह।

ध्यानी कहते हैं : जो सत्य को पा लेता, वह जिन हो जाता है; जिन यानी जीत जाता है। जिन शब्द से जैन बना है—जीता हुआ। भक्त कहते हैं : हारा हुआ—सर्वहारा; सब जो हार देता, वह परमात्मा को पाता। ज्ञानी कहते हैं : जीतने में जो पूरी तरह लग जाता, संकल्प को जुटा के लग जाता, वह पाता।

ज्ञान जीतने की प्रक्रिया है, इसलिए ज्ञान के मार्ग पर अहंकार बहुत बड़ा खतरा है। ज्ञान के मार्ग पर अहंकार से न बचे, तो परमात्मा तो दूर, सिर्फ अहंकार ही भरता रहेगा।

भक्ति के मार्ग पर अहंकार का खतरा नहीं है, क्योंकि अहंकार तो पहले ही चरण में रख देना है। पहले ही कदम पर अहंकार उतार देना है। भक्ति के मार्ग पर खतरा है सुस्ती का, आलस्य का। भक्त आलसी हो सकता है; वह कहेगा कि ठीक है; बस, अपना हार गये, रख दिया सिर परमात्मा के चरणों में, अब जो होगा—होगा; कि उसके बिना हिलाये, तो पत्ता भी नहीं हिलता, तो इसलिए जो वह करेगा—करेगा। अब हमें क्या करना है! अब हमें कुछ भी नहीं करना है। और इस कुछ भी न करने के पीछे वह सब पुराना जाल वैसा का वैसा चलता रहेगा, जैसा चलता था। वही चोरी, वही बेईमानी, वही कठोरता, वही हिंसा।

भक्ति के मार्ग पर आलस्य का खतरा है; अहंकार का कोई खतरा नहीं है। ज्ञान के मार्ग पर अहंकार का खतरा है, क्योंकि वह संकल्प का मार्ग है; वहाँ आलस्य का कोई खतरा नहीं है।

हर मार्ग की सुविधाएँ हैं, हर मार्ग के खतरे हैं। और अकसर ऐसा होता है कि सुविधा की तो हम फिक्र ही नहीं करते हैं, खतरे में पड़ जाते हैं। सौ ज्ञानियों में निन्यानबे अहंकार में उलझ जाते हैं और सौ भक्तों में निन्यानबे आलस्य में पड़

जाते हैं और तामसी हो जाते हैं।

सावधान रहना। अगर ज्ञान का मार्ग चुनो, ध्यान का मार्ग चुनो, तो स्मरण रखना कि कहीं इससे अहंकार न भरे, नहीं तो सब व्यर्थ हो गया—किया-कराया सब व्यर्थ हो गया। एक हाथ से बनाया, दूसरे हाथ से मिटा डाला। आत्म-हत्या हो गई।

भक्ति के मार्ग पर अहंकार का कोई भी खतरा नहीं है। भक्त अपने लिए सोचता ही नहीं। मैं का भाव ही नहीं रखता। खतरा दूसरा है। सुस्त हो जाय, आलसी हो जाय, तामसी हो जाय, भाग्यवादी हो जाय; कहने लगे कि अब जो होगा—सो होगा। अपने किये तो कुछ होता नहीं; तो हम तो जैसे हैं, वैसे हैं; हम तो ऐसे ही रहेंगे। जब उसकी कृपा होगी, तब होगी। प्रयास से तो मिलता नहीं, तो जब प्रसाद होगा, तब होगा। जब तक नहीं हुआ है, हम करें भी क्या! तब तक हम जैसे हैं, वैसे ही जियेंगे।

नहीं; प्रसाद का यह अर्थ नहीं होता। प्रसाद का यह अर्थ होता है कि हम अपने को तत्पर तो करेंगे, ताकि उसका प्रसाद हम पर बरस सके। हम अपने पात्र को तो साफ करेंगे, क्योंकि गंदा पात्र हो, तो उसमें औषधि नहीं रखी जा सकती। गंदा पात्र हो, उसमें कोई दूध डाल भी दे तो दूध भी गंदा हो जायेगा।

गंदे पात्र में परमात्मा का प्रसाद नहीं उतर सकता; उतर भी आये तो वह भी जहरीला हो जायेगा। पात्र को तो शुद्ध करना होगा, निखारना होगा। उस अतिथि को बुलाया है, तो भीतर सब सजाना होगा। घर-द्वार सब साफ-सुथरा करना होगा।

ऐसा नहीं है कि भक्ति में श्रम नहीं है। श्रम तो है; श्रम पर ही भरोसा नहीं है केवल। श्रम पूरा है; अपनी तरफ से भक्त पूरा करेगा—इस बात को जानते हुए कि पूर्णाहुति तो तेरे द्वारा होगी; हम शुरुआत कर सकते हैं। हम पुकारेंगे, लेकिन पुकार तो तू सुनेगा न! यात्रा का प्रारंभ हमारे हाथ में है, अंत तेरे हाथ में है। साधन हम सब करेंगे, लेकिन साध्य तो तू देगा। मंजिल पर हम नहीं पहुँच सकते; हम मार्ग तय करेंगे, मंजिल तो तू देगा। इसको खयाल में रखना।

भक्त प्रयास पूरा करेगा, लेकिन यह मान कर चलता है कि प्रयास से ही पूरी बात नहीं हो जायेगी। कुछ कम रह जायेगा। असली बात कम रह जायेगी।

तुम्हारे घर कोई मेहमान आ रहा है; तुमने घर साफ-सुथरा कर लिया; फूल सजा दिये, दीपक जला दिये, उदबत्तियाँ लगा दीं, सुगन्ध छिड़क दी—सब ठीक-ठाक कर लिया। इतने से ही मेहमान थोड़े आ जायेगा। इतना कर लिया, तो मेहमान थोड़े ही आ गया! मेहमान तो जब आयेगा, तब आयेगा। लेकिन तुमने तैयारी पूरी कर ली, अब अगर मेहमान आयेगा, तो तुम्हारे दरवाजे बंद न पायेगा।

अब अगर मेहमान आयेगा, तो वापस नहीं लौटना पड़ेगा उसे; तुम तैयार हो। अगर उसकी वर्षा होगी, तो उसका पात्र राजी है; तुम पवित्र हो।

ज्ञानी सोचता है कि मेरे प्रयास से ही सब हो जायेगा, परमात्मा के प्रसाद की कोई जरूरत नहीं; तो अहंकार का खतरा है। और भक्त अगर सोचे कि उसके प्रसाद से ही सब हो जायेगा, मेरे प्रयास की कोई भी जरूरत नहीं, तो आलस्य का, तमस का खतरा है।

भक्त तो हारता है। और हारने में प्रसन्न होता है। इस हार में कोई दुःख नहीं है, संताप नहीं है, चिन्ता नहीं है। प्रेम में हारने में कैसा संताप!

तुमने कभी प्रेम में हार कर देखा? प्रेम में हारने में कोई चिंता नहीं, कोई पीड़ा नहीं। प्रेम के हारने में बड़ा मजा है; प्रेम के हारने में बड़ी जीत है।

> डूबी जब तल तक तो
> पाया मन-मोती
> इसको मैं जीत कहूँ
> या कि मेरी हार थी।

परमात्मा को पाने में तुम्हें हारना पड़ता है और हार कर ही तुम्हारी जीत हो जाती है। हार के माध्यम से जीत है।

● चौथा प्रश्न : भक्त का आनंद क्या है?—स्वर्ग-सुख, प्रभु-प्राप्ति या मोक्ष?

भक्त का आनंद न तो स्वर्ग-सुख है, क्योंकि भक्त ने कभी बैकुंठ की आकांक्षा नहीं की। भक्तों ने बार-बार कहा है: 'अपना बैकुंठ तुम रखो तुम्हारे पास। हमें तुम्हारे बैकुंठ की कोई जरूरत नहीं। हम तो तुम्हें चाहते हैं।'

भक्त तो भगवान् को चाहता है। और अगर तुम भगवान् के अतिरिक्त कुछ और चाहते हो, तो तुम भक्त नहीं हो; तुम भगवान् का भी शोषण करने को तत्पर हो। तुम्हारी प्रार्थना में अगर कोई और माँग छिपी है—कि मुझे धन मिल जाय, कि पद मिल जाय, कि प्रतिष्ठा मिल जाय, कि लम्बी आयु मिल जाय, स्वास्थ्य मिल जाय, कि स्वर्ग मिल जाय, तो तुम भगवान् को नहीं चाहते हो।

मैंने सुना है: एक सम्राट् विश्व-विजय को गया। जब वह लौटता था, तो उसकी सौ पत्नियाँ थीं, तो उसने खबर भिजवाई कि वह घर वापस आ रहा है, तो प्रत्येक पत्नी को पूछा कि वह क्या चाहती है; उसके लिए मैं क्या ले आऊँ! तो किसी ने हीरे मँगाये, किसी ने जवाहरात मँगाये, किसी ने मोतियों के हार मँगाये; किसी ने कुछ, किसी ने कुछ। सिर्फ एक रानी ने लिखा कि तुम आ जाओ, बस,

इतना ही काफी है।

सम्राट् लौटा; सब के लिए सब चीजें लाया, लेकिन लगाया उस सौवीं स्त्री को अपने गले से। और उसने कहा कि मुझे पता चला कि कौन मुझे चाहता है।

हीरे, मोती, जवाहरात...। वर्षों के बाद पति लौटता हो, तो कौन फिक्र करता है--हीरे जवाहरातों की? तुम लौट आओ।

भक्त कहता है: भगवान्, बस, तुम मिल जाओ। भक्त न तो स्वर्ग-सुख माँगता, न प्रभु-प्राप्ति...। इसको भी समझना।

भक्त जब कहता है: भगवान्, तुम मिल जाओ, तो यह प्रभु-प्राप्ति की माँग नहीं है। प्रभु-प्राप्ति का तो अर्थ होता है कि तुम मेरी मुट्ठी में आ जाओ। भक्त तो यह कहता है: मैं तुम्हारी मुट्ठी में आ जाऊँ—ऐसा कुछ करो; कि मैं भाग न जाऊँ। ऐसा कुछ करो कि मैं तुम्हारे चरणों से बिछुड़ न जाऊँ; तुम्हारे चरणों पड़ जाऊँ।

प्रभु-प्राप्ति शब्द ठीक नहीं है; क्योंकि इस 'प्राप्ति' में तो ऐसा लगता है, जैसे धन-प्राप्ति, स्वर्ग-प्राप्ति--ऐसी प्रभु-प्राप्ति। न; भक्त तो कहता है कि मैं तुम्हें पाऊँ, यह तो बात ही फिजूल है। मैं तुम्हें विस्मरण न करूँ, तुम्हारी याद बनी रहे, तुम्हें पुकारता रहूँ, तुम्हारे चरणों तक मेरे हाथ पहुँचते रहें--इतना काफी है।

भक्त कहता है: यह जो विरह मेरे भीतर तुम्हारे लिए जगा है, यह मिट न जाय। इस विरह की पीड़ा में आनंद अनुभव करूँ। ये जो प्रतीक्षा के क्षण हैं, ये मेरी प्रार्थना के क्षण बनें। और एक दिन ऐसा हो कि मेरी बूँद तुम्हारे सागर में समा जाय।

> पार से
> समय के सिंधु के, इस पार छोड़
> मुझे
> मेरी ही आवाज में
> टेरते रहना
> ताकि मैं
> प्रणव-प्रिया वेद-ऋचा की भाँति
> बावरी होऊँ
> मुझे बावरी हुई जान
> उस छोर से इस छोर को मिलना नहीं
> सेतु नहीं बाँधना
> कोई पोत न भेजना

> मुझे पंख न देना
> कहीं कच्ची उड़ान में राह न भटकूँ
> गंतव्य न भुला दूँ
> तो मेरे अक्षर
> मुझे मेरी ही आवाज में
> टेरते रहना
> टेरते रहना
> टेरते रहना
> ताकि मैं बावरी होऊँ
> प्रणव-प्रिया वेद-ऋचा की भाँति।

भक्त कहता है: मुझे मेरी ही आवाज में टेरते रहना। ऐसी आवाज में टेरना, जो मैं समझ लूँ। मैं नासमझ, अज्ञानी हूँ। मेरे पास कुछ बुद्धि नहीं है। तुम कुछ ऐसी भाषा में मत पुकारना, कि मैं समझ ही न पाऊँ!

> पार से
> समय के सिंधु के, इस पार छोड़
> मुझे
> मेरी ही आवाज में
> टेरते रहना।

दूर हो तुम, पता नहीं कहाँ! समय के सिंधु के उस किनारे हो कहीं--पता नहीं कहाँ! पर इतना मेरे लिए काफी है कि तुम कभी-कभी मुझे टेर देना कि मैं भटक न जाऊँ, कि मैं खो न जाऊँ, कि मैं संसार में कहीं उलझ न जाऊँ; यहाँ हजार उपाय हैं उलझने के; भटकने के लिए हजार मार्ग हैं; पहुँचने का, कुछ पता नहीं, कि कोई मार्ग है भी या नहीं।

> पार से
> समय के, सिंधु के इस पार छोड़
> मुझे
> मेरी ही आवाज में
> टेरते रहना
> ताकि मैं
> प्रणव-प्रिया वेद-ऋचा की भाँति
> बावरी होऊँ।

भक्त कहता है: मुझे पागल बनाओ; मुझे दीवाना बनाओ; मुझे तुम्हारे प्रेम

में विक्षिप्त कर दो। होश-होशियारी नहीं चाहता हूँ। क्योंकि होश-होशियारी तो सब चालाकी है; होश-होशियारी से तुम्हें किसने कब पाया है? दीवाने पहुँचे हैं तुम्हारे द्वार तक, पागल पहुँचे हैं तुम्हारे द्वार तक। पागल ही पहुँच सकते हैं। पागल होने को जो तैयार नहीं है, वह भक्त नहीं हो सकता। भक्ति तो बावलों का मार्ग है।

ताकि मैं
प्रवण-प्रिया वेद-ऋचा की भाँति
बावरी होऊँ
मुझे बावरी हुई जान
उस छोर से इस छोर मिलाना नहीं।

और जल्दी मत करना, क्योंकि तुम्हें पाने के पागलपन में भी बड़ा रस है। तो कोई जल्दी नहीं है।

मुझे बावरी हुई जान
उस छोर से इस छोर को मिलाना नहीं
सेतु नहीं बाँधना।

मुझे पुकारने देना; मुझे तड़फने देना; मेरा रोआँ-रोआँ तुम्हारे प्रेम में पागल हो उठे--ऐसा मुझे अवसर देना।

'कोई पोत न भेजना।'... कोई जल्दी मत करना और जहाज मत भेज देना--मुझे लेने। कोई जल्दी नहीं है। भक्त की प्रतीक्षा अनंत है।

मुझे पंख न देना
कहीं कच्ची उड़ान में राह न भटकूँ।

मुझे पता नहीं, तुम कहाँ हो! कितना दूर यह समय का सिंधु मुझे पार करना पड़ेगा! तुम मुझे पंख भी मत दे देना जल्दी से-- कि कहीं कच्ची उड़ान में राह न भटकूँ; गंतव्य न भुला दूँ। कहीं उड़ान की अकड़ न आ जाय! कहीं पंखों का बहुत आधार न बना लूँ; कहीं पंखों के ऊपर बहुत भरोसा न कर लूँ; कहीं तुम्हें न भूल जाऊँ!

मुझे तड़फने देना; मुझे दूर इस किनारे परदेश में बिलखने देना और विक्षिप्त होने देना।

'तो मेरे अक्षर, मुझे मेरी ही आवाज में टेरते रहना।' लेकिन एक बात भर करना कि मुझे पुकारते रहना। ऐसा न हो कि तुम्हारी पुकार मेरी तरफ आनी बंद हो जाय। 'टेरते रहना--टेरते रहना--टेरते रहना, ताकि मैं बावरी होऊँ--प्रवण प्रिया वेद ऋचा की भाँति।'

जब कोई भक्त समग्र मन से बावला हो जाता है ...। समग्र मन से--आंशिक-रूप से नहीं, पूर्णरूप से पागल हो जाता है, उसी क्षण परमात्मा का मिलन हो जाता है; उसी क्षण समय का सिंधु मिट जाता है।

हमारी होशियारी के कारण ही समय है। हमारे तर्क, हमारे संदेहों के कारण समय है -- संसार है। ऐसी उद्विग्नता का एक क्षण भी है, जहाँ समय विलीन हो जाता है। मीरा नाचते-नाचते कृष्णमय हो जाती है। वैसा चैतन्य को घटता है। वैसा बाबा मलूकदास को घटा है। मतवाले, मस्त ...।

पर भक्त चाहता क्या है अंततः? भक्त भगवान् भी नहीं होना चाहता। भक्त तो कहता है: थोड़ी-सी दूरी बनाये रखना, ताकि प्रेम की पुकार चलती रहे, प्रेम का संवाद चलता रहे। भक्त तो कहता है: पास मुझे रखना, लेकिन थोड़ी दूरी भी रखना, ताकि तुम्हें देख सकूँ, तुम्हें निहार सकूँ, तुम्हारे चरण पखार सकूँ--इतनी दूरी भी रखना। मुझे बिलकुल अपने में डुबा ही मत लेना।

ज्ञानी की आकांक्षा है भगवान् के साथ एक हो जाने की। भक्त की आकांक्षा है--भगवान् की सेवा में रत हो जाने की। भक्त की आकांक्षा है प्रभु के परम सौंदर्य को निहारने की; प्रभु के आसपास नाचने की--रास रचाने की।

● पाँचवाँ प्रश्न : मैं परमात्मा को तो पाना चाहता हूँ, लेकिन उस दिशा में कुछ भी करने का साहस नहीं जुटा पाता। त्याग की कोई आवश्यकता नहीं है--ऐसी आपकी बात सुनकर मन को खूब अच्छा भी लगता है। लेकिन फिर शंका भी होती है कि कहीं यह आत्म-प्रवंचना तो नहीं है!

पूछते हो: 'मैं परमात्मा को तो पाना चाहता हूँ, लेकिन उस दिशा में कुछ करने का साहस नहीं जुटा पाता,' तो परमात्मा को चाहने में कोई प्राण नहीं है। निष्प्राण है चाह। तुम परमात्मा को मुफ्त चाहते हो; कहीं राह के किनारे पड़ा हुआ मिल जाय!

तुम परमात्मा के लिए कुछ करना नहीं चाहते, दाँव नहीं लगाना चाहते। परमात्मा तुम्हारे जीवन की फेहरिश्त में आखिरी नम्बर है। धन के लिए तो तुम प्रयास करते। पद के लिए तुम बड़ी दौड़-धूप करते, लेकिन परमात्मा के लिए, तुम कहते हो, कुछ करने का साहस नहीं जुटा पाते। इसे गौर से देखना।

इस साहस न जुटा सकने के पीछे मौलिक बात यही है कि तुम परमात्मा को पाना ही नहीं चाहते। क्योंकि हम जिसे पाना चाहते हैं, उसे पाने के लिए हम कुछ भी करने को राजी हो जाते हैं। धन पाने के लिए आदमी चोरी करने को राजी है, हत्या करने को राजी है, जेल जाने को राजी है, फाँसी लग जाय--इसके लिए राजी है! पद पाने के लिए आदमी क्या-क्या करने को राजी नहीं है! लेकिन पर-

मात्मा पाने के लिए--आदमी सोचता है : ऐसे ही मिल जाता तो अच्छा था। बिना कुछ किये मिल जाता तो अच्छा था। मुफ्त मिल जाता तो अच्छा था।

ध्यान रहे : धर्म मुफ्त नहीं हो सकता। धर्म इस जगत् की सबसे बहुमूल्य वस्तु है--और अपने प्राणों से चुकाना पड़ता है मूल्य; और किसी चीज से चुकाने से भी नहीं मिलता।

तो तुम पाना नहीं चाहते। कहते तो तुम हो कि मैं पाना चाहता हूँ, लेकिन तुम्हारा दूसरा वक्तव्य बताता है कि तुम पाना नहीं चाहते। क्योंकि पाना चाहने का प्रमाण क्या? प्रमाण यही होता है कि तुम कितना करते हो, उससे ही पता चलेगा कि पाना चाहते हो।

मैंने सुनी है एक कहानी; इस कहानी को ध्यान करना।

मजनू लैला के दर के सामने एक दरख्त तले आन बैठा। न भूख की खबर, न प्यास का होश; बस, लैला-लैला की रट लगाये था। लैला को खबर हुई, तो उसने अपनी एक बांदी को कहा कि 'यों तो यह गरीब वाकई मारा जायेगा। इसे रोजाना तीन बार एक गिलास दूध और फल-मेवे दे आया करो।'

अब नक्शा यह कि बांदी रोजाना तीन बार यह सेहत-अफजा गिजा लाकर रख जा रही है और मजनू छू तक नहीं रहा है। कुछ दूर पर एक और दरख्त था, जिसके नीचे एक मुफलिस बैठा करता था। दूध-मलई, फल-मेवा यूँ रोजाना जाया होता देखकर उसे बहुत बुरा लगा। तो ज्यों ही बांदी यह सब रख कर जाती थी, वह जा कर खा-पी आता। कुछ दिन बाद उसने मजनू से कहा : 'म्यां, जब तुम्हें यह सब खाना नहीं है और बस, लैला-लैला ही जपना है, तो जाकर उस दूसरे दरख्त के तले बैठ रहो। काहे हमें रोज़ दिन में तीन बार वहाँ से उठकर यहाँ तक आने की जहमत देते हो!'

मजनू मान गया। अब मियाँ मुफलिस मजनू की जगह बैठकर मजनू के लिए आनेवाला तर माल मजे से उड़ाने लगे। यही नहीं, अकसर 'और लाओ' की सदा भी लगाने लगे। दिन बीतने लगे।

एक दिन लैला ने बांदी से पूछा कि 'मेरे मजनू के क्या हाल हैं? कुछ बताया नहीं? वह गरीब तो अब तक सूखकर काँटा हो गया होगा!' बांदी तुनक कर बोली : 'अरे नेकबख्त, वह मुआं तो तेरा भेजा माल खा-खा कर मोटा रहा है।'

सुनकर लैला सकते में आ गई कि मेरा मजनू इतना बदल कैसे गया! तो उसने बांदी से कहा कि 'तू अब उसके पास एक खाली गिलास लेकर जा और कह कि लैला के लिए इसमें अपना खून भर कर दे। लैला का जीवन खतरे में है। इस खून से लैला बच जायेगी। इसी खून से बच सकती है। और किसी का खून काम भी न आयेगा।'

बांदी ने ऐसा ही किया। मियाँ मुफलिस खाली गिलास देख कर भिन्नाये और फिर लैला की फरमाइश सुन कर बहुत खिलखिलाये भी। उन्हों ने बांदी से कहा: 'ऐ कनीज, ध्यान से सुन और समझ। दूध पीने वाला मजनू दरकार हो, तो बन्दा यहाँ बैठा है। खून देने वाले मजनू की जरूरत हो, तो वह उस दरख्त के नीचे बैठा है।'

परमात्मा को पाने के लिए स्वयं को पूरी तरह दे देने की जरूरत है; मजनू हो जाने की जरूरत है। अपने को खोने को जो तैयार नहीं है, वह एक बात समझ ले कि अभी परमात्मा की प्यास उसके भीतर नहीं उठी।

तो तुम गलत प्रश्न पूछ रहे हो। तुमने यह तो मान लिया है कि तुम परमात्मा को पाना चाहते हो। वहीं भूल हो रही है। और जब तक तुम इस भूल को न देखोगे, तब तक तुम अपनी स्थिति को ठीक-ठीक माप न पाओगे और इस स्थिति के बाहर भी न हो पाओगे।

बहुत लोगों का ऐसा खयाल है कि वे परमात्मा को पाना चाहते हैं, लेकिन क्या करें, और हजार झंझटें हैं, काम-धाम हैं, इसलिए समय नहीं मिलता! या इतना साहस नहीं है कि सब कुछ दाँव पर लगा दें। इस भाँति वे अपने को धोखा दे रहे हैं। इस भाँति वे यह भी मजा ले रहे हैं कि मैं परमात्मा को पाना चाहता हूँ।

यह बात भी खटकती है कि मैं परमात्मा को नहीं पाना चाहता हूँ। तो इसमें मलहम-पट्टी हो गई। अब दूसरा बहाना निकाल लिया कि क्या करें, और हजार उलझनें हैं। आज इतनी सुविधा नहीं है कि कुछ कर सकें।

तो मैं कहना चाहूँगा, पहली तो बात, कि तुम्हें अभी परमात्मा को पाने की आकांक्षा नहीं उठी है। और जिसको पाने की आकांक्षा न उठी हो, उसकी फिक्र में क्यों पड़ना? क्योंकि जब तक तुम्हें आकांक्षा न उठे, तब तक कुछ भी नहीं हो सकता।

तुम्हें जल तो दिया जा सकता है, लेकिन प्यास कैसे दी जाय? और तुम्हें प्यास न हो, तो जल का तुम क्या करोगे? हम घोड़े को नदी तक तो ला सकते हैं; पानी दिखा सकते हैं, लेकिन पानी पिलायेंगे कैसे? घोड़ा प्यासा हो, तो ही पानी पीयेगा।

और प्यासे को नदी तक ले जाने की जरूरत ही नहीं पड़ती, प्यासा नदी खोज लेता है। प्यासा सब छोड़ देता है, पानी की ही खोज करता है।

तुम्हारे भीतर प्यास नहीं है। और इस प्यास को जगाने के लिए पहला अनिवार्य कदम यही होगा कि तुम ठीक से समझ लो कि मेरे भीतर परमात्मा की प्यास

नहीं है। इसकी चोट पड़ेगी; इससे घाव पैदा होगा कि मेरे भीतर परमात्मा की कोई प्यास नहीं है! तो मैं धन, पद, प्रतिष्ठा---इसी में उलझा हुआ समाप्त हो जाऊँगा? यह क्षण-भंगुर जिंदगी ही मुझे सब मालूम होती है, तो मैं ऐसा मंद-बुद्धि हूँ! इससे बड़ी चोट पड़ेगी। चोट पड़ेगी, तो तुम जागोगे। जागोगे तो शायद प्यास जगे।

दुनिया में बड़े से बड़ा खतरा यही है कि तुम्हें अपनी स्थिति का ठीक-ठीक बोध न हो और तुम कुछ और समझे बैठे रहो। बीमार आदमी समझा बैठा रहे कि स्वस्थ है, तो इलाज कैसे हो! बीमार को पता चलना चाहिए कि मैं बीमार हूँ तो इलाज शुरू हो सकता है। फिर वह चिकित्सक भी खोजेगा, दवा भी खोजेगा, कुछ करेगा भी।

अधार्मिक आदमी अपने को धार्मिक मान कर बैठ जाय, तो यात्रा ही शुरू नहीं होती। अधार्मिक को पहले तो जानना चाहिए कि मैं अधार्मिक हूँ। इस बात को इतनी प्रगाढ़ता से जानना चाहिए कि मेरे जीवन में धर्म नहीं है; दुःख होगा; चोट लगेगी; बड़ी पीड़ा होगी---कि मेरे जीवन में परमात्मा के लिए कोई आकांक्षा नहीं है, कोई भाव नहीं, कोई प्यास नहीं! मैं सत्य का जिज्ञासु नहीं! तो मैं इस शरीर और शरीर के थोड़े दिन के खेल में ही सब समाप्त समझ रहा हूँ!

सब चोट से ही शायद तुम्हारे भीतर छिपी प्यास उठ आये। प्यास तो हर एक के भीतर छिपी है; उठनी चाहिए।

ऐसा तो कोई भी नहीं है, जसके भीतर परमात्मा की प्यास न हो। यह तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि परमात्मा को तुम समझते क्या हो! परमात्मा का अर्थ है: आनंद की परम दिशा। कौन है, जिसके भीतर परमात्मा की प्यास नहीं है? कौन है, जो नहीं चाहता कि आनंदित हो? परमात्मा का अर्थ है---अमृत की स्थिति। कौन है, जो मृत्यु के पार नहीं जाना चाहता? कौन है, जो विराट नहीं हो जाना चाहता? कौन है, जो सारी सीमाओं को तोड़ कर परम स्वतंत्रता में नहीं उड़ना चाहता? लेकिन हमें साफ नहीं है।

'मैं परमात्मा को तो पाना चाहता हूँ, लेकिन उस दिशा में कुछ भी करने का साहस नहीं जुटा पाता। त्याग की कोई आवश्यकता नहीं है, ऐसी आपकी बात सुनकर मन को अच्छा लगता है।' बहुतों को अच्छा लगता है!

लेकिन वे आधी ही बात सुन रहे हैं। मैं कहता हूँ: त्याग की कोई जरूरत नहीं है। मैं दूसरी बात कह रहा हूँ, वह तुमने नहीं सुनी। मैं कह रहा हूँ: प्रेम की जरूरत है। और प्रेम के पीछे त्याग ऐसे आता है, जैसे तुम्हारे पीछे छाया आती है। लेकिन तब त्याग का स्वर बिलकुल अलग होता है। तब तुम्हें त्यागना नहीं

पड़ता। तब त्याग सहज होता है।

तुमने जिसको प्रेम किया, उसी क्षण त्याग शुरू हो जाता है। माँ जब बच्चे को प्रेम करती है, तो कितना त्यागती है! जब तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ते हो, तो कितना त्यागते हो! मगर तब तुम उसे त्याग नहीं कहते। तब तुम कहते हो: त्याग की तो बात ही क्या कहनी; मेरा आनंद है।

माँ अपने बेटे के लिए कुछ करती है, तो यह नहीं कहती कि मैं त्याग कर रही हूँ। वह कहती है: मेरा आनंद है। सच तो यह है कि माँ सदा तड़फती है कि 'मुझे जितना करना था, उतना मैं कर नहीं पाई। जो करने योग्य था, हो नहीं पाया मुझसे।' यह तो वह कभी कहती नहीं कि मैंने बहुत त्याग किया। इतना ही कहती है कि जो मुझे करना था, वह मुझसे हो नहीं पाया। मैं बेटे के लिए पूरा नहीं कर पाई, जितना जरूरी था। मैं अपना प्रेम पूरा का पूरा नहीं निभा पाई---ऐसा दंश माँ के हृदय में होता है।

माँ यह तो कह नहीं सकती कि यह त्याग है। त्याग तो हम तभी कहते हैं, जब प्रेम नहीं होता। तुमने अगर एक भिखारी को दो पैसे दिये, तो तुम कहते हो---त्याग; क्योंकि प्रेम नहीं है। तुमने अपने मित्र को दो पैसे दिये, तब तुम त्याग नहीं कहते; तब तो त्याग की बात बड़ी बेहूदी मालूम पड़ेगी।

तुमने यह तो सुन लिया कि मैं कहता हूँ: त्याग की कोई जरूरत नहीं है। निश्चित मैं कहता हूँ कि त्याग की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि त्याग कुरूप है। प्रेम की जरूरत है। और प्रेम के पीछे जो त्याग आता है, वह परम सुन्दर है; उस त्याग की बात ही और है; उसकी महिमा और है, उसकी गरिमा और है।

तो तुम इतना ही सुन कर रुक गये, तो तुम आत्म-वंचना ही कर रहे हो। ध्यान के साथ त्याग आता है; प्रेम के साथ त्याग आता है; क्योंकि कचरे को छोड़ोगे नहीं, तो करोगे क्या? कचरे को पकड़ कर क्या करोगे?

अभी तो हालत ऐसी है कि कचरे को पकड़ रहे हो और हीरे को छोड़ रहे हो। इसको तुम भोग कहते हो! तुम बड़े नासमझ हो। हीरे को पकड़ो, कचरे को छोड़ो। लेकिन कचरे को जब कोई छोड़ता है, तो त्याग थोड़े ही कहता है। और सुबह तुम बुहारी लगाते हो घर में और कचरा तुम बाहर फेंक आते हो, तो तुम कोई अखबारों में खबर थोड़े ही छपवाते हो कि आज फिर हमने कचरे का त्याग कर दिया! अगर तुम जाकर अखबार में खबर छपवाने की कोशिश करो कि आज हमने त्याग कर दिया कचरे का, तो जाहिर होगा कि तुम कचरे को 'धन' मानते थे।

जब तुम धन छोड़ते हो, तब तुम कहते हो: बड़ा त्याग कर दिया; उसका मतलब है कि धन में तुम्हें 'धन' मालूम होता था। धन में 'धन' है कहाँ?

मान्यता है।

तुम धनियों को निर्धन हालत में नहीं देखते! और पद पर बैठे लोगों को तुम भीतर दयनीय नहीं पाते? जिनके पास सब है, उनके भीतर तुम्हें कोई किरण दिखाई पड़ती है?--कोई उत्साह, कोई उमंग, कोई उत्सव दिखाई पड़ता है? जीवन की धन्यता का भाव है वहाँ? कुछ भी नहीं है। रूखे-सूखे लोग! कंकड़-पत्थर इकट्ठे करके बैठ गये हैं। और इन्हीं कंकड़-पत्थरों में दब जायेंगे और मर जायेंगे; यही उनकी कब्र बन जायेगी।

तो मैं त्याग को तो नहीं कहता।

दो बातें कहता हूँ, क्योंकि दो ही बातें सम्भव हैं। या तो प्रेम करो--अगर भक्ति के रास्ते पर चलो; तो प्रेम के पीछे त्याग आ जाता है। या ध्यान करो--अगर ज्ञान के रास्ते पर चलो; ध्यान के पीछे त्याग आ जाता है।

भक्ति के रास्ते पर, प्रेम के रास्ते पर इसलिए त्याग आता है, कि तुम्हारा प्रेम बढ़ता है, तो तुम्हारे पास जो है, उसको बाँटने की आकांक्षा बढ़ती; साथी बनाना चाहते हो। प्रेम बाँटना चाहता है।

तो प्रेम के रास्ते पर त्याग आता है--बँटने के लिए। आदमी अपने को पूरा बाँट देना चाहता है; कुछ भी बचाना नहीं चाहता। सारी कृपणता नष्ट हो जाती है। तन, मन, धन--सब न्यौछावर कर देता है। सब उसका ही है, उसको ही लौटा देता है। 'त्वदीयं वस्तु तुभ्यमेव समर्पये'। कह देता है: 'हे गोविन्द, तेरी वस्तु थी, तुझी को लौटा दिया। त्याग क्या है! तेरा था, तुझी को दे दिया। का लागै मोरा।' त्याग नहीं कहता। उसका ही था, उसी को दे दिया; बीच में हम नाहक मालिक बन गये थे, वह मालकियत छोड़ दी।

ध्यान के रास्ते पर अन्तर्दृष्टि खुलती है, साफ हो जाता है कि कचरा-कूड़ा पकड़ कर बैठे हैं; आदमी छलाँग लगा कर बाहर निकल जाता है। पीछे लौट कर नहीं देखता। ऐसे बुद्ध एक दिन निकल गये; महावीर एक दिन निकल गये--राजमहल से--सब छोड़-छाड़ करके। जैन कहते हैं: बड़ा त्याग किया। गलत कहते हैं। उन्हें महावीर का कुछ पता नहीं; उन्हें महावीर के अन्तस्तल का कुछ पता नहीं।

त्याग का तो मतलब यह हुआ कि 'धन' था। महावीर ने त्याग नहीं किया। महावीर को तो दिखाई पड़ा: यहाँ धन इत्यादि कुछ भी नहीं है। इतने दिन की भ्रांति छूट गई! सपना उखड़ गया; नींद खुल गई! महल के बाहर हो गये। 'महल' था ही नहीं। राज-पाट सब धोखा था--एक बड़ा सपना था।

मैंने सुना है: एक सम्राट अपने इकलौते बेटे के बिस्तर के पास बैठा है। बेटा

मरने के करीब है। चिकित्सकों ने कहा कि आज की रात पूरी न हो सकेगी; बेटा रात में ही मर जायेगा। तो बाप जग रहा है। तीन चार रात से भी नहीं सोया है, क्योंकि बेटा निश्चित ही बहुत रुग्ण है। और उस पर ही सारी आशा थी; वही एकमात्र बेटा है; उसका ही राज्य था। बाप की आँखों का वही तारा था।

तो रो रहा है--बाप बैठा हुआ पास ही। कुछ करने का उपाय भी नहीं है। मौत के सामने हम कितने दयनीय हो जाते हैं! कितने दीन हो जाते हैं! सारा साम्राज्य व्यर्थ है। सारा धन व्यर्थ है। आज सब देकर बेटे का जीवन माँगने को तैयार है, लेकिन कुछ सार नहीं है।

रोते-रोते उसकी झपकी लग गई। झपकी लग गई, तो उसने एक सपना देखा। सपना देखा कि उसके पास बड़े सोने के महल हैं और उसका नगर सोने से पटा है। उसकी राजधानी हीरे-जवाहरातों से लदी है। और उसके बारह बेटे हैं--एक से एक सुन्दर, एक से एक प्रतिभाशाली। और सारी पृथ्वी पर उसका राज है, वह चक्रवर्ती है। ऐसे सपने में बड़ा मजा ले रहा है।

तभी उसकी पत्नी जोर से दहाड़ मार कर रो पड़ी, क्योंकि बेटे की साँस टूट गई। दहाड़ की आवाज सुन कर उसने आँख खोली। मरे हुए बेटे को देखता रह गया। पत्नी तो थोड़ी घबड़ा गई; क्योंकि उसको इतना लगाव था बेटे से—और एक आँसू नहीं गिर रहा है! अब तक रोता रहा था। अब बेटा मर गया है, और वह एकदम सकते में रह गया है। तो पत्नी ने सोचा कि कहीं पागल तो नहीं हो गया! उसने हिलाया; उसने कहा: 'आप कुछ बोलते नहीं; रोते नहीं? बेटा मर गया!' वह हँसने लगा। तब तो पत्नी ने समझा कि निश्चित पागल हो गया। उसने कहा: 'आप हँस रहे हैं! बात क्या है?'

उसने कहा: 'मैं इसलिए हँस रहा हूँ कि अब किसके लिए रोऊँ; किसके लिए न रोऊँ! अभी बारह बेटे मेरे थे, तब इस बेटे को मैं बिलकुल भूल ही गया था। बड़ी राजधानी थी। स्वर्ण के महल थे। अभी तक मेरी आँखों से उनकी छाया नहीं गई है। अभी तक चमक है मेरी आँखों में उनकी। बड़ा सपना मैंने देखा कि चक्रवर्ती सम्राट हूँ; (यह छोटा-मोटा राज्य क्या!) सारी पृथ्वी पर मेरी पताका फहर रही है। मेरी राजधानी हीरे-जवाहरातों से लदी है। सोने के रास्ते हैं; सोने के महल हैं। और बारह मेरे बेटे थे। एक की तू क्या बात कर रही है! और एक से एक सुन्दर थे; और एक से एक प्रतिभाशाली थे। और अचानक तूने दहाड़ मार दी; आँख खुल गई; सपना खो गया। अब मैं सोचता हूँ कि उन बारह के लिए रोऊँ या इस एक के लिए रोऊँ! अब मैं सोचता हूँ कि उस विराट

साम्राज्य के लिए रोकूँ––जो अभी-अभी मेरा था और अब मेरा नहीं है। या इस छोटे से साम्राज्य के लिए रोकूँ? क्योंकि यह भी अभी-अभी मेरा है, अभी-अभी मेरा नहीं रह जाएगा। आज बेटा मर गया; कल मैं मर जाऊँगा। जब बेटा मर गया, तो बाप कितनी देर जी सकेगा? बेटे की मौत मेरी मौत की खबर ले आई है।

कहते हैं: उस रात बाप कहाँ नदारद हो गया घर से, किसी को पता न चला। बहुत खोजबीन की गई, लेकिन उसका पता न चला। सपना टूट गया। भीतर का ही सपना नहीं टूटा, बाहर का सपना भी टूट गया। जिसको हम यथार्थ कहते हैं, वह भी टूट गया; वह भी एक बड़ा सपना है।

उसने त्याग किया? त्याग नहीं किया; बोध आया।

तो या तो बोध आता ध्यान से, तब फिर सब जो व्यर्थ है, व्यर्थ की तरह दिख जाता; तुम्हारी पकड़ उस पर छूट जाती। त्याग तो फिर भी होता है, लेकिन त्याग उसे कहने की जरूरत नहीं पड़ती।

और या प्रेम से...। कि तुम प्रेम में इतने सरोबोर हो जाते हो कि सभी अपने हैं; तो जो भी तुम्हारे पास है, तुम बाँटने लगते हो। जितना बँटे उतना भला; उतने तुम निर्बोझ हो जाते हो; 'मेरा' 'तेरा' मिट जाता है; एक उसी परमात्मा का सब है।

लेकिन त्याग तो दोनों हालत में घटता है।

मैंने निश्चित तुमसे कहा है बार-बार कि त्याग की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि त्याग अपने से घटता है; आवश्यकता नहीं है। या तो तुम प्रेम करो; प्रेम की आवश्यकता है। या ध्यान करो––ध्यान की आवश्यकता है। त्याग पीछे चला आता है––चुपचाप चला आता है। त्याग परिणाम है।

हमारे पास है भी क्या––छोड़ने को?

मिट्टी का तन, मस्ती का मन
क्षण भर जीवन, मेरा परिचय।
कल काल, रात्रि के अंधकार
में थी मेरी सत्ता विलीन
इस मूर्तिमान जग में महान
था मैं विलुप्त कल रूपहीन
कल मादकता की भरी नींद
थी जड़ता से ले रही होड़
किन सरस करों का परस आज
करता जाग्रत जीवन नवीन?

मिट्टी से मधु का पात्र बनूँ
किस कुम्भकार का यह निश्चय?
मिट्टी का मन, मस्ती का तन
क्षण भर जीवन, मेरा परिचय।
भ्रम भूमि रही थी जन्म-काल
था भ्रमित हो रहा आसमान
उस कलावान का कुछ रहस्य
होता फिर कैसे भासमान।
जब खुली आँख, तब ज्ञात हुआ
थिर है सब मेरे आसपास
समझा था सबको भ्रमित, किन्तु
भ्रम स्वयं रहा था मैं अजान
भ्रम से ही जो उत्पन्न हुआ
क्या ज्ञान करेगा वह संचय।
मिट्टी का तन, मस्ती का मन
क्षण भर जीवन, मेरा परिचय।

है क्या हमारे पास देने को? दान करने को, त्याग करने को––है क्या हमारे पास? 'मिट्टी का तन, मस्ती का मन, क्षण भर जीवन––मेरा परिचय।' एक क्षण भर पानी का बबूला है। मिट्टी की देह है और थोड़ी-सी मन की तरंगों की मस्ती है। मन के सपनों की मस्ती है और मिट्टी की देह है। मिट्टी की देह पर सवार ये सपने हैं––और क्षण-भंगुर, क्षण भर ले लिए। इतना छोटा-सा परिचय है; इसमें देने-लेने को क्या है?

जाग गया जो––या तो प्रेम में या ध्यान में––उससे त्याग सहज फलित हो जाता है।

● आखिरी प्रश्न: बाबा मलूकदास कहते हैं: दया करो और धर्म मन में रखो। मैंने जीवन भर यही किया। दया की, सेवा की, सहानुभूति दी, लेकिन किसी ने एहसान भी न माना। एहसान तो दूर, जिनके साथ भला किया, उन्होंने मेरे साथ बुराई की! आप इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं?

ऐसा खयाल रहे कि मैंने भलाई की, तो भलाई की ही नहीं। भलाई करने वाले को भलाई करने का खयाल नहीं होता। और जिसे भलाई करने का खयाल होता होता है, उसकी भलाई का यही परिणाम होता है, जो तुम्हारा हुआ: लोग उसके साथ बुराई करेंगे। क्योंकि जब तुम किसी के साथ बहुत होशपूर्वक जानते हुए

भलाई करते हो, तो तुम दूसरे के अहंकार को चोट पहुँचाते हो। वह तुम्हें कभी क्षमा न कर सकेगा।

जब तुमने किसी को दो पैसे दिये हैं, तो तुमने देखा : तुम कितने अकड़ कर देते हो! तुम्हें दो पैसे दिखाई पड़ते हैं, उस आदमी को तुम्हारी अकड़ दिखाई पड़ती है और वह दिल में कसमसा कर रह जाता है कि यह दुर्भाग्य का क्षण कि तुम जैसे आदमी से दो पैसे लेने पड़े। देखूंगा, कभी मौका मिला, तो इसका बदला चुका कर रहूँगा।

तुम्हें अपनी अकड़ नहीं दिखाई पड़ती; उसको तुम्हारी अकड़ दिखाई पड़ती है। दो पैसे दे रहे हो, लेकिन अकड़ कितने रहे हो! हाथ कितना ऊपर कर लिया है, महादाता बन गये हो।

तुम भलाई भी करते हो, तो तुम्हारे अहंकार की सजावट ही होती है--तुम्हारी भलाई। और भलाई के पीछे तुम चाहते हो--प्रत्युत्तर, धन्यवाद, अनुग्रह का भाव। और दूसरे को दिखाई पड़ता है तुम्हारा अहंकार।

मेरे एक मित्र हैं; धनपति हैं; और भले आदमी हैं। तुम जैसे ही हैं--जिसने प्रश्न पूछा है। मेरे साथ एक बार यात्रा पर गये, तो रास्ते में उन्होने अपना मन खोला। उन्होंने मुझसे कहा कि 'एक बात पूछना चाहता था सदा से, लेकिन कभी मौका नहीं मिला। मैंने अपने जीवन में अपने सारे रिश्तेदारों को, मित्रों को--सब को भरपूर दिया। लेकिन कोई मुझसे खुश नहीं है!'

और यह बात सच है। मैं उनके मित्रों को, उनके परिवार के लोगों को, उनके सम्बन्धियों को, दूर के सम्बन्धियों को--सब को जानता हूँ। उन्होंने सब को दिया है। वे खुद भी एक गरीब घर से आये। एक अमीर घर में गोदी लिए गये, तो उनके सब रिश्तेदार गरीब ही हैं। अब जो बाप अपने बेटे को गोदी देता है, वह कोई अमीर तो होता नहीं। वे एक अमीर घर में गोदी की तरह आये। तो उनके सारे रिश्तेदार, मित्र, परिचय--सब गरीबी से भरा हुआ है। उन्होंने सब को अमीर कर दिया। जितना दे सकते थे--दिया। इसमें कोई झूठ नहीं है। इसे मैं जानता था। और यह भी मैं जानता था कि वे जो कह रहे हैं, वह भी सच है। उनका कोई रिश्तेदार उनसे खुश नहीं है। सब उनसे नाराज हैं। सब उनके दुश्मन हैं। अगर मौका पड़ जाय, तो उनमें से कोई भी उनको मिटाने को तैयार हो जायेगा।

तो उन्होंने मुझसे पूछा कि 'मामला क्या है? मैंने किसी का बुरा नहीं किया। सब का भला किया। लेकिन फिर भी सब मुझसे नाराज हैं! कोई वक्त पर काम नहीं आता! और सब मेरे खिलाफ मालूम होते हैं।'

तो मैंने उनसे कहा : 'आपने भला किया, लेकिन भला करना न जाना। आपने रुपये तो दिये, लेकिन बड़ी अकड़ से दी है। आपने दूसरे को बहुत दीन बना डाला। आपने दूसरे की दीनता बड़ी प्रगाढ़ कर दी; उसके घाव को छूआ। आपने रुपये क्या दिये, सिद्ध करने को दिये कि देख, मैं कौन, और तू कौन! नाराजगी स्वाभाविक है। वे बदला लेने को आतुर हैं। और फिर आपने कभी उनको कोई मौका नहीं दिया कि किसी क्षण में वे भी आपके ऊपर हो जाते। कभी ऐसा भी नहीं आपने किया कि आप बीमार हैं, किसी मित्र को कहा हो कि आ जाओ, पास बैठ जाओ--मेरे बिस्तर के। तुम्हारे बैठने से मुझे अच्छा लगेगा। इतना भी नहीं मौका दिया किसी को। आपने सबसे सहानुभूति दिखलाई, लेकिन दूसरे को कभी मौका न दिया कि आपसे सहानुभूति दिखला दें। इससे खतरा हो गया। इससे वे नाराज हैं।'

यही मैं तुमसे कहना चाहता हूँ।

तुम कहते हो : 'मैंने जीवन भर यही किया।' दया की होगी, लेकिन दया करनी न जानी। दया की होगी, लेकिन दया के भीतर अहंकार बहुत गहरा रहा होगा। सेवा की होगी, लेकिन करने में प्रेम न रहा होगा, कर्तव्य का भाव रहा होगा। और कर्तव्य का भाव कोई गुण नहीं हैं, दुर्गुण है। और तुमने सहानुभूति दी होगी; तुम कहते हो, तो ठीक ही कहते होओगे; लेकिन सहानुभूति से कोई प्रसन्न नहीं होता।

तुम इस गीत को खयाल से सुनो :

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी? क्या करूँ?
मैं दुःखी जब जब हुआ
संवेदना तुमने दिखाई
मैं कृतज्ञ हुआ हमेशा
रीति दोनों ने निभाई
किंतु इस आभार का अब
हो उठा है बोझ भारी
क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी? क्या करूँ?
एक भी उच्छ्वास मेरा
हो सका किस दिन तुम्हारा
उस नयन से बह सकी कब
इस नयन की अश्रु-धारा?
सत्य को मूँदे रहेगी

शब्द की कब तक पिटारी ?
क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ? क्या करूँ ?
कौन है जो दूसरों को
दुख अपना दे सकेगा ?
कौन है जो दूसरों से
दुःख उसका ले सकेगा ?
क्यों हमारे बीच धोखे का रहे व्यापार जारी
क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ? क्या करूँ ?
क्यों न हम लें मान, हम हैं
चल रहे ऐसी डगर पर
हर पथिक जिस पर अकेला
दुःख नहीं बँटते परस्पर
दूसरों की वेदना में
वेदना जो है दिखाता
वेदना से मुक्ति का निज
हर्ष केवल वह छिपाता
तुम दुःखी हो तो सुखी मैं
विश्व का अभिशाप भारी !
क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ? क्या? करूँ

जब तुम दूसरे के प्रति सहानुभूति दिखाते हो, तो जरा भीतर खयाल रखना, तुम मजा ले रहे हो ।

इसे ऐसा समझो : एक आदमी के घर में आग लग गई और तुम गये और तुमने सहानुभूति दिखाई कि बड़ा बुरा हुआ--बड़ा बुरा हुआ ! लेकिन तुम जरा भीतर खयाल करना, तुम इसमें मजा भी ले रहे हो कि तुम्हारा मकान न जला, इसका जला। तुम जरा गौर करना। तुम्हारी आँख में एक चमक भी है--सहानुभूति दिखाने का मजा।

और मैं तुमसे कहता हूँ कि यह मजा तुम जरूर ले रहे होओगे। इसे उलटी तरह से सोचो। इस आदमी का झोपड़ा जल गया; अगर यह झोपड़ा न जलता और यह आदमी अचानक लॉटरी पा जाता और एक महल बना लेता, तो तुम दुःखी होते या नहीं ? तुमसे बड़ा मकान बना लेता, तो तुम्हारे मन में ईर्ष्या आती या नहीं ?

अगर तुम इसके सुख में सुखी नहीं हो सकते, तो इसके दुःख में तुम्हारा दुःख झूठा है। इसके सुख में तो तुम दुःखी हो जाते हो, तो तुम इसके दुःख में जरूर सुखी हो रहे होओगे। यह दोनों का जोड़ है।

जब भी तुम किसी व्यक्ति के दुःख में दुःखी होना बताते हो, तो तुम चाहे ऊपर से प्रगट करो या न करो, दूसरे को इसकी तरंगें मिलती हैं कि तुम बड़े प्रसन्न हो रहे हो, भीतर-भीतर रस आ रहा है तुम्हें।

सहानुभूति में बड़ा रस है; कोरा--मुफ्त में--दूसरे से ऊपर होने का मजा है। दूसरा भिखारी होकर खड़ा है; तुम दो-चार शब्द उसके भिक्षा-पात्र में डाल रहे हो और तुम बड़े प्रसन्न हो।

ध्यान रखना : तुम्हारा दूसरे के प्रति संवेदना, सहानुभूति का रुख तभी सच्चा होगा, जब तुम्हारे जीवन में सारी ईर्ष्या चली जायेगी।

मैंने अपने उन धनी मित्र को कहा कि 'अगर तुम्हारे परिवार में, तुम्हारे रिश्तेदारों में, मित्रों में कोई तुमसे ज्यादा धनी हो जाय, तो तुम्हें ईर्ष्या होगी या नहीं? वे सोचने लगे; उन्होंने कहा कि 'होगी; ईर्ष्या तो होगी--अगर उनमें मुझसे ज्यादा कोई धनी हो जाय। यद्यपि मैंने सबको धनी किया है, लेकिन मुझसे ज्यादा उनमें कोई भी नहीं है। लेकिन मुझसे ज्यादा कोई हो जाय, तो मुझे ईर्ष्या होगी।'

'तो फिर', मैंने कहा, 'तुम जो मजा ले रहे हो, वह अहंकार का ही है। तुम मजा ले रहे हो कि मैं दाता--तुम याचक। तुमने अपने सारे मित्रों को, सारे प्रियजनों को भिखारियों में रूपान्तरित कर दिया है। वे एक न एक दिन सब मिलकर तुम्हारी हत्या कर देंगे। और तब तुम कहते फिरोगे कि कैसी दुनिया है ! हम तो नेकी करते हैं और उत्तर में बदी मिलती है।

नहीं जी; नेकी के उत्तर में बदी कभी नहीं मिलती। मगर नेकी करता कौन है ? नेकी के नाम पर भी तुम बदी ही करते हो। अच्छे-अच्छे नाम हैं...! रोगों के बड़े सुन्दर-सुन्दर नाम रखे हैं हमने, लेकिन भीतर हमारा रोग छिपा है।

तुम कहते हो : मैंने जीवन भर यही किया।

नहीं साहब, बाबा मलूकदास जो कहते हैं, वह आप न कर सकेंगे। उसे करने के लिए बाबा मलूकदास होना पड़ेगा। यह कुछ कहने की बात नहीं है; करने की बात नहीं हैं; होने की बात है। यह जो बाबा मलूकदास कहते हैं, इसे बाबा मलूकदास ही कर सकते हैं। तुम्हें मलूक जैसी मस्ती चाहिए; मलूक जैसा बोध चाहिए; मलूक जैसा प्रेम चाहिए, तब तुम्हारे जीवन से जो होगा, उसका सारा गुण-धर्म अलग होगा।

अभी तो तुमने झूठे सिक्कों से मन बहलाया है। तुम कहते हो : मैंने जीवन भर यही किया। अगर तुमने सच में ही भलाई की है, तो बात खतम हो गई; तुम

इसकी प्रतीक्षा क्यों करते हो कि दूसरा तुम्हारे प्रति भलाई करे? तुमने भलाई की, बात खतम हो गई, तुमने मजा ले लिया भलाई में। भलाई करने में इतना मजा है! और क्या चाहिए?

दूसरे ने तुम्हें भलाई करने का मौका दिया, इतना क्या कम है! तुम उसके प्रति सदा धन्यवादी रहो, अनुग्रह मानो—कि तूने मुझे मौका दिया, सेवा करने का। लेकिन तुम राह देख रहे हो कि वह अनुगृहीत हो, तुम्हारा अनुग्रह माने—और कुछ कहे उत्तर में, जिससे तुम्हें प्रमाण भी मिले कि तुम्हारी भलाई का उत्तर भी आ गया। तुमने भलाई नहीं की, सौदा करना चाहा। ऊपर-ऊपर तुमने दिखाया भलाई कर रहे हैं; भीतर-भीतर व्यवसाय करना चाहा। दो पैसे दिये थे, तुम चार पैसे लौटें, इसकी प्रतीक्षा करते रहे। तुम ब्याज सहित वापस चाहते हो! और देखा जब तुमने कि मूल भी डूब गया, तो तुम नाराज हो।

'दया की, सेवा की, सहानुभूति दी, लेकिन किसी ने भी एहसान भी न माना! कोई कैसे मानेगा एहसान? तुम एहसान मनवाना चाहते थे, इसीलिए नहीं माना। तुम अगर न मनवाना चाहते, तो शायद लोग मान लेते।

इस जगत् के बड़े उलटे नियम हैं—बड़े उलटे निवम हैं। तुम अगर सम्मान चाहो, लोग अपमान करेंगे। और तुम अगर सम्मान न चाहो, लोग सम्मान करेंगे! तुम अगर लोगों के सिर पर बैठना चाहो, तो लोग तुम्हें धूल में गिरा देंगे। और तुम अगर लोगों के चरणों में गिर जाओ, तुम्हें सिर पर उठा लेंगे।

यह दुनिया बहुत अद्भुत है; इसका गणित बहुत अद्भुत है। यहाँ तुमने जीतना चाहा, तो हारोगे। और यहाँ तुम हारने को राजी रहे, तो तुम्हें कोई न हरायेगा; तुम्हारी जीत सुनिश्चित है।

आज इतना ही।

मिटने की कला : प्रेम

सातवाँ प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १७ मई, १९७७
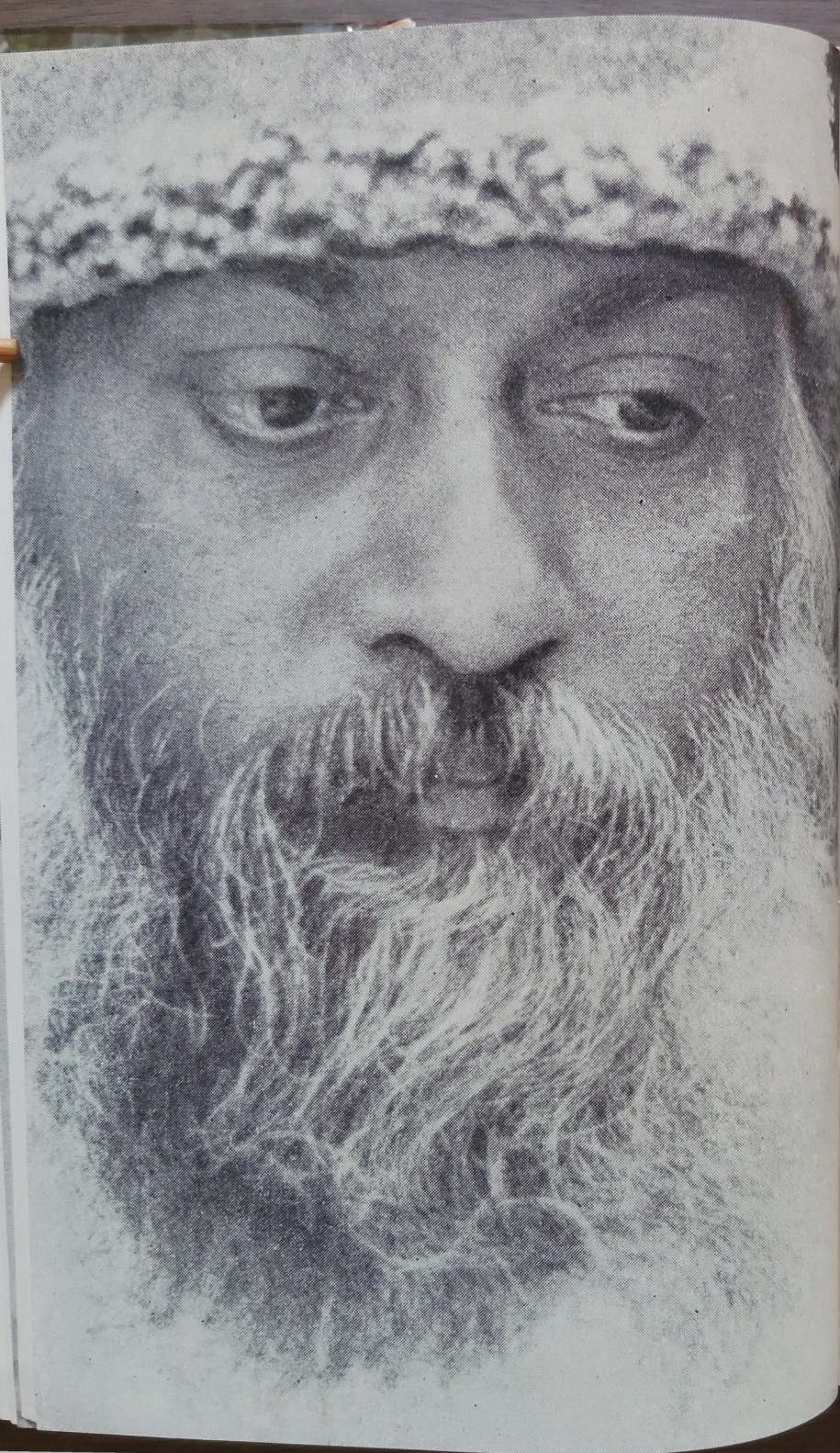
सब बाजें हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।
मन्दिर ढूढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार॥
करैं पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिसका मता अपार॥
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अन्तरजामी जानिहै, अंतरगत का भाव॥
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम॥
जेतो देखै आतमा, तेते सालिगराम।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम॥

बाबा मलूकदास एक महाकवि हैं। मात्र कवि ही नहीं--एक द्रष्टा, एक ऋषि। कवि तो मात्र छन्द, मात्रा, भाषा बिठाना जानता है। कवि तो मात्र कविता का बाह्य रूप जानता है। ऋषि जानता है--काव्य का अन्तस्तल, काव्य की अन्तरात्मा।

साधारण कविता तो बस देह मात्र है, जिसमें प्राणों का आवास नहीं। भक्तों की कविता सप्राण है; श्वास लेती हुई कविता है। इसलिए ऐसा भी हो सकता है कि भक्तों को कोई कवि ही न माने, क्योंकि न उन्हें फिक्र है भाषा की--न छन्द-मात्रा की, न व्याकरण की। गौण पर उनकी दृष्टि नहीं है। जब भीतर प्राणों का अविर्भाव हुआ हो, तो कौन चिंता करता है--अलंकरण की!

महावीर जैसा व्यक्ति नग्न भी खड़ा हो, तो परम सुन्दर है। शरीर को तो हम सजाते ही इसीलिए हैं, कि हमें उसके सौन्दर्य का भरोसा नहीं है। कुरूप व्यक्ति ही शरीर को सजाते हैं, सुन्दर व्यक्ति तो जैसा है, वैसा पर्याप्त है।

देखते हैं, वृक्षों को कोई चिंता नहीं--सजने की। न पशु-पक्षियों को सजने की कोई चिंता है। चाँद-तारों पर कौन-सा अलंकरण है? काव्य वहाँ खुला और नग्न है।

ऋषि तो वही बोल देता है, जैसा उसके भीतर घटा हैं। उसे बाँधता नहीं, व्यवस्था में नहीं जुटाता। इसलिए बहुत बार ऐसा हो जाता है कि ऋषि को तो कोई कवि ही न माने। ऋषि को जानने के लिए तो तुम्हारे पास भी आँख चाहिए।

शरीर तो अन्धे की भी समझ में आ जाता है; आत्मा तो आँखवालों को भी कहाँ दिखाई पड़ती है!

तो जब मैं मलूकदास को महाकवि कह रहा हूँ, तो इस अर्थ में कह रहा हूँ कि वहाँ शायद काव्य का ऊपरी आयोजन न भी हो, लेकिन भीतर अनाहत का नाद गूँजा है; भीतर से झरना बहा है।

फिर झरने कोई रेल की पटरियों पर थोड़े ही बहते हैं! जैसी मौज आती है, वैसे बहते हैं। झरने कोई रेलगाड़ियाँ थोड़े ही हैं। झरने मुक्त बहते हैं।

तो ऋषि का छन्द तो मुक्त छन्द है। उसकी खूबी शब्द में कम--उसके भीतर छिपे निःशब्द में ज्यादा है। खोल में कम, भीतर जो छिपा है उसमें है। गुदड़ी मत देखना; भीतर हीरा छिपा है, उसे देखना।

तो अकसर महाकवि तो कवियों में भी नहीं गिने जाते। और जिनको कवि कहना भी उचित नहीं, वे महाकवि माने जाते हैं। दुनिया बड़ी अजीब है; यहाँ तुकबन्द कवि हो जाते हैं, महाकवि हो जाते हैं। और आत्मा के छन्द को गानेवालों की कोई चिंता ही नहीं करता।

ऐसा ही समझो, जैसे अंधों में कोई काना राजा हो जाय। लोगों के हृदय सूखे पड़े हैं। वहाँ तुकबन्द भी ऐसा लगता है, कि जैसे कोई मोती ले आया। लोग भूल ही गये हैं कि हरियाली क्या होती है। फूल खिलते ही नहीं उनके जीवन में, तो प्लास्टिक के फूल भी असली फूल मालूम होते हैं।

और जहाँ फूल खिला ही न हो...। सोचो जरा मरुस्थल की, जहाँ कभी फूल खिला ही न हो, वहाँ अगर प्लास्टिक का फूल भी कोई रख दे, तो भी मरुस्थल प्रसन्न होगा।

फिर प्लास्टिक के फूल की कुछ खूबियाँ हैं, जो असली फूल में नहीं होतीं। प्लास्टिक का फूल टिकता है। असली फूल तो सुबह आया, साँझ गया; अभी आया--अभी गया। असली फूल को तो तिजोड़ी में बन्द करके रखा नहीं जा सकता। नकली फूल को तिजोड़ी में बन्द करके रख सकते हो, कुछ भी उसका बिगड़ेगा नहीं।

असली फूल पर तो हजार विपदायें हैं; नकली फूल को कोई विपदा नहीं है। नकली फूल को न जानवर चरेंगे, न समय मिटायेगा। असली फूल पर तो हर घड़ी संकट है।

हमारे हृदय ऐसे सूख गये हैं, इसलिए हम तुकबन्दियों को कविता समझ लेते हैं। माना कि उन तुकबन्दियों में मात्रा, छन्द के सब नियम पूरे हो जाते हैं। नियम ही नियम हैं वहाँ; मर्यादा ही मर्यादा है वहाँ--व्यवस्था, आयोजन, प्रयास, लेकिन भीतर कुछ भी नहीं है। मन्दिर खाली है; मन्दिर में देवता नहीं है। मन्दिर खूब सजा-सँवरा है, सोने-चाँदी से बना है, लेकिन मन्दिर में देवता विराजमान नहीं है, सिंहानन खाली है। पर सिंहासन तक तो कोई जाता कहाँ है! और सिंहासन हमें खाली भी मिले, तो हमारी देवता से कोई पहचान नहीं है। तो हम तो सिंहासन को ही देवता समझेंगे। सोने का होगा, तो उसी को सिर झुका लेंगे।

देवता से पहचान न होने के कारण झूठे देवता पुज जाते हैं। अन्धों के बीच काना राजा हो जाता है। बहरों के बीच में तुम कितने ही मधुर कण्ठ से गाओ,

कौन सुनेगा ? बहरे तो उसी को गायक समझेंगे, जो हाथ की मुद्राओं से उन्हें कुछ गा कर बता दे। हाथ की मुद्राओं को ही बहरे समझ पायेंगे। कोकिल कन्ठ भी उनके लिए अर्थहीन है।

ऐसे हम बहरे हैं। तुकबन्द हमें कवि मालूम पड़ते हैं और असली कवि हमें दिखाई भी नहीं पड़ते। असली कवि की व्याख्या ही यही है कि जिसने परमात्मा को जाना हो, जिसने जीवन के परम संगीत को अनुभव किया हो; उस अनुभव से जो बहे, वही महाकाव्य है। बिना अनुभव के जो बहे, वह कितनी ही कविता मालूम पड़े, देह देह है——लाश-लाश; निष्प्राण है; श्वास चलती नहीं है। फिर कब्र चाहे तुम संगमर्मर की बना दो, इससे कुछ भी न होगा।

जीवित व्यक्ति झोपड़े में भी है, तो भी बहुमूल्य है; और मरा व्यक्ति संगमर्मर की कब्र में भी हो, तो भी बहुमूल्य नहीं है; कोई मूल्य नहीं है।

मलूकदास की कविता में उनके भीतर के संगीत की धुन है। मलूकदास कविता करने को नहीं किये हैं। कविता बही है; ऐसे ही जैसे जब आषाढ़ में मेघ घिर जाते हैं, तो मोर नाचता है। यह मोर का नाचना किसी को दिखाने के लिए नहीं है। यह मोर सरकस का मोर नहीं है। यह मोर किसी की माँग पर नही नाचता है। यह मोर किसी नाटक का हिस्सा नहीं है।

जब मेघ घिर जाते, आषाढ़ के मेघ जब इसे पुकारते आकाश से, तब इसके पंख खुल जाते हैं, तब यह मदमस्त होकर नाचता है। आकाश से वर्षा होती; नद-नाले भर जाते; आपूर हो उठते; बाढ़ आ जाती; ऐसी ही बाढ़ आती है——हृदय में, जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है। बाढ़ का अर्थ——इतना आ जाता है हृदय में कि समाये नहीं सम्हलता; ऊपर से बहना शुरू हो जाता है। तट-बन्ध टूट जाते हैं; कूल-किनारे छूट जाते हैं।

बाढ़ की नदी देखी है न; भक्त वैसी ही बाढ़ की नदी है; सन्त वैसी ही बाढ़ की नदी है। फिर बाढ़ की नदी करती क्या है——इतनी भाग-दौड़, इतना शोर-शराबा——जाकर सब सागर को समेट कर अर्पित कर देती है।

ये मलूकदास के पद बाढ़ में उठे हुए पद हैं; ये बाढ़ की तरंगें हैं; और ये सब परमात्मा की चरणों में समर्पित हैं। ये सब जाकर सागर में उलीच दिये गये हैं।

सन्तों को मैं महाकवि कहता हूँ, चाहे उन्होंने कविता न भी की हो। यद्यपि ऐसा कम ही हुआ है, जब संतों ने कविता न की हो। यह आकस्मिक नहीं हो सकता। सब संतों ने——कम से कम भक्ति-मार्ग के सब संतों ने गाया है। ध्यान मार्ग के संतों ने कविता न भी की हो, क्योंकि उनसे काव्य का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। लेकिन उनकी वाणी में भी गौर करोगे, तो कविता का धीमा नाद सुनाई पड़ेगा।

बुद्ध ने कविता नहीं की; लेकिन जो गौर से खोजेगा, उसे बुद्ध के वचनों में काव्य मिलेगा। काव्य से वंचित कैसे हो सकते हैं——बुद्ध के वचन! चाहे उन्होंने पद्य की भाषा न बोली हो, गद्य की ही बोली हो, लेकिन गद्य में भी छिपा हुआ पद्य होगा।

पर भक्तों के तो सारे वचन गाये गये हैं।

भक्ति तो प्रेम है; प्रेम तो गीत है——प्रेम तो नाच है। भक्त नाचे हैं; भक्त गुनगुनाये हैं। जब भगवान् हृदय में उतरे, तो कैसे रुकोगे——बिना गुनगुनाये? और करोगे क्या? और करते बनेगा भी क्या? विराट जब तुम्हारे आँगन में आ जाएगा, तो नाचोगे नहीं?——नाचोगे ही। यह नैसर्गिक है; स्वाभाविक है। रोओगे नहीं? आनंद के आँसू न बहाओगे? आँसू बहेंगे ही; रोके न रुकेंगे।

इन कविताओं में, इन छोटे-छोटे पदों में मलूकदास के नाच हैं——मलूकदास के आँसू हैं; मलूकदास के हृदय के भाव हैं। इनको तुम पंडित की तरह मत तौलना। इनको तुम——काव्य-शास्त्री की तरह इनका विश्लेषण मत करना। ये विश्लेषण के पकड़ में न आयेंगे। इनको तो तुम पीना; इनके साथ तो तुम भी गुनगुनाना और नाचना, तो ही पहचान होगी।

मलूक से नाता जोड़ना हो, तो कुछ कुछ मलूक जैसे हो जाना पड़ेगा, नहीं तो सेतु न बनेगा।

भक्तों का अनुभव यही है कि अस्तित्व संगीत से बना है, नाद से बना है। रोआँ-रोआँ, अस्तित्व का, निनादित है और कण-कण में गीत छिपा है। भक्तों का यही अनुभव है कि इस जगत् की जो मूल-विषय वस्तु है, वह संगीत है। इसलिए भक्तों ने उसे अलग-अलग नाम दिये हैं। किसी ने उसे अनाहत नाद कहा है; किसी ने ओंकार कहा है। लेकिन इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

इस सारी लीला के पीछे सब तरफ कहीं न कहीं गहरे में आत्यंतिक रूप से संगीत का निर्झर बह रहा है। तुम अगर सुनोगे थोड़े तत्पर होकर——सुनाई पड़ेगा। तुम अगर शांत हो कर थोड़े बैठोगे, तो वृक्ष से गुजरती हवाओं में, भागती हुई नदी की धार में, पक्षियों की चहचहाट में, चाँद-तारों के सन्नाटे में, मनुष्यों की बोली में, बच्चों की किलकिलाहट में——सब तरफ तुम पाओगे : संगीत छिपा है।

संगीत से ही बना है अस्तित्व; तुम बहरे हो, इसलिए सुन नहीं पाते। तुमने कान बंद कर रखे हैं——सिद्धांतों, शास्त्रों, शब्दों से, इसलिए तुम सुन नहीं पाते। अन्यथा चारों तरफ परमात्मा गा रहा है; चारों तरफ परमात्मा नाच रहा है। जिस घड़ी तुम्हें यह समझ आ जायेगी, फिर तुम भी कैसे रुकोगे; तुम भी नाचोगे; तुम भी गाओगे।

तरसती हूँ, गीत गाने के लिए
भाव लेकिन मुखर हो पाते नहीं।
रोज ही तो आँख ने देखे सपन
पर मिटी फिर भी नहीं मन की तपन
सुख नहीं अमृत सुखद-शीतल-तरल
है कहीं इसमें निहित तीखा गरल
दर्द के मोती नहीं जब तक मिलें
आँसुओं के हार बन पाते नहीं।
डर लगा जब भी कभी तकदीर से
बाँध बैठी पाँव खुद जंजीर से
सोचती हूँ विवशता भी है भली
दीप बन कर जिन्दगी उसमें जली
वक्ष सागर का न जब तक दग्ध हो
गगन पर घन उमड़ लहराते नहीं।
कौन बतलाये अपरिचित पाँव को
राह यह जाती व्यथा के गाँव को
ताप किरनों का मुझे भाये तभी
फूल सी झर बिखर जाऊँ मैं कभी
धूप-छाँही रंग पहचाने बिना
जिन्दगी के राज खुल पाते नहीं।
स्वर्ण कीमत सिर्फ क्या मुस्कान की
आह है क्या धूलि बस शमशान की
फूल साँसों के बिखेरें गन्ध जब
क्या उसी को प्यार का दें नाम तब
विरह की भाषा न जब तक सीख लें
अर्थ मिलने के समझ आते नहीं।

जीवन तो काव्य है, लेकिन इस काव्य को समझने की, सुनने की कला तो आनी चाहिए। परमात्मा तो मिल सकता है अभी, लेकिन विरह की भाषा तो आनी चाहिए। तुमने उसे पुकारा नहीं, रोये नहीं।

'विरह की भाषा न जब तक सीख लें, अर्थ मिलने के समझ आते नहीं।' तुम रोये ही नहीं कभी। तुमने कभी हृदय भर के पुकारा नहीं।

दर्द के मोती नहीं जब तक मिलें

आसुओं के हार बन पाते नहीं
वक्ष सागर का न जब तक दग्ध हो
गगन पर घन मोती उमड़ लहराते नहीं
धूप-छाँही रंग पहचाने बिना
जिन्दगी के राज खुल पाते नहीं।

हम तो डरे डरे जी रहे हैं; हम तो मरे मरे जी रहे हैं। हम तो जंजीरों में अपने को बाँध कर बैठ गये हैं। हमने जीना ही बन्द कर दिया है। हम सिर्फ सुरक्षा की तलाश कर रहे हैं--और सुरक्षा मौत है।

जीवन तो है--असुरक्षा में। जीवन तो है: 'धूप-छाँही रंग पहचाने बिना, जिन्दगी के राज खुल पाते नहीं।' जीवन तो है--सुख और दुख में; खोने और पाने में; मिलने और बिछुड़ने में; भटकने और पहुँचने में। जीवन का राज तो खुलता है, द्वन्द्व की इस दुनिया में निर्द्वन्द्व उतर जाने में।

डर कर बैठ गये, पैरों में जंजीर बाँध ली कि कहीं भटक न जायँ, तो भटक गये; फिर कभी न पहुँच सकोगे। भटकने से जो डरा, वह कभी पहुँचा नहीं। लोग पहुँचते हैं--भटक-भटक कर। अपने द्वार तक पहुँचने के लिए हजार दूसरों के द्वारों पर दस्तक देनी पड़ती है।

रामानुज के पास एक व्यक्ति आया और कहा कि मुझे परमात्मा से मिला दें। रामानुज ने कहा : 'भले मानुष, तूने कभी किसी को प्रेम किया?' उस आदमी ने कहा : 'इस झंझट में मैं पड़ा नहीं। प्रेम इत्यादि की बातें छोड़ो; मुझे तो परमात्मा से मिला दो।' रामानुज ने कहा : फिर मैं हार गया। अगर तूने कभी प्रेम ही नहीं किया, तो तू प्रार्थना कैसे करेगा?' उसने कहा : मनुष्यों को प्रेम करने का परमात्मा की प्रार्थना से क्या लेना-देना? यही तो झंझट है; मनुष्यों का प्रेम ही तो झंझट है। इससे मैं पहले से ही बचता रहा हूँ।'

कहते हैं : रामानुज की आँखों में आँसू आ गये। रामानुज ने कहा : 'जिसने मनुष्यों से प्रेम नहीं किया, वह कभी परमात्मा की प्रार्थना भी समझ न पायेगा।

ये मनुष्य तो पाठ हैं। यह तो क ख ग है--प्रार्थना का। यहाँ बड़े काँटे हैं--माना; और हजार काँटों में कहीं एक छिपा फूल है। यह भी सच है। लेकिन इस फूल को पाने की चेष्टा, इस फूल को जीने की चेष्टा--और इस चेष्टा में हजार-हजार काँटों का चुभ जाना, यही जीवन में गति का उपाय है; यही चुनौती है। इस चुनौती से कोई उठता है।

भक्त कहते हैं : प्रेम से भागना मत; प्रेम को बढ़ाना, बड़ा करना। एक पर प्रेम न रुके; फैलता जाय--अनेक पर फैल जाय--अनन्त पर फैल जाय। प्रेम

बन्धन नहीं है--भक्त कहते है : बन्धन--सीमित के साथ प्रेम है। प्रेम बन्धन नहीं है--प्रेम अपने में बन्धन नहीं है। प्रेम जहाँ रुक जाता है, वहाँ बन्धन हो जाता है। मेरा प्रेम किसी पर रुक गया और मैंने मान लिया कि बस, इतिश्री हो गई, तो बन्धन है।

मेरा प्रेम रुके ना, जिसे मैं प्रेम करूँ, उसके पार होता जाय; जिसे मैं प्रेम करूँ, वह सीढ़ी बन जाय, और मैं मंदिर की एक सीढ़ी और चढ़ जाऊँ; तो तुमने जितना प्रेम किया, उतने ही तुम परमात्मा के करीब पहुँच जाओगे। तुम्हारा प्रेम जितना बड़ा होने लगेगा, उतनी सीढ़ियाँ तुम पार कर गये। और इसके बिना तुम लाख उपाय करो, तुम्हारे भीतर का गीत न फूटेगा।

तरसती हूँ गीत गाने के लिए
भाव लेकिन मुखर हो पाते नहीं।

प्रेम पहली किरण है--परमात्मा की। प्रेम पहली किरण है--समाधि की। प्रेम में छिपा है राज सारा। तुम उतना ही प्रेम मत समझ लेना, जितना तुम जानते हो; प्रेम उससे बहुत बड़ा है। तुमने तो जिसे प्रेम कहा है, वह शायद प्रेम भी नहीं है। शायद प्रेम के नाम पर तुम कुछ और ही धोखा-धड़ी किये बैठे हो।

तुमने प्रेम किया कब? तुम जब प्रेम करने की बात करते हो, तब भी तुमने कभी सच में प्रेम किया? या प्रेम के नाम पर कुछ और करते रहे?--ईर्ष्या है, मत्सर है, द्वेष है, मालकियत है। तुम्हारे प्रेम में बड़ी राजनीति है। तुम्हारे प्रेम में बड़ी कलह है। तुम्हारे प्रेम में कहाँ संगीत है? कहाँ अनाहत नाद है?

तुम कभी किसी मनुष्य के हाथ में हाथ लेकर ऐसे बैठे हो कि उस क्षण कोई कलह न हो, छीना-झपटी न हो? कभी एक क्षण को ऐसा हुआ है, जब तुम किसी के पास मौन हो गये हो और तुम्हारे दोनों हृदयों का मौन एक-दूसरे में समाने लगा है? जैसे दो दीये पास आ जायँ और उनकी ज्योति एक हो जाय--ऐसा कभी हुआ है? तो फिर प्रेम हुआ है। फिर इसी प्रेम से तुम परमात्मा की पहली खबर पाओगे। इस प्रेम में परमात्मा ने तुम्हें पहली दफा पुकारा। तुम्हें उसकी पहली धुन सुनाई पड़ेगी।

परमात्मा शास्त्रों में खोजे से नहीं मिलता। परमात्मा की सुधि आती है; और सुधि आती है--किसी अनुभव से। और मनुष्य के पास जो निकटतम अनुभव हो सकता है, वह प्रेम का अनुभव है।

माना प्रेम बहुत दूर है--परमात्मा से...। जैसे कि पहली सीढ़ी मंदिर की प्रतिमा से दूर होती है। लेकिन पहली सीढ़ी पर ही पैर रख कर दूसरी सीढ़ी, तीसरी सीढ़ी--और धीरे-धीरे तुम मंदिर तक पहुँच जाते हो।

सपनों में, पलकों में, नयनों में, अँसुओं में, सुधि आई।
सपनों में पुलक गई
पलकों में मचल गई
नयनों में छलक गई
अँसुओं में ढलक गई
छलकी-सी, ढलकी-सी, सुधि आई
अँधियारी बगीया में कोयल-सी कूक गई
सुनी दुपहरिया में पीड़ा-सी हूक गई
कारी बदरिया में उमड़-उमड़ घुमड़ाई
चाँदी की रातों में चितवन-सी मूक रह, सुधि आई
कोयल सी, पीड़ा सी, कारी बदरिया सी सुधि आई
मन्दिर की देहरी पर
पूजा स्वर लहरी पर
श्रद्धा-सी ठहर गई,
धूपित हो छहर गई
सुधि आई
ठहरी सी, गहरी सी, सुधि आई
पतझड़ की पातों में
अनसाई रातों में
अनजाने घाटों पर
अनभूली बातों में
सुधि आई
रातों में, बातों में, सुधि आई
भोर की चिरैया सी आँगन में चहक गई
भटकी पुरवैया सी आँचल में बहक गई
बेले की लड़ियों सी साँसों में महक गई
चाँद की जुन्हैया सी प्राणों में लहक गई
सुधि आई
आँगन में चहक गई
आँचल में बहक गई
साँसों में महक गई
प्राणों में लहक गई

सुधि आई, सुधि आई, सुधि आई।

परमात्मा की सुधि आती है। लेकिन सुधि आये कैसे? स्मरण कैसे हो? याद कैसे आये?—शास्त्र से तो नहीं आती। लाख सिर मारो शास्त्र से; सिद्धान्त पकड़ में आ जाते हैं; परमात्मा की परिभाषाएँ पकड़ में आ जाती हैं; लेकिन सुधि नहीं आती है।

सुधि के लिए कोई जीवन्त उपाय चाहिए। प्रेम के अतिरिक्त मनुष्य के पास और उपाय क्या है! और अगर तुम्हारे जीवन में जरा-सी प्रेम की छलक आने लगे, तो सब तरफ से खबर आने लगेगी।

अंधियारी बगिया में कोयल सी कूक गई
सूनी दुपहरिया में पीड़ा सी हूक गई।

सब तरफ से आने लगेगी।

भोर की चिरैया सी आँगन में चहक गई
सूनी दुपहरिया में पीड़ा सी हूक गई।
भटकी पुरवैया सी आँचल में बहक गई
बेले की लड़ियों सी साँसों में महक गई
चाँद की जुन्हैया सी प्राणों में लहक गई।

हर तरफ से--ये जो बेले की गंध चली आती हवा पर तैरती, इसमें परमात्मा आ जायेगा। तुम्हारे भीतर प्रेम की जरा-सी पकड़ चाहिए। यह जो कोयल अभी कुहू-कुहू किये चली जाती है, इसकी कुहू-कुहू में उसी का नाद आने लगेगा।

तुम्हारे भीतर संवेदनशीलता चाहिए। प्रेम तुम्हें संवेदनशील बनाता है। और जो प्रेम में नहीं है, वह कठोर हो जाता, कठिन हो जाता, पथरीला हो जाता। प्रेम तुम्हारी भूमि को नरम बनाता है, उस नरम भूमि में प्राणों का बीज पड़ता है, तो परमात्मा का अंकुरण होता है। इस अंकुरण के बाद ही कोई मलूकदास जैसे गीत गा सकता है।

ये गीत मलूकदास के प्राणों की भेंट हैं। जो परमात्मा ने मलूकदास में दिया है, वह मलूकदास तुम्हें दे रहे हैं। जो परमात्मा में पहुँच कर मलूकदास को मिला है, वह उनके शब्दों पर सवार हो कर तुम तक पहुँच रहा है।

प्रेम बँटता है; प्रेम कभी सिकुड़ता नहीं; जिसे मिलता है, उसे बाँटना ही पड़ेगा।

पहला सूत्र :

सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।
मंदिर ढूढ़त को फिरै, मिल्यौ बजावनहार।।

'सब बाजे हिरदे बजैं...।' कहते हैं मलूकदास : सब बाजे हिरदे बजैं। जीवन में जितना संगीत है, जहाँ-जहाँ संगीत है, जो-जो संगीत है, उस सब के बजने की व्यवस्था हृदय के भीतर है। सब बाजे हिरदे बजैं...। न तो वीणा की जरूरत है, न मृदंग की। तुम्हारे हृदय में सब बाजों का बाजा है, सब तारों का तार छिपा है। परमात्मा ने तुम्हें दे कर ही भेजा है। इस अनूठी जीवन-यात्रा पर बिना पाथेय के नहीं भेजा है। सब आयोजन करके भेजा है। यह होना भी चाहिए ऐसा ही।

माँ अपने बेटे को भेजती है किसी यात्रा पर--तीर्थयात्रा पर समझो, तो सब आयोजन कर देती है। राह के लिए पाथेय जुटा कर रख देती है; कलेवे का इंतजाम कर देती है। सब पोटली में बाध देती है। जो-जो जरूरत होगी, उसकी फिक्र कर लेती है।

एक छोटे से स्कूल के स्काउटों का कैम्प था; छोटे-छोटे बच्चे कैम्प में गये। जब कैम्प में सभी बच्चों के बिस्तर खुलवाये गये, तो एक बच्चे के बिस्तर में छाता भी रखा हुआ मिला। तो पूछा शिक्षक ने कि 'छाता तो लिस्ट में था ही नहीं!' बताया गया था : क्या-क्या चीज लानी है। छाता क्यों? और छाते की कोई जरूरत नहीं है; बरसा अभी होनी ही नहीं है।'

वह छोटा-सा लड़का खड़ा हुआ, उसने कहा कि 'सर, आपकी माँ थी या नहीं?' उस शिक्षक ने कहा, 'माँ से इसका क्या सम्बन्ध?' उसने कहा, 'इसका माँ से सम्बन्ध है। मैं तो लाख सिर पटका, लेकिन माँ को तो आप जानते ही हैं? मैंने लाख कहा कि छाते की कोई जरूरत नहीं है। उसने कहा : बेटा कोई फिक्र न कर। रहेगा--काम पड़ जायेगा। और नहीं पड़ा, तो घर लौट आयेगा। मैंने बहुत समझाया कि लिस्ट में नहीं है, तो उसने कहा : लिस्ट!--मैंने थोड़े ही बनाई! लिस्ट शिक्षकों ने बनाई है। शिक्षक को क्या पता!'

उस छोटे बच्चे ने कहा : 'आपकी माँ नहीं थी क्या? वही अनुभव आपका कम मालूम पड़ता है, नहीं तो छाता, आप समझ जाते कि क्यों है।'

अगर हम इस अस्तित्व से आये हैं--आये ही हैं; और तो कहीं से आने का उपाय नहीं है, तो निश्चित ही सब हमारे भीतर रख दिया होगा; चलते वक्त सब पाथेय जुटा दिया होगा।

हमें कुछ भी कमी नहीं है। अब यह दूसरी बात है कि हम पोटली ही न खोलें। अब यह दूसरी बात है कि हम पोटली में टटोलें ही न। और हम लाख शिकायत करते रहें परमात्मा की; और जो पोटली हमारे पास है, उसे हम देखें भी न कि इसमें क्या रख दिया है।

उस पोटली का नाम ही हृदय है। और हृदय में सब है; जो मनुष्य को चाहिए --सब है। जो कभी भी चाहिए पड़ सकता है, वह सब है। ऐसी कोई स्थिति

नहीं है, जिसमें तुम्हें ऐसा अनुभव हो कि परमात्मा ने तुम्हें बिना तैयारी के भेज दिया है।

'सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।' प्रेम का संगीत भी वहाँ बजता है, पखावज--मृदंग भी वहाँ बजती है; तार--सितार भी वहाँ बजता है। प्रेम ही असली उपकरण है, फिर शेष सब तो प्रेम के ही रूपान्तरण हैं--मृदंग और पखावज, और सितार, और वीणा--वे सब प्रेम के ही रूपान्तरण हैं; वे प्रेम की ही अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ हैं।

'मन्दिर ढूढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार।' और ऐसा ही नहीं है कि तुम्हारे हृदय में सिर्फ वीणा रख दी है, मृदंग रख दी है; बजावनहार भी वहीं छिपा बैठा है।

तो ऐसा ही नहीं है कि तुम्हारी पोटली में पाथेय बाँध दिया है और परमात्मा तुम्हें भूल गया है। तुम्हारी पोटली में परमात्मा भी बैठा है। बजाने के सब उपकरण वहाँ हैं और बजानेवाला भी मौजूद है। तुम जरा तलाशो--टटोलो; जरा अपनी गाँठ खोलो; जरा हृदय के द्वार-दरवाजे खोलो। सारी साधना इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है कि कैसे हम अपने हृदय की गाँठ खोलें।

'मन्दिर ढूढ़त को फिरै...।' कहते मलूकदास : अब मन्दिर खोजने की भी कोई जरूरत न रही। मन्दिर तो भीतर मिल गया। मन्दिर ही नहीं मिला, वीणा ही नहीं मिली; वीणा-वादक भी भीतर मिल गया।

इस घड़ी में जब कोई अपने को खोल लेता है, तो नया जन्म होता है--जिसको मैंने द्विज कहा--ट्वाईस बॉर्न; एक नया जन्म होता है। पहली बार तुम समझते हो कि तुम अकेले नहीं हो, परमात्मा साथ है। पहली बार तुम समझते हो कि तुम इस पृथ्वी पर अजनबी नहीं हो, यह तुम्हारी है। और पहली बार तुम समझते हो कि अस्तित्व तुम्हारे प्रति विमुख नहीं है। अस्तित्व ने सब तरफ से तुम्हारे प्रति छाया की है; सब तरह से तुम्हें बचाया है; सब तरह से सुरक्षा दी है।

पहली बार पता चलता है कि अस्तित्व तुम्हारा शत्रु नहीं है; लड़ने की जरूरत नहीं है। अस्तित्व तो तुम्हारे प्राणों का प्यारा है और अस्तित्व का प्रेम तुम्हारी तरफ बह रहा है। बस, तुम्हारा प्रेम अस्तित्व की तरफ बहने लगे, तो दोनों का मिलन हो जाय। उस महामिलन में ही भक्त का जन्म होता है। भक्त यानी द्विज।

वर्ष नव,
हर्ष नव,
जीवन उत्कर्ष नव।
नव उमंग,
नव तरंग,
जीवन का नव प्रसंग।
नवल, चाह,
नवल राह,
जीवन का नव प्रवाह।
गीत नवल,
प्रीति नवल,
जीवन की रीति नवल।
जीवन की नीति नवल,
जीवन की जीत नवल।

सब नया हो उठता है। नया वर्ष--नयी शुरुआत। तुम फिर से शुरू होते हो। अभी तक तो तुम जैसे जीये हो, वह नाम मात्र का जीना है--वास्तविक जीवन नहीं। अभी तो ऐसे जीये हो, जैसे सागर होने की क्षमता हो और बूंद होकर जीये हो। जैसे विराट होने की क्षमता हो, और सिकुड़-सिकुड़ कर एक छोटे से कारागृह में बन्द हो कर जीये हो।

अभी तो ऐसे जीये हो, जैसे बीज--बन्द; सब तरफ से बन्द; न खिड़की, न द्वार, न दरवाजे। जबकि हो सकता था महावृक्ष--कि उसके नीचे यात्री ठहरते, विश्राम करते, छाया पाते; थके-हारे पुनर्जीवन पाते; कि पक्षी घोसले बनाते; कि हवाएँ अठखेलियाँ करतीं; कि सूरज आकर चर्चा करता; कि चाँद-तारे मिलने को उत्सुक होते; कि फूल खिलते; कि फल लगते। विराट वृक्ष हो सकते थे, लेकिन एक बीज की तरह जीये हो अब तक। हो भी नहीं सकते विराट वृक्ष, क्योंकि तुम अभी मिटने को तैयार नहीं।

प्रेम का शास्त्र एक शब्द में कहा जा सकता है; मिटने का शास्त्र, समर्पित होने का शास्त्र। जैसे बीज मिटता है भूमि में, ऐसे जिस दिन तुम मिटने को राजी हो जाते हो--अपने अहंकार के बीज को छोड़ने को, उसी दिन--उसी दिन अंकुरण हो जाता है। फिर देर नहीं लगती; उसी क्षण नया वर्ष आ जाता है।

वर्ष नव,
हर्ष नव,
जीवन उत्कर्ष नव।
नव उमंग,
नव तरंग,
जीवन का नव प्रसंग।

नवल चाह,
नवल राह,
जीवन का नव प्रवाह।
गीत नवल,
प्रीति नवल,
जीवन की रीति नवल
जीवन की नीति नवल,
जीवन की जीत नवल।

उस दिन जीवन जीता। जिस दिन तुम हारे, उस दिन जीवन जीता। जिस दिन तुम मरे, उस दिन जन्म हुआ--वास्तविक जन्म हुआ। जिस दिन तुम मिटे, उस दिन परमात्मा आया और तुम्हारे भीतर विराजमान हुआ।

सब बाजे हिरदे बजैं. प्रेम पखावज तार।
मन्दिर ढूढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार।।
करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार।

प्रेम की बना लो मृदंग; हृदय का बना लो सितार।

मनै नचावै मगन ह्वै, तिसका मता अपार।।

और मन को नचाओ। सुनते हो : 'करै पखावज प्रेम का'; प्रेम की मृदंग पर पड़ने दो थाप। प्रेम की मृदंग को गूंजने दो। 'हृदय बजावै तार'--छेड़ो हृदय के तार, ताकि वीणा निनादित हो उठे; ताकि सोई वीणा--सदियों-सदियों से सोई वीणा जाग उठे।

संगीत सोया पड़ा है, जरा छेड़ने की बात है। छेड़ भी न सकोगे? वीणा तो दे दी है, लेकिन छेड़ोगे तभी तो जगेगी न। इतना तो कम से कम करो; पोटली तो खोलो।

'मनै नचावै मगन ह्वै...।' और मन को नाचने दो--प्रेम के इर्द-गिर्द, प्रेम के मृदंग के आसपास। वीणा के साथ-साथ मन को नाचने दो।

बाबा मलूकदास की वाणी गीत की, नृत्य की, संगीत की वाणी है। संगीत, गीत और नृत्य के लिए आह्वान है, चुनौती है। यह वाणी तुम्हें उदास करने को नहीं है; यह वाणी तुम्हें हर्षोन्मत्त करने को है।

और परमात्मा की राह उदासी से तय नहीं होती; परमात्मा की राह हँसते, मुस्कराते, नाचते हुए तय होती है। और जिस राह को नाचते हुए तय किया जा सकता हो, उस पर तुम क्यों उदास-उदास चले जा रहे हो!

अकसर ऐसा होता है कि उदास लोग धर्म में उत्सुक हो जाते हैं। तुम मंदिरों

में देखो, मसजिदों में देखो; वहाँ तुम नाचते हुए लोग शायद ही पाओ; वहाँ तुम हर्षोन्मत्त लोग शायद ही पाओ, जिन्होंने प्रेम की मृदंग बना ली हो, और हृदय की वीणा बना ली हो, और मन के नर्तक को मुक्त कर दिया हो -- वहाँ तुम्हें ऐसे लोग शायद ही मिलें। वहाँ तुम्हें मिलेंगे मुरदे, मरने को तत्पर, या मर ही चुके!

यहाँ लोग आते हैं, तो स्वभावत: इसी आशा में आते हैं कि जैसे और आश्रम हैं, ऐसा आश्रम यह भी होगा। उनको बड़ी बेचैनी हो जाती है। मेरे पास कुछ लोगों ने आ कर कहा भी--कि हम तो सोचते थे कि जैसा आश्रम होना चाहिए...। उदासीन...! मगर नाच, गीत, गान, प्रेम का ऐसा प्रफुल्ल भाव, स्त्री-पुरुष साथ-साथ नाचते हुए, कि हाथ में हाथ डाले हुए, कि आलिंगन करते हुए—यह क्या हो रहा है?

वे खुद मर गये हैं; वे दूसरों को भी मारना चाहते हैं। वे खुद मुरदा हो गये हैं; उनकी जीवन-धारा सूख गई है; वे दूसरे की भी कलियों को खिलते देखना नहीं चाहते। सूखा वृक्ष, जैसे नये उमगते हुए अंकुरों को कहता हो: क्या रखा है इसमें? विरागी बनो।

भक्त वैराग्य की भाषा नहीं बोलता। भक्त कहता है: विराट रागी बनो; विराट से राग बनाओ। अनासक्त नहीं--परमात्मा से आसक्ति जुटाओ। और तब अनासक्ति आती है; व्यर्थ से अनासक्ति आती है--सार्थक से नहीं। तब धीरे-धीरे तुम उठने लगते ऊपर।

अभी तुम नाचते हो, गीत गाते हो, स्वभावत: तुम्हारा नाच और तुम्हारा गीत उसी तल पर होगा, जहाँ तुम हो। लेकिन अगर नाच चलता रहा, तो नाच तुम्हारा तल बदल देगा। अगर नाच में तुम डूबने लगे, तो तुम बदलने लगोगे। डूबने से कोई बदलता है। क्षण-भर को भी मिट गये अगर--नृत्य करते-करते, तो उस क्षण भर में ही तुम्हारी सीमा विराट हो जायेगी। एक क्षण को तुम्हारे भीतर परमात्मा झांकेगा।

जब नर्तक मिट जाता है और नृत्य ही रह जाता है, तब घटना घटती है--क्रांति की घटना घटती है।

यहाँ मुरदों के लिए तो जगह नहीं है; मरदों के लिए कब्रिस्तान है।

और आश्रम का अर्थ उदासीनता नहीं है। 'आश्रम' शब्द का अर्थ होता है: विश्राम का स्थल। थके-हारे तुम आये हो जीवन से—उदास, पीड़ित, परेशान; जहाँ तुम ताजे हो जाओ; जहाँ तुम फिर से सीख लो; फिर से तुम्हारे पैरों में गति आ जाये; और फिर से तुम्हारे प्राणों में ध्वनि आ जाये, जहाँ से तुम फिर नवल उत्साह ले सको, उमंग ले सको।

करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार।
मनै नचावै मगन ह्वै, जिसका मता अपार।।

और कहते मलूकदास : उसका ही मत अपार है, जो तुम्हें नृत्य से––गीत और गान से भर दे। उसका ही मत अपार है; उसके ही मत में अनन्त की सम्भावना है, विराट की सम्भावना है, जो तुम्हारे जीवन को नये-नये वसन्तों से भर दे।

सद्गुरु अगर आषाढ़ के मेघों की तरह तुम्हारे ऊपर न घिर जाय और तुम्हारा मन-मोर नाच न उठे, तो सद्गुरु नहीं।

पुरवैया गा उठी, प्रकृति का
अँचरा डोल रहा
उमड़ा प्यार गगन के हिय में
बदरा बन बरसा
प्रेमाकुल भू ने नदियों की
बाँह बढ़ा परसा
दूर कहीं बन्सी की धुन सुन
कजरा डोल रहा
प्रकृति का अँचरा डोल रहा
लहरों ने इकतारा छेड़ा
कूकी कोयलिया
सजी लताएं, बजी गाँव की
कंवारी पायलिया
अमराई का हौले-हौले
जियरा डोल रहा
प्रकृति का अँचरा डोल रहा
बूंदियों का दरपन ले कलियाँ
रूप सँवार रहीं
पात-पात पर बहार-परियाँ
तन-मन वार रहीं
फुलवा ढँका धरा का हरियर
घघरा डोल रहा
घर नाची राधा खेतों में
झूमा साँवरिया
द्वारे हँसा नीम, पनघट पर

छलकी गागरिया
अँगना महका, मैना फुदकी
पिंजरा डोल रहा
प्रकृति का अँचरा डोल रहा
पुरवैया गा उठी, प्रकृति का
अँचरा डोल रहा।

धर्म वसन्त है, मधुमास है। धर्म परम आनन्द का उत्सव है। लेकिन तुम चाहो, तो उत्सव में भी उदास बने रह सकते हो। तुम चाहो, तो उत्सव में भी अछूते-अछूते बने रह सकते हो।

तुम अगर डूबना न चाहो, तो कोई तुम्हें डुबा न सकेगा। परमात्मा भी तुमसे हारा। गाये जाता; गुनगुनाये जाता; लेकिन तुमने जिद् बाँध रखी है, कि हम आँख उठा कर न देखेंगे।

चारों तरफ परमात्मा का शाश्वत नर्तन चलता है, लेकिन तुम भी खूब!–– कि तुम अपनी उदासी में घिरे बैठे हो! तुमने अपना घूंघट मार लिया है; तुम देखते ही नहीं, क्या हो रहा है चारों तरफ!

'करै पखावज प्रेम का...।' देखना शुरू करो। प्रेम की मृदंग बनाओ। चलो, मनुष्यों के लिए ही सही––प्रेम की मृदंग बनाओ पहले। चलो, पौधों-पक्षियों के लिए ही सही––बनाओ तो सही। आज आदमी के लिए बजेगी मृदंग––बजना आ जाये एक दफा, तो परमात्मा के लिए बजने में कितनी देर लगेगी? आज शायद तुम जैसे ही दूसरे मनुष्यों के लिए बजेगा तुम्हारे हृदय का तार। बजे तो; एक दफा यह तो समझ में आ जाये कि हृदय का तार बजता है; किसी बहाने बजे; सब बहाने उचित हैं। बज जाये एक बार, तो फिर तुम रुक न सकोगे। और जब साधारण मनुष्यों के लिए बज कर इतना आनन्द मिलता है, तो परमात्मा के लिए बज कर कितना आनन्द न मिलेगा!

एक बार यह गणित तुम्हारे खयाल में उतर जाये, फिर तुम रुक न सकोगे। और आगे––और आगे तुम्हारा तार तुम्हें खींचे ले चलेगा।

'मनै नचावै मगन ह्वै, तिसका मता अपार।' मलूकदास कहते हैं : उसका ही मत अपार है, उसको ही धर्म की प्रतीति हुई है, जो तुम्हारे प्रेम की मृदंग बना दे और जो तुम्हारे हृदय को सितार बना दे, और जो तुम्हारे मन को नाच सिखा दे। ऐसे थोड़े से दीवाने दुनिया में बढ़ते रहें, तो परमात्मा बहुत दूर नहीं है।

जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अन्तरजामी जानिहै अन्तरगत का भाव।।

और कहते मलूकदास : यह कह कर मत सुनाओ--कि मुझे बड़ा प्रेम है, मुझे बड़ा प्रेम है, मुझे बड़ा प्रेम है। कहने की बात नहीं है; नाचो। कहने की बात नहीं है--जीओ। कहने की बात नहीं है--हो जाओ प्रेम। परमात्मा पहचानेगा। 'अन्तरजामी जानिहै, अन्तरगत का भाव।'

लेकिन क्या करते हैं; लोग कहते हैं; और जो कहते हैं, ठीक उससे विपरीत करते हैं। और जो कहते हैं, ठीक उससे विपरीत होते हैं। मन्दिर में जाकर तुम भी कह आते हो कि परमात्मा, मुझे आपसे बड़ा लगाव है; कि मुझे आपको पाने की बड़ी चाह है; लेकिन तुमने कभी देखा : तुम्हारे शब्द कैसे झूठे हैं। ओठ से भर निकल रहे हैं, हृदय से तो नहीं आ रहे हैं।

तुमने कभी देखा : तुम परमात्मा तक को धोखा देने में लगे हो! आदमी को धोखा देते-देते तुम इतने कुशल हो गये कि अब तुम परमात्मा को भी धोखा देने की चेष्टा कर रहे हो! तुम सच में पाना चाहते हो?

तुम पाने के लिए क्या कर रहे हो? तुमने पाने के लिए कौन-सा आयोजन किया है? कौन-सी, यात्रा के लिए तुम तैयार हुए हो? तुमने पाने के लिए क्या खोने की तैयारी की है?

नाव तो बँधी है किनारे से। और खूँटी से तुम नाव को कस कर बाँध रहे हो और कहते भी चले जाते हो : मुझे दूसरे पार जाना है! कि मैं आना चाहता हूँ दूसरे पार। हे प्रभु, कब कृपा होगी। और साथ में खूँटी ठोक रहे हो; नाव को कस कर बाँध रहे हो!

कहते तो हो : परमात्मा को पाना है, लेकिन कोशिश धन को पाने की करते हो--परमात्मा को पाने की नहीं। कहते कुछ; करते कुछ; होते कुछ, ऐसे झूठ से जीवन भरा है; ऐसी बेईमानी से जीवन भरा है।

तो इसलिए कहते हैं मलूकदास : 'जो तेरे घटे प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।' अब उसे कहने की कोई जरूरत नहीं है। उसे प्रगट होने दो; वह तो अन्तर्यामी है, वह तो जान लेगा, वह तो पहचान लेगा। वह तो तुम्हारे हृदय के अन्तस्तल में बैठा हुआ है, उसे पता न चलेगा!

जब तुम्हारा मन नाचेगा--मगन हो कर और तुम्हारी वीणा बजेगी हृदय की और प्रेम की तुम मृदंग बजाओगे, तो उसे सुनाई न पड़ेगा? परमात्मा बहरा नहीं है।

कबीर ने कहा है कि मुल्ला चिल्लाता है--मसजिद पर खड़े हो कर; जोर से चिल्लाता है, तो कबीर ने कहा है : 'क्या बहरा हुआ खुदाय!' क्या तुम्हारा खुदा बहरा हो गया है, जो इतने जोर से चिल्ला रहे हो! सुनता नहीं तुम्हारा खुदा? खुदा तो मौन ही सुन लेता है--शब्द की बात ही नहीं है। शब्द तो आदमी आदमी के बीच संवाद का उपाय है। परमात्मा और आदमी के बीच तो शब्द की कोई जरूरत नहीं है; वहाँ तो निःशब्द, वहाँ तो मौन काफी है। मौन ही वहाँ भाषा है।

'जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।' इसमें बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है। अकसर ऐसा होता है...तुमने जाना होगा, तुमने जीवन में अनुभव भी किया होगा; तुम्हारा जब प्रेम नहीं होता और तुम बताना चाहते हो कर्तव्यवश कि प्रेम है, तो तुम कह कह कर बताते हो।

पति पत्नी से बार बार कहता है--कि मुझे तुझसे बड़ा प्रेम है। अमेरिका के एक बहुत प्रभावशाली विचारक डेल कारनेगी ने तो अपनी किताबों में लिखा है कि चाहे प्रेम हो या न हो, मगर पति को कहना ही चाहिए दिन में दस-पचीस बार कि मुझे तुमसे बहुत प्रेम है। इससे दोनों के बीच नरमी बनी रहती है। इससे दोनों के बीच टकराहट की संभावना कम रहती है।

तुमने कभी इसका निरीक्षण किया कि तुम जब कहते हो बार-बार कि मुझे प्रेम है, तो शायद तुम इसीलिए कहते हो कि अब है तो नहीं। होता, तब तो कहने की जरूरत भी नहीं थी; वैसे ही प्रगट होता था। जब था, तो तुम कहते भी नहीं थे। तब तुम घर आते थे और पत्नी को पता चल जाता था कि तुम उसी के लिए आते हो। तब तुम घर आ भी नहीं पाते थे, द्वार पर दस्तक देते थे और पत्नी भागी आती थी--और जानती थी कि तुम उसी के लिए द्वार पर दस्तक दिये हो। तब तुम्हारी आँखें कहती थीं; तुम्हारा रोआँ-रोआँ कहता था; तुम्हारा उठना-बैठना कहता था। तुम जब पत्नी की तरफ देखते थे, तो पत्नी जानती थी; तुम उसका हाथ हाथ में लेते थे, तो जानती थी। प्रेम सब कह देता था; कहने की कोई जरूरत न थी।

लेकिन जब से वह खो गया, तब से तुम थोथे शब्दों का सहारा लिये हो। अब इन सहारों से तुम छिपा रहे हो, उस बात को, जो खो गई।

प्रेम की प्राथमिक घड़ियों में प्रेमी एक दूसरे से बहुत नहीं कहते कि मुझे तुझसे प्रेम है। जब प्रेम जा चुका होता है, और जब समझ में आ जाता है कि अब प्रेम तो बचा नहीं; पुराने आश्वासन, पुराने कहे गये वचन, उनसे पैदा हुए बंधन--अब क्या करें! अब किस तरह इस बात को चलाये रखें; तो प्रेम है--इन बातों से आदमी कहने लगता है।

यह तुमने खयाल किया कि जब प्रेमी प्राथमिक प्रेम की लहर में होते हैं, तो कम बोलते हैं; चुप बैठते हैं। हाथ में हाथ लिये होते हैं; गले में हाथ डाले होते हैं। चुप बैठते हैं।

पति पत्नी चुप जरा भी नहीं बैठते। अब तो अगर चुप रहेंगे, तो पता चल

जायेगा कि प्रेम समाप्त हो गया। अब तो भाषा और वाणी से, कुछ भी बात करके...।

पति-पत्नियों की बातों में...अनेक घरों में मेहमान होता रहा हूँ, तो सुनता रहा हूँ। व्यर्थ की बातें! पति भी जानता है कि कुछ बात करने को बचा भी नहीं है। पत्नी भी जानती है--कुछ बात करने को बचा भी नहीं है। लेकिन अगर बात न करें, तो यह खालीपन भारी हो जाता है।

दिन भर के बाद पति आये, और कुछ बात न करे...। दिन भर पत्नी ने प्रतीक्षा की और फिर साँझ पति आये और बात न हो कुछ, तो ऐसा लगता है कि अब कुछ बचा ही नहीं। बीच में कोई सेतु नहीं रहा। तो कुछ भी बात करते हैं। कुछ भी बहाने की, व्यर्थ की, जिसको करनी भी नहीं है, खोज खोज कर पति पत्नी एक दूसरे से कुछ भी बात करते हैं--मोहल्ले-पड़ोस की। थोड़ी-बहुत बात करके ऐसा लगता है--अब भी कुछ सम्बन्ध बना है; शब्दों के सहारे थोड़ा-सा सम्बन्ध का धोखा और भ्रम कायम रहता है।

पति पत्नी अकेले ज्यादा देर नहीं रह पाते।

मेरे एक मित्र पचास वर्ष के हो गये; पत्नी भी कोई अड़तालीस वर्ष की है; धनपति है। तय कर लिया; मेरी बात उन्हें जँची--कि अब बहुत हो गया, अब कोई धधा नहीं करेंगे। अब विश्राम करेंगे। हिम्मतवार आदमी हैं। जिस दिन मुझसे यह कहा, उसी दिन उन्होंने दुकान भी जाना बंद कर दिया। कह दिया मुनीमों को कि सब काम समेट लो। साल-छः महीने में सब निपटा दो। मैं तो समाप्त हो गया, लेकिन अब तुम निपटा डालो। अब यह काम मुझे करना नहीं है।

लेकिन उस रात मेरे पास आये और उन्होने कहा: 'एक बात है। काम छोड़ने में तो कोई झंझट नहीं है, लेकिन अब हम पती-पत्नी दोनों अकेले पड़ जायेंगे, तो भारी होगा। मैं काम में उलझा रहता हूँ, घड़ी दो घड़ी को मिलते हैं, तो कुछ बातचीत कर ली; ठीक है। लेकिन अब चौबीस घंटे घर में रहूँगा। बात करने को कुछ नही है, सालों से नहीं है। काम चलाये चले जाते हैं। दुकान छोड़ने में मुझे जरा अड़चन नहीं है; वह तो मैंने छोड़ दी आपकी बात मान कर, अब? अब क्या होगा? आप यहीं रुक जायें: मेरे घर ही रहें। हम आपकी सब फिक्र करेंगे। आप रहेंगे, तो सब ठीक रहेगा: अगर आप न रहते हों, तो फिर मुझे किसी मित्र को निमन्त्रित करना पड़ेगा कि वह यहाँ आकर मेरे पास रहे। हम दोनों अकेले छूट जायेंगे, तो बहुत भारी हो जायेगा। चुप्पी गहरी होने लगेगी और ऊपर बोझ पड़ने लगेगा और दबाव होने लगेगा।'

मैंने कहा कि 'रुको। अभी तो मैं दो-चार दिन हूँ।'

दूसरे तीसरे दिन पत्नी ने भी मुझे कहा कि 'और सब तो ठीक है कि मेरे पति को आपने छुटकारा दिलवा दिया; मैं भी खुश हूँ। करने की कोई जरूरत न थी; व्यर्थ दौड़-धूप किये रहते थे। लेकिन अब हमारा क्या होगा? अब हम दोनों एक दूसरे के साथ पड़ जायेंगे!'

पढ़ी-लिखी महिला हैं। 'वे अपने काम में रहते हैं; मैं अपने काम में रहती हूँ; थोड़ी-बहुत देर के लिये मिले, तो ठीक है। लेकिन अब चौबीस घंटे एक दूसरे के साथ...! और अब हम काफी दिन एक दूसरे के साथ रह लिए हैं--तीस साल; अब कुछ बचा नहीं है। अब तो सिर्फ पुरानी एक याददाश्त है। अब प्रेम की कोई नई कोंपलें नहीं फूटतीं। इच्छा भी नहीं है कि फूटें। लेकिन पुराना धोखा तो बना रहे; जो चलता है, वैसा शांति से चलता रहे। जीवन तो बीत गया। अब ये जो थोड़े दिन आखिर के बचे हैं; ये बोझिल न हो जायें।'

मुझे उनकी बात समझ में पड़ी।

एक मित्र को राजी कर लिया है, वे उनके पास रहने लगे हैं।

कठिनाई है। जब दो व्यक्तियों के बीच प्रेम जा चुका हो, तो फिर शब्दों के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जाता।

अगर भक्त सच में परमात्मा के प्रेम में है, तो चुप आकाश की तरफ देखना काफी होगा। चुप आँख बंद करके अन्तर आकाश की तरफ देखना काफी होगा। हाँ, नाचना हो, तो नाचना। गीत गुनगुनाना हो, तो गुनगुनाना। मृदंग बजाना हो, तो बजाना। सितार छेड़नी हो तो छेड़ना। कुछ न करना हो, तो चुप रह जाना; सन्नाटे की सितार में डूब जाना।

मगर शब्दों की कोई जरूरत नहीं है।

> जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि न सुनाव।
> अन्तरयामी जानिहै, अंतरगत का भाव॥
> चैत की बयार बहे, नाचे अमराई रे
> मन-मृदंग पर सुधि ने, थाप-सी लगाई रे।
> प्राण के मंजिर बंधे, साँसों की डोर में
> मान मनुहारों की ग्रंथियाँ हैं छोर में
> धड़कनों की राधिका मुरली सुन आई रे
> चैत की बयार बहे, नाचे अमराई रे।
> कल्पना की अल्पना, चाहों के आँगन में
> चित्त के चौबारे पर, नयन-दीप साधन में
> आस की अँगुलियों ने बाती उकसाई रे
> चैत की बहार बहे, नाचे अमराई रे।

पलकों से छान कोई, सोम सुधा पी आये
अलसा के गीतों की, बगिया में सो आये
जैसे दबी बाँह पर रेख उभर आई रे
चैत की बयार बहे, नाचे अमराई रे।
रंगी सहालग में, भावना की लगन चढ़ी
पन्ने की थाली में धरती ले पियर खड़ी
न्हाई-धोई दुलहन-सी याद निखर आई रे
चैन की बहार बहे, नाचे अमराई रे।

जब प्रेम की बयार बहती है, तो तुम नाचती हुई अमराई हो जाओगे। कुछ कहने को नहीं; कुछ बताने को नहीं; बोलने को नहीं; कुछ जताने को नहीं। तुम्हारा हृदय ही तुम्हारा निवेदन होगा। तुम ही तुम्हारे निवेदन होओगे।

माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया विसराम ।।

बड़ा अनूठा सूत्र है--अनूठे से अनूठे सूत्रों में एक। सिर्फ मलूकदास जैसा दीवाना कोई ऐसी बात करने की हिम्मत कर सकता है। परमात्मा के जो बिलकुल हृदय में विराजमान हो, वही ऐसा कह सकता है।

'माला जपों, न कर जपों...।' न तो माला जपता हूँ भीतर, न हाथ में माला फिराता हूँ। जिभ्या कहों न राम...।' कहते हैं: जीभ से राम तक नहीं कहता। क्या कहना! जीभ से क्या कहना? जीभ के कहे कुछ होगा? जीभ ही मरणधर्मा है, तो जीभ से जो निकलेगा, वह भी मरणधर्मा होगा। जीभ क्षण-भंगुर है; कल मिट्टी में पड़ी होगी; धूल में खो जायेगी; कि अर्थी पर जलेगी। तो जिस जीभ का कोई शाश्वत जीवन नहीं है, उससे शाश्वत का नाम तो कैसे उठेगा?

जीभ से जिसका जन्म हुआ, वह जीभ से ज्यादा मूल्यवान नहीं होगा। इसलिए 'जिभ्या कहों न राम।'--जीभ से नहीं कहता राम।

'राम' कहने की चार गहराइयाँ हैं--चार तल हैं। एक तल: जोर से जीभ से कहो—राम-राम-राम, जैसा अकसर लोग कहते हैं। वह सबसे ओछा तल है। फिर दूसरा तल है: ओंठ बन्द रहें, जीभ भी न हिले, और भीतर ही भीतर कहो: राम-राम-राम। यह पहले से तो गहरा है, लेकिन बहुत गहरा अभी भी नहीं है। अभी भी शब्द का उच्चार है।

फिर तीसरा एक तल है: तुम कहो ही मत; सिर्फ भाव रहे--राम-राम-राम। कहो ही मत; मात्र भाव रहे। यह दूसरे से भी गहरा है। लेकिन अभी भी भाव तो है। चौथी बात है कि भाव भी न रह जाय। तुम एकदम शून्य हो गये। इस

चौथी दशा में अपूर्व घटना घटती है। इस चौथी दशा को नानक ने कहा--अजपा जाप। जाप तो हो रहा है, लेकिन अब कोई जाप भी नहीं हो रहा है--अजपा जाप। भाव भी नहीं रह गया। ऐसी घड़ी में अपूर्व घटना घटती है: 'सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया विसराम।'

कहते हैं मलूकदास: अब भगवान् ही मेरा स्मरण कर रहे हैं, अब मैं क्या करूँ! मैंने तो विश्राम पा लिया।

माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया विसराम।।

मैं तो छुट्टी पा गया। मैंने तो विश्राम ले लिया। अब तो बड़े मजे की बात घट रही है: सुमिरण मेरा हरि करैं...भगवान् कह रहे हैं: मलूक, मलूक।

कबीर ने भी ऐसी बात कही है, कि मैं खोजता फिरता था; चिल्लाता फिरता था। नहीं मिले तुम। और अब एक ऐसी हालत आ गई है कि न मैं खोजता हूँ, न मैं चिल्लाता हूं। तुम मेरे पीछे लगे फिरते हो, कहते हो--कबीर--कबीर। 'हरि लागे पीछे फिरैं, कहत कबीर कबीर।'

जब मैं खो जाता है, जब मैं शून्य हो जाता है, तो तुम्हें सुनाई पड़ता है कि परमात्मा सदा से ही पुकार रहा था; यह कोई आज की थोड़े ही बात है; यह सनातन है। वह सदा से तुम्हें पुकार रहा था। लेकिन तुम इतने शब्दों से भरे थे, तुम इतने कोलाहल से भरे थे कि उसकी धीमी-सी पुकार सुनाई नहीं पड़ती थी। 'सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया विसराम।'

ऐसी घड़ी में तुम्हारे जीवन में एक सुगंध आयेगी। ऐसी घड़ी में तुम्हारे जीवन में एक ज्योति प्रगट होगी। अब तुम तो रहे ही नहीं; अब तुम तो पारदर्शी हो गये। अब तो तुम्हारे भीतर दीप्ति जलेगी प्रभु की। अब तो तुम्हारा उठना-बैठना सभी स्मरण हो गया। अब जन्म की तो बात छोड़ो, अब मौत भी द्वार पर आकर खड़ी होगी, तो भी तुम गीत गुनगुनाओगे; क्योंकि अब मौत कैसी!

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ, अभी चलता हूँ
गीत एक और जरा झूम के गा लूँ तो चलूँ।

मौत भी द्वार पर खड़ी हो, तो भी तुम कहोगे:

ऐसी क्या बात है, चलता हूँ, सभी चलता हूँ
गीत एक और जरा झूम के गा लूँ तो चलूँ।
भटकी-भटकी है नजर, गहरी-गहरी है निशा
उलझी-उलझी है डगर, धुंधली-धुंधली है दिशा
तारे खामोश खड़े, द्वारे बेहोश पड़े

सहमी-सहमी है किरन, बहकी-बहकी है उषा
गीत बदनाम न हो, जिंदगी शाम न हो
बुझते दीपों को जरा सूर्य बना लूँ तो चलूँ
ऐसी क्या बात है, चलता हूँ, अभी चलता हूँ
गीत एक और जरा झूम के गा लूँ तो चलूँ।
बीन बीमार और टूटी पड़ी शहनाई है
रूठी पायल ने न बजने की कसम खाई है
सब के सब चुप न कहीं गूँज, न झंकार कोई
और यह जब कि आज चाँद की सगाई है
कहीं न नींद यहाँ, गंगा कि मौत बन जाए
सोई बगिया में जरा शोर मचा लूँ तो चलूँ।
ऐसी क्या बात है, चलता हूँ, अभी चलता हूँ
गीत एक और जरा झूम के गा लूँ तो चलूँ।
बाद मेरे जो यहाँ और हैं गानेवाले
स्वर की थपकी से पहाड़ों को सुलाने वाले
उजाड़ बागों-बियाबान सुनसानों में
छन्द की गंध से फूलों को खिलाने वाले
उनके पाँव के फफोले न कहीं फूट पड़ें
उनकी राहों के जरा शूल हटा लूँ तो चलूँ।
ऐसी क्या बात है, चलता हूँ, अभी चलता हूँ
गीत एक और जरा झूम के गा लूँ तो चलूँ।
वे जो सूरज का गरम भाल खड़े चूम रहे
ले जो तूफान में किश्ती को लिए घूम रहे
भरे भादो की उमड़ती हुई बदली की तरह
वे जो चट्टान से टकराते हुए झूम रहे
नये इतिहास की बाहों का सहारा लेकर
तख्ते-ताऊत पै उनको बिठा लूँ तो चलूँ।
ऐसी क्या बात है, चलता हूँ, अभी चलता हूँ
गीत एक और जरा झूम के गा लूँ तो चलूँ।
यह जलाती हुई कलियों की शराबी चितवन
गीत गाती हुई पायल की नटखट रुनझुन
यह कुएं, ताल, यह पन घट, यह त्रिवेणी, संगम

यह भुवन, भूमि अयोध्या, यह विकल वृन्दावन
क्या पता स्वर्ग में फिर इनका दरस हो कि न हो।
धूल धरती की जरा सिर पर चढ़ा लूँ तो चलूँ।
ऐसी क्या बात है, चलना हूँ, अभी चलता हूँ
गीत एक और जरा झूम के गा लूँ तो चलूँ।

फिर तो मौत भी एक गीत का ही अवसर है। 'गीत एक और जरा झूम कर गा लूँ तो चलूँ।' जीवन तो फिर गीत है ही, मृत्यु भी गीत है। फिर सुख तो गीत है ही—दुःख भी गीत है। फिर सफलता तो गीत है ही—असफलता भी गीत है। फिर सारे जीवन का अर्थ गीतमय है।

इस गीतमय जीवन को हमने सन्तत्व कहा है। संत का अर्थ है : अहर्निश जिसके भीतर गीत गुँज रहा हो; अकारण जिसके भीतर संगीत गूँज रहा हो।

सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।
मन्दिर ढूढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं, मैं पाया बिसराम॥
जेती देखै आतमा तेते सालिगराम।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम॥

और कहते हैं मलूकदास : जब ऐसा गीत तुम्हारे प्राणों में बजने लगेगा, 'जेती देखै आतमा, तेते सालिगराम।' तब तुम जहाँ भी आत्मा को देखोगे, जहाँ भी जीवन को देखोगे, वहीं तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ेगा। वृक्षों में और पहाड़ों में, पक्षियों में और पशुओं में और मनुष्यों में और स्त्रियों में—जहाँ-जहाँ तुम्हें जीवन दिखेगा जेती देखै आतमा, तेते सालिगराम; उतने ही तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ेंगे। हर देह मंदिर है, और हर देह में दीया जल रहा है। आँख हो देखनेवाली, तो सिवाय परमात्मा के और कोई भी नहीं है। वही उपस्थित है; सारी उपस्थिति उसकी उपस्थिति है।

जैती देखै आतमा, तेते सालिगराम।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम॥

और कहते मलूकदास : पत्थर को क्या पूजना, मूर्ति को क्या पूजना; बोलनहारा पूजिये—जो बोल रहा, जो जीवंत है, जो देख रहा है, जो सुन रहा, जो स्वाद ले रहा...। जीवन परमात्मा का पर्यायवाची है; जीवन ही परमात्मा है।

परमात्मा की तुम्हारी धारणा वैसी ही भ्रांत है, जैसी तुम्हारी और धारणाएं भ्रांत हैं। तुम भ्रांत हो, तो तुम्हारी सारी धारणाएँ भ्रांत हैं।

परमात्मा की जब तुम याद करते हो, तो तुम्हें क्या याद आता है? कभी दशरथ के पुत्र राम, कभी कृष्ण, कभी बुद्ध, कभी महावीर...। तो तुमने परमात्मा को भी बहुत संकीर्ण बना लिया। या परमात्मा की तुम्हारी कोई धारणा उठती है, तो तुम्हें याद आता है—मन्दिर का भगवान्, कि मसजिद का, कि गिरजे का, कि गुरुद्वारे का। तुमने भगवान् की धारणा बड़ी छोटी बना ली।

भगवान् तो सारे जीवन का नाम है। जीवन्तता का नाम—भगवत्ता। इन वृक्षों में जो हरा है, और इन वृक्षों में जो उठा है और जगा है, इन वृक्षों में जो फूल की तरह खिला है, वह कौन है? इन पक्षियों के कन्ठों में जो गीत की तरह उठ रहा है, वह कौन है? चांद-तारों में जो चल रहा है, वह कौन है? तुम्हारे भीतर जो साँस ले रहा है...अपने बच्चे की आँखों में झाँक कर देखो, वहाँ जो बैठा टकटकी से जो तुम्हें देख रहा है, वह कौन है?

परमात्मा ही जीवन है; जीवन ही परमात्मा है। यह समीकरण याद रहे, तो फिर न मन्दिर जाने की जरूरत, न मसजिद जाने की जरूरत। फिर न वेद पढ़ने की जरूरत, न कुरान पढ़ने की जरूरत। फिर तो जो चारों तरफ जीवन फैला है, इसके प्रति—जीवन के प्रति समादर का भाव...।

अलबर्ट शवीत्जर ने अपने पूरे दर्शन को दो छोटे-छोटे शब्दों में रखा है—रिव्हरेन्स फॉर लाइफ—जीवन के प्रति सभादर—जीवन के प्रति आदर। जो भी तुम जीवित देखो, जहाँ भी कुछ जीवित देखो, उसके प्रति समादर का भाव रहे—बस, काफी धर्म हो गया; तुम पहुँच जाओगे; फिर तुम्हें कोई बाधा नहीं।

लेकिन तुमने अजीब-अजीब धारणाएँ बना रखी हैं। कोई राम के दर्शन करने को उत्सुक है! कर लोगे किसी दिन; ज्यादा चेष्टा की तो दर्शन हो जायेंगे। लेकिन वह तुम्हारी कल्पना ही होगी—कल्पना का जाल ही होगा। और छोटों की तो बात क्या, जिनको तुम बड़े-बड़े कहते, उनकी भी धारणाएँ बड़ी अजीब हैं।

कहते है कि तुलसीदास को जब वृंदावन में कृष्ण के मन्दिर में ले जाया गया तो उन्होंने झुकने से इनकार कर दिया। कृष्ण की मूर्ति के सामने राम का भक्त कैसे झुके? हद्द संकीर्णता है! कहते हैं कि उन्होंने कहा कि 'जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे, तब तक मैं झुकनेवाला नहीं।'

यह भी खूब मजे की बात हुई! यह तो ऐसा हुआ कि भगवान् भी तुम्हारी शर्त पालन करे, तो तुम झुकोगे। यानी भगवान् को भी अगर तुम्हारे झुकने में उत्सुकता हो, तो तुम्हारी शर्त का पालन कर ले! धनुष-बाण लो हाथ, तब तुलसी का सिर झुकेगा!

जब कृष्ण के साथ भी तुलसी का सिर न झुक सका, तो सामान्य आदमियों की

तो क्या बात। पशु-पक्षियों की तो बात ही छोड़ दो। तो फिर जीवन के प्रति समादर कहाँ है? यह तो बड़ी संकीर्ण धारणा हुई। और तुलसीदास जैसे आदमी में हो, बाकी का तो क्या कहना!

इसलिए मैं तुलसीदास को कवि कहता हूँ—ऋषि नहीं कहता। कवि हैं। भाषा के अनूठे कलाकार हैं। मगर ऋषि होने में कमी रह गई। यह जो संकीर्णता है, यह संकीर्णता ही सारी बात को खण्डित कर गई।

जिसने राम को पहचान लिया...। राम से मेरा मतलब और मलूकदास का भी मतलब दशरथ-पुत्र राम से नहीं है। जिसने राम को पहचान लिया...। राम यानी इस विराट में छिपी हुई जो ऊर्जा है, ये जो सारी तरंगें उठ रही हैं जिस ऊर्जा से, उसको जिसने पहचान लिया, वह तो सभी जगह झुका है। झुके, न झुके—यह सवाल ही नहीं रहा। उसका झुकाव है ही। उसका माथा तो झुका ही हुआ है। और वह फिर शर्त नहीं लगायेगा—कि तुम धनुष-बाण हाथ लो; कि तुम मोर मुकुट बांधो; कि तुम नग्न खड़े होओ—महावीर बनो, तब मैं झुकूंगा।

अगर तुमने इस तरह की जिद्दें कीं, तो तुम्हारा परमात्मा से तो कोई सम्बन्ध न होगा; तुम्हारी मन की ही कोई धारणा तुम बहुत बार दोहराते रहोगे, दोहराते रहोगे, तो सम्मोहित हो जाओगे। रोज-रोज देखा—लिए धनुष-बाण खड़े राम; रोज उनकी मूर्ति के सामने आँख लगा कर त्राटक किया; आँख बन्द करके उनका स्मरण किया। धीरे-धीरे तुम्हारी कल्पना मजबूत होने लगेगी और तुम्हारे भीतर एक सपना उठने लगेगा कि तुम राम को देख रहे हो। और सपना तुम इतना परिपुष्ट कर सकते हो कि तुम जब बोलो, तो तुम्हारा सपना तुम्हारे भीतर से जवाब भी दे: तुम जब कुछ कहो, तो राम तुम्हें उत्तर भी दें। वह उत्तर भी तुम्हारा ही है। पूछने वाले भी तुम; उत्तर देनेवाले भी तुम। वह दानों तुम ही हो। लेकिन धोखा बड़ा हो जायेगा।

इसका नाम बोध नहीं है। इसका नाम ज्ञान नहीं है। इसका नाम साक्षात्कार नहीं है।

परिकल्पनाओं से सावधान रहना। भक्ति के मार्ग पर सबसे बड़ा खतरा है कि आदमी कल्पनाओं में न पड़ जाय। बहुत ज्यादा कल्पना के जाल में पड़ जाय, तो जो सोचेगा, वह देखने लगेगा। और जब देखने लगेगा, तो सोचेगा कि जो मैं मानता था, ठीक ही मानता था; अब तो प्रत्यक्ष भी होने लगा।

राम का जो अनुभव है, वह दशरथ-पुत्र राम का अनुभव नहीं है। परमात्मा का जो अनुभव है, उस अनुभव का कोई रूप नहीं है, कोई रंग नहीं है। वह निर्गुण और निराकार का अनुभव है। और जब परमात्मा का अनुभव होगा, तो ऐसा नहीं

होगा कि यह रहा परमात्मा। जब परमात्मा का अनुभव होगा, तो ऐसा होगा कि अरे! सब परमात्मा ही परमात्मा है। मैं भी कैसा ना-समझ था, कि सब तरफ जो मौजूद था, उसे भी देखने से वंचित रह गया!

मछली जैसी दशा हैं हमारी। जैसे सागर में मछली हो, और उसे सागर का पता नहीं चलता। पता चले भी कैसे; सब तरफ सागर है। जब पैदा हुई--सागर में पैदा हुई। खेली, बड़ी हुई--सागर में बड़ी हुई। एक दिन मर भी जायेगी--सागर में मर जायेगी। उसे पता भी कैसे चले कि चारों तरफ जो है—वह सागर है?

ऐसा ही परमात्मा हमें घेरे हुए है। हम परमात्मा के सागर की मछलियाँ हैं। कबीर ने कहा है : मुझे बड़ी हँसी आती है कि सागर में मछली प्यासी है! सागर चारों तरफ है और हम प्यासे हैं! जहाँ से भी पीयें, परमात्मा ही है। जिससे भी पीयें, उसी का जल पीयेंगे। घाट होंगे अलग...।

तुमने जब अपनी पत्नी में प्रेम पाया; अपने पति में प्रेम पाया; अपने बेटे में प्रेम पाया; अपनी माँ में प्रेम पाया; अपने मित्र में प्रेम पाया, तो घाट अलग थे, जो प्रेम तुमने पाया, वह तो परमात्मा ही है। घाटों के भेद को तुम गंगा का भेद मत समझ लेना। गंगा तो वही है। स्वर्ग में भी वही बह रही है, पृथ्वी पर भी वही बह रही है। सब दिशाओं में उसी का वास है। जिस दिन तुम्हें थोड़ी ऐसी झलक आने लगे--जीवन और परमात्मा के समीकरण की, कि जीवन ही परमात्मा है, उस दिन जानना :

लो फिर से आ गये
मिलने ले दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!!
फिर अली के दल आये
बगिया गुन-गुन गाये
सौरभ के मृग छौने
कस्तूरी धन लाये
गोरे कुछ साँवरे
प्रसून हुए बावरे
लो फिर से आ गये
खिलने के दिन पिय।!
मिलने के दिन पिया!!
फिर यम-संयम डोले
मंत्र हुए मिठबोले

फगुनाहट कण-कण में
वासन्ती रस घोले
सीप सरीखी पलकें
मादक सपने छलकें
फिर आये प्रण के व्रण
छिलने के दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!!
फिर साँसें गरमाईं
अंगारें भर लाईं
चन्दन-तन कसने को
फिर बाहें अकुलाईं
अंग-अंग में अनंग
छेड़ रहा जल-तरंग
फिर आये उधड़े मन
सिलने के दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!!
लो फिर से आ गये
मिलने के दिन पिया!

जिस दिन जीवन ही परमात्मा है--ऐसा समीकरण तुम्हारे मन में बैठने लगे; जिस दिन सर्व में तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ने लगे, जिस दिन हर किरण उसकी किरण, हर श्वास उसकी श्वास--ऐसी प्रतीति सघन होने लगे, उस दिन जानना :

लो फिर से आ गये
मिलने के दिन पिया!
लो फिर से आ गये
खिलने के दिन पिया!
फिर आये प्रण के व्रण
छिलने के दिन पिया!
फिर आये उधड़े मन
सिलने के दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!!
लो फिर से आ गये
मिलने के दिन पिया!

परमात्मा निकट है; परमात्मा दूर नहीं। परमात्मा निकट से भी निकट है। मोहम्मद ने कहा है : तुम्हारे हृदय से भी पास जो है, वही परमात्मा है! तुम भी अपने इतने इतने पास नहीं——मोहम्मद ने कहा है——जितने परमात्मा तुम्हारे पास है; तुमसे भी ज्यादा पास है। तुम तो थोड़ी दूरी पर हो। तुम तो अपने से बाहर हो; परमात्मा तुम्हारे भीतर है। परमात्मा तुम्हारे प्राणों का प्राण है। और जैसा तुम्हारे प्राणों का प्राण है, ऐसा ही सबके प्राणों का प्राण है।

इस परात्पर परमात्मा की स्मृति से भरो; सुधि को जगने दो।

शास्त्र से नहीं होगा; शब्द से नहीं होगा; सिद्धान्त से नहीं होगा। दांव पर लगाना होगा जीवन। चुकाना पड़ेगा मूल्य——अपने को मिटाने से चुकाना पड़ेगा मूल्य। और मिटाने की कला——उस कला का नाम ही प्रेम है।

जिस दिन तुम मिटने को तैयार हो, उसी दिन तुम्हारे होने का क्षण आ गया। जिस दिन सागर में नदी उतरती, उसी दिन सागर हो जाती। डरती तो होगी; उतरने से पहले सहमती तो होगी; लौट कर पीछे तो देखती होगी। वे सारे यात्रा-पथ हिमालय से आकर सागर तक पहुँचने की; हजारों-हजारों स्मृतियाँ, घटनाएँ, संस्मरण; प्रसंशाएँ-निन्दाएँ, लोगों के द्वारा चढ़ाये गये फूल, तैराये गये दीये-नावें——हजारों-हजारों स्मृतियाँ——नदी भी डरती होगी, भयभीत होती होगी : उतरना——नहीं उतरना! फिर एक भय तो निश्चित ही पकड़ता होगा न, कि अब कूल-किनारे टूटे। इन्हीं कूल-किनारे के सहारे तो मैं नदी थी——विशिष्ट नदी थी——गंगा थी, यमुना थी; इन्हीं किनारों के कारण तो मैं नर्मदा थी; इन्हीं किनारों के कारण तो मेरी विशिष्टता थी; ये तो मेरे व्यक्तित्व थे; अब ये किनारे छूटे; अब यह सागर में उतर रही हूँ। बचूँगी! यह सागर विराट दिखता है, इसमें खो न जाऊँगी?

निश्चित खो जायेगी, लेकिन खोने में पाना है। खो कर ही सागर हो जायेगी।

आदमी भी डरता है। परमात्मा के किनारे खड़े हो हो कर बहुत बार-बार आदमी लौट आता है। अनेक बार उसके द्वार पर पहुँच जाता है और लौट आता है, क्योंकि घबड़ाहट होती है : यह तो परिभाषा गई; अपनी अस्मिता गई; अपना व्यक्तित्व गया। इसमें उतरे तो फिर लौटना कहाँ है? और इसमें गये, तो खो गये। यह होने से फायदा क्या है? इससे तो जैसे थे, भले थे; कम से कम थे तो।

आदमी की यह अस्मिता उसे परमात्मा के द्वार से भी लौटा लाती है। मगर तुम ध्यान रखना : बीज अगर मिटे ना, तो वृक्ष नहीं होता है। और नदी अगर मिटे ना, तो सागर नहीं होता। और मनुष्य अगर मिटे ना, तो परमात्मा नहीं होता।

सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार।
मन्दिर ढूढ़त को फिरै, मिल्या बजावनहार॥
करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिसका मता अपार॥
तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अन्तरजामी जानिहैं, अन्तरगत का भाव॥
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम॥
जेती देखै आतमा, तेते सालिगराम।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम॥

जगाओ इस याद को, स्मृति को, इस सुधि को। इस सुधि के सहारे ही समाधि उपलब्ध होती है।

आज इतना ही।

आध्यात्मिक पीड़ा • निजता की खोज • संन्यास और श्रद्धा
अज्ञान का बोध

आठवाँ प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १८ मई, १९७७
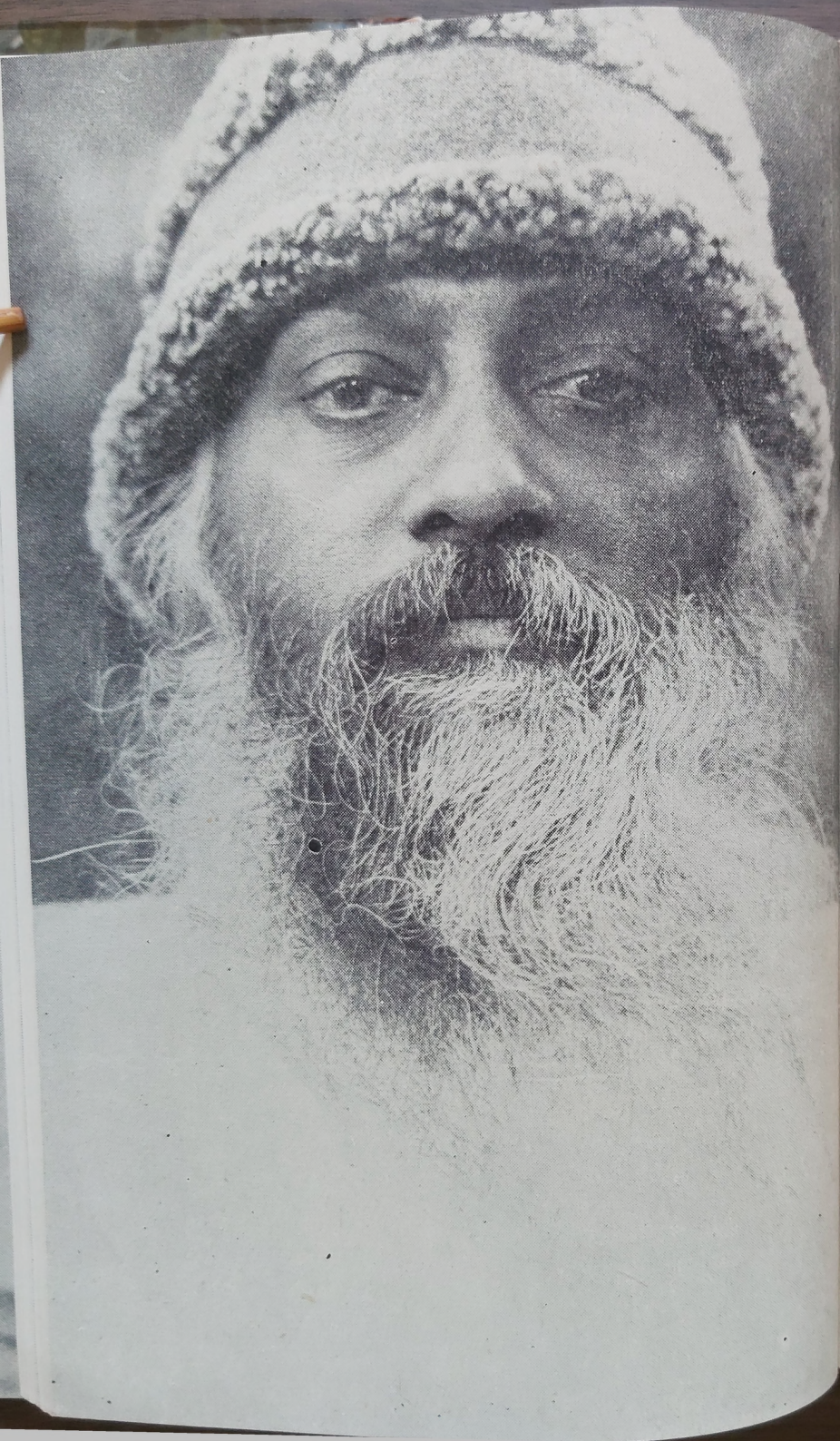
प्रश्न-सार

- आपने मुझे घायल कर दिया है; मरहम-पट्टी कब होगी?
- जीवन में इतनी उदासी और निराशा क्यों है?
- मैंने संन्यास क्यों लिया है? श्रद्धा-भक्ति नहीं है, फिर भी बार-बार आपके पास क्यों आती हूं?
- क्या समझ-देख कर आपने मुझ मूढ़ को आश्रम में स्थान दिया है?

● पहला प्रश्न : आप बाबा मलूक, कृष्ण, बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट की आड़ से जो तीर चलाते हैं, उनसे मैं घायल हो गया हूँ। घायल की मरहम-पट्टी कब होगी ?

इश्क की चोट का कुछ दिल पर असर हो तो सही।
दर्द कम हो कि ज्यादा, मगर हो तो सही॥

दर्द अच्छा लक्षण है। घायल हुए, तो धन्यभागी हो। अभागे तो वे ही हैं, जो घायल नहीं हो पाते।

ऐसे भी बहुत हैं, जो ऐसे पथरीले हो गये हैं कि उन पर चोट ही नहीं पड़ती। चोट पड़ भी जाय, तो जल्दी भर जाती है। और ये घाव ऐसे हैं कि भरें ना, तो ही काम के हैं।

परमात्मा के प्रेम में जो पीड़ा है, उसे मिटाने की तो सोचना ही मत। उसे तो बढ़ाने की सोचना। वह पीड़ा साधारण पीड़ा नहीं है। ये घाव साधारण घाव नहीं हैं। इनकी मरहम-पट्टी की जरूरत नहीं है। ये तो बड़े होते जाएँ--इतने बड़े हो जाएँ कि तुम छोटे हो जाओ और घाव बड़ा हो जाए; तो प्रभु-मिलन हो जाय।

तुम्हारी पीड़ा ही तो प्रार्थना बनेगी। मरहम-पट्टी तो पीड़ा छीन लेगी तुमसे। और विरह छिन गया, तो मिलन कैसे होगा ?

मरहम-पट्टी ही होती रही है सदियों से। आदमी सत्य की थोड़े ही खोज करता है; साँत्वना की खोज करता है। लोग सत्य का जीवन थोड़े ही जीना चाहते हैं; सुविधा का जीवन जीना चाहते हैं। फिर सुविधा अगर झूठ से मिलती हो, तो झूठ ही सही।

सब मरहम-पट्टियाँ झूठी सादित होंगी। यह घाव ऐसा नहीं है कि इसकी मरहम-पट्टी हो जाय। यह घाव आंतरिक है; आत्मा का है। यह तो, परमात्मा मिलेगा, तो ही भरेगा--उसके पहले नहीं भरेगा।

तो गुरु घाव तो बना देगा, मरहम-पट्टी नहीं की जा सकती। परहम-पट्टी तो

परमात्मा के मिलन पर होगी। और मिलन तभी होगा, जब घाव तुमसे बड़ा हो जाय। तुम्हारी विरह की पीड़ा इतनी हो जाय, कि तुम उससे छोटे पड़ जाओ। तुम्हारे आँसू तुमसे बड़े हो जाएँ; तुम्हारी पुकार तुमसे बड़ी हो जाय; तुम्हारी प्यास तुमसे बड़ी हो जाय; तुम छोटे पड़ जाओ। कोई उपाय ही न बचे--प्यास को बुझाने का। उस आत्यंतिक घड़ी में, जब तुम बिलकुल निरुपाय हो जाते हो--असहाय--तभी प्रभु का मिलन होता है।

तुम मरहम-पट्टी की तो बात सोचो ही मत। मैं तो घावों को और उघाड़ूंगा। तुम चेष्टा भी करोगे कि घाव भर जाएँ, तो भरने न दूंगा। घाव को हरा रखना है। पीड़ा को भुलाना नहीं है; पीड़ा चुभने लगे--चौबीस घड़ी चुभने लगे; उठते-बैठते, सोते-जागते चुभने लगे। परमात्मा की गैर-मौजूदगी तुम्हें प्रतिपल घेरे रहे और तुम्हारा हृदय रोता रहे।

मन्दिरों में जाकर थोड़े ही प्रार्थनाएँ होती हैं--कि घड़ी भर को मन्दिर हो आये--और प्रार्थना हो गई ! जब तक प्रार्थना चौबीस घंटे पल-पल पर न फैल जाय, तब तक प्रार्थना कारगर नहीं होती।

परमात्मा मिलेगा, तो ही घाव भरेंगे। और कौन जाने--भरें, ना भरें ! लेकिन फिर घाव को भरने की आकांक्षा न रह जायेगी।

तुझको पा कर भी न कम हो सकी बेताबी-ए-दिल
इतना आसान तिरे इश्क का गम था भी कहाँ॥

मिल कर भी न भर सका--'इतना आसान तिरे इश्क का गम था भी कहाँ ?' --कि मिल कर भर जाय। इतने सदियों तक रोया है भक्त कि भगवान् भी मिल जायेगा, तो एकदम से थोड़े ही भर जायेगा। पहले रोया था बिछुड़ने में, अब रोयेगा--मिलन में। विरह की पीड़ा है; मिलन की भी पीड़ा है। पहले रोया था--दुख में; अब रोयेगा--खुशी में। हर्ष के आँसू होते ना; आनन्द के आँसू होते ना !

आँखें तो गीली भक्त की हो गईं, तो गीली ही रहेंगी। ये आँखें तो अब सूखने वाली नहीं; और नहीं सूखनी चाहिए। सूखी आँखें मरुस्थल हैं; गीली आँखें--उपवन। गीली आँखों में फूल खिलते हैं। गीली आँखों में गीत जनमते हैं; सूखी आँखों में तो कुछ भी नहीं...।

लेकिन हमें जरा-सी चोट लगे कि हम भरने की तैयारी करने लगते हैं। हम चोट से बड़े अकुलाते हैं, व्याकुल हो जाते हैं।

पूछा तुमने ठीक ही है। यहाँ काम ही इस बात का है कि किसी भी बहाने सही तुम्हारे हृदय में तीर चुभ जाय। और पीड़ा भी तुम्हें हो रही है, वह भी मैं

जानता हूँ।

संसार व्यर्थ दिखाई पड़ने लगता है--सुन-सुन कर, सोच-सोच कर, विचार कर-करके और परमात्मा का कहीं पता नहीं चलता--यही तो घाव है। जो हाथ में है--सार्थक नहीं मालूम होता; और जो सार्थक मालूम होता है, वह कहाँ मिलेगा, कैसे मिलेगा--उसका कुछ पता नहीं चलता।

तो हाथ की सम्पदा तो राख हो जाती है; और परमात्मा एक सपना बन कर डोलने लगता है। उसके सत्य की कुछ पकड़ नहीं बैठती--कि कहाँ है, कैसे शुरू करें? कैसे उसमें प्रवेश करें? इस दुविधा में प्राण तड़फते हैं।

मगर सान्त्वना से हल न होगा। सान्त्वना तो फिर तुम्हें सुला देगी। सान्त्वना तो शामक दवा है। और तुम जिन्हें साधारणतः संत कहते हो, वे तुम्हें सान्त्वना ही देते हैं। वे तुम्हारी पीठ थपथपाते हैं; वे कहते हैं : बेटा, सब ठीक हो जायेगा। तुम जागते नहीं उनके पास; तुम उनके पास जा कर सोते हो। वे तुम्हें तिल-मिलाते नहीं; तुम्हारे भीतर तूफान नहीं उठाते। और तूफान के बिना कुछ भी न होगा। अँधड़ चाहिए। तुम्हारी आत्मा आँधी बने तो ही कुछ होगा।

तो तुम मुझसे बहुत बार नाराज भी होओगे--कि यह तो बड़ी दुविधा में डाल दिया। घाव भी दे दिया और दवा का कुछ पता नहीं! बहुत बार तुम मुझे लिख कर भी भेजते हो : 'तुमने ही दर्द दिया है, तू ही दवा देना।' दवा मैं नहीं दूँगा। इस मामले में साफ हो लो। दर्द ही दूँगा; दवा तो परमात्मा है।

दवा तो तुम्हारे दर्द से ही उतरेगी। दर्द तो तुम्हारी, दवा की तरफ यात्रा है; और दवा तुम्हारे दर्द का ही अंतिम निचोड़ है। वह तुम्हारे दर्द का ही इत्र है।

हजारों-हजारों फूलों से जैसे इत्र निचोड़ते हैं, ऐसे हजारों-हजारों दर्दों और घावों से दवा निचुड़ती है।

इसलिए जल्दी न करो।

कठिनाई तुम्हारी मैं समझता हूँ।

जिसने पूछा है--कृष्ण वेदान्त ने...। जब कृष्ण वेदान्त नया-नया आया था, तो शायद उसे ईश्वर का कुछ बोध भी नहीं था। शायद ईश्वर को तलाशने आया भी नहीं था। संयोगवशात आ गया होगा। तुममें से बहुत संयोगवशात आ गये हैं। किसी मित्र ने कहा; कहीं कोई किताब हाथ लग गई। कोई उत्सुकता जगी; कोई जिज्ञासा उठी। कुतूहल में बहुत आ गये हैं।

आ जाना तुम्हारे हाथ है; चले जाना फिर तुम्हारे हाथ नहीं। किस कारण पक्षी जाल में आ जाता है, यह पक्षी जाने; लेकिन एक बार जाल में आ गया, तो निकलना इतना आसान नहीं है।

वेदान्त जब आया था, तो मुझे भलीभाँति याद है--कुतूहल से आ गया होगा। कोई ऐसी मुमुक्षा नहीं थी। मुमुक्षा है कहां? लोगों को मोक्ष की आकांक्षा कहां है! हो भी कैसे?

सुलाने वाले संतों की भीड़ है। जगाने की झंझट कोई लेना नहीं चाहता। क्योंकि अगर लोगों को जगाने लगो, तो लोग नाराज होते हैं! जिसको जगाओ, वही तुम्हारा दुश्मन होने लगेगा। उतनी झंझट कौन ले! शिष्य सोया रहे--गुरु को भी सुविधा। वह भी सोया रहता है; शिष्य भी सोये रहते हैं। दोनों घुर्राते रहते हैं और एक दूसरे के स्वर में ताल मिलाते रहते हैं।

गुरु को भी यही आसान है कि लोग सांत्वना से राजी हो जाएं। सांत्वना बड़ी सस्ती है। लेकिन सांत्वना का कोई भी मूल्य नहीं है। सांत्वना माया की सेवा में तत्पर है। सांत्वना के कारण ही तुम संसार में हो।

तुम्हें जब भी चोट लगी, तुमने जल्दी से मरहम-पट्टी कर ली। चोट कभी इतनी गहरी न हो पायी, कि तुम संसार से छूट ही जाते, कि तुम टूट ही जाते। चोट कभी इतनी गहरी न हो पायी कि तुम्हारे जीवन में एक क्रांति आ जाती--तुम मुख मोड़ लेते और दूसरी यात्रा पर चल पड़ते।

चोट के आसपास तुमने बड़ा आयोजन कर लिया है, ताकि चोट लगे न; लग भी जाय, तो ढँकी रहे।

पर वेदान्त को चोट लगनी शुरू हुई है--वह भी मैं देख रहा हूँ। आया था, तो हँसता युवक था।

> दिल में एक दर्द उठा, आँख में आँसू भर आये।
> बैठे बैठे हमें क्या जानिये, क्या याद आया।।

लेकिन अब उसकी आँखों में आँसू की थोड़ी-सी कोर दिखाई पड़ती है।

> दिल में एक दर्द उठा, आँख में आँसू भर आये।
> बैठे बैठे हमें क्या जानिये, क्या याद आया।।

छिन गई है कुछ चीज। अच्छी शुरुआत है। शुभ घड़ी है।

> ले गया छीन के कौन, आज तेरा सब्र-ओ-करार।
> बेकरारी मुझे ऐ दिल कभी ऐसी तो न थी।

छिन गया है कुछ। खो गया है कुछ। हाथ खाली है--इस बात की समझ आने लगी है। इसी से पीड़ा है। और परमात्मा दूर मालूम पड़ता है। कैसे पायेंगे? कैसे उस तक पहुँचेंगे?--करीब-करीब असंभव मालूम होता है। हमसे तो न हो सकेगा--ऐसा लगता है।

हमसे तो छोटे-छोटे काम नहीं हो पाते। छोटी-छोटी पहाड़ियां हम नहीं चढ़

पाते; यह परमात्मा का गौरीशंकर हम कैसे चढ़ेंगे? न ओर है, न छोर है। नदी नाले नहीं तैर पाते, यह परमात्मा का महासागर हम कैसे तैर पायेंगे? -- और अकेले! -- और अपने ही सहारे?

और इस तट पर अब कुछ सार नहीं मालूम होता; उस तट की बात सुनाई पड़ गई है।

सद्‌गुरु का इतना ही अर्थ है कि उस तट की बात तुम्हें सुना दे। तुम लाख चाहो, न सुनो--लेकिन सुनाता जाय। और एक दिन तुम्हारे भीतर एक सपना जाग उठे; और तुम उस तट के सपने देखने लगो। और यह तट तुम्हें व्यर्थ मालूम होने लगे। और इस तट पर तुम्हें कुछ सार न दिखाई पड़े, फिर अड़चन होगी।

इस तट पर सार दिखाई पड़ता नहीं; यहां जीने में अर्थ मालूम होता नहीं। धन कमाने में अब रस नहीं। पद की दौड़ में अब प्रयोजन नहीं। अब संबंध भी सब बच्चों के खिलौने मालूम होते--पत्नी, पति, बेटे, बेटियाँ। अब बड़ी मुश्किल हुई।

अभी तक तो किसी तरह भुलाये थे अपने को खिलौनों में, अब पता चला कि ये सब तो खिलौने हैं; असली तो उस पार है। यहां नकली में तो खूब भरमाये रहे। लेकिन अब कैसे...?

लेकिन बीच में बड़ा सागर है। असली उस पार है और बीच में बड़ा सागर है। और पार करना अकेले--दुर्गम मालूम होता है। डूब जाने की ज्यादा संभावना है--बजाय पहुँचने के। इससे बड़ी घबड़ाहट होती है, संताप पैदा होता है।

वेदांत का सारा चैन और करार छिन गया है। अच्छा हुआ। यह पहला कदम है। फिर एक ऐसी घड़ी आयेगी, घाव इतने हो जायेंगे कि अगर डूब भी गये सागर में, तो कुछ हर्जा नहीं है। अभी तट बेकार हो गया। अब दूसरी घड़ी और घटेगी और भी पीड़ा की घड़ी--तुम भी बेकार हो जाओगे।

अभी तुम बेकार नहीं हुए। अभी लगता है: यह किनारा तो बेकार हो गया, मैं सार्थक हूँ; दूसरे किनारे पहुँच जाऊँ, तो आनंद ही आनंद होगा। जल्दी ही वह घड़ी भी आयेगी, कि घाव इतने गहरे हो जायेंगे कि तुम्हें लगेगा: यह किनारा तो बेकार है ही, मैं भी बेकार हूँ, इसलिए अब डर क्या है! अगर डूब भी गये सागर में, तो क्या डूबेगा? कुछ है ही नहीं मुझमें, तो डूबने को क्या है! उसी दिन तुम उतरोगे।

और जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ गया कि मैं ना-कुछ हूँ, फिर देर नहीं परमात्मा से मिलने में। वही शर्त पूरी करनी है। मैं ना-कुछ हूँ; मैं शून्यवत हूँ; मैं अपने को भी छोड़ने को तत्पर हूँ। परमात्मा न भी मिले, तो भी मेरे होने में कोई

सार नहीं है--जिस दिन यह दिखाई पड़ जायेगा, उसी दिन फिर दाँव पर लगाने में न डरोगे।

और अब कठिनाई में तो रहना पड़ेगा। मरहम-पट्टी मैं करने वाला नहीं। और मेरे मरीज की मरहम-पट्टी कोई दूसरा कर दे--यह संभव नहीं। यह असंभव है।

तेरे बगैर बाग में फूल न खिल के हँस सके।
कोई बहार की सी बात अब के बहार में नहीं।।

अब तुम्हें यहाँ कोई बहार मालूम पड़ेगी नहीं। प्रभु की सुध जगने लगी है। अभी छोटी किरण है; अभी नन्हीं किरण है, बाल-किरण है; यही लपट बन जायेगी।

अभी तकलीफ हो रही है; और तकलीफ बढ़ेगी। तकलीफ उस सीमा पर आयेगी, कि तुम करीब-करीब विक्षिप्त होने लगोगे।

जग सूना है तेरे बगैर, आँखों का क्या हाल हुआ।
जब भी दुनिया बसती थी, अब भी दुनिया बसती है।।
जग सूना है तेरे बगैर, आँखों का क्या हाल हुआ।

तो पहला तो काम यह है कि तुम्हारी आँखों से तुम्हारे जग के सपने छीन लूं। जो-जो तुम्हें सार्थक मालूम पड़ता है, वह व्यर्थ मालूम पड़ने लगे। असह्य पीड़ा में डालूंगा; डालना ही पड़ेगा। और एक दफा असार असार दिख जाय, तो फिर तुम्हें सार खोजना ही पड़ेगा। फिर कोई लाख तुम्हें सांत्वनाएँ दे, तुम जानोगे कि सब सांत्वनाएँ हैं। मरहम-पट्टियों से कुछ काम न होगा। घाव छिप जाते होंगे--मिटते नहीं।

और यह घाव कुछ ऐसा नहीं है कि इसे मिटा लो, यह घाव तो सौभाग्य है। तुम धन्यभागी हो। कभी-कभी लाखों में, करोड़ों में किन्हीं लोगों के हृदय में ऐसे घाव बनते हैं, जो सिर्फ परमात्मा से ही भरे जा सकते हैं।

और कितने जन्मों से तुम खोज रहे हो--जाने अनजाने; होश में, बेहोशी में। तुम्हारे कदम चाहे लड़खड़ा के ही चल रहे हों, लेकिन किस तरफ जा रहे तुम; यात्रा क्या है; मंजिल क्या है; किसकी तलाश कर रहे हो? सोये-सोये भी हम परमात्मा की तरफ ही तो अपने हाथों को बढ़ा रहे हैं। टटोल रहे हैं अँधेरे में। मगर हम खोज उसी को रहे हैं: कहो आनंद, कहो मुक्ति--या जो नाम देना चाहो, दो। लेकिन हम खोज कुछ विराट रहे हैं, सीमा से मन भरता नहीं। क्षुद्र से तृप्ति होती नहीं। यह बूँद-बूँद सुख और प्यास को बढ़ा जाता है--घटाता नहीं; और गले को जला जाता है।

अब तो सागर ही चाहिए। अब तो पूरा-पूरा चाहिए: ऐसी ही तलाश चल रही हैं। और यह तलाश कोई नई नहीं है। लेकिन अब तक शायद धुंधली-धुंधली

थी; अचेतन थी। मेरी चोटों से अगर थोड़ी चेतन बनने लगी है, तो बेचैनी आयेगी। घबड़ाओ मत।

हुजूर वक्त की हजरत अजल से है मुझको।
खयाल कीजिए कब से उम्मीदवार हूँ मैं।।

कब से खड़े हो तुम पंक्ति में। पंक्ति में ही खड़े रहना है? सांत्वना करके जाओगे कहाँ? मरहम-पट्टी करके होगा क्या? फिर इसी किनारे पर बस जाओगे। फिर कोई नया सपना रचा लोगे। मरहम-पट्टी यानी सपना चाहते हो! कोई झूठ चाहते हो।

फ्रेडरिक नीत्शे ने कहा है: 'आदमी इतना कमजोर है कि बिना झूठ के जी नहीं सकता।' उसने यह भी कहा है कि भले लोगों, आदमी से उसके झूठ मत छीन लेना अन्यथा आदमी पागल हो जायेगा।' इस बात से मैं राजी हूँ। यह बात सच है। आदमी झूठ से जीता है। तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए जिये। कहते थे कि बेटे के लिए जी रहा हूँ। तुम अपने बेटे के लिए जिओगे। तुम्हारा बेटा उनके बेटे के लिए जियेगा। कोई नहीं जी रहा है; दूसरों के लिए जिये जा रहे हो!

तुम्हारे पिता अब नहीं हैं, छोड़ गये जो कमाया था। और जो छोड़ गये, उसमें सारा जीवन गँवाया। ले जा न सके जरा भी--एक टुकड़ा भी, उसमें से। खाली हाथ गये; और सारा जीवन गँवा दिया। कमाई होगी सम्पत्ति; बैंक में छोड़ गये होंगे रुपये; लेकिन जो यहाँ का था, यहाँ पड़ा है। वे तो ऐसे आये और ऐसे ही चले गये। ऐसे ही तुम चले जाओगे। ऐसे ही तुम्हारे बेटे चले जायेंगे।

इस जगत् में कोई कमा ही कहाँ पाता है? यहाँ तो सिर्फ गँवाना गँवाना है। पद पर पहुँच जाओगे । सांत्वना का अर्थ यही होता हैं; मरहम-पट्टी का अर्थ यही होता है: थोड़ा धन कमा लो; थोड़ी प्रतिष्ठा मिल जाय; आदर-सम्मान मिले; लोग मान्यता दें। और क्या चाहिए? सम्मान मिल गया, सब मिल गया। और क्या चाहिए?

लेकिन क्या इसके मिलने से कुछ भी मिलता है? इसके मिलने से कुछ भी नहीं मिलता। तुम दुनिया के बड़े से बड़े पद पर बैठ जाओ, तो भी तुम खाली के खाली ही रहोगे। कुर्सी बड़ी हो जायेगी, तुम छोटे के छोटे रहोगे।

जब यह बात दिखाई पड़ने लगती है; प्राणों में तीर-सा चुभ जाता है कि अब करें क्या! यहाँ जो करने योग्य है, वह करने योग्य मालूम नहीं होता। जो किया जा सकता है, वह करने योग्य नहीं मालूम होता। और परमात्मा? यह तो शब्द ही बड़ा समझ में आता नहीं। यह तो बेबूझ है। यह तो कहाँ है? है भी या कवियों, रहस्यवादियों की कल्पना मात्र है? किसने जाना; किसने देखा? दृश्य

तो व्यर्थ हो गया और अदृश्य पर कैसे दाँव लगायें?

नीत्शे ठीक कहता है; आदमी झूठ के बिना नहीं जी सकता। और तुम्हारे घाव का मतलब यही है कि यहाँ मैं तुमसे तुम्हारे झूठ छीन रहा हूँ--एक के बाद एक। और हर झूठ के छिनने पर तुम्हारा एक घाव उभरेगा। जब सब झूठ छिन जायेंगे, तो तुम घाव-मात्र रह जाओगे--नग्न घाव। लेकिन झूठ छिन ही जाना चाहिए। झूठ की पट्टियाँ अब और नहीं। जिस दिन तुम्हारे ऊपर कोई मरहम-पट्टी न रह जायेगी, तुम एक उघड़े घाव हो जाओगे--घाव-मात्र, उस पीड़ा से जो प्रार्थना उठती है, उस असहाय अवस्था में जो पुकार उठती है, उस पुकार में प्राण होते हैं। वही पुकार सुनी जाती है। उसी दिन प्रभु दौड़ा चला चला आता है।

तुम गड्ढे की तरह हो गये; तुम घाव हो गये, प्रभु उसे भरने दौड़ा चला आता है।

तो मरहम-पट्टी तो माँगो ही मत। माँगो--कि मैं और तुम पर चोट करूँ। माँगो--कि जो घाव लगे गये हैं, वे किसी तरह भर न जायें। माँगो--कि इतना बल मिले कि तुम इन घावों को सहने में समर्थ रहो।

और नये घावों की तैयारी करनी है। यह तो अभी शुरुआत है। अभी घबड़ा गये और भाग गये, तो मंजिल तक कैसे चलोगे? अभी तो पहले कदम उठाये हैं; अभी तो बहुत यात्रा-पथ शेष है।

दूर क्षितिज पर बादल छाये
लोचन मेरे क्यों भर आये
सोनजुही-सी धूप शरद की
छिप-छिप रहती ओट दरद की
आँख-मिचौली-सा यह जीवन
धूप-छाँह बन-बन भरमाये
खुशियाँ रखीं तुम्हारे आगे
दर्द मिला मुझको बिन माँगे
कैसी यह बेरहम बेकसी
तड़प-तड़प कर मन रह जाये
यह सतरंगी स्वप्न तुम्हारे
मेरी सीमाओं से हारे
सुन सकते हो, तो सुन लो तुम
दर्द तुम्हारा रह-रह गाये।

जब तुम्हारे भीतर परमात्मा का दर्द रह रह कर गाने लगेगा, तब बाबा मलूक-

दास की बात तुम्हें समझ में आयेगी।

कहते मलूकदास कि न तो मैं अब नाम लेता जिह्वा से राम का, न पूजा-पाठ, न प्रार्थना। अब सब छोड़-छाड़ दिया। अब तो हरि स्वयं मेरा भजन करते हैं। अब तो वे मेरी याद करते हैं।

जिस दिन तुम सब दाँव पर लगा दोगे, और कुछ भी बचाओगे ना, उसी दिन क्रांति घटती है : परमात्मा तुम्हारी याद करने लगता है। उन याद को अर्जित करने के लिए पीड़ाओ से गुजरना जरूरी है। पीड़ाएँ निखारती हैं; पीड़ाएँ माँजती हैं। पीड़ा की अग्नि से गुजरे बिना कोई कभी स्वर्ण नहीं बन पाता है।

● दूसरा प्रश्न : जीवन में इतनी उदासी और निराशा क्यों है?

जीवन में न तो उदासी है और न निराशा है। उदासी और निराशा होगी-- तुममें। जीवन तो बड़ा उत्फुल्ल है। जीवन तो बड़ा उत्सव से भरा है। जीवन तो सब जगह--नृत्यमय है; नाच रहा है। उदास...?

तुमने किसी वृक्ष को उदास देखा? और तुमने किसी पक्षी को निराश देखा? चाँद-तारों में तुमने उदासी देखी? और अगर कभी देखी भी हो, तो खयाल रखना : तुम अपनी ही उदासी को उनके ऊपर आरोपित करते हो।

तुम उदास हो, तो रात चाँद भी उदास मालूम पड़ता है। तुम्हारा पड़ोसी उदास नहीं है, तो उसको उदास नहीं मालूम पड़ता। उसके लिए चाँद नाचता हुआ मालूम पड़ता है। पड़ोसी की प्रियतमा आ गई है, तो चाँद प्रफुल्ल मालूम होता है। तुम्हारी प्रियतमा चल बसी है, मर गई है, तो चाँद रोता मालूम पड़ता है। यह तो तुम्हारी ही धारणा तुम चाँद पर थोप रहे हो। जिस दिन तुम कोई धारणा न रखोगे, तुम पाओगे--सब तरफ उत्सव है।

देखते नहीं : ये गुलमोहर के फूल, ये वृक्ष, यह हरियाली, यह पक्षियों के गीत --चारों तरफ जीवन अपूर्व उत्सव में लीन है। सिर्फ मनुष्य उदास मालूम होता है।

क्या हो गया है? कौन-सी दुर्घटना मनुष्य के जीवन में हो गई है?

जो पहली दुर्घटना समझने जैसी है, जिसके कारण मनुष्य उदास हो गया है : वह है कि मनुष्य अकेला है, जिसने अपने को विराट से तोड़ लिया है। जो सोचता है : मैं अलग-थलग। जिसने एक अस्मिता और अहंकार निर्मित कर लिया है।

इस अस्तित्व में कहीं भी अहंकार नहीं है--सिर्फ आदमी को छोड़ कर। पशु-पक्षी हैं, पौधे हैं, पहाड़ हैं, चाँद-तारे हैं, लेकिन कोई अहंकार नहीं है। वे सब परमात्मा में जी रहे हैं; वे विराट के साथ एक हैं--तल्लीन हैं। सिर्फ आदमी टूट गया है--संगीत से। सिर्फ आदमी के सुर-ताल बेसुरे हो गये हैं।

यह जो विराट संगीत का उत्सव चल रहा है, इसमें मनुष्य अकेला है, जो अपनी ढपली अलग बजाता है; जो कोशिश करता है कि मैं अपनी ढपली से ही आनंदित हो जाऊँ--इसलिए उदासी है।

अहंकार है कारण--उदासी और निराशा का।

निराशा का क्या अर्थ होता है? निराशा का अर्थ होता है : तुमने आशा बाँधी होगी, वह टूट गई। अगर आशा न बाँधते, तो निराशा न होती। निराशा आशा की छाया है।

आदमी भर आशा बांधता है; और तो कोई आशा बांधता ही नहीं। आदमी ही कल की सोचता है, परसों की सोचता है, भविष्य की सोचता है। सोचता है, आयोजन करता है बड़े कि कैसे विजय करूँ, कैसे जीतूं? कैसे दुनिया को दिखा दूं कि मैं कुछ हूँ? कैसे सिकंदर बन जाऊँ? फिर नहीं होती जीत, तो निराशा हाथ आती है। सिकंदर भी निराश होकर मरता है; रोता हुआ मरता है।

जो भी आदमी आशा से जियेगा, वह निराश होगा। आशा का मतलब है : भविष्य में जीना; अहंकार की योजनाएँ बनाना; और अहंकार को स्थापित करने के विचार करना। फिर वे विचार असफल होंगे। अहंकार जीत नहीं सकता। उसकी जीत संभव नहीं है। उसकी जीत ऐसे ही असंभव है, जैसे सागर की एक लहर सागर के खिलाफ जीतना चाहे। कैसे जीतेगी? सागर की लहर सागर का हिस्सा है।

मेरा एक हाथ मेरे खिलाफ जीतना चाहे, कैसे जीतेगा? वह तो बात ही पागल-पन की है। मेरे हाथ में मेरी ऊर्जा है। हम लहरें हैं--एक ही परमात्मा की। जीत और हार का कहाँ सवाल है? या तो परमात्मा जीतता है, या परमात्मा हारता है। हमारी न तो कोई जीत है, न कोई हार है। चूंकि हम जीत के लिए उत्सुक हैं, इसलिए हार निराश करती है।

भक्त का इतना ही अर्थ है; भक्त कहता है : तू चाहे--जीत; तू चाहे--हार; और तुझे जो मेरा उपयोग करना है--कर ले। हम तो उपकरण हैं। हम तो बांस की पोंगरी हैं, तुझे जो गीत गाना हो--गा ले। गीत हमारा नहीं है। हम तो खाली पोंगरी हैं। गाना हो, तो गा ले। न गाना हो--तो न गा। तेरी मर्जी। न गा, तो सब ठीक; गा--तो सब ठीक।

ऐसी दशा में निराशा कैसे बनेगी? भक्त निराश नहीं होता। निराश हो ही नहीं सकता। उसने निराशा का सारा इंतजाम तोड़ दिया। आशा ही न रखी, तो निराशा कैसे होगी?

अब तुम कहते हो : मन उदास क्यों होता है? जीवन में उदासी क्यों है? उदासी का अर्थ ही यही होता है कि तुम जो करना चाहते हो, नहीं कर पाते। जगह-जगह

हार जाते हो। जगह-जगह सीमा आ जाती है। अब पंख नहीं हैं तुम्हारे पास और उड़ना चाहते हो; नहीं उड़ पाते। उदास हो जाता है मन!

असंभव की माँग करते हो, वह नहीं घटता, चित्त में उदासी छा जाती है।

माँग ही न करो, फिर कोई उदासी नहीं है।

इसलिए तो ज्ञानी कहते हैं: जो वासना से मुक्त हो गया, उसके लिए फिर न कोई उदास अवस्था है, न निराश, न हताश। जो वासना से मुक्त हो गया, वह प्रतिक्षण प्रफुल्लित है; सच्चिदानंद की दशा में है। आनंद ही आनंद बरसता वहाँ।

तुम पूछते हो: जीवन में इतनी उदासी और निराशा क्यों है? जीवन में जरा भी नहीं है। तुम्हारे जीवन में होगी--जीवन में जरा भी नहीं है। और दोनों में फर्क ठीक से कर लेना।

जीवन बड़ी घटना है। जीवन का अर्थ है--सब, सारा अस्तित्व, पूरा ब्रह्माण्ड। तुम अपने जीवन को सारा जीवन मत मान लेना। और जो तुम्हारे जीवन में घट रहा है, जरा गौर करना, उसके लिए तुम ही जिम्मेवार हो। तुम्हारी ही भूल-चूकों का तुम परिणाम भोगते हो।

और अजीब-अजीब कामों में हम लगे हैं। अगर हम आदमियों को देखें, तो करीब-करीब ऐसी स्थिति है, जैसे कि पूरी पृथ्वी विक्षिप्त हो। जिसको कवि होना था, वह जूता सी रहा है। जिसको जूता सीना था, वह राष्ट्रपति हो गया है। जिसको राष्ट्रपति होना था, वह कहीं भीख माँग रहा है। सब अस्त-व्यस्त है। कोई वहां नहीं है, जहां होना चाहिए। किसी को याद भी नहीं है कि मुझे कहां होना चाहिए!

अब तुम जानते हो ना...। अगर तुम किसी वृक्ष को ले जा कर मरुस्थल में लगा दोगे और वह उस मरुस्थल का वृक्ष नहीं है, तो मर जायेगा, सूखेगा, उदास होगा, हार जायेगा, पत्तियां कुम्हला जायेंगी। धीरे-धीरे वृक्ष के प्राण विदा हो जायेंगे। हर वृक्ष को अपनी भूमि चाहिए। हर वृक्ष को अपनी ऋतु चाहिए। हर वृक्ष को अपने अनुकूल हवा, पानी, सूरज चाहिए।

आदमी को याद ही नहीं रहा है कि वह क्या होने को है। और हर आदमी कुछ होने को है। यहां कोई भी व्यर्थ नहीं है। तुम कुछ गीत लेकर आये हो, जो तुम्हें गाना है। लेकिन बड़ी अड़चन हो गई है। आदमी को उसके स्वभाव से इस बुरी तरह तरह तोड़ा गया है कि उसे याद ही नहीं पड़ता कि उसे कभी भी पता था कि वह क्या होने को है।

एक बहुत बड़ा सर्जन अपने कार्य-काल की अंतिम घड़ियों में आ गया; वह विदा ले रहा था। वह विश्राम में जा रहा था। उसके मित्रों ने एक बड़ा आयोजन

किया--नृत्य, भोज। लेकिन वह सर्जन बड़ा उदास था। उसको कभी किसी ने उदास नहीं देखा था।

उसके एक विद्यार्थी ने पूछा कि 'आप इतने उदास क्यों हैं? आपको तो प्रसन्न होना चाहिए!' हजारों शिष्य थे उसके जिन्होंने उसके जीवन में उससे शिक्षा ली। सर्जरी की कुशलता उसकी अपूर्व थी, वह बूढ़ा हो गया था, लेकिन फिर भी उसके हाथ अभी कंपते नहीं थे। अभी उसके शिष्य उसके साथ प्रतियोगिता नहीं कर सकते थे।

उस विद्यार्थी ने कहा, 'आपको तो प्रसन्न होना चाहिए। जगत् में आपकी ख्याति है। जगह-जगह आपके शिष्य हैं। और क्या चाहिए आदमी को! आप दुनिया के सबसे बड़े सर्जन हैं।'

उसने कहा, 'लेकिन मैं सर्जन होना ही नहीं चाहता था--पहली बात। मैं तो नर्तक होना चाहता था। लेकिन मेरा बाप मेरे पीछे पड़ा था--कि भूखा मरना है--नर्तक हो कर? नर्तक होना भी कोई बात है! सर्जन बनो। बाप पीछे पड़ा था; माँ पीछे पड़ी थी, तो मैं सर्जन बन गया। और मैं सफल भी हो गया। लेकिन आज जब मैं लोगों को नाचते देख रहा हूँ...। (उसके ही स्वागत में लोग नाच रहे थे।) तो मेरा हृदय बड़ी उदासी से भर गया है। मेरे मन में एक ही कामना थी--कि मैं नर्तक हो जाऊँ। चाहे दुनिया मुझे जानती या न जानती, मैं तृप्त हो जाता--मैंने अगर नाच लिया होता। कोई मुझे पहचानता, न पहचानता, उससे करना भी क्या है; उससे लाभ भी क्या है? आज दुनिया मुझे जानती है, लेकिन मैं वही हो गया हूँ, जो मैं कभी होना नहीं चाहता था।'

तुम्हारे जीवन की बहुत उदासियाँ तो इसलिए खड़ी हो जाती हैं, कि तुम वही हो गये हो--जो तुम कभी होना नहीं चाहते थे। तुमने इतनी हिम्मत ही न जुटाई; तुमने कभी यह कहा ही नहीं साहसपूर्वक कि मैं अपनी सहज स्फुरणा से जीऊँगा। जो मुझे होना है, वही होकर रहूँगा, चाहे भिखमंगा ही रह जाऊँ--कोई फिक्र नहीं।

तुम दूसरों के चक्कर में पड़ गये, जिन्होंने कहा कि यह बन जाओ, वह बन जाओ।

मैं एक घर में मेहमान था। छोटे बच्चे से मैंने पूछा; वह मेरे पास बैठा हुआ अपना खिलौना खेल रहा था। मैंने पूछा कि तू क्या बनना चाहता है? उसने कहा कि 'यह बड़ा कठिन सवाल है।' मैंने पूछा: इसमें क्या कठिनाई है? तू बनना क्या चाहता है?' उसने कहा कि 'मैं बहुत मुश्किल में हूँ। माँ कहती है--डॉक्टर बन जाओ; पिता कहते है--इंजीनियर बन जाओ; काका कहते हैं--प्रोफेसर बन जाओ; मेरी काकी कहती है कि वैज्ञानिक बन जाओ। और मैं बड़ी दुविधा में

पड़ गया हूँ। और मैं पागल हुआ जा रहा हूँ कि यह सब तो मैं इकट्ठे तो बन नहीं सकता! और इस सब ऊहापोह में मुझे यह भी समझ में नहीं आता कि मैं क्या बनना चाहता हूँ!

मनुष्य के जीवन की अधिकतम उदासी का कारण यही है कि तुम सहज नहीं जी रहे हो। तुम्हारा हृदय जहाँ स्वभावतः जाता है, वहाँ नहीं जा रहे हो। तुमने कुछ इतर लक्ष्य बना लिए हैं।

घिस गए सभी मंसूबे इस जीवन के
दफ्तर की सीढ़ी चढ़ते और उतरते।
जो काम किया, वह काम नहीं आएगा
इतिहास हमारा नाम न दोहराएगा
जब से सपनों को बेच खरीदी सुविधा
तब से ही मन में बनी हुई है दुविधा
हम भी कुछ अनगढ़ता तराश सकते थे
दो-चार साल समझौता अगर न करते।
पहले तो हमको लगा कि हम भी कुछ हैं
अस्तित्व नहीं है मिथ्या हम सचमुच हैं
पर अकस्मात ही टूट गया यह सम्भ्रम
ज्यों बस आ जाने पर भीड़ों का संयम
हम उन कागजी गुलाबों-से शाश्वत हैं
जो खिलते कभी नहीं हैं, कभी न झरते।
हम हो न सके वह जो कि हमें होना था
रह गए संजोते वही कि जो खोना था
यह निरुद्देश्य, यह निरानंद जीवन-क्रम
यह स्वादहीन दिनचर्या, विफल परिश्रम।

प्रत्येक व्यक्ति को इतनी आस्था परमात्मा में चाहिए कि वह जहाँ ले जायेगा, ठीक ले जायेगा। आदमियों की मत सुनो——परमात्मा की सुनो। लेकिन परमात्मा की सुनने के लिए तुम्हें थोड़ा ध्यानस्थ होना जरूरी है, ताकि उसकी आवाज तुम तक पहुंच सके। थोड़ा प्रार्थना में लीन होना जरूरी है, ताकि उसकी मंदिम-मंदिम आवाज तुम सुन सको; उसका धीमा-सा स्वर तुम्हारे कोलाहल में व्याप्त हो सके।

आदमी को सदा अगर आनन्द से जीना हो, तो संदेश परमात्मा से लेने चाहिए ——आदमियों से नहीं। और हमने आदमियों से सब कुछ सीख लिया है और परमात्मा से सीखना हम भूल ही गये हैं। हमारे हाथ में कुंजी ही नहीं रही कि हम

कैसे उसका द्वार खोलें; कैसे उससे पूछें।

तो कोई धन कमाने में लगा है——बिना सोचे हुए——क्यों! पड़ोसी धन कमा रहे हैं, इसलिए तुम भी धन कमाने में लगे हुए हो! एक दौड़ है, जिसमें सब दौड़े जा रहे हैं। और तुम भी धक्कम-धुक्की में दौड़े चले जा रहे हो। तुम भेड़ हो गये हो, इसलिए जीवन में दुःख है। आदमी बनो।

आदमी बनने से मेरा मतलब है : अपने भीतर से अपने जीवन का स्वर खोजो। अपने भीतर को सुनो; अपने भीतर की गुनो। फिर कुछ दाँव पर लगाना हो, तो लगा दो; डरो मत।

जरा सोचो : यह आदमी जो सर्जन हो गया इतना बड़ा, यह कभी भी हिम्मत करके नर्तक हो सकता था। लेकिन हिम्मत न जुटा पाया। और अब जीवन की अंतिम घड़ी में विषाद करने से भी क्या होगा? 'अब पछताये होत का, चिड़िया चुग गई खेत।'

तुम्हें क्या होना है? तुम्हारे प्राण कुछ कहते हैं? तुम्हारे प्राण गुनगुनाते हैं किसी बात के लिए——कि 'यह मुझे होना है? इस दिशा में जाऊंगा, तो मेरी तृप्ति होगी।'

हम बच्चों को विकृत करते हैं। हर बच्चा अपने भीतर स्पष्ट दिशा ले कर आता है। हम उसे दिग्भ्रांत करते हैं; हम उसकी दिशा छीन लेते हैं। हम जल्दी से उसकी खोपड़ी पर सवार हो जाते हैं। और हम जल्दी से उसे बताने लगते हैं : उसे कैसे होना है; क्या होना है? हम कभी सुनते नहीं कि उसकी भी सुनें; कि उसकी भी गुनें; कि उससे ही पूछें कि तुझे क्या बनना है——तुझे क्या होना है। और सहारा दें। जो वह बनना चाहे, उसके लिए सहारा दें।

सम्यक् शिक्षा वही होगी, जब हम प्रत्येक व्यक्ति को वही बनाने में सहारा देंगे, जो वह बनना चाहता है। अगर वह बढ़ई बनना चाहता है, तो खुशी की बात है, बढ़ई बने। यह बात सच है कि बढ़ई बन कर वह कोई बहुत बड़ा धनपति न बन जायेगा। लेकिन धन का होगा क्या? शायद बढ़ई बन कर तृप्त हो जाय।

लकड़हारा बनना चाहता है, तो लकड़हारा बन जाय।

लेकिन हम बच्चों को कहते हैं : 'पढ़ोगे, लिखोगे, होओगे नवाब।' लेकिन नवाब बन कर बनना क्या है? करना क्या है? नवाबों की दुर्दशा देखते हैं! लेकिन हर एक को नवाब बनाने के लिए हम लगे हुए हैं!

आदमी को वही होना चाहिए, जो होने की सहज संभावना हो, तो उदासी कम हो जायेगी।

और मजा यह है कि अगर आदमी सहज वही होने लगे——जो होने को बना है, तो उसके जीवन में अहंकार कभी भी न उठेगा। अहंकार उठता ही है विकृति से।

अहंकार उठता ही है--कुछ और बनने की चेष्टा में। और बनने की चेष्टा अहंकार के बिना हो ही नहीं सकती।

हम बच्चे को कहते हैं: 'तुम बड़े धनी बनो, नहीं तो तुम दो कौड़ी के हो। अगर धन है, तो सब है; धन नहीं है, तो कुछ भी नहीं है।' हम उसके अहंकार को फुसला रहे हैं। हम कहते हैं: 'तुम सिद्ध करो कि तुम हो कुछ। तो धन से ही सिद्ध होगा! कि जब तक तुम प्रधानमंत्री न हो जाओगे देश के, तब तक तुम कुछ भी नहीं हो। तुम दो कौड़ी के हो।' हम उसमें पागलपन पैदा कर रहे हैं।

हम उसके अहंकार को फुसला रहे हैं। हम जहर डाल रहे हैं। वह दौड़ में लग जायेगा।

बच्चे भोले हैं, उनको विकृत करने में जरा भी कठिनाई नहीं है। तुम विकृत किये गये हो। और अब तुम्हें याद भी नहीं पड़ता कि तुम कहाँ जा रहे हो। तुम कौन हो--यह भी याद नहीं पड़ता। तुम कहाँ से आ रहे हो--यह भी याद नहीं पड़ता।

किस ओर मैं? किस ओर मैं?
है एक ओर असित निशा
है एक ओर अरुण दिशा
पर आज स्वप्नों में फँसा, यह भी नहीं मैं जानता--
किस ओर मैं? किस ओर मैं?
है एक ओर अगम्य जल
है एक ओर सुरम्य थल
पर आज लहरों से ग्रसा यह भी नहीं मैं जानता--
किस ओर मैं? किस ओर मैं?
है हार एक तरफ पड़ी
है जीत एक तरफ खड़ी
संघर्ष जीवन में धँसा, यह भी नहीं मैं जानता--
किस ओर मैं? किस ओर मैं?

तुम्हारी सारी संभावना--चुनने की, समझने की, जागने की नष्ट कर दी गई है। इसलिए तुम उदास हो।

जीवन उदास नहीं है। बस, तुम उदास हो। तुम्हें अपने सूत्र फिर से पकड़ने होंगे; तुम्हें फिर अपने बचपन को दोहराना होगा। तुम्हें जो-जो सिखाया गया है, उससे तुम्हें मुक्त होना होगा। तुम्हें बच्चे की निर्दोष दशा में फिर से आना होगा। वहाँ से सब गड़बड़ हो गई है। तुम्हें उस चौराहे तक फिर लौटना होगा, और उस

चौराहे से फिर तुम्हें नई दिशा पकड़नी होगी।

इसलिए संन्यास का मौलिक अर्थ है: हम फिर से नया जन्म लेने की तैयारी दिखलाते हैं। हम कहते हैं: अब हम फिर से सोचेंगे; पुनर्विचार करेंगे। और इस बार थोथी बातों के चक्कर में न पड़ेंगे। अपने हृदय की सुनेंगे। फिर जहाँ ले जाय, और जो परिणाम हो; जो दिशा भीतर से आये, उसी पर चल पड़ेंगे।

इस सहज स्वाभाविक क्रम का नाम है--संन्यास।

संन्यास कुछ पाने की आकांक्षा नहीं है। संन्यास बस, वही होने की आकांक्षा है, जो हम हैं, जो हमें परमात्मा ने बनाया है। जो प्रतिमा उसने हमारे भीतर गढ़ी थी, उसको ही निखारना है।

नहीं तो तुम निराश रहोगे; उदास रहोगे। कमा लोगे बहुत--पद-प्रतिष्ठा, लेकिन जीवन खाली का खाली रहेगा। रेत ही रेत हाथ लगेगी--आखिर में। धुआँ ही धुआँ हाथ लगेगा--आखिर में। संपदा से तो तुम वंचित रह जाओगे।

धन्यभागी हैं वे लोग, जो वही हो जाते हैं--जो होने को बने थे। इसलिए थोड़े से लोग ही इस जगत में फूलों को उपलब्ध होते हैं--कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट, कोई सुकरात, कोई कबीर, कोई मलूक--थोड़े से लोग। मगर इन लोगों की हिम्मत को खयाल रखना। ये बगावती लोग हैं।

बुद्ध के बाप तो चाहते थे कि बेटा सम्राट हो जाय; बेटा भिखारी हो गया! महावीर को माँ तो चाहती थी--कि बेटा महल में रहे; बेटा नग्न हो कर जंगलों में भटकने लगा!

तुमने कभी यह बात गौर की--कि ये सारे लोग, जो इस जगत् में किसी आनंद को उपलब्ध हुए हैं, ये सब बगावती और विद्रोही थे। विद्रोह इनका मौलिक लक्षण है।

शंकराचार्य संन्यस्त होना चाहते थे--नौ वर्ष के थे, तब संन्यस्त होना चाहते थे! स्वभावत: माँ दु:खी थी। माँ नहीं चाहती थी--यह हो। कौन माँ चाहेगी कि बेटा संन्यस्त हो जाय। कौन पिता चाहेगा कि बेटा संन्यस्त हो जाय!

लेकिन इन लोगों ने, जो होना था, वही हुए। और कोई दूसरे व्यवधान बीच में न पड़ने दिये।

प्रत्येक व्यक्ति इसी ऊँचाई पर पहुँच सकता है। लेकिन हम इतनी हिम्मत नहीं जुटाते। हम दाँव नहीं लगाते। हम बड़े हिसाबी-किताबी हैं। हम चाहते हैं: बुद्ध जैसा आनंद तो हमें उपलब्ध हो जाय, लेकिन बुद्ध उस आनंद के लिए जो दाँव पर लगाते हैं, वह हम कभी लगाते नहीं।

हम चाहते है: महावीर जैसी निष्कलंक दशा हमारी हो जाय, लेकिन महावीर

ने जो दाँव लगाया है, वह हम लगाते हैं ?

हम दाँव कुछ भी नहीं लगाना चाहते। हम मुफ्त में आनंद पाना चाहते हैं। आनंद की कीमत चुकानी पड़ती है। और बड़ी से बड़ी कीमत यही है कि जहां प्रतिष्ठा मिलती हो, धन मिलता हो, पद मिलता हो, उस सब यात्रा को छोड़ कर उस दिशा में चल पड़ना, जहाँ पता नहीं, प्रतिष्ठा मिले--न मिले; पद मिले--न मिले। अपमान मिले; कौन जाने : सूली लगे; जहर मिले।

जो व्यक्ति अपने भीतर के निसर्ग को सुन लेता है और उसके साथ चल पड़ता है, उसके जीवन में कभी उदासी और निराशा नहीं होती।

● तीसरा प्रश्न : भगवान्, मैंने संन्यास क्यों लिया है ? श्रद्धा-भक्ति नहीं है, फिर भी बार-बार आपके पास क्यों आती हूँ ?

पूछा है--प्रेम अजिता ने।

ऐसा बहुत बार हो जाता है : तुम्हें भी ठीक-ठीक पता नहीं होता; तुम्हें भी साफ-साफ होश नहीं होता कि तुमने संन्यास क्यों लिया है। लिया है, तो भीतर जरूर कोई छिपी हुई लहर होगी। लिया है, तो भीतर कोई दबी हुई आग होगी। हो सकता है : अंगार राख में दब गई हो। राख की पर्त-पर्त हो और अंगारा बहुत भीतर खो गया हो। कुरेद कर भी तुम्हें पता न चलता हो कि कहीं कोई अंगारा है।

लेकिन अकारण तो यह नहीं होगा, क्योंकि संन्यास उपद्रव मोल लेना है। आदमी लेते वक्त हजार बार सोचता है। फिर मेरा संन्यास तो आपने आपको झंझट में डालना है! कोई सुविधा तो इससे मिलेगी नहीं; आसुविधाएँ हजार खड़ी हो जायेंगी। इससे कोई पद-प्रतिष्ठा तो मिलेगी नहीं; इससे तो कुछ पद-प्रतिष्ठा होगी, वह भी छूट जायेगी। इससे तो उपद्रव ही आने वाले हैं। इससे तो तुमने उपद्रव और तूफान के लिए दरवाजा खोला है।

तो कोई अकारण तो ले नहीं सकता। लिया है अजिता, तो जरूर भीतर कारण होगा। थोड़ा अपने को और कुरेदना।

झेन फकीर रिंझाई के पास एक युवक आया और उस युवक ने कहा कि 'मैं बहुत खोजता हूँ, लेकिन मुझे मेरे भीतर आत्मा का कुछ पता ही नहीं चलता। और सभी सद्गुरु कहते हैं : आत्मा को जानो; आत्मा को पहचानो; आत्मा में रमो। किसमें रमें ? किसको पहचानें ? किसको जानें ? मैं तो भीतर खोजता हूँ, मुझे कुछ मिलता नहीं।'

साँझ थी--सर्दी की साँझ और रिंझाई गुरसी में आग जलाये ताप रहा था, लेकिन आग करीब-करीब बुझ चुकी थी; राख ही राख थी। उसने उस युवक से कहा : 'बैठ। पहले जरा देख कि इस गुरसी में कुछ आग बची या नहीं ? क्योंकि

तुझसे बात करनी पड़ेगी; रात बहुत सर्द है; आग जला लेनी जरूरी है। जरा देख देख कि कुछ आग बची है या नहीं।'

उसने पास में पड़ी हुई लकड़ी को उठा कर आग को कुरेदा : राख ही राख थी। उसने जल्दी ही कह दिया कि 'नहीं; कुछ आग वगैरह नहीं है। राख ही राख ही राख बची है। आप भी राख के सामने हाथ किये बैठे हैं! माना कि राख गरम है, लेकिन आग बिलकुल नहीं है।'

फिर रिंझाई ने बहुत गौर से उस राख को कुरेदा और एक छोटे से अंगारे को जो नीचे दबा पड़ा था, निकाल कर उसे बताया कि 'देख, आग है। तूने बहुत जल्दी की। तूने ऐसे ही लकड़ी एक-दो बार घुमाई और तूने कहा--आग नहीं है। जो तूने यहाँ किया गुरसी के साथ, वही तू अपने साथ भी कर रहा है', रिंझाई ने कहा, 'तू भीतर जाता है, मगर जल्दी लौट आता है।'

जन्मों-जन्मों की राख है; अंगार कहीं होगी तो। बिना अंगार के राख होती ही नहीं। और यह बाहर की अंगार तो बुझ भी जाय, भीतर की अंगार तो बुझती ही नहीं। यह तो शाश्वत अंगार है। यह तो आग शाश्वत है।

ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसके मन में कभी न कभी संन्यास का भाव न उठता हो--चाहे वह समझता हो, चाहे न समझता हो। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसके मन में यह बात न उठती हो--कि छूटें इस जंजाल से; कि छोड़ें यह सब उपद्रव; कि छोड़ें सब राग-रंग; कि उठें ऊपर; कि खोजें उसे, जो सदा है—सदा था, सदा रहेगा। ऐसा आदमी खोजना कठिन है।

पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों ने बहुत से अन्वेषणों के बाद यह तथ्य खोजा है कि ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो कभी जीवन में एक-दो बार, चार बार आत्म-हत्या का विचार न करता हो। अभी पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों को संन्यास की कोई खबर नहीं है। लेकिन अगर हम आदमी को गौर से खोजें, तो ऐसी बात भी संभव नहीं है कि कोई आदमी जीवन में कभी संन्यस्त होने का भाव न करता हो। असल में जो आदमी आत्महत्या का भाव करता है, वही आदमी संन्यस्त होने का भी भाव करता है। संन्यास आत्महत्या का एक बड़ा कारगर उपाय है।

आत्म-हत्या और आत्म-साधना में बड़ी निकटता है। आत्महत्या कोई क्यों करना चाहता है ? जीवन से ऊब गया; जीवन व्यर्थ हो गया। देख लिया सब, पाया कुछ भी नहीं। सब तरफ भटक कर देख लिया, कहीं कोई राह नहीं मिली; कहीं कोई सुराग नहीं मिला--सुगंध नहीं मिली। पुनरुक्ति है। वही वही दोहरता जाता है। इस पुनरुक्ति में क्यों पड़े रहें ? एक दिन आदमी सोचता है : इससे तो बेहतर समाप्त ही कर दें शरीर को। लेकिन शरीर को समाप्त करने से तो कुछ

समाप्त होता नहीं। फिर लौट आओगे--नये शरीर में लौट आओगे। फिर उपद्रव का जाल शुरू हो जायेगा।

पूरब ने संन्यास खोजा, क्योंकि संन्यास वास्तविक आत्महत्या है। जो ठीक से संन्यस्त हो गया, वह फिर नहीं लौटेगा। इसलिए मैं कहता हूँ: संन्यास वास्तविक आत्महत्या है; गया--सो गया। जहर खा कर मर गये; फिर लौट आओगे, क्योंकि जहर खाने से केवल शरीर मरता है; तुम्हारा अहंकार नहीं मरता, तुम्हारा मन नहीं मरता; फिर लौट आओगे।

संन्यास ऐसा जहर है, कि अहंकार मर जाता है। और जहाँ अहंकार मर जाता है, वहीं परमात्मा का आविर्भाव होता है। अहंकार की ओट में ही छिपी है आत्मा।

तो संन्यास का भाव तो उठता ही है। और जो लोग पूरब में पैदा हुए हैं, उन्हें न उठे, यह तो असंभव है। पश्चिम में शायद न भी उठे; उठे भी तो शायद वे उसको ठीक-ठीक शब्द न दे पायें कि यह कैसा भाव है। उनके पास परिभाषा भी नहीं है।

संन्यास पूर्वीय घटना है, पूर्वीय खोज है। तो पूरब में तो यह असंभव है कि संन्यास का भाव न उठे।

बुद्ध का जब जन्म हुआ तो ज्योतिषियों ने बुद्ध के पिता को कहा कि 'इस बेटे को थोड़ा सम्हाल कर रखना, क्योंकि या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा--अगर घर में बना रहा, तो सारी पृथ्वी का सम्राट बनेगा। और अगर इसने घर का त्याग कर दिया, तो यह एक महासंन्यासी होगा।'

तो पिता ने पूछा: 'इसे हम कैसे रोक रखें? क्या करें? क्योंकि मैं चाहता नहीं कि यह संन्यासी हो। मैं चाहता हूँ कि यह महाप्रतापी सम्राट बने।' तो उन्होंने चार बातें कहीं: उन्होंने कहा कि एक तो यह खयाल रखना कि यह जब बड़ा हो जाय, तो कभी भी भूलकर भी इसके सामने बीमारी, रोग, बुढ़ापा--इनका इसे पता न चले। इसे इस तरह सम्हाल कर रखना, छिपा कर रखना कि इसे यह पता ही न चले कि बीमारी है, रोग है, बुढ़ापा है। दूसरी बात: खयाल रखना, इसे कभी पता न चले कि मृत्यु है। और तीसरी बात खयाल रखना: यह कभी किसी संन्यासी को न देखे। चौथी बात: इसको उलझाये रखना--जितने राग-रंग में बन सकें। इसको क्षण भर खाली मत छोड़ना; क्योंकि खाली क्षणों में आदमी विचार करने लगता है। और यह बड़ा तेजस्वी है।'

तो यही पिता ने किया। राग-रंग का खूब इंतजाम कर दिया। छोड़ते ही नहीं थे उसे। सुन्दर से सुन्दर स्त्रियाँ जुटा दीं। सुंदर महल बना दिये। महल से बाहर जाने की जरूरत न थी। आज्ञा दे रखी थी बगीचे में मालियों को कि सूखा पत्ता

भी बुद्ध को दिखाई न पड़े। बूढ़ा आदमी प्रवेश न करे। बीमार आदमी की इसे खबर न हो। कभी इसको खबर न चले कि कोई मरता है। कोई पशु-पक्षी मर जाय जंगल में, इसके बगीचे में--हटा देना। इसे खबर नहीं होनी चाहिए; इसका बड़ा आयोजन किया था। और आयोजन किया था कि कोई संन्यासी कभी इसके आसपास दूर तक भी आये ना। क्योंकि ज्योतिषियों ने कहा है कि अगर यह संन्यासियों को देखेगा, तो इसके भीतर जन्मों-जन्मों की जो दबी आकांक्षा पड़ी है, संन्यस्त हो जाने की, वह त्वरा से जग जायेगी, वह लपट बन जायेगी।

लेकिन यह कब तक हो सकता था! कैसे छिपाओगे? यह सारा जीवन रोग से भरा है। कैसे छिपाओगे--बुढ़ापे से? बाप भी बूढ़ा हो गया। कैसे छिपाओगे? फूल कुम्हलाते हैं; पत्ते सूख जाते हैं। फिर कब तक इसे बंद रखोगे; कभी तो यह बाहर निकलेगा। बुद्ध जब युवा हो गये और बाहर निकलने लगे, तो एक दिन एक साथ घटनाएँ घट गईं।

एक बूढ़े को देखा लकड़ी टेकते हुए और पूछा अपने सारथी को--'इसे क्या हो गया है!' शायद अगर बचपन से ही देखा होता बूढ़ों को लकड़ी टेकते, तो न भी पूछते। अगर मुझसे बुद्ध के पिता ने सलाह ली होती, तो जो ज्योतिषियों ने सलाह दी, वह मैं कभी नहीं देता। मैं उनसे कहता: इसको बचपन से ही जितने बूढ़े, बीमार...। इसको अस्पताल में ही रख दो। यह ठीक से परिचित होता रहेगा, तो प्रश्न नहीं उठेगा। जिससे हम परिचित होते हैं, उसके बाबत प्रश्न नहीं उठता।

लेकिन इतनी उम्र हो गई, जवान हो गया और इसने कभी बूढ़ा आदमी नहीं देखा। तो जब पहली दफा बूढ़ा देखा...। जरा सोचो: पचीस साल तक बूढ़ा न देखा हो, फिर एकदम से बूढ़ा देखा, तो बड़ा प्रश्न खड़ा हो गया। उसने पूछा: 'यह क्या हो गया है; इस आदमी को क्या हो गया है?'

सारथी तो झूठ बोलने को था; सारथी तो जानता था कि यह बात बतानी नहीं है...। तो कथा बड़ी प्यारी है। कथा कहती है कि देवता सारथी में प्रवेश कर गये और उन्होंने सारथी से सच कहलवा दिया। सच है: जहाँ से सच आये, वहीं देवता का वास है। जहाँ से सच आये, वहीं भगवत्ता का वास है।

यह कथा बड़ी प्यारी है कि देवताओं ने देखा कि सारथी झूठ बोले दे रहा है; सारथी कुछ समझाने को जा रहा था कि कुछ खास बात नहीं हो गई है--ऐसा हो गया है, वैसा हो गया है। लेकिन देवता प्रविष्ट हो गये--उसकी जबान पर। और सारथी को कहना पड़ा कि 'यह आदमी बूढ़ा हो गया है; और हर एक को इसी तरह बूढ़ा हो जाना पड़ता है। आप भी इसी तरह बूढ़े होंगे। बुढ़ापे से बचना असंभव है।'

बुद्ध एकदम उदास हो गये। और इसके पीछे ही एक अर्थी निकली; और बुद्ध ने पूछा : 'यह क्या हुआ ?' और सारथी ने कहा : 'यह उसके आगे की घड़ी है; वह जो बूढ़ा गया, उसके आगे का कदम। ये मरहट ले जाये जा रहे हैं।' और पीछे चला आता था एक संन्यासी—गैरिक वस्त्रों में। बूद्ध ने पुछा : 'इस आदमी को क्या हुआ है ? यह गैरिक बस्त्र क्यों पहने हुए है ?' सारथी ने कहा : 'इस आदमी को वे दोनों बातें समझ में आ गई हैं कि आदमी बूढ़ा हो जाता है--और आदमी मर जाता है।' 'तो इसने गैरिक वस्त्र क्यों पहन रखे हैं ?' बुद्ध ने पूछा। सारथी ने कहा : 'यह आदमी चेष्टा कर रहा है, उस जीवन-सत्य को जानने की, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और कभी मरता नहीं। यह खोज में लगा है।'

बुद्ध ने कहा : 'रथ वापस घर लौटा लो।'

उसी रात वे घर से भाग गये।

तो अजिता, पूछती हो : संन्यास मैंने क्यों लिया है ? कहीं छिपी होगी--जन्मों-जन्मों से कोई बात छिपी होगी; अंगार दबी होगी--राख में। अचानक यहाँ आ कर हवा के झोके लगे, राख उड़ गई; अंगार साफ हो गई। और यह इतने आकस्मिक रूप से हुआ है कि इसके लिए बुद्धिगत उत्तर तुम्हारे पास नहीं है कि क्यों...। सोच-विचार कर तुमने लिया भी नहीं है। सोच-विचार कर कोई संन्यास लेता भी नहीं है।

संन्यास तो एक दाँव है। जुआरी का काम है--दुकानदार का नहीं। दुकानदार तो सोचने में ही समय गंवा देता है। वह तो हानि-लाभ सोचता रहता है : कितनी हानि होगी; कितना लाभ होगा ! लें तो क्या होगा, न लें तो क्या होगा ? बिना लिए नहीं चलेगा ? भीतर का ले लें; बाहर की क्या जरूरत है ? दुकानदार ऐसी हजार बातें सोचता है। हिम्मत नहीं है। हिम्मत न होने के कारण न मालूम कितने तर्क अपने को देता है !—कि कपड़े बदलने से क्या होगा ? कि माला पहनने से क्या होगा ? अरे, यह तो भीतर की बात है। और भीतर तो करना नहीं है कुछ। तो यह भीतर के नाम पर खूब बचाव हो गया। बाहर से बच गये, भीतर के नाम पर। भीतर कुछ करना नहीं है। भीतर जैसे हैं, वैसे के वैसे रहेंगे।

लेकिन जुआरी अगर कभी कोई मेरे पास आ जाता है, तो फिर हिम्मत हो जाती है। वह एक छलांग ले लेता है।

ऐसी ही अजिता तेरी छलांग हुई।

'श्रद्धा-भक्ति नहीं है, फिर भी बार-बार आपके पास क्यों आती हूँ ?' मेरे पास उन्हीं के लिए मार्ग नहीं है, जिनके पास श्रद्धा और भक्ति है। मेरे पास उनके लिए भी मार्ग है, जिनके पास श्रद्धा और भक्ति बिलकुल नहीं है। सच तो यह है कि

जिनके पास श्रद्धा-भक्ति बिलकुल नहीं है, उनके लिए मेरे अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।

जो संदेह से घिरे हैं, जो नास्तिकता में पगे हैं, जिनकी बुद्धि निष्णात हो गई है तर्क में, उनके लिए मेरे अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। और मैं तो मानता ही यह हूँ कि जब नास्तिक को बदलने की घटना न घटे, तब तक कोई घटना ही नहीं घटती। नास्तिक को मेरे पास विरोध नहीं है, इनकार नहीं है। नास्तिक को मेरे पास निमंत्रण है।

मैं यह नहीं कहता कि पहले आस्तिक बनो, फिर संन्यास दूंगा। मैं कहता हूँ : संन्यास तो लो, आस्तिकता इत्यादि चली आयेगी। मैं नास्तिक को भी संन्यास देता हूँ। जो कहता है : मुझे ईश्वर में भरोसा नहीं है। मैं कहता हूँ : जाने दो ईश्वर को। तुम्हें अपने पर भरोसा है ? चलेगा।

जो कहता है : मुझे श्रद्धा नहीं है; मैं कहता हूँ : कोई फिक्र नहीं है। संदेह तो है। इससे भी काम ले लेंगे। संदेह को इतना बढ़ायेंगे कि संदेह को खींचना असंभव हो जाय। संदेह को इतना प्रगाढ़ करेंगे कि संदेह पर भी संदेह आने लगे; उसी दिन श्रद्धा का जन्म हो जायेगा।

और इस दुनिया में--आज की दुनिया में श्रद्धा-भक्ति से शुरुआत तो की नहीं जा सकती। फिर श्रद्धा-भक्ति से शुरुआत करनी हो, तो हमें कोई हजार साल पीछे लौटना पड़े। उसका कोई उपाय नहीं है।

भविष्य में जो धर्म होगा, वह संदेह से डर कर भागेगा नहीं। वह श्रद्धा को पहली शर्त नहीं बनायेगा। वह कहेगा : संदेह--तो संदेह। संदेह के पत्थर की सीढ़ी बनायेंगे और श्रद्धा तक चलेंगे।

श्रद्धा इतनी बड़ी है कि संदेह को भी जीत लेती है। होना ही चाहिए ऐसा।

अजिता डॉक्टर है; पढ़ी-लिखी है। तर्क और विचार से परिचित है। तो मैं अपेक्षा भी नहीं करता कि श्रद्धा-भक्ति से आओ। आते भर रहो। यह बीमारी संक्रामक है। आते--भर रहो--लग जायेगी। यहाँ आते रहे, तो रंग ही जाओगे।

पूछा है : 'श्रद्धा-भक्ति नहीं है, फिर भी बार-बार आपके पास क्यों आती हूँ?' तो श्रद्धा-भक्ति से भी बड़ी कोई बात भीतर हो रही है। मुझसे कुछ लगाव बन रहा है। मुझसे कुछ प्रेम का नाता बन रहा है।

मेरा भरोसा प्रेम पर ज्यादा है--श्रद्धा-भक्ति के बजाय। श्रद्धा-भक्ति तो प्रेम के ही रूपांतरण हैं; पीछे हो लेगा। सोना हाथ में आ जाय, तो फिर गहने तो उसके हम कोई भी बना लेंगे; कोई अड़चन नहीं है।

प्रेम सोना है--खालिस सोना है। श्रद्धा तो उसका एक गहना है। भक्ति उसका

दूसरा गहना है।

मुझसे लगाव बन गया; मुझसे ऐसा लगाव बन जाय कि श्रद्धा-भक्ति नहीं है, फिर भी आना पड़े, तो बस, काम हो गया। श्रद्धा भक्ति के कारण जो आते हैं, वे शायद आते भी न हों। उनका मुझसे शायद कोई लगाव भी न हो। वे शायद 'मेरे पास' आते भी न हों। वे तो सिर्फ इसलिए आते हों कि चलो, कहीं भी चलें; किसी भी संत के पास--ऐसे ही चले आते हों।

इस देश में लोगों को खयाल है कि संतों के पास ही गये; उनकी बात सुनी--न सुनी; बैठे रहे वहाँ, तो भी मुक्ति हो जायेगी। इतनी सस्ती मुक्ति नहीं है।

तो मैं तुमसे सस्ती श्रद्धा नहीं माँगता और न सस्ती भक्ति माँगता हूँ। मैं तुमसे सस्ता कुछ माँगता ही नहीं। मैं तुमसे इतना ही चाहता हूँ कि अगर तुम्हारा मुझसे लगाव बन गया है...। मेरे विरोध में ही रहो--कोई फिक्र नहीं। लगाव बन गया है, तो आते रहो, जाते रहो। धीरे-धीरे घटना घट जायेगी।

रोते हैं तो भीग न पाता, आँखों का रेतीलापन
मुसकाते हैं तो खिल पाते, अधरों पर जलजात नहीं
लेकिन कोई शिखा अभी तक, जीवित है सुनसानों में
जिसे बुझा पाने में सक्षम, कोई झन्झावात नहीं।

जरूर भीतर कोई शिखा जल रही है, जिसे जन्मों-जन्मों के झंझावात भी बुझा नहीं पाये हैं; अश्रद्धा, अभक्ति भी नहीं बुझा पाई है; तर्क के जाल भी नहीं बुझा पाये हैं।

लेकिन कोई शिखा अभी तक, जीवित है सुनसानों में
जिसे बुझा पाने में सक्षम, कोई झन्झावात नहीं।

उसी शिखा को प्रगाढ़ कर लेंगे; उसी को जगा लेंगे, उकसा लेंगे। उसको ही ईंधन देंगे :

सत्संग का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे भीतर कोई शिखा दबी पड़ी हो, तो सत्संग में उभर आयेगी, प्रगट हो जायेगी; जो भीतर है--बाहर आ जायेगी।

श्रद्धा, भक्ति आज के मनुष्य से माँगी नहीं जा सकती; माँगनी भी नहीं चाहिए। मैं तुमसे कहता भी नहीं कि तुम ईश्वर को मान लो। मैं तुमसे इतना ही कहता हूँ कि तुम आनंद तो चाहते हो न; बस, काफी है। आनंद की खोज में लग जाओ। आनंद को खोजते-खोजते तुम ईश्वर पर पहुँच ही जाओगे। क्योंकि ईश्वर और आनंद एक ही घटना के दो नाम हैं।

मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि जाने बिना मान लो। पर इतना तो तुम स्वीकार करोगे न कि अगर जान लिया, तो फिर तो मानोगे न! तो मैं जानने की बात पहले करता हूँ; मानने की बात पहले नहीं करता। मैं नहीं कहता कि मानो, फिर खोजो। मैं कहता हूँ--जानो।

ध्यान है; कोई श्रद्धा की आवश्यकता नहीं है। ध्यान तो वैज्ञानिक प्रक्रिया है। ध्यान करो। ध्यान कहता नहीं कि ईश्वर को मानना जरूरी है। बुद्ध ने ध्यान किया--ईश्वर को बिना माने। महावीर ने ध्यान किया--ईश्वर को बिना माने।

जिनके जीवन में श्रद्धा-भक्ति सहज नहीं है, उनके लिए ध्यान का मार्ग है। ध्यान तो वैज्ञानिक प्रयोग है। जैसे कोई व्यायाम करे, तो शरीर सशक्त होता जाता है। और जब शरीर सशक्त होने लगता है, तो उसे भरोसा भी आने लगता है कि व्तायाम का परिणाम हो रहा है। ऐसा ही ध्यान है।

ध्यान कोई भी पूर्व-अपेक्षा नहीं करता। तुम ध्यान करो, आत्मा सशक्त होती जाती है। और जैसे-जैसे आत्मा सशक्त होती है, बलशाली होती है, वैसे-वैसे तुम पाते हो कि तुम श्रद्धा में तत्पर होने लगे। श्रद्धा छाया की तरह आती है :

आमतौर से जिसको हम श्रद्धा कहते हैं, वह कमजोरों में पाई जाती है। वह श्रद्धा असली नहीं है; वह कमजोर की श्रद्धा है; वह नपुंसक की श्रद्धा है। क्योंकि वह तर्क नहीं कर सकता या तर्क करने में डरता है; या तर्क में कुशल नहीं है, शिक्षित नहीं है। या भयभीत है कि तर्क करेंगे, तो कहीं श्रद्धा खंडित न हो जाय। तो मान कर बैठा हुआ है। यह जो मान कर बैठा हुआ है, इसका परमात्मा सच नहीं है। माना हुआ परमात्मा सच होगा भी कैसे? और इसके भीतर कहीं गहरे में संदेह मौजूद रहेगा ही।

इसलिए मैं तुमसे नहीं कहता कि मान लो। हाँ, अगर तुम्हारे बिना संदेह के मानना सहज घटता हो--सौभाग्य। न घटता हो, तो जबरदस्ती घटाने की कोई जरूरत नहीं है। खोज में लगो। खोजो। ध्यान में उतरो। भक्ति की बात ही छोड़ दो। फिर मलूकदास तुम्हारे लिए नहीं हैं।

लेकिन मैं मलूकदास पर समाप्त नहीं होता। मलूकदास तुम्हारे लिए नहीं हैं; मैं तुम्हारे लिए हूँ। मलूकदास को छोड़ो। मलूकदान तो कहते हैं। श्रद्धा पहले चाहिए; भक्ति पहले चाहिए। मैं नहीं कहता। मैं तो तुमसे कहता हूँ : जो तुम्हारे पास हो, तुम जो ले आये हो...। श्रद्धा ले आये, तो श्रद्धा से काम चला लेंगे। संदेह ले आये, तो संदेह से भी काम चला लेंगे।

मेरा परमात्मा बहुत मजबूत है। संदेह से जरा भी भयभीत नहीं होता। और तुम्हें तर्क करने में मजा हो, तो मुझे भी तर्क करने में काफी मजा आता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। इनमें जरा भी अड़चन नहीं है।

मेरी परमात्मा की धारणा को कोई तर्क न तो सिद्ध करता है--और न असिद्ध

करता है। तर्क तो खेल है। तर्क का खेल थोड़ा चलाना हो, तो चलाया जा सकता है। उससे कुछ हाथ आता नहीं। लेकिन तुम्हें जब अनुभव में आ जायेगा, कि उससे कुछ हाथ नहीं आता, तो तर्क अपने आप छूट जायेगा।

और जब तर्क अनुभव से छूटता है, तो ही छूटता है। फिर एक श्रद्धा पैदा होती है, जो बड़ी और ही ढंग की श्रद्धा है। उस श्रद्धा को विश्वास नहीं कह सकते। उस श्रद्धा और विश्वास से फर्क है। विश्वास का अर्थ है : संदेह तो भीतर है, ऊपर से श्रद्धा पोत ली।

श्रद्धा का अर्थ है : निःसंदिग्ध हो गये; संदेह बचा ही नहीं; पोतने की जरूरत न रही।

निष्फल नहीं साधना होती
यह विश्वास लिए बैठी हूँ
जग की जीत पराजय मेरी
होती रहे सदा जय तेरी
मेरी सबसे बड़ी जीत है
तेरी बीन बजे लय मेरी
तेरा-मेरा भेद मिटा कर ही
संन्यास लिए बैठी हूँ
निष्फल नहीं साधना होती
यह विश्वास लिए बैठी हूँ।

ऐसा मैं नहीं कहता। विश्वास लेकर बैठने से कुछ भी न होगा।

आशा और निराशा दोनों ने मिलकर था बहुत रुलाया
धीरे-धीरे थपकी देकर चिर-निद्रा में उन्हें सुलाया
अब हो दिन या रात आँख में
मैं आकाश लिए बैठी हूं
निष्फल नहीं साधना होती
यह विश्वास लिए बैठी हूँ।

यह विश्वास बहुत काम नहीं आयेगा। यह मन को मना लेना है। यह अपने को समझा लेना है। यह सांत्वना ही है।

अंतिम श्वासों तक लो मुझसे
जितनी चाहो कठिन परीक्षा
सदा सत्य की जय होती है
केवल मुझको यही प्रतीक्षा

इसीलिए सखि अश्रु भुला कर
मधुमय हास लिए बैठी हूँ
निष्फल नहीं साधना होती
यह विश्वास लिए बैठी हूँ।

तुम कितना ही हँसो--आँसुओं को भुलाकर, लेकिन आँसू तुम्हारी आँखों में डबडबाते रहेंगे। 'इसीलिए सखि अश्रु भुलाकर, मधुमय हास लिए बैठी हूँ।' भुला कर...। जिन्हें भुला दिया हैं, वे मिट नहीं गये हैं। 'निष्फल नहीं साधना होती, यह विश्वास लिए बैठी हूँ।' यह विश्वास बहुत काम न आयेगा। यह कमजोर का विश्वास है। ऐसे विश्वास का मेरा कोई आग्रह नहीं है। मैं तो तुमसे कहता हूँ --जानो।

सुबह सूरज उगता है; तो तुम सुबह के सूरज में विश्वास थोड़े ही करते हो। तुम यह थोड़े ही कहते हो कि मुझे विश्वास है कि सूरज उग गया। तुम कहते हो: मैं देख रहा हूँ कि सूरज उग गया। मैं जानता हूँ कि सूरज उग गया। इसमें कोई विश्वास करने की तो जरूरत नहीं होती। जो है--जिसका अनुभव हो रहा है--उसमें कैसे विश्वास करोगे!

विश्वास तो उसमें करना होता है, जिसका अनुभव नहीं हो रहा है। आकांक्षा के वश, वासना के वश विश्वास कर लेते हैं; डर के वश, भय के वश विश्वास कर लेते हैं; लोभ के वश विश्वास कर लेते हैं।

तुम्हारा भगवान् भय का ही मूर्तिमान रूप है। तुम्हारा भगवान् तुम्हारे लोभ का ही विस्तार है। इस भगवान् में मेरी कोई श्रद्धा नहीं है। और इस भगवान् को मैं तुम्हारे ऊपर थोपना भी नहीं चाहता। इस भगवान् को थोपने के कारण ही मनुष्यजाति इतनी अधार्मिक हो गई है।

एक बात सुनिश्चित जानो : ईमानदार नास्तिक, बेईमान आस्तिक से बेहतर है। जिसे साफ-साफ पता है कि मुझे भरोसा नहीं है, और जो स्वीकार करता है कि मुझे भरोसा नहीं है, यह कम से कम प्रामाणिक तो है! सच्चा तो है।

सत्य इतना है, तो फिर सत्य को और बड़ा किया जा सकता है। लेकिन जो आदमी भीतर से तो जानता है कि ईश्वर वगैरह का मुझे कुछ पता नहीं है और ऊपर से दोहराता हैं कि मुझे भरोसा है...।

अकसर ऐसा होता है कि जितने जोर से तुम दोहराते हो कि मुझे भरोसा है, उतना ही तुम्हें संदेह होता है। जोर से दोहराकर तुम अपने को ही झुठलाना चाहते हो।

तुम छाती पीट कर दोहराते हो कि मुझे ईश्वर में भरोसा है। वह छाती पीटना बताता है कि तुम्हें भरोसा नहीं है। अन्यथा छाती पीटने की जरूरत ही न थी।

मेरे पास कोई आ जाता है कभी, कहता है : मुझे ईश्वर में दृढ़ विश्वास है। मैं कहता हूँ : विश्वास से ही काम चल जाता; दृढ़ क्यों लगा रहे हो ! दृढ़ का मतलब क्या ?

जब कोई किसी से कहता है : मुझे तुमसे पूरा-पूरा प्रेम है। में उससे कहता हूँ : पूरा-पूरा काहे के लिए लगा रहे हो ! प्रेम काफी नहीं है ? प्रेम में कुछ अधूरा भी होता है ? प्रेम--और पूरा ?--होता ही है। इसलिए 'पूरे' को जोड़ना प्रेम में खतरनाक है। उसका मतलब साफ है कि है नहीं; सिर्फ दिखला रहे हो। और कहीं ऐसा न हो--किसी को शक न हो जाय, इसलिए बार-बार दोहराते हो : पूरा-पूरा; दृढ़ विश्वास।

यह जो गीत है, यह ऐसा ही गीत है : 'निष्फल नहीं साधना होती, यह विश्वास लिए बैठी हूँ।' निष्फल न हो--ऐसी वासना है मन में। कहीं साधना निष्फल न हो जाय, इसलिए अपने को झुठला रहे हैं कि नहीं, नहीं; कभी नहीं होती। साधना कहीं निष्फल होती है ?--कभी नहीं होती। मगर डर तो भीतर लगा है।

> जग की जीत पराजय मेरी
> होती रहे सदा जय तेरी
> मेरी सबसे बड़ी जीत है
> तेरी बीन बजे लय मेरी
> तेरा-मेरा भेद मिटा कर ही
> संन्यास लिए बैठी हूँ
> निष्फल नहीं साधना होती
> यह विश्वास लिए बैठी हूँ।

यह विश्वास वास्तविक नहीं है। इसमें भीतर आकांक्षा तो है—अनुभूति नहीं है। और मेरा सारा जोर अनुभूति पर है।

जो अजिता को मैं कहूँगा कि कोई जल्दी नहीं है--श्रद्धा और भक्ति की। जब समय पकेगा, ऋतु आयेगी--श्रद्धा भी आयेगी। संदेह है--चलो, संदेह से शुरू करें। चिन्तन-मनन उठता है--चिन्तन-मनन से शुरू करें।

भक्ति की झंझट में पड़ो ही मत। उपाय है। परमात्मा तक पहुँचने का प्रत्येक के लिए उपाय है; जो जहाँ है, वहीं से राह मिलेगी। और वहीं से राह मिल सकती है; कहीं और से राह मिलेगी भी नहीं।

तुम वहीं से तो चलोगे न, जहाँ तुम खड़े हो। अगर तुम संदेह में खड़े हो, तो

संदेह से ही चलना होगा। यह तो इतनी सीधी बात है। तुम जहाँ खड़े हो, वहीं से तो यात्रा शुरू होती न !

बाबा मलूकदास जहाँ खड़े हैं, वहाँ तुम खड़े हो भी कैसे सकते हो ? तुम्हें तो अपनी जगह से ही यात्रा का पहला कदम उठाना पड़ेगा। तुम अगर संदेह भरे हो, तो संदेह से ही चलना होगा। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ : संदेह के साथ भी परमात्मा तक पहुँचा जा सकता है। और जिसने परपात्मा की कभी 'नहीं' नहीं कहा, उसकी 'हाँ' में कभी बल नहीं होता।

'नहीं' कहो; डरो मत। परमात्मा से क्या डरना ! हम उसके हैं; अगर है कहीं, तो डरना क्या। और नहीं है, तब तो डरने की कोई बात ही नहीं है। 'नहीं' कहो; हिम्मत से नहीं कहो; बलपूर्वक नहीं कहो। तुम्हारी 'नहीं' से ही धीरे-धीरे अनुभव बढ़ेगा। इनकार कर-करके तुम पाओगे : इनकार हो नहीं पाता। लाख उपाय करो भुलाने का, लेकिन संदेह से भी गहरा तुम्हें अनुभव में आना शुरू होगा--कहीं श्रद्धा का स्वर है।

क्योंकि बच्चा जब पैदा होता है, तो श्रद्धा लेकर आता है; संदेह तो बाद में सीखता है। बच्चा पैदा होता है, तब कोई संदेह नहीं होता उसमें। हो नहीं सकता। संदेह आयेगा कहाँ से ?

माँ के स्तन से दूध पीता है, तो संदेह थोड़े ही करता है कि पता नहीं--जहर हो; कि कोई बीमारी हो। दूध पीता है। कोई परमश्रद्धा है भीतर कि पौष्टिक होगा दूध। कोई अनजाने ही भीतर गहरा भाव है। कि दूध भोजन है। पहले कभी पिया भी नहीं; पहले कभी स्तन देखे भी नहीं। लेकिन कोई अपूर्व घटना घटती है और बच्चा स्तन से दूध पीने लगता है; चूसने लगता है दूध : पहले कभी चूसा नहीं, तो यह विचार से घट नहीं सकता, संदेह से घट नहीं सकता: तर्क से घट नहीं सकता। यह तो किसी श्रद्धा से घट रहा है।

माँ पर भरोसा कर लेता है। माँ मार डालेगी--ऐसा संदेह तो नहीं करता। और ऐसा भी नहीं है कि माताओं ने कभी बच्चे न मारे हों। मारे हैं। लेकिन फिर भी हर बच्चा जब आता है, तब संदेह नहीं करता—फिर श्रद्धा करता है।

श्रद्धा स्वाभाविक है; फिर हम संदेह सीखते हैं। तो श्रद्धा तो हमारा पहला केंद्र है। संदेह उसके ऊपर परिधि की तरह लग जाता है। फिर जीवन के अनुभव हमें संदेह सिखा देते हैं। अपने को बचाने के लिए, सुरक्षा के लिए हम संदेह करते हैं--श्रद्धा नहीं करते। क्योंकि कोई धोखा दे जाय; कोई धन छीन ले; कोई कुछ नुकसान पहुँचा दे, तो हम संदेह करते हैं।

संदेह हमारे जीवन के अनुभव में से निकलता है। श्रद्धा हम ले कर आते हैं।

श्रद्धा हमारी आत्मा है; संदेह हमारे जीवन के अनुभव में से निकलता है।

फिर संदेह के साथ-साथ हम विश्वास सीखते हैं। संसार के प्रति संदेह सीखते हैं; और फिर माँ-बाप सिखाते हैं: हिंदू मुसलमान बन जाओ; ईसाई बन जाओ; जैन बन जाओ। तो विश्वास सिखाते हैं। अब यह समझो तुम।

पहली पर्त: स्वाभाविक श्रद्धा की; उसके ऊपर एक अनुभव की पर्त--संदेह की। और फिर उस संदेह के ऊपर एक विश्वास की पर्त। तो जो विश्वास है उसके नीचे संदेह है। और जो संदेह है, उसके नीचे श्रद्धा है।

तो मैं तुमसे विश्वास के लिए तो कहता ही नहीं। उससे कुछ होगा भी नहीं; वह तो बड़ी ऊपर-ऊपर है। वह तो ऐसा ही है जैसे कि जहर की गोली हमें किसी को खिलानी हो, तो शक्कर की पर्त लगा देते हैं, बस। है तो संदेह, ऊपर से श्रद्धा पोत दी। पोती हुई श्रद्धा यानी विश्वास। और जब तुम अपने भीतर खोद कर, अपने संदेह की पर्त को तोड़ कर अपने भीतर के झरने को मुक्त करोगे--तो श्रद्धा।

इसलिए मैं कहता हूँ: ध्यान करो। तोड़ डालो अपने संदेह की पर्त। वह सिखावन है; उसका कोई मूल्य नहीं है; वह टूट जायेगी। वह कोई बहुत गहरी भी नहीं है। उसके टूटते ही श्रद्धा का झरना फूटता है।

तब तुम ऐसा कहते हो कि परमात्मा है; मैं नहीं हूँ। विश्वास का कोई सवाल नहीं है।

ठहरो भी, मन चंचल न करो।...

तो अजिता को इतना ही करना चाहता हूँ: संन्यासिनी भी तू हो गई; श्रद्धा भक्ति भी नहीं है, फिर भी तू दौड़ी चली आती है। जिनमें श्रद्धा-भक्ति है, उनसे थोड़ी ज्यादा ही आती है!

ठहरो भी, मन चंचल न करो!
सम्मोहन-सागर-सी आँखें
रस-पाखी की मदरिक पाँखें
पलक-मानसर उतरें खंजन
उभरी लाख-लाख अभिलाखें
पर संकोच खड़ा दृग पथ में
लज्जा गड़ती गति-श्लथ-अथ में
इतना क्या कम हुआ बावरे
समझो भी, प्रण दुर्बल न करो!
मन चंचल न करो!!

इतना भी हो गया संदेह के साथ--कि संन्यास हो गया!

इतना क्या कम हुआ बावरे
समझो भी, प्रण दुर्बल न करो
मन चंचल न करो
रोम-रोम तन्मय कर बैठा
क्षण-क्षण मैं तुममय कर बैठा
अब तो जो होना है हो ले
मैं तो दृढ़ निश्चय कर बैठा
पाणिग्रहण कर राह दिखाओ
पास रहो, अब दूर न जाओ
युग-युग पर साधना फली है
यह जीवन भी निष्फल न करो!
मन चंचल न करो!!

संन्यास घट गया; शायद अनजाने घट गया। शायद तुम्हें पता भी न चला: कब घट गया, कैसे घट गया! मुझसे लगाव भी बन गया। श्रद्धा नहीं थी, भक्ति नहीं थी, फिर भी लगाव बन गया। तो अब इस लगाव को कोई तोड़ न सकेगा। श्रद्धा-भक्ति से बना होता, तो शायद किसी दिन अश्रद्धा आ जाती, अभक्ति आ जाती, तो टूट जाता। अब तो कैसे टूटेगा! अब तो अश्रद्धा अभक्ति आ जाय, तो भी टूटने का कोई कारण नहीं है। श्रद्धा-भक्ति के कारण जो बना नहीं, वह अश्रद्धा अभक्ति से टूटेगा भी नहीं।

अब थोड़ा खोज में उतरो। खोज के लिए, मैं सदा कहता हूँ--दो मार्ग हैं; एक प्रेम का, प्रेम में श्रद्धा पहला कदम है। दूसरा मार्ग है: ध्यान का; ध्यान में श्रद्धा पहला कदम नहीं है--अंतिम चरण है।

तो जिनको श्रद्धा सहज हो, वे चल पड़ें भक्ति में; और जिनको श्रद्धा में जरा भी अड़चन मालूम पड़ती हो, कोई कारण नहीं है परेशान होने का। वे डूबने लगें ध्यान में। अंतिम घड़ी में दोनों एक ही जगह पहुँच जाते हैं। मंजिल एक है--मार्ग अनेक हैं।

और अब मैं जाने भी न दूँगा।

चाँदनी से किसी ने पखारे चरण
धूल की राह पर पाँव कैसे धरूँ!

और एक बार भी तुमने अगर मेरे प्रेम में थोड़ा स्नान किया, और थोड़ी-सी भी तुम्हें मेरी किरण छू गई, और थोड़ी-सी भी तुम्हें सुगंध छू गई; तुम्हारे नासा-पुट थोड़े मेरे सुगंध से भर गये, तो बहुत कठिन हो जायेगा--तुम्हें कहीं और

जाना।

चाँदनी से किसी ने पखारे चरण
धूल की राह पर पाँव कैसे धरूँ !

मुश्किल हो जायेगा।

बेड़ियों के बिना ही बँधे पाँव हैं
स्नेह की बदलियों की सजल छाँव है।

यहाँ तुम्हें कोई बेड़ियाँ और जंजीरें नहीं पहनाई जा रही हैं। यहाँ तो स्वतंत्रता से ही तुम्हें बाँधा जा रहा है। तुम, बंधन होते, तो शायद तोड़ कर भाग भी जाते; यहाँ बंधन हैं ही नहीं। संन्यास यानी स्वतंत्रता।

बेड़ियों के बिना ही बँधे पाँव हैं
स्नेह की बदलियों की सजल छांव है
मुक्ति संन्यासिनी बंधनों की शरण
धूल की राह पर पाँव कैसे धरूँ !

शायद आकस्मिक रूप से संन्यस्त होना हो गया है। शायद अचेतन कि किसी गहरी आकांक्षा ने संन्यास में कदम उठवा दिया है। सोच-विचार कर नहीं भी लिया है; तो भी।

मुक्ति संन्यासिनी बंधनों की शरण
धूल की राह पर पाँव कैसे धरूँ !

संसार अब तुम्हें लुभा न सकेगा। एक नई पुकार उठ गई है। एक नया आह्वान मिला है।

झुक रहा नील अंबर सितारों जड़ा
मुसकराता हुआ शशि बरजता खड़ा
मैं चलूँ तो लिपटनी हठीली किरन
धूल की राह पर पाँव कैसे धरूँ !
मैं चलूँ तो लिपटती हठीली किरन
धूल की राह पर गाँव कैसे धरूँ !
जग रही रातरानी सुगंधों भरी
है सजल केतकी की मृदुल पाँखुरी
शूल आँचल गहें, राह रोकें सुमन
धूल की राह पर पाँव कैसे धरूँ !
समुंदर सजाया सजल पुतलियों में
कि आँचल दबाया विकल अंगुलियों में

द्वार रोके खड़े प्रभु भीगे नयन
धूल की राह पर पाँव कैसे धरूँ !

कठिन हो जायेगा अब। जाने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन जाने की बात अगर मन में उठती हो, तो उस दुविधा के कारण, जो विकास हो सकता है, वह अवरुद्ध होगा। लौट तो नहीं सकते, लेकिन अगर लौटने का खयाल मन में आता रहे, तो आगे बढ़ना रुक जायेगा। अटक जाओगे।

उठा लिया है एक कदम, अब दूसरा भी उठाने की हिम्मत करो। संन्यास तो ले लिया, अब ध्यान में डूबो। ध्यान से ही गति मिलेगी, दिशा साफ होगी। और ध्यान से ही थिरता आयेगी। और ध्यान से ही तुम्हारी जड़ें जमीन में उतरेंगी। और ध्यान से ही तुम पर हरे पत्ते फूटेंगे और कलियाँ निकलेंगी--और फूल खिलेंगे।

● आखिरी प्रश्न : क्या देख और समझ कर अपने मेरे जैसे मूढ़ को भी आश्रम में स्थान दिया? किसलिए?

प्रश्न है कृष्णप्रिया का। इसीलिए।

मूढ़ता का जिसे बोध हो जाय, जिसे ऐसा साफ लगने लगे कि मैं मूढ़ हूँ, वह फिर मूढ़ नहीं रहा। मूढ़ तो वे ही हैं, जिन्हें यह खयाल है कि वे ज्ञानी हैं; जिन्हें यह खयाल है कि वे जानते हैं।

जिसे यह स्मरण आ जाय कि मैं मूढ़ हूँ उसके जीवन में किरण उतरने लगी; उसके जीवन में प्रभात आने के करीब हो गया; रातें टूटने लगीं।

मैं नहीं जानता हूँ--यह जानने का पहला कदम है। मैं जानता हूँ--इससे अवरोध पड़ जाता है। इसलिए पंडित कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच पाते। सरल हृदय लोग, सीधे-सादे लोग, जिनका कोई दावा नहीं है, जिन्हें शास्त्रों का कोई सहारा नहीं है, जिन्हें सिद्धांतों की कोई पकड़ नहीं है; जो कहते हैं : हमें कुछ भी पता नहीं है--ऐसे जो लोग हैं, वे जल्दी पहुँच जाते हैं।

पूछती हो : 'क्या देख और समझ कर आपने मेरे जैसे मूढ़ को भी आश्रम में स्थान दिया?' यही देख कर--कि पंडित नहीं हो।

और मूढ़ता का पता है, तो मूढ़ता टूट जायेगी। कुछ चीजें हैं, जो बोध से मर जाती हैं। जैसे अँधेरे में अगर तुम दीया ले आओ, तो अँधेरा समाप्त हो जाता है। ऐसे ही मूढ़ता में अगर थोड़ा होश आ जाय; होश का दीया जल जाय--कि मैं मूढ़ हूँ--तो मूढ़ता समाप्त हो जाती है।

यह होश असली ज्ञान है। इसलिए यहाँ जो प्रयोग चल रहा है, वह इसी बात का है; तुमसे पाप तो कम छीनने हैं, तुमसे पांडित्य ज्यादा छीनना है। पाप से कोई आदमी इतना नहीं भटका हुआ है, जितना पांडित्य से भटका हुआ है।

तुमने क्या किया है, उससे बहुत बाधा नहीं है। तुम्हारा अहंकार तुम्हारे पाप के आधार पर नहीं टिका है। तुम्हारा अहंकार तुम्हारे ज्ञान के आधार पर टिका है। तुम्हारा अहंकार तुम्हारे वेद, कुरान, बाइबिल पर टिका है।

तुम्हारे जीवन से सारे शास्त्र हट जाएँ; तुम फिर से निर्दोष बच्चों की भाँति हो जाओ; तुम्हारे मन की स्लेट खाली हो जाय, उस पर कुछ लिखावट न रह जाय, उसी घड़ी क्रांति घट जायेगी।

इधर तुम शून्य हुए कि उधर पूर्ण तुममें उतरना शुरू हुआ। शून्यता पूर्णता को पाने की पात्रता है।

आज इतना ही।

उधार धर्म से मुक्ति

नौवाँ प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १९ मई, १९७७

देवल पूजे कि देवता, की पूजे पाहाड़।
पूजन को जांता भला, जो पीस खाय संसार॥
मक्का, मदिना, द्वारका, बदरी अरु केदार।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार॥
सब कोउ साहेब बन्दते, हिन्दू मुसलमान।
साहेब तिसको बन्दता, जिसका ठौर इमान॥
दया धर्म हिरदे बसै, बोले अमरित बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिसके नीचे नैन॥
जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोर।
कन थोरे कांकर घने, देखा फटक पछोर॥
मलूक कोटा झांझरा, भीत परी भहराय।
ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आय॥
प्रभुताई को सब मरैं, प्रभु को मरै न कोइ।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होइ॥

बाबा मलूकदास एक विद्रोही हैं। और विद्रोह धर्म की आत्मा है। विद्रोह का अर्थ है : समाज से, संस्कार से, शास्त्र से, सिद्धान्त से, शब्द से मुक्ति।

आदमी का मन तो प्याज जैसा है, जिस पर पर्त पर्त संस्कार जम गये हैं। और इन परतों के भीतर खो गया है--आदमी का स्व। जैसे प्याज को कोई उधेड़ता है, एक-एक पर्त को अलग करता है, ऐसे ही मनुष्य के मन की परतें भी अलग करनी होती हैं।

जब तक सारे संस्कारों से छुटकारा न हो जाय, तब तक स्व का कोई साक्षात नहीं है। और संस्कारों से छुटकारा कठिन बात है। कपड़े उतारने जैसा नहीं, चमड़ी छीलने जैसा है। क्योंकि संस्कार बहुत गहरे चले गये हैं। संस्कारों के जोड़ का नाम ही हमारा अहंकार है। संस्कारों के सारे समूह का नाम ही हमारा मन हैं।

विद्रोह का अर्थ ई – मन को तोड़ डालना। मन बना है : समाज से। मन है--समाज की देन। तुम तो हो परमात्मा से; तुम्हारा मन है--समाज से। और जब तक तुम्हारा मन सब तरह से समाप्त न हो जाय, तब तक तुम्हें उसका कोई पता न चलेगा, जो तुम परमात्मा से हो--जैसे तुम परमात्मा से हो।

इसलिए विद्रोह--समाज, संस्कार, सभ्यता, संस्कृति--इन सब से विद्रोह धर्म का मौलिक आधार है।

धर्म शुद्ध विद्रोह है। याद रहे : विद्रोह से अर्थ क्रान्ति का नहीं है। क्रान्ति--तो फिर संगठन। विद्रोह वैयक्तिक है। क्रान्ति में तो फिर संगठन है। क्रान्ति में तो फिर समाज का नया ढाँचा है। पुराना ढाँचा बदलेगी क्रान्ति, लेकिन नये ढाँचे को स्थापित कर देगी। पुराना समाज तोड़ेगी, लेकिन नये समाज को बना देगी। क्रान्ति में तो समाज फिर पीछे के द्वार से वापस आ जाता है।

परमात्मा के सामने तो अकेले होने का साहस करना होगा; भीड़-भाड़ नहीं चलेगी। परमात्मा के सामने तो नग्न और निपट अकेले खड़े होने का साहस करना

होगा। परमात्मा के सामने तो तुम जैसे हो—अकेले, असहाय--वैसा ही अपने को छोड़ देना होगा। कोई लाग-लगाव नहीं, कोई छिपाव नहीं, कोई पाखण्ड नहीं।

क्रांति समाज को बदलती है--व्यक्ति को नहीं बदलती; व्यक्ति वैसा का वैसा बना रहता है।

उन्नीस सौ सत्रह में रूस में बड़ी क्रान्ति हुई। समाज बदल गया; व्यक्ति वही के वही हैं। पहले व्यक्ति धर्म को मानता था, क्योंकि ज़ार धर्म को मानता था। अब व्यक्ति धर्म को नहीं मानता, साम्यवाद को मानता है, क्योंकि सरकार साम्यवाद को मानती है। पहले व्यक्ति बाइबिल को पूजता था; अब दास कैपिटल को पूजता है। पहले मूसा और जीसस महत्त्वपूर्ण थे; अब मार्क्स, एन्जिल और लेनिन महत्त्वपूर्ण हो गये। मगर व्यक्ति वहीं के वहीं हैं। उसके बन्धन वैसे के वैसे हैं। जरा भी अन्तर नहीं पड़ा। व्यक्ति उतना ही सोया हुआ है, जितना पहले था। उसकी नींद में कोई भेद नहीं हुआ है। शायद बिस्तर बदल गया--नींद जारी है। कमरा बदल गया--बेहोशी जारी है।

क्रान्ति से व्यक्ति नहीं बदलता; क्रान्ति से समाज बदलता है। और धर्म व्यक्ति के जीवन में बदलाहट का आधार है।

तो धर्म विद्रोह है--वैयक्तिक विद्रोह है।

और एक विरोधाभासी बात याद रख लेना : परमात्मा एक है, इसलिए तुम एक हो कर ही उससे मिल सकोगे। परमात्मा दो नहीं है। परमात्माओं की कोई भीड़ नहीं है। इसलिए तुम भी भीड़ की तरह उससे न मिल सकोगे। उस जैसे ही हो जाओगे, तो मिल सकोगे।

यह भी ध्यान रखने के लिए जरूरी है कि परमात्मा समष्टि नहीं है; परमात्मा सार्वभौमता है। समष्टि तो व्यक्तियों के जोड़ का नाम है। परमात्मा निरवैयक्तिक है। परमात्मा में सब समाया है। परमात्मा सब का जोड़ नहीं है। परमात्मा सब का आधार है। तुम्हारा भी उतना ही आधार है--जितना मेरा; जितना पहाड़ों का, जितना वृक्षों का। अगर हम अपनी जड़ों में उतर जायँ, तो हम अपने आधार को पा लेंगे।

व्यक्ति जब अपनी जड़ों में उतरता है, तो परमात्मा का साक्षात्कार होता है। स्वयं को जान कर ही सत्य जाना जाता है। स्वयं को ही ठीक से पहचान लिया, तो सब पहचान लिया। स्वयं के पहचानते पहचानते ही स्वयं मिट जाता है और सर्व प्रगट हो जाता है। इसलिए मैंने कहा--विरोधाभास।

जो स्वयं को जानते नहीं और भीड़ के साथ अपने सम्बन्ध जोड़ते रहते हैं, वे बाहर ही बाहर भटकते रहते हैं। धर्म है--अन्तर्यात्रा।

सभी सन्त विद्रोही थे; होना ही होगा। सन्त हो—और विद्रोही न हो, यह सम्भव नहीं है। क्योंकि धर्म से बचने की कई तरकीबें आदमी ने निकाल ली हैं और उन सब तरकीबों को तोड़ना पड़ेगा।

सब से बड़ी तरकीब तो आदमी ने यह निकाली है कि उसने झूठे धर्म गढ़ लिये हैं; उसने नकली सिक्के बना लिये हैं। नकली सिक्कों को हाथ में लेकर चलता रहता है, तो असली सिक्कों की याद भी नहीं आती। नकली परिपूरक हो गये हैं।

परमात्मा का तो कोई पता नहीं है, हमने मन्दिर में एक प्रतिमा बना ली है। प्रतिमा हमारी बनाई हुई है। हमें——जिन्हें कि परमात्मा का कोई पता नहीं है। हम ही प्रतिमा को गढ़ लिये हैं; हमने प्रतिमा के सामने खड़े होने के नियम बना लिये हैं। कैसे प्रार्थना करनी, किन शब्दों में करनी, वे भी हमने गढ़ लिये हैं। हमने ही पुजारी तैनात कर रखा है। हम किस भ्रान्ति में पड़े हैं! न हमें परमात्मा का पता; न हमें स्तुति का पता। हमें अपना ही पता नहीं है। लेकिन यह जो मन्दिर की झूठी प्रतिमा है, इस प्रतिमा के कारण एक भ्रम पैदा होता है कि शायद हमने पूजा कर ली, प्रार्थना कर ली। अब और क्या करें! परमात्मा को जाकर स्तुति कर आये, निवेदन कर आये और हम वैसे के वैसे बने रहते हैं, क्योंकि मिथ्या से कोई रूपान्तरण नहीं होता; सत्य से रूपान्तरण होता है।

ऐसा समझो कि अँधेरा कमरा है, और तुम एक दीया जलाओ, तो प्रकाश हो जायेगा। लेकिन तुम दीये की एक तस्वीर ले आओ, तो प्रकाश नहीं होगा। दीये की तस्वीर भला कितनी ही दीये जैसी लगे; दीये की तस्वीर तस्वीर है। मूर्ति मूर्ति है। मूर्ति भगवान् नहीं है, तस्वीर है।

यह तो ऐसा ही हुआ कि तुम किसी होटल में जाओ और मेनू को ही खाने लगो! मेनू में भोजन के सम्बन्ध में जानकारी है; मेनू भोजन नहीं है।

शास्त्र में सत्य के सम्बन्ध में जानकारी है। शास्त्र में सत्य नहीं है। शब्दों और सिद्धान्तों में तो केवल छाया है; बड़ी दूर की छाया है; उसी को सब कुछ मत मान लेना।

एक झेन फकीर रिन्झाई अपने शिष्यों के साथ बैठा था और एक अजनबी, जो पहली दफा ही उसके दर्शन को आया था, उसने कहा कि 'मुझे एक सवाल पूछना है। बन्धनों में पड़ता कौन है? क्योंकि आप सदा कहते हैं: बन्धन से छूटो; मुक्त हो जाओ; निर्वाण खोजो यह बन्धन में पड़ा कौन है?'

रिन्झाई ने कहा: 'दूसरा चाँद।' वह आदमी कुछ समझा नहीं। दूसरा चाँद? उसने कहा: 'मैं कुछ समझा नहीं।' तो रिन्झाई ने कहा: 'तू बाहर जाकर देख।'

रिन्झाई का आश्रम एक झील पर है। रात है और चाँद निकला है। रिन्झाई ने

कहा: 'तू बाहर जाकर देख। एक चाँद तो आकाश में है और एक दूसरा चाँद झील में है। वह झील में जो चाँद है, वही फँसा है। प्रतिबिम्ब उलझा है। असली तो उलझा ही नहीं है।'

बड़ी अद्भुत बात कही——'दूसरा चाँद!'

तुमने जो, जहाँ-जहाँ दूसरे को पकड़ लिया है, वहीं-वहीं उलझन है। सत्य को तो तुमने पकड़ा नहीं है। सत्य को पकड़ो, तो मुक्त हो जाओ। तुमने सत्य की प्रतिध्वनियाँ पकड़ी ली हैं। तुमने परमात्मा को तो नहीं पकड़ा है; तुमने परमात्मा की प्रतिमाएँ पकड़ ली हैं। तुमने सन्तों को तो नहीं पकड़ा; तुमने सन्तों के शब्द पकड़ लिये हैं; शास्त्र पकड़ लिये हैं। तुम हमेशा नम्बर दो को पकड़ लेते हो।

वह जो 'दूसरा चाँद' है, वही तुम्हारे जीवन में बन्धन है। और दूसरे चाँद से मुक्त होना होगा, अगर आँखें असली चाँद की तरफ उठानी हो।

इसलिए सभी सन्त तुम्हारे तथाकथित धर्म के विपरीत हैं। तुम्हारे मन्दिर, तुम्हारे मसजिद, तुम्हारी काशी, तुम्हारा केदार, तुम्हारे मक्का-मदीना, तुम्हारे बाइबिल, तुम्हारे वेद, तुम्हारे कुरान——इनके विपरीत हैं। इनके विपरीत होने का कारण है। क्योंकि सभी सन्त चाहते हैं कि तुम्हें नगद धर्म उपलब्ध हो जाय। ये उधारी की क्या बातें कर रहे हो! और कब से कर रहे हो? और कब तक करते रहोगे? काफी हो चुका। झूठ के साथ काफी गँवा लिया। मूल को खोजो।

तो विद्रोह का अर्थ है: उधार धर्म से मुक्ति; नगद धर्म की खोज। विद्रोह का अर्थ है: औपचारिक धर्म से मुक्ति; वास्तविक धर्म की खोज।

एक औपचारिक धर्म है। तुम्हारी माँ है, तो तुम पैर छूते हो, चाहे पैर छूने का कोई भाव हृदय में उठता न हो; चाहे पैर छूने की कोई भावना न हो। शायद पैर छूना तो दूर, क्रोध हो मन में। शायद माँ को क्षमा करने की भी क्षमता तुममें न हो। लेकिन तुम पैर छूते हो। एक औपचारिक, एक व्यवहारिक बात है। छूना चाहिए——माँ है।

ऐसे ही तुम मंदिर जाते हो। ऐसे ही तुम शास्त्र पढ़ लेते हो। ऐसे ही तुम प्रार्थना कर लेते हो। तुम्हारा हृदय अछूता ही रह जाता है। तुम्हारे हृदय में कोई तरंग नहीं उठती; संगीत नहीं गूँजता; कोई नाद नहीं उठता। तुम्हारी हृदय की वीणा अकम्पित ही रह जाती है। बस, औपचारिक; करना था——कर लिया——ऐसे करते जाते हो, जैसे तुम्हें प्रयोजन ही नहीं है।

तुमने मंदिर जाते लोगों को देखा! तुमने अपने पर खुद विचार किया, जब तुम सुबह उठ कर बैठ कर गीत पढ़ लेते हो; या पूजा कर लेते हो; या घन्टी बजा देते हो, पानी ढाल देते हो! सब यंत्रवत! न तो तुम्हें रोमांच होता परमात्मा पर

पानी ढालते वक्त : न तुम्हारी आँख से आनंद के अश्रु बहते । न भगवान् को भोग लगाते वक्त तुम्हारे हृदय में कोई उत्सव होता; न तुम गीत गुनगुनाते । बस उपचार।

उपचार अगर धर्म है, तो तुम अधर्म को छुपा रहे हो । औपचारिक धर्म अधर्म को छिपाने की बड़ी कारगर तरकीब है । इस तरह पता भी नहीं चलता कि मैं अधार्मिक हूँ और आदमी अधार्मिक बना रहता है ।

धार्मिक होना हो, तो हार्दिक होना जरूरी है । विद्रोह का अर्थ है : जीवन में हार्दिकता आये । वही करो, जो तुम्हारा हृदय करना चाहता है । रुको; अगर अभी सच्ची प्रार्थना पैदा नहीं हुई है, तो कोई जरूरत नहीं है--झूठी प्रार्थना के साथ मन बहलाने का । किसको धोखा दोगे ? परमात्मा को तो धोखा नहीं दे सकते । अपने को ही धोखा दे रहे हो । तो व्यर्थ क्यों समय खोते हो ?

खतरा यह है कि कहीं झूठी प्रार्थना याद हो जाय, कंठस्थ हो जाय, तो फिर ऐसा न हो कि कंठ अवरुद्ध हो जाय--झूठी प्रार्थना से और असली प्रार्थना के जन्म का स्रोत ही न खुल सके; असली प्रार्थना को बहने की जगह न रहे । कम से कम स्लेट खाली रखो; झूठ तो मत लिखो । झूठ लिखी स्लेट से तो खाली स्लेट बेहतर है । कम से कम सत्य किसी दिन उतरेगा, तो तुम उसको अंगीकार तो कर सकोगे।

इसलिए मैं कहता हूँ कि पंडित परमात्मा को नहीं समझ पाते हैं ।

ताहा हुसैन की एक छोटी-सी कहानी है कि भगवान् ने सब जानवर बनाये, पृथ्वी बनाई, चाँद-तारे बनाये, तभी उसने गदहा भी बनाया । गदहा सीधा-सादा जानवर है; निर्दोष, भोला-भाला । और परमात्मा को गदहे से बड़ा प्रेम था । वह उसे अपने पास ही रखता था । उसकी सादगी उसे पसंद थी । और परमात्मा किताब लिख रहा था एक--मनुष्य-जाति को निर्देश भेजने के लिए--कि कैसे आदमी जीये । वृक्ष के पत्तों पर वह किताब लिखता था और पत्तों को सम्हाल कर रखता जा रहा था । गदहा यह देखता था : गदहे को एक बात खयाल में आई कि अगर मैं ये सारे पत्ते चबा जाऊँ, तो मैं परमज्ञानी हो जाऊँगा ।

गदहा आखिर गदहा ! परमात्मा एक दिन दोपहर में सोया था थकामाँदा--किताब करीब-करीब पूरी हो गई थी-- कि गदहा उस किताब को चर गया । जब परमात्मा ने आँख खोली, तो किताब तो नदारद थी और गदहा बड़ा प्रसन्न खड़ा था ! उसने कहा : 'आप फिक्र मत करो, सब मेरे भीतर है । अब किताब के भेजने की जरूरत नहीं है; मुझे दुनिया में भेज दो ।'

वैसे भी परमात्मा नाराज था; उसे स्वर्ग से निकालना तो था ही; उसने कहा : 'अच्छा, तू दुनिया में जा ।' गदहा बड़ा प्रसन्न पृथ्वी पर उतरा । सोचता था कि मेरी पूजा होगी । पूजा हुई--डन्डों से हुई । क्योंकि जहाँ भी गदहा गया, उसने

समझाने की कोशिश की लोगों को--कि 'सुनो, मैं धर्म लेकर आया हूं ।'

एक तो उसकी आवाज... ! उसके रेंकने का स्वर । उसकी भाषा किसी को समझ में न आये । और दूसरा उसका यह दावा ! उसने लाख समझाने की कोशिश की कि सब मेरे पेट में पड़ा है; पूरी किताब पी गया हूँ पागलों; सुनो तो सही । मगर कोई उसकी सुने ना । जिसको भी वह सुलझाने समझाने की कोशिश करे, वही उसको डन्डे मारे । और कहते हैं--तभी से गदहे की यह हालत है । तब से वह भोला-भाला भी नहीं समझा जाता । अब तो उसको लोग 'गदहा' ही समझते हैं।

ताहा हुसैन की इस कहानी का इशारा पण्डित की तरफ है । पण्डित का अर्थ है--जो किताब पी गया; किताब चबा गया, किताब जिसके पेट में पड़ी है--या जिसकी खोपड़ी में पड़ी है । वह सोचता है--सब मुझे मालूम है और मालूम उसे कुछ भी नहीं है । किताब चबाने से कहीं कुछ मालूम पड़ता है ! जीवन को जीने से, अनुभव से, अनुभूति से--शब्दजाल से नहीं, तर्कजाल से नहीं ।

तो सारे सन्तों की बगावत किताबी लोगों के खिलाफ है । सारे सन्तों की बगावत बुद्धि से हृदय की तरफ जीवन-ऊर्जा को बदलने की है, विचार-मात्र से अनुभव की तरफ ले जाने की है ।

तुम्हारी ऊर्जा खोपड़ी में ही गूँजती रहे, तो तुम परमात्मा तक न पहुँच पाओगे। तुम्हारी ऊर्जा हृदय पर बरसे; तुम्हारा हृदय तुम्हारी जीवन-ऊर्जा का एक सरोवर बन जाय, तो कुछ घटना घट सकती है ।

आज के सूत्र अन्तिम सूत्र हैं; सीधे-सरल, पर बड़े महत्त्वपूर्ण ।

देवल पूजे कि देवता, की पूजे पाहाड़ ।
पूजन को जांता भला, जो पीस खाय संसार ।।

मलूकदास सीधे-सादे आदमी हैं--ग्रामीण, ग्राम्य; पढ़े-लिखे भी नहीं । जो कहते हैं, वह लोक-भाषा है । 'देवल पूजे कि देवता'... कि तुम मन्दिर पूजो, कि तुम मन्दिर में बैठे देवता को पूजो, इतने से ही कुछ नहीं--तुम चाहो, तो पूरे पहाड़ों को पूज डालो । मन्दिर भी पत्थर से बना है; तुम्हारे देवता भी पत्थर से बने हैं; इनसे तो कुछ होगा ही नहीं । तुम चाहो तो पूरे हिमालय को पूजो; पूरे पहाड़ों को पूजो, तो भी कुछ न होगा ।

पत्थर की पूजा से खतरा यही है कि कहीं तुम भी पथरीले न हो जाओ । यही हुआ है : पत्थर की पूजा करते-करते लोग पथरीले हो गये हैं । पत्थर की पूजा करते-करते लोग पत्थर हो गये हैं; उनके हृदय पाषाण हो गये हैं । इसीलिए तो हिन्दू मुसलमान को काट सकता है; मुसलमान हिन्दू को काट सकता है । ईसाई मुसलमान को मार सकते हैं; मुसलमान ईसाई को मार सकते हैं ।

मनुष्य जाति का पूरा इतिहास तुम्हारे तथाकथित धार्मिक आदमियों की कठोरता का इतिहास है; हिंसा और रक्तपात का इतिहास है। धार्मिक यह कैसे कर सके? पत्थर हो गये होंगे।

इसमें कुछ मनोवैज्ञानिक सत्य भी है। हम जिसको पूजेंगे, वैसे ही हो जायेंगे। हमारी पूजा हमें निर्मित करती है। जिसके साथ रहोगे, वैसे हो जाओगे। पत्थरों का बहुत संग-साथ मत करना। पत्थरों पत्थरों में ही रहे, तो धीरे-धीरे तुम भी पत्थर हो जाओगे। क्योंकि हम वैसे ही हो जाते हैं, जिनके हम साथ रहते हैं।

अपने से श्रेष्ठ का साथ खोजो। अगर पूजना ही हो, तो कहीं किसी जीवित सन्त को पूजना। किसी को पूजना, जिसकी तरफ आँखें ऊपर उठानी पड़ती हों। किसी को पूजना, जो तुमसे कहीं ज्यादा ऊँचाई पर हो। चाहे एक कदम ही आगे तुमसे क्यों न हो। किसी को पूजना, जिसकी चेतना तुमसे ज्यादा प्रगाढ़ हो; तुमसे ज्यादा उज्ज्वलतर हो।

पत्थर! जड़--जहाँ चैतन्य नाम-मात्र को नहीं है, उसे तुम पूजने चले? तुमने परमात्मा की पूजा के लिए ठीक परमात्मा से विपरीत चीज खोज ली--पत्थर। इससे तो बेहतर था: वृक्ष को पूज लेते: कम से कम जीवंत तो था, बढ़ता तो था। लेकिन वह पूजा भी ठीक नहीं है। क्योंकि वृक्ष तुमसे बहुत पीछे है। पूजा करो अपने से आगे की। क्योंकि पूजा तो इशारा है। पूजा तो हम उसकी करते है, जो जो हम होना चाहते हैं। तुम पत्थर होना चाहते हो?--तो पत्थर की पूजा करो।

पूजा का तो अर्थ ही इतना हुआ कि यह हमारी अभिलाषा है; हम भी चाहेंगे कि कभी ऐसे हो जाएँ। ठीक है, राम को पूजा, समझ में आया। कृष्ण को पूजा, समझ में आया। बुद्ध को पूजा, महावीर को पूजा--समझ में आया। लेकिन पत्थर को पूजा?

कोई बुद्ध मिल जायँ, तो पूज लेना। लेकिन बुद्ध तो कभी-कभी होते हैं। और जब बुद्ध होते हैं, तब हमें पहचान में नहीं आते हैं। और जब बुद्ध होते हैं, तो हमें उनसे डर भी लगता है। क्योंकि बुद्ध के पास जाना, खतरे से खाली नहीं है। बुद्ध के पास जाने का मतलब ही यह हुआ कि बदलना पड़ेगा। गये--कि मिटे। बुद्धत्व संक्रामक है। जैसे रोग पकड़ता है, ऐसे अध्यात्म भी पकड़ता है। और रोग का तो इलाज है; अध्यात्म का कोई इलाज नहीं है।

बुद्ध के पास जाने का मतलब हुआ कि तुम्हें वह दूर पार की पुकार पकड़ लेगी, प्यास पकड़ लेगी। फिर जब तक तुम पहुँच ही न जाओ उस मंजिल तक, तब तक तुम्हें रोना ही रोना है। विरह की अग्नि पकड़ लेगी। तब तुम जहाँ हो, वहाँ सब व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा और जहाँ तुम्हें सार्थक दिखाई पड़ेगा, वह बहुत दूर है।

तब बेचैनी होगी ही। तब तुम रोओगे ही। तुम्हारा सब सुख-चैन छिन जायेगा। तुम्हारे सारे सपने टूट जायेंगे।

तुम तूफान समझ पाओगे?
गीले बादल, पीले रजकण
सूखे पत्ते, सूखे तृण घन
ले कर चलता करता हर-हर
इसका गान समझ पाओगे?
तुम तूफान समझ पाओगे?
गन्ध भरा यह मंद पवन था
लहराता इसमें मधुवन था
सहसा इसका टूट गया जो
स्वप्न महान, समझ पाओगे?
तुम तूफान समझ पाओगे?

बुद्धों के पास होने का अर्थ है: तूफान के पास होना। और वह जो तुम सपना देख रहे थे: धन का, पद का, प्रतिष्ठा का, मद-मत्सर का--वह सब सपना टूट जायेगा। उस तूफान में तुम्हारी वासनाएँ झकझोर कर गिर जायेंगी। उस तूफान में तुम वही न रह जाओगे, जो तुम कल तक थे। तुम्हारे बनाये भवन भूमिसात हो जायेंगे। तुम्हारी तैराई हुई नावें डूब जायेंगी। और तुमने अब तक जो जाना था, वह सब व्यर्थ और झूठा मालूम होगा। इसलिए बुद्धों से तो लोग बचते हैं। हाँ, बुद्ध जब मर जाते हैं, तो उनकी प्रतिमा बनते हैं।

तुम जानकर चकित होओगे कि अरबी में, उर्दू में प्रतिमा के लिए जो शब्द है बुत, वह बुद्ध का ही रूपान्तरण है। बुद्ध की इतनी प्रतिमाएँ बनीं, कि जब पहली दफा मध्य एशिया के मुल्क बुद्ध की प्रतिमाओं से परिचित हुए, तो उन्होंने पूछा: 'यह क्या है?' लोगों ने कहा: 'यह बुद्ध हैं।' तो बुत शब्द प्रतिमा का ही प्रतीक हो गया। बुत बुद्ध का ही रूपान्तर है।

करोड़ों प्रतिमाएँ बनीं बुद्ध की। जिन्होंने कभी बुद्ध को उनके जीते-जी नहीं पूजा, वे प्रतिमाओं को पूजने लगे।

प्रतिमा को पूजने में आसानी है। प्रतिमा तुम्हें नहीं बदलती; तुम्हें बदल नहीं सकती। प्रतिमा के तो तुम ही मालिक होते हो। जब चाहो, पट खोलो मन्दिर के; और जब चाहो, तब आराध्य लगाओ। जब चाहो तब अर्चना करो। जब चाहो, तब भोग लगाओ; जो लगना हो--लगाओ। न लगाना हो--न लगाओ। नहलाना हो--नहला दो; न नहलाना हो--न नहलाओ। जो तुम्हारी मरजी; तुम्हारी

मौज !

मैं पंजाब जाता था, तो घर में ठहरा हुआ था। सुबह उठकर जब मैं अपने कमरे से बाथरूम की तरफ पीछे उनके आँगन में जा रहा था, तो बीच के कमरे से गुजरा, तो मैंने देखा कि वहाँ गुरु-ग्रन्थ साहब को एक प्रतिमा की तरह सजा कर रखा हुआ है। चलो, कोई हरजा नहीं। लेकिन सामने ही एक लोटा भर रखा है और एक दातौन रखी है! तो मैंने पूछा कि 'यह मामला क्या है!' तो उन्होंने कहा कि 'गुरु-ग्रन्थ साहब के लिए दातौन।'

पानी भर के लोटा रख दिया है और दातौन रख दी है। तो मैंने कहा: 'भले मानुषों, कम से कम टूथ ब्रश रखा होता! कुछ तो सद्व्यवहार करो। अब दातौन कौन करता है? तुम दातौन करते हो?' उन्होंने कहा कि 'नहीं।' तो मैंने कहा: 'तुम जो नहीं करते, कम से कम वह तो मत करवाओ।' मगर तुम्हारी मौज है। गुरु-ग्रन्थ से जो करवाना हो करवाओ। चाहे दातौन करवाओ; चाहे टूथ ब्रश रखो। और न रखो, तो गुरु-ग्रन्थ कुछ कर न लेंगे।

अब नानक ने प्रतिमा का विरोध किया है। लेकिन प्रतिमा से क्या होता है? हम किताब की ही प्रतिमा बना लेंगे!

अब कोई राम की प्रतिमा के सामने अगर दातौन रखता हो, तो थोड़ी बात समझ में भी आती है; लेकिन किताब के सामने दातौन--तो बात ही बिलकुल मूढ़ता की हो गई। यह तो आखिरी हद्द हो गई। यह तो पन्जाबी ही कर सकता सकता है।

मगर आदमी कुछ ऐसा है...। प्रतिमा तुम्हारे वश में हो जाती है। तुम जो चाहो, करो। जैसा चाहो--करो।

बुद्ध के पास जाओगे, तो तुम्हें बुद्ध के वश में होना पड़ेगा।

मगर खयाल रखना: तुम जिसे पूजोगे, जाने अनजाने तुम वही होने लगोगे। किताब पूजोगे, तो किताबी हो जाओगे। पत्थर पूजोगे, पथरीले हो जाओगे। अगर पूजना ही हो, तो चैतन्य को पूजो। पूजना ही हो, तो चेतना के नये-नये अवतारों को पूजो। पूजना ही हो, तो उठाओ आँख ऊपर की तरफ। कम से कम इतना तो होगा कि तुम्हारी पूजा तुम्हें ऊपर खींच सकेगी।

कहावत है: संग-साथ सोच कर करना चाहिए। जिनके साथ तुम रहते हो, उन जैसे हो जाते हो।

अकसर ऐसा होता है कि जो लोग मशीनों में ही काम करते हैं, वे मशीनों जैसे हो जाते हैं; यन्त्रवत हो जाते हैं। पश्चिम में यह घट रहा है। लोग चूंकि मशीनों के साथ ही दिनभर काम में लगे रहते हैं; कभी एक मशीन, कभी दूसरी मशीन,

तो धीरे-धीरे तुम्हारे चित्त का मशीनीकरण हो जाता है।

कलकत्ता मैं जाता था, तो एक घर में मेहमान होता था। जिनके घर मेहमान होता था, वे हाईकोर्ट के न्यायाधीश थे। उनकी पत्नी ने मुझे कहा कि 'मेरे पति आपको इतना मानते हैं, आप कम से कम इनको इतना तो कहो कि कम से कम घर में आकर न्यायाधीशी न किया करें। दफ्तर में इन्हें जो करना हो--करें।'

मैंने उनसे पूछा कि 'क्या ये घर में भी न्यायाधीश बने रहते हैं?' उन्होंने कहा: 'आपसे क्या छिपाना। घर की तो बात छोड़ो, रात बिस्तर पर भी ये न्यायाधीश ही रहते हैं। और हम सब ऐसे डरे रहते हैं, जैसे मुजरिम हैं! हर बात में कानून! और हर बात में वही अकड़, जो न्यायाधीश की--अदालत में होती है। हम तंग आ गये हैं। हम घबड़ा गये हैं। बच्चे इनको देख कर भाग जाते हैं बाहर। जब तक ये घर में रहते हैं, कोई बच्चा घर में खेलता नहीं। क्योंकि हर चीज में इनको गलती दिखाई पड़ती है। हर चीज में नियम का उल्लंघन दिखाई पड़ता है।'

यह हो जाता है। जो आदमी जा कर आठ घंटे चौराहे पर पुलिस का काम करता है, वह घर लौट कर भी पुलिसवाला ही रहता है। इतना आसान थोड़े ही है; इतनी बुद्धिमत्ता कहाँ तुममें कि तुम दफ्तर से आओ, दफ्तर को दफ्तर में ही छोड़ आओ। इतना आसान नहीं है। दफ्तर साथ चला आता है! क्लर्क के दिमाग में फाइलें चली आतीं हैं तैरती। वह घर भी बैठ कर फाइलों को ही सोचता है। भोजन भी करता है, तब भी भीतर फाइलें पलटता रहता है। रात सोता भी है, तो सपने उन्हीं के देखता है।

हम जिनके साथ रहते हैं, वैसे हो जाते हैं। तो यह तो बड़ा खतरनाक और दुर्भाग्यपूर्ण चुनाव है कि आदमी ने भगवान् पत्थर के बना लिये हैं। इससे आदमी पथरीला हो गया है।

कहते हैं मलूकदास: देवल पूजे की देवता, कि पूजे पाहाड़।' तुम चाहो तो पहाड़ पूजने लगो, इससे कुछ भी न होगा। 'पूजन को जांता भला, जो पीस खाय संसार।' लेकिन अगर पत्थर से बहुत मोह लग गया हो, कि पत्थर के बिना चलना ही न हो, तो फिर तुम चक्की के पत्थर को पूजो। कम से कम इतना तो होगा: 'पूजन को जांता भला, जो पीस खाय संसार।' कम से कम पीस तो सकेंगे लोग उससे; कुछ तो हो सकेगा। कुछ काम तो आ जायेंगे।

तुम्हारे भगवान् तो बिलकुल बेकाम हैं। बेकाम ही नहीं हैं, खतरनाक भी हैं। मन्दिर, मसजिद का सारा काम ही राजनीति है; उपद्रव है; आदमी आदमी को लड़ना है।

ठीक कहते हैं मलूक: पूजन को जांता भला। जांता यानी चक्की। तो चक्की

के दो पाट हैं, वे ही भले हैं। कम से कम इतना तो होगा : जो पीस खाय संसार। अगर पत्थर ही पूजना है, तो चक्की पूजो; किसी काम आ जायेगी। कम से कम लड़ायेगी तो ना; भूखे का पेट भर देगी। शायद चक्की को पीसते-पीसते तुम्हारे मन में भी भूखे के प्रति दया आ जाय। शायद तुम्हारे मन में भी प्रेम का अंकुरण हो। शायद प्यासे और भूखे के प्रति तुम्हारे मन में भी करुणा का आविर्भाव हो।

यह तो व्यंग में कह रहे हैं मलूकदास--कि अब तुम्हें पत्थर से ही मोह लग गया हो, तो चक्की के पत्थर अच्छे।

मगर आदमी अद्भुत है। मैं जबलपुर बहुत वर्षों तक रहा। वहाँ एक मन्दिर है, उसका नाम है--पिसनहारी की मढ़िया। मैं उत्सुक हुआ कि यह 'पिसनहारी की मढ़िया' क्या है! तो मैं गया। किसी पिसनहारी ने कभी पाँच सात सौ साल पहले पीस-पीस के पैसे इकट्ठे करके यह मन्दिर बनाया। तो लोगों ने उसकी याददाश्त में क्या किया? उस मन्दिर के शिखर पर उसकी चक्की लटका दी। अब उसकी पूजा हो रही है!

जब मैं पिसनहारी की मढ़िया गया, तो मैंने सोचा कि बाबा मलूकदास, तुमने अगर यह पिसनहारी की मढ़िया देखी होती, तो तुम कभी न कहते : पूजन को जांता भला, जो पीस खाय संसार!'

लोग चक्की की भी पूजा कर रहे हैं; उसमें फूल चढ़ा रहे हैं! मन्दिर में भोग लगता है; पुजारी है। चक्की की भी पूजा चल रही है!

तो बाबा मलूकदास शायद फिर व्यंग में भी कहने की यह हिम्मत न जुटाते। आदमी ऐसा मूढ़ है कि इस व्यंग को भी शायद समझे।

असली बात खयाल में लेने की है कि तुम्हारे भीतर परमात्मा बैठा है। तुम जब भी किसी की पूजा करोगे, तभी तुम अपने भीतर के परमात्मा का अपमान कर रहे हो। जब तक कि तुम्हें परमात्मा ही उपलब्ध न हो जाय, तब तक किसी की भी पूजा का कोई अर्थ नहीं है।

फिर अगर बिना पूजा किये चलता ही न हो, तो किन्हीं ऐसे व्यक्तियों का पूजन करना, जिनके भीतर से तुम्हें ज्योतिर्मय का कोई अविर्भाव होता हुआ मालूम पड़ता हो; जिनके भीतर दीया जलता हुआ मालूम पड़ता हो। इन्हीं को हमने तीर्थंकर कहा, अवतार कहा, भगवान् कहा।

किसी ऐसे व्यक्ति को पूज लेना। मगर यह भी मजबूरी ही हो पूजने की तो। आयश्यक नहीं है। आवश्यक तो इतना ही है कि तुम अपने भीतर ही देखना शुरू कर दो। तुम मन्दिर हो। और तुम जिसकी तलाश कर रहे हो, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है।

मक्का मदिना द्वारका, बदरी अरु केदार।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार॥

तो मलूक कहते हैं : एक सूत्र की बात समझ लो कि दया सूत्र है। तुम्हारी पूजा-प्रार्थना से तुममें दया बढ़े, तो ठीक। तुम्हारे मन्दिर मसजिद से दया बढ़े, तो ठीक। तुम दया को कसौटी समझो, मापदण्ड समझो, यह तराजू है; इस पर तौल लेना।

दुनिया के सभी सन्तों ने यही कहा। महावीर कहते हैं--अहिंसा। वह दया के लिए उनका नाम है। बुद्ध कहते हैं--करुणा। वह दया के लिए उनका नाम है। जीसस कहते हैं--सेवा। वह दया के लिए उनका नाम है। दया कहो, सेवा कहो, करुणा कहो, अहिन्सा कहो--ये नाम भर के भेद हैं। लेकिन एक बात खयाल रखना : चारों शब्द स्त्रीवाची हैं। दया, करुणा, अहिन्सा, सेवा--सब स्त्रैण हैं। यह बात समझने जैसी है।

भाषा भी अकारण नहीं बनती। भाषा भी धीरे-धीरे किन्हीं कारणों से निर्मित होती है।

पुरुष का हृदय कठोर है। इसलिए कठोरता को हम परुषता कहते हैं। परुष का अर्थ होता है--कठोर। वह पुरुष से बना हुआ शब्द है। पुरुष का चित्त आक्रमक है; हिंसात्मक है। पुरुष की सारी आकांक्षा दूसरों पर कब्जा कर लेने की है, मालकियत कर लेने की है। राज्य फैले, साम्राज्य बने।

पुरुष बड़ा मजा लेता है--शक्तिशाली होने में। उसकी सारी खोज शक्ति की है। कितनी मेरी सत्ता हो--कि प्रधानमंत्री, कि राष्ट्रपति – कि कितनी मेरी सत्ता हो, कि सारी पृथ्वी पर मेरा राज्य हो जाय--ऐसी पुरुष की आकांक्षा है। स्वभावतः जब तुम दूसरे पर सत्ता करोगे, तो दया न कर सकोगे। सत्ताधिकारी दयावान नहीं हो सकता--हो ही नहीं सकता। सत्ता के आधार ही हिंसा पर खड़े हैं। जब दूसरे की मालकियत करनी हो, तो दूसरे को मिटाना पड़ेगा।

दुनिया में दो ही बातें हैं : या तो तुम दूसरे के ऊपर चढ़ जाओ, नहीं तो दूसरा तुम्हारे ऊपर चढ़ जायेगा। इसके पहले कि दूसरा तुम्हारे ऊपर चढ़ जाय, तुम दूसरे पर चढ़ जाओ। यही तो मैक्यावेली ने कहा है कि अगर तुमने न लूटा तो लूटे जाओगे। इसके पहले कि कोई लूटे, तुम लूट लो : क्योंकि जो पहल लेता है, वही फायदे में रहता है।

पुरुष का शास्त्र तो मैक्यावेली का शास्त्र है। आक्रमण, हिंसा, बल, सत्ता, शक्ति। पुरुष तो धर्म में भी उत्सुक होता है, तो इसीलिए उत्सुक होता है कि शायद परमात्मा को पाकर सिद्धियाँ मिल जायँ। शायद ध्यान लग जाय, तो चम-

त्कार की शक्ति आ जाय; तो जो अभी नहीं कर सकता हूँ, कल कर सकूँ। लेकिन उसका जोर सदा दुनिया को दिखलाने में है कि मैं कुछ हूँ।

पुरुष का मौलिक आधार अहंकार है। जितने भी कोमल गुण हैं, वे स्त्री के गुण हैं: दया, ममता, करुणा, अहिंसा, सेवा--वे स्त्रैण गुण हैं। और तुम जान कर चकित होओगे कि हमने इस बात को स्वीकार किया--बहुत रूपों में।

तुमने बुद्ध के चेहरे पर दाढ़ी-मूँछ देखी? या महावीर के चेहरे पर दाढ़ी-मूँछ देखी? जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में किसी को भी दाढ़ी-मूँछ नहीं है। न राम को, न कृष्ण को। तुमने दढ़ियल राम देखे? कि कृष्ण देखे? मामला क्या हुआ? इन सब में कुछ हार्मोन की कमी थी? मुखन्नस थे? क्या बात थी? इनमें कुछ कमी थी! एकात में होती तो चल जाती। लेकिन ये सब के सब?

नहीं; इनको भी दाढ़ी थी। इनको भी मूँछें ऊगी थीं। लेकिन हमने एक बात का प्रतीक चुना कि इनका चेहरा पुरुष जैसा हमने नहीं बनाया। क्योंकि इनके भीतर से परुषता समाप्त हो गई थी। इनके भीतर स्त्रैण तत्त्व का उदय हुआ था। इस सत्य की घोषणा के लिए हमने दाढ़ी-मूँछ बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम की नहीं बनाई। बहुत सोच कर...। ये यथार्थवादी मूर्तियाँ नहीं हैं; ये आदर्शवादी मूर्तियाँ हैं।

यह मत सोचना कि बुद्ध ऐसे लगते थे, जैसी उनकी मूर्ति है। न। ऐसी बुद्ध के भीतर की अवस्था थी। उस भीतर की अवस्था को हमने चित्रित करने की कोशिश की है। ये फोटोग्राफ नहीं हैं। इनका यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है। इनके भीतर जो घटना घटी थी, उसका इंगित है। इसलिए बुद्ध के चेहरे को देख कर तुम्हें स्त्रैण लगेगा। हाथ-पैर भी गोलाई लिए हैं, जैसे स्त्री के होते हैं। मस्कुलर नहीं हैं जैसे पुरुष का शरीर होता है, ऐसा नहीं है। क्षत्रिय थे; शरीर तो बलिष्ठ रहा होगा। सभी क्षत्रिय थे--कृष्ण, और राम, और बुद्ध, और महावीर, और सारे तीर्थंकर। तो शरीर तो बलिष्ठ रहा होगा। शरीर तो जैसा पुरुष का शरीर होना चाहिए, वैसा रहा होगा। लेकिन हमने चित्रित किया है इस भाँति, जैसे स्त्रैण हो। भीतर की कोमलता को इंगित किया है।

'बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार।'

तुम्हारे भीतर जितने भी परुष गुण हैं, वे कठोर गुण हैं, वे शांत हो जायँ और जितने स्त्रैण गुण हैं, वे जग जायँ, बस, तो तुम्हारे जीवन में धर्म की शुरुआत हुई।

तो पत्थर की पूजा की जगह, फूल की पूजा ज्यादा अच्छी होगी। अब तुम देखो, हम उलटा करते हैं। हम फूल तो तोड़ लेते हैं, पत्थर पर चढ़ा देते हैं। करना ऐसा चाहिए कि पत्थर को उठा कर फूल पर चढ़ा दें।

फूल कोमल है, उसको जा कर कठोर पर चढ़ा आते हैं! उस दिन बड़े सौभाग्य

का दिन होगा, जिस दिन हम पत्थर को उठा कर फूल पर चढ़ा आयेंगे। उस दिन हमने कोमल के प्रति ज्यादा सम्मान दिखाया। अभी हम कोमल को तोड़ते रहे हैं।

दया कसौटी है। तुम हिंदू हो या मुसलमान, कि ईसाई, कि जैन, कि बौद्ध--दो कौड़ी की बात है। दयावान हो--तो बस, सब ठीक है: हिन्दू हो, तो ठीक; मुसलमान हो, तो ठीक; ईसाई हो, तो ठीक। और दयावान नहीं हो, तो सब व्यर्थ है।

मोहम्मद एक गुफा में छिपने को आये हैं। उनका एक शिष्य उनके साथ है। दुश्मन उनके पीछे लगे हैं। बड़ा खतरनाक है क्षण। घोड़ों की आवाज पीछे से आ रही है। और वे गुफा के भीतर प्रवेश करने को ही हैं कि मोहम्मद ठिठक गये और उन्होंने अपने मित्र को भी कहा कि 'रुक, भीतर मत जा।' उसने कहा: 'यह रुकने का वक्त नहीं है। भीतर चलें। किसी तरह छिप जायँ। यह गुफा कारगर है; समय पर आ गई है; भगवान् की कृपा है।'

मोहम्मद ने कहा: 'वह तो ठीक है। लेकिन देखता है--गुफा के द्वार पर मकड़ी ने अभी-अभी जाला बुना है--ताजा जाला है; मकड़ी अभी बुन ही रही है, उसे तोड़ना उचित नहीं है।'

मित्र तो चकित हुआ। उसने कहा कि 'मकड़ी के जाले को मैं साफ किये देता हूँ। इसमें तोड़ने की क्या बात है!' पर मोहम्मद ने कहा: 'उसने बड़ी मेहनत से बनाया है। देखते हो! हम कोई और गुफा खोज लेंगे। लेकिन मकड़ी के साथ कठोरता करना उचित नहीं है।'

यह मुसलमान का लक्षण हुआ। यह ठीक अर्थों में धार्मिक का लक्षण हुआ। कठोरता जहाँ न रह जाय, जहाँ हृदय कोमल हो; पत्थर जैसा न हो, नवनीत जैसा हो--कोमल हो, फूल जैसा हो।

> मक्का मदिना द्वारका, बदरी अरु केदार।
> बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार।।

मलूक कहते हैं: तुम जाओ बदरी, तुम जाओ केदार--मक्का, मदीना, द्वारका, तुम भटको सारी दुनिया में--कुछ भी न होगा। तुम दया के मन्दिर में प्रवेश कर जाओ और सब हो जायेगा।

'कहै मलूक विचार,' खयाल रखना: यहाँ विचार का वही अर्थ नहीं होता, जो तुम्हारे विचार का होता है। तुमने तो कभी विचार किया ही नहीं है। हाँ बहुत विचार तुम्हारी खोपड़ी से गुजरते हैं--यह बात सच है। मगर विचार तुमने कभी नहीं किया है। विचार करने के लिए जितना होश चाहिए, उतना होश तुममें नहीं है। तुम्हारे भीतर तो दूसरों के विचार तैरते रहते हैं। किसी ने कुछ कह दिया, वह

तुम्हारी खोपडी में समा जाता है। कहीं कुछ पढ़ लिया, वह समा गया। फिर इन्हीं के साथ तुम डांवाडोल होते रहते हो। तुमने कभी खुद कुछ विचारा है? तुम्हारे पास एक भी ऐसा विचार है, जो तुम्हारा हो? जो तुम कह सको प्रामाणिकरूप से--मेरा है!

तुम बड़े हैरान हो जाओगे; अगर तुम अपनी विचार की राशि में खोजने जाओगे, तो तुम्हें शायद ही एकाध विचार मिले, जो तुम्हारा है--प्रामाणिक रूप से तुम्हारा है। तुम पाओगे--सब उधार है; सब बासा है; सब किसी और का है। और अगर कभी तुम कोई एकाध विचार ऐसा भी पाओगे, जिसे तुम कह सको: मेरा है, तो वह भी तुम गौर करोगे, तो अनुभव में आ जायेगा कि वह भी दूसरों के विचारों का जोड़-तोड़ है। कहीं से टाँग ले ली, कहीं से हाथ ले लिया, कहीं से सिर ले लिया; एक पुतला खड़ा कर दिया।

लेकिन मौलिक विचार तो तभी सम्भव होता है, जब सब विचार रोकने की क्षमता तुममें आ जाती है; सब विचार रोक देने की क्षमता तुममें आ जाती है। जब तुम निर्विचार होने में कुशल हो जाते हो, तब तुम विचार करने में सफल होते हो। यह बात विरोधाभासी है, लेकिन ऐसा ही है।

जिस दिन तुम निर्विचार होने में समर्थ हो गये; जिस दिन तुम चाहो, तो समय बीतता जाय और तुम्हारे भीतर विचार की तरंग भी न उठेगी; जिस दिन तुम मालिक हो गये इस बात के...। अभी तो तुम मालिक नहीं हो। अभी तो तुम लाख चाहते हो--विचार न उठें, मगर वे उठते चले जाते हैं। तुम बिस्तर पर पड़े हो; तुम चाहते हो: नींद आ जाय, मगर विचार चलते चले जाते हैं। तुम उनसे कहते भी हो कि 'भाई, क्षमा करो; अब जाओ भी; अब जरा मुझे सो लेने दो।' मगर वे तुम्हारी सुनते नहीं। वे मालिक बन बैठे हैं; तुम तो गुलाम हो। जब चले जाते हैं, तो ठीक। न जायँ--तो न जायँ; तुम्हारा कोई बस नहीं है। तुम बड़े बेबस हो।

जब मलूक कहते हैं--'कहै मलूक विचार', तो वे यह कह रहे हैं कि जब निर्विचार शांत चित्त की दशा में मैंने देखा; जब मैंने आँख गड़ाई--जीवन के सत्य पर; जब मैंने निर्विचार चित्त के दर्पण में जीवन की झलक पाई, तो मैंने पाया: बिना दया सब झूठ है।

तो तुम्हारे मन्दिर, मसजिद, तुम्हारी पूजा-प्रार्थना-अर्चना सब झूठ हैं; तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारे वेद, कुरान--सब झूठ हैं। बिना दया सब झूठ है।

एक दया तुम्हारे भीतर आ जाय, तो परमात्मा का पहला चरण तुम्हारे भीतर पड़ा। एक दया तुम्हारे भीतर आ जाय, तो तुम्हारा पहला सम्बन्ध परमात्मा से

हुआ।

दया का अर्थ होता है: इस बात की प्रतीति कि जैसा मैं हूँ, वैसे ही दूसरे भी हैं। जितना मूल्यवान मैं हूँ, उतने ही मूल्यवान दूसरे भी हैं। अब मैं किसी का साधन की तरह उपयोग न करूँगा। सभी परम साध्य हैं; कोई साधन नहीं है। मैं अपनी पत्नी का उपयोग साधन की तरह अब न करूँगा। मैं अपने पति का उपयोग अब साधन की तरह न करूँगी। मैं अपने बेटे का उपयोग साधन की तरह न करूँगा। क्योंकि जिसका भी हमने साधन की तरह उपयोग किया, हमने उसके साथ अनैतिक सम्बन्ध जोड़े। जिसका हमने साधन की तरह उपयोग किया, हमने उसके भीतर बैठे हुए परमात्मा की गरिमा स्वीकार नहीं की।

इमेनुएल कान्ट ने नीति की परिभाषा में यह कहा है कि वही कृत्य नैतिक है, जिसमें तुम दूसरे का साधन की तरह व्यवहार नहीं करते; जिसमें दूसरा स्वयं साध्य है--एण्ड इन इटसेल्फ; जिसमें दूसरा स्वयं साध्य है।

दया का अर्थ होता है: मैं जितना मूल्यवान, उतने ही मूल्यवान तुम हो--न जरा कम, न जरा ज्यादा। जिस दिन तुम देखते हो कि मेरा मूल्य सारे अस्तित्व का मूल्य है; जो मैं अपने लिए चाहता हूँ, वही मैं दूसरे के लिए भी चाहूँ...

यहूदी फकीर हुआ--हिलेल। एक नास्तिक हिलेल के पास आया और उस नास्तिक ने कहा कि 'सुनो...।' और वह नास्तिक एक पैर पर खड़ा हो गया और उसने कहा कि 'सुनो। मैंने सुना है कि तुम बड़े ज्ञानी हो। मैं ज्यादा बकवास में नहीं पड़ना चाहता। मैं नास्तिक हूँ। मैं संक्षिप्त उत्तर चाहता हूँ। मैं जितनी देर एक पैर पर खड़ा रहूँ, उतनी देर में तुम उत्तर दे दो कि धर्म का सार क्या है?'

हिलेल ने कहा: धर्म का सार इतना ही है--जैसा तुम अपने साथ व्यवहार करते हो, वैसा दूसरे के साथ करो। बस, इतना ही।'

बात तो पूरी हो जाती है। इससे ज्यादा धर्म का कोई सार नहीं है: बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार। फिर तुम भूल भी जाओ परमात्मा को, तो कोई हरजा नहीं; परमात्मा तुम्हें नहीं भूलेगा। और अभी तुम लाख परमात्मा को याद करो, तुम्हारी सब याद व्यर्थ है। परमात्मा तुम्हें याद नहीं करेगा। तुम्हारी एक ही पूजा स्वीकृत होगी: वही पूजा जिसमें दया सम्मिलित है। तुम्हारी एक ही पूजा अंगीकार होगी। फूलों के द्वारा नहीं; तुम्हारे हृदय की करुणा के द्वारा। करुणा के फूल तुम चढ़ाओ--परमात्मा के चरणों में। तुम्हारा जीवन ऐसा हो कि उससे किसी को चोट न पहुँचे।

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम्हारा जीवन ऐसा हो कि तुम सदा इसका ही खयाल करते रहो कि किसी को चोट न पहुँच जाय। तुम्हारा जीवन ऐसा हो कि

किसी को चोट न पहुँचे, तो भी दूसरों को चोट पहुँच सकती है, वह दूसरी बात है।

जीसस से बहुत लोगों को चोट पहुँची, नहीं तो वे सूली पर नहीं लटकाये जाते। यद्यपि जीसस ने किसी को चोट नहीं पहुँचानी चाही थी। बुद्ध पर भी लोगों ने पत्थर फेंके हैं, यद्यपि बुद्ध ने किसी को चोट नहीं पहुँचानी चाही थी।

तुम किसी को चोट न पहुँचाना चाहो, बस, इतना काफी है। तुम इतना ध्यान रखो कि सब का मूल्य आत्यन्तिक है। फिर भी किसी को चोट पहुँच सकती है। बहुत बार तो ऐसा होता है : तुम्हारा आनन्दित होना ही दूसरों को चोट पहुँचाने के लिए काफी हो जाता है। लोग इतने दुःखी हैं कि तुम्हें आनन्दित देखकर उनके बरदाश्त के बाहर हो जाता है। लोग इतने अँधेरे में खड़े हैं, और तुम्हारी आँखों में रोशनी? वे तुम्हारी आँखों फोड़ देने को उत्सुक हो जाते हैं। लोग इतने परेशान हैं और तुम निश्चिंत बैठे हो——समाधिस्थ! यह बरदाश्त के बाहर हो जाता है।

लोग नहीं चाहते कि तुम उनकी नींद तोड़ो; वे अपने सपनों में खोये हैं। और तुम चाहते हो, उनके हित में——उनकी नींद टूट जाय। उनके ही हित के लिए तुम प्रयास करते हो!

बुद्ध का एक भिक्षु पूर्ण बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया। और बुद्ध ने उसे कहा : 'अब मेरे पास रहने की तुझे कोई जरूरत नहीं, क्योंकि अब तो तू वही हो गया है——जो मैं हूँ। अब तू जा। दूर——दूर——जहाँ-जहाँ सोये लोग हैं, वहाँ-वहाँ जा। जागने की खबर ले जा। यह सुगंध, जो तुझे मिली है—बिखरा हवाओं में; पहुँचने दे अधिकतम लोगों तक। यह जो ज्योति तेरे भीतर जगी है, उसकी किरणें जितने लोगों को मिल जायँ, उतना अच्छा। जा। तू कहां जाना चाहेगा——पूर्ण!'

तो उस पूर्ण ने कहा . । बिहार का एक हिस्सा था, जहाँ कोई भिक्षु जाता नहीं था; दुष्ट लोग थे वहाँ के। उस हिस्से का नाम था——सूखा। भूखे लोग थे वहाँ के; जिनके हृदय बिलकुल सूख चुके थे; जिनमें रस-धार थी ही नहीं।

उसने कहा : 'मैं सूखा प्रांत जाऊँगा।' बुद्ध ने कहा : 'वहाँ न जा, तो अच्छा। वहाँ के लोग बड़े दुष्ट हैं; वे तुझे सतायेंगे।' उसने कहा : 'इसीलिए तो उनको मेरी जरूरत है; कोई जाये, उनको जगाये।' बुद्ध ने कहा : 'तेरा इरादा तो अच्छा है, लेकिन मैं तीन प्रश्न पूछना चाहता हूँ। पहला प्रश्न ——तू जा कर उनसे भली बातें कहेगा। लेकिन वे भली बातें उन्हें गालियों जैसी लगेंगी। वे तुझे गालियाँ देंगे। वे तेरा अपमान करेंगे। वे तेरी दुर्दशा करेंगे। जब वे तुझे गालियाँ देंगे, तो तुझे क्या होगा पूर्ण? पहले तू मुझे इसका उत्तर दे।'

पूर्ण ने कहा : 'इसमें होने की क्या बात है! आप जानते हैं; उत्तर क्या देना है? वे मुझे गालियाँ देंगे, तो मैं सोचूँगा—कितने भले लोग हैं, गालियाँ ही देते हैं, मारते नहीं। मार भी सकते थे।'

बुद्ध ने कहा : 'चल, दूसरा प्रश्न। अगर वे तुझे मारें, फिर? उसने कहा : 'आप भी क्या पूछते हैं! आपको पता है। जब वे मुझे मारेंगे, तो मैं उन्हें धन्यवाद दूंगा——कि कितने भले लोग हैं; सिर्फ मारते हैं——मार ही नहीं डालते! मार भी डाल सकते थे।'

बुद्ध ने कहा : 'चल यह भी जाने दे। अब तीसरा आखिरी सवाल। अगर वे तुझे मार ही डालें, तो मरते-मरते मुझे क्या होगा?' पूर्ण ने कहा : 'आप फिजूल की बातें पूछते हैं। आपको पता है कि मुझे क्या होगा। मरते वक्त मैं सोचूँगा——कितने भले लोग हैं; उस जीवन से छुटकारा दिला दिया, जिसमें कोई भूलचूक हो सकती थी।'

यह दया की आखिरी पराकाष्ठा है।

तो जब मैं तुमसे कहता हूँ कि दूसरे को चोट न पहुँचे, तो इसका मतलब यह नही है कि दूसरे को चोट नही ही पहुँचेगी। तुम मत पहुँचाना। तुम्हारा अभिप्राय न हो। बस। फिर भी पहुँच सकती है। पहुँचेगी ही। सुकरात से पहुँची। जीसस से पहुँची। मन्सूर से पहुँची। पहुँचेगी ही।

लोग पागल हैं। और जब किसी व्यक्ति के जीवन में विक्षिप्तता समाप्त होती है, तो वह इतना अजनबी मालूम पड़ने लगता है——लोगों को कि उसे बरदाश्त करना मुश्किल हो जाता है। उसकी मौजूदगी खलने लगती है। अगर वह सही है, तो फिर हम सब गलत हैं। यह मुश्किल हो जाता है।

सुकरात को जहर दिलाना पड़ा, क्योंकि सुकरात की मौजूदगी अखरने लगी। सुकरात अगर सच है, तो फिर सारे लोग झूठ हैं। यह बात ही स्वीकार करना बहुत कठिन होता है कि मैं झूठ हूँ।

'बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक विचार।' तो तुम अपने जीवन में एक कसौटी पकड़ लो : तुम्हारा ध्यान, तुम्हारी पूजा-प्रार्थना, तुम्हारी भक्ति अगर दया बढ़ाती हो, तो समझना कि तुम ठीक मार्ग पर हो, तो इशारा ठीक जगह पड़ रहा है। अगर तुम्हारी दया घटती हो, तो समझना कि गलत हो रहा है।

मोहम्मद एक दिन एक युवक को लेकर मसजिद गये। पहली दफा युवक मसजिद गया। सुबह की प्रार्थना, नमाज पढ़ने के बाद जब वापस लौटने लगे, तो उस युवक ने कहा : 'हजरत, देखते हैं कि लोग कितने पापी हैं——अभी तक बिस्तरों में पड़े हैं! कई तो अभी तक सो रहे हैं, घुर्रा रहे हैं। इनका क्या होगा हजरत? ये लोग नरक में पड़ेंगे?'

मोहम्मद ठिठक कर खड़े हो गये। उन्होने कहा : 'मुझसे बड़ी भूल हो गई कि

तुझे मैं मसजिद ले गया। तू रोज सोया रहता था, तो कम से कम ऐसा तो नहीं सोचता था कि लोग पापी हैं। यह तो फायदा न हुआ, नुकसान हो गया। आज तू पहली दफा मसजिद क्या हो आया, तेरे मन में यह खयाल उठने लगा कि लोग पापी हैं और तू पुण्यात्मा है!' उस युवक से कहा: 'भाई, तू जा और सो जा। और भूल जा यह बात, और फिर मसजिद जाता हूँ।' उसने पूछा: 'अब आप किसलिए जाते हैं?' उन्होंने कहा: 'मुझे दुबारा फिर नमाज पढ़नी पड़ेगी और परमात्मा से क्षमा भी माँगनी पड़ेगी कि मुझसे बड़ी भूल हो गई कि इस आदमी को मैं उठा लाया। यह अच्छा भला था--सोता था। कम से कम दूसरों के प्रति अनादर तो न था, कठोरता तो न थी। अब यह उनको नरक में डालने की सोच रहा है! इसने एक प्रार्थना की है और इसके इरादे देखो!'

जब भी तुम किसी आदमी में ऐसा देखो कि उसका धर्म उसके अहंकार को बढ़ा रहा है, तो समझना--भूल हो गई। जब तुम अपने भीतर ऐसा देखो कि तुम्हारा धर्म तुम्हारी दया को कम कर रहा है, तो समझना कि भूल हो गई। इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम्हारे सौ तथाकथित महात्माओं में निन्यानबे महात्मा नहीं हैं। उनके इरादे बड़े गहरे हैं--तुमको नरक में डालने के। वे बड़े हिसाब लगा रहे हैं कि कैसी-कसी आग में जलाये जाओगे। कैसे-कैसे कड़ाहों में डाले जाओगे!

जिन्होंने शास्त्रों में नरक के विवरण लिखे हैं, वे भले लोग नहीं हो सकते। उनके भीतर दुष्टता रही होगी। दया उनके भीतर नहीं होगी। अगर दया का जरा भी स्वर होता, तो नरक की धारणा ही नहीं बनती। स्वर्ग तो उन्होंने अपने लिए रखा है, और नरक सबके लिए रखा है। नरक उन सबके लिए, जो उनसे राजी नहीं हैं--वे सब नरक में सड़ाये जायेंगे। ये ऊपर से कितने ही महात्मा दिखाई पड़ते हों, भीतर ये शैतान के शिष्य हैं--महात्मा नहीं हैं।

अब यह दूसरी बात है कि तुम किस भाँति लोगों से बदला लेते हो; किस तरह उन्हें सताते हो। नरक में डाल कर सताओगे, लेकिन सताने की इच्छा कायम है। दया तुम्हारे भीतर जरा भी नहीं है। इसको स्मरण रखना।

> सब कोउ साहेब बन्दते, हिन्दू मूसलमान।
> साहेब तिसको बन्दता, जिसका ठौर इमान॥

और कहते मलूक: जिसके हृदय में दया आ गई, वह फिर परमात्मा को न भी बन्दगी करे, तो चलेगा। उसकी बन्दगी तो प्रतिक्षण हो रही है। उसकी दया ही उसकी बन्दगी है। वही उसकी नमाज है। वह झुका ही है नमाज में।

और 'साहेब तिसको बन्दता...।' और एक अपूर्व घटना घटती है कि फिर भक्त भगवान् को नहीं भजता; भगवान् भक्त को भजता है—साहेब तिसको बन्दता।

जिस दिन तुम्हारे जीवन में दया ही दया होती है, उस दिन परमात्मा तुम्हारी याद करता है।

तुम्हारे याद किये क्या होगा? जब तक वह तुम्हें याद नहीं करे—मिलन नहीं होगा। जब तक यह सारा अस्तित्व तुम्हारे लिए आतुर न हो जाय--स्वागत के लिए, तुमसे मिलन को तत्पर न हो जाय, तब तक कुछ भी न होगा।

'सब कोउ साहेब बन्दते, हिन्दू मूसलमान।' यह बन्दगी तो चलती है--औपचारिक है। 'साहेब तिसको बन्दता, जिसका ठौर इमान।'

इन शब्दों पर ध्यान देना--'जिसका ठौर इमान'; जिसकी श्रद्धा ठहर गई; जिसके चित्त का दर्पण अब विचारों से चंचल नहीं होता; जिसका ईमान कम्पित नहीं होता--अकम्प हो गया; जिसके भीतर की चेतना निष्कम्प जलती है। जिसका ठौर ईमान।

मन तो चंचल है। मन तो ऐसा है, जैसे हवा के झोकों में दीये की ज्योति डोलती रहती है--कभी इधर, कभी उधर; डोलती ही रहती है; एक क्षण को भी थिर नहीं। इस अथिर मन के साथ कैसी शांति! इस अथिर मन के साथ कैसा सुख? इस अथिर मन के साथ जो जुड़े हैं, उनके जीवन में कभी भी आनंद का कोई स्वाद संभव नहीं है। दुःख ही वे पायेंगे।

पर एक ऐसी दशा भी है चैतन्य की, जब चित्त ठहर जाता है। जब कोई तरंगें नहीं उठतीं; झील शांत होती है। एक लहर भी नहीं उठती। झील बिलकुल शांत हो जाती है। उस शांत झील में ही प्रभु का प्रतिबिम्ब बनता है, प्रभु की छबि बनती, प्रभु की छबि उभरती।

मंदिरों में नहीं बैठा है प्रभु; तुम्हारी श्रद्धा जब ठहर जायेगी, तब तुम उसे अपने भीतर बैठा हुआ पाओगे।

और ठीक कहते हैं मलूकदास--साहेब तिसको बन्दता—उस दिन तुम पाओगे कि साहब तुम्हारी बन्दगी कर रहा है। क्योंकि तुम साहब ही हो। तुम एक क्षण को भी कुछ और नहीं हो। तुम्हें अपना स्मरण भूल गया है अन्यथा तुम परमात्मा हो।

तुम्हें अपनी याद भूल गई है। तुम भूल ही गये कि तुम कौन हो। और जब तक यह मन कंप रहा है, तब तक तुम पहचान भी न सकोगे कि तुम कौन हो। इस कंपते मन पहचानना बहुत मुश्किल है।

ऐसा ही समझो कि तुम एक हाथ में कैमरा लेकर यहाँ तस्वीर उतारने आ जाओ, और तुम्हारे दोनों हाथ कंप रहे हैं, तो तस्वीर तो बनेगी ही नहीं। और जब तुम फिल्म को साफ करके तैयार करोगे, तो तुम पाओगे: कुछ समझ में नहीं

आता; रंग ही रंग छितरे हैं। सब खण्ड-खण्ड छितरे हैं। कोई तस्वीर साफ नहीं बनती।

मन इतना कंप रहा है, कि सत्य तो सामने खड़ा है, लेकिन तस्वीर कैसे बने! यह मन थोड़ा ठहरे, यह श्रद्धा थोड़ी रुके, थोड़ा शांत हो, तो तस्वीर अभी बन जाय।

तुमने देखा न, झील पर जब अन्धड़ चलता है, और बहुत लहरें होती हैं; आकाश में चाँद भी हो, तो भी चाँद का प्रतिबिम्ब नहीं बनता। खण्ड-खण्ड चांद बिखर जाता है--पूरी झील पर। पूरी झील पर चाँदी हो जाती है। मगर तुम पकड़ न पाओगे कि चाँद कहाँ है। जब झील शांत हो जायेगी, तब सारी चाँदी सिकुड़ कर आ जायेगी एक जगह; चाँद बन जायेगी।

परमात्मा सब तरफ छितरा हुआ मालूम पड़ता है, इसलिए उसे हम देख नहीं पाते हैं; उसकी प्रतिमा बन नहीं पाती।

परमात्मा को खोजने जाने की कहीं भी जरूरत नहीं है; सिर्फ चित्त की थिरता खोजनी है।

'जिसका ठौर इमान...।' कृष्ण ने जिसको स्थितप्रज्ञ कहा है--जिसकी प्रज्ञा ठहर गई, उसी के लिए मलूकदास कहते हैं : जिसका ठौर इमान।

दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमरित बन।
तेई ऊँचे जानिये, जिसके नीचे नैन।।

'दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमरित बैन।' और जिसकी वाणी में अमृत है...। लेकिन अमृत होता तभी, जब दया धर्म हृदय में होता है। जब करुणा का सागर हृदय में होता है, तब वाणी में अमृत होता है।

'वाणी का अमृत' कोई वक्तृत्व की कला नहीं है। वाणी के अमृत से अर्थ--कोई बहुत कुशल वक्ता है--ऐसा नहीं है। वाणी में अमृत का अर्थ होता है: जिसके शब्दों में निःशब्द का स्वर है; जिसके शब्द खाली देह-मात्र नहीं हैं, जिसके शब्द के भीतर आत्मा भी ज्योतिर्मय है। जिसके शब्द केवल शब्द नहीं हैं, जिसके शब्दों में छिपा शून्य भी है।

जैसे तुम्हारी देह है; आज भीतर विराजमान है परमात्मा, तो तुम जीवन्त हो। कल साँस उड़ जायेगी, पखेरू जा चुका होगा, देह यहीं होगी, लेकिन प्रियजन जल्दी से अर्थी तैयार करने लगेंगे : सब कुछ वही है; जरा-सी बात बदल गई : भीतर जो रहता था, अब नहीं है, तो लाश हो गई। कल तक प्यारी देह थी, आज अर्थी पर रखने योग्य हो गई।

शब्दों के साथ भी ऐसा ही है। पण्डित बोलता है, तो उसके शब्दों में केवल लाश होती है। उसका अपना अनुभव तो नहीं होता, जिससे वह आत्मा डाल दे।

ज्ञानी जब बोलता है, तो उसके शब्द में अमृत होता है। अमृत का अर्थ है : उसके शब्द निष्प्राण नहीं होते, सप्राण होते हैं। उसके शब्द धड़कते हैं। उसके शब्दों में श्वास होती है। उसके शब्दों में जीवन होता है। उसके शब्द को तुम छुओगे, तो तुम्हें पता चलेगा। उसके शब्द मुरदा नहीं हैं।

बोलै अमरित बैन, दया धर्म हिरदे बसै...। लेकिन यह तभी संभव होता है, जब भीतर करुणा का जन्म हो गया हो। तब उस करुणा में डूब कर आते हुए शब्द अमृत हो जाते हैं। इन्हीं अमृत वचनों को हमने शास्त्रों में इकट्ठा किया है--उपनिषद् में, कुरान में, ताओ-तेह-किंग में, गीता में हमने इन्हीं अमृत वचनों को इकट्ठा किया है। लेकिन मुश्किल यह है कि जैसे ही तुम इकट्ठा करते हो, वे अमृत नहीं रह जाते।

कृष्ण ने जब अर्जुन से बोले, तब अमृत थे; कृष्ण के कारण अमृत थे। कृष्ण की मौज़ूदगी उन शब्दों में डोल रही थी। कृष्ण का रूप-रंग उन शब्दों को लगा था। कृष्ण के भीतर से अभी आये थे; अभी ताजे थे। अभी कृष्ण की सुगंध उन शब्दों के आसपास तैर रही थी। अर्जुन ने जब उन्हें सुने, तो वे ताजे थे। अब जब तुम गीता में पढ़ते हो, तब मुरदा हैं।

इसलिए सदा से एक बात महत्त्वपूर्ण रही है कि अगर तुम जीवित सद्गुरु को खोज सको, तो सब शास्त्रों को छोड़ कर जीवित सद्गुरु को खोज लेना। क्योंकि वहाँ अभी शास्त्र जीवित है। सद्गुरु का इतना ही अर्थ होता है कि जहाँ अभी शास्त्र जीवित है। और शास्त्र का इतना ही अर्थ होता है : किसी सद्गुरु के वचन, जो अब जीवित नहीं रहे। लकीर रह गई है, साँप चला गया है।

दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमरित बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन।।

और उन्हीं को समझना कि पहुँच गये, जिनको पहुँचने का दम्भ ही न हो। निर्‌अहंकार में जो जीते हों...। अब इसे समझना। यह थोड़ा जटिल मामला है। क्योंकि आदमी ने इतने झूठे सिक्के पैदा किये हैं, इसलिए बातें बहुत उलझ गई हैं।

तीन शब्द खयाल करना। एक शब्द है अहंकार; दूसरा शब्द है विनम्रता; और तीसरा शब्द है--निर्‌अहंकार। विनम्रता झूठा, थोथा शब्द है। विनम्र आदमी निर्‌अहंकारी नहीं होता। विनम्र आदमी को विनम्रता का अहंकार होता है। विनम्र आदमी कहता है : मैं ना-कुछ। लेकिन तुम्हारी आँखों की तरफ देखता है कि देखो, मैं ना-कुछ! स्वीकार करो--कि मैं ना-कुछ। सुनते हो--कि मैं ना-कुछ। और अगर तुम उससे कहो कि मैं तो आपसे भी बड़ा ना-कुछ, तो वहीं नाराज हो जाता है; वहीं परेशान हो जाता है।

ना-कुछ में भी होड़ लगी है! ना-होने के दावे में भी अहंकार पीछे के दरवाजे से प्रवेश कर रहा है।

विनम्र आदमी निर्‌अहंकारी नहीं होता। विनम्रता अहंकार को दवा लेती है, अहंकार को जहर पर खूब मीठी शक्कर की परतें चढ़ा देती है। इसलिए विनम्र आदमी में तुम सदा अहंकार पाओगे--छिपा हुआ, अप्रगट, भूमिगत हो गया, अन्डरग्राउन्ड चला गया; मगर मौजूद है।

निर्‌अहंकार का अर्थ होता है: न अहंकार रहा, न विनम्रता रही। क्योंकि अहंकार ही न रहा, तो अहंकार के साथ जुड़ी हुई विनम्रता भी नहीं रह जायेगी।

फिर मलूकदास क्यों कहते हैं: 'जिनके नीचे नैन'? क्योंकि विनम्रता का आमतौर से हम यही अर्थ करते हैं--जो सदा नीचे देखते हैं, जो नीचा नैन रखते हैं। नीचे नैन अगर तुम इसलिए रखते हो कि चेष्टा कर रहे हो, तो विनम्रता। और नीचे नैन अगर सहज हो गये हैं—तो निर्‌अहंकार। दोनों में फर्क है।

अगर चेष्टा करके तुम नीचे नैन रख रहे हो, प्रयास करना पड़ रहा है, दबाये बैठे हो किसी चीज को, तो फिर झूठ बात है। अनायास, सहज हो गया है...। और रखो भी कहाँ नैन को! नीचे न रखो, तो कहाँ रखो? जैसे देखा, कभी वृक्ष पर जब फल लग जाते हैं और फलों से डाल भर जाती है, तो डाल झुक जाती है। यह झुकना बड़ा और है। ऐसे ही आँख जब भर जाती है--प्रभु के दर्शन से, तो झुक जाती है।

जब आँख भरपूर हो जाती है प्रभु से, तो फिर अब क्या आँख उठाने को जगह रही! आँख झुक जाती है। यह झुकाव ऐसा हो है, जैसे वृक्ष की डाली झुक जाती है--फलों से लदकर। 'तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन।'

जेते सुख संसार ले, इकठे किये बटोर।
कन थोरे कांकर घने, देखा फटक पछोर।।

बड़ा प्यारा सूत्र है: 'जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोर।' कहते मलूकदास: सब सुख देख लिए; सब बटोर कर देख लिए--यह बात खयाल रखना। बहुत लोग हैं--इस देश में कम से कम, खास करके--जो सद्‌पुरुषों की वाणी सुनकर भाग खड़े होते हैं संसार से। अभी उन्होंने सब सुख बटोर कर देखे भी नहीं थे। ये जो कच्चे भाग जाते हैं, इनका मन बड़ा तड़फता है--वापस लौट आने को। ये चले जायँ हिमालय पर, लेकिन सोचेंगे बाजार की। ये बैठ जायँ गुफा में, लेकिन सोचेंगे--पत्नी-बच्चों की। ये कहीं भी चले जायँ, कुछ फर्क न पड़ेगा।

मैं भर्तृहरि के जीवन में एक उल्लेख पढ़ता था। भर्तृहरि सम्राट हुए। सम्राट होते ही उन्होंने अपने वजीरों को बुलाया और एक बड़ी अनूठी आज्ञा दी। आज्ञा यह थी कि 'जितने भी सुख संभव हों संसार में, मैं सब भोगना चाहता हूँ।' वजीरों ने सोचा: खूब भोगी--सम्राट हो गया है। पहले दिन ही सिंहासन पर बैठा है और कहता है: जितने सुख हो संसार में, सब भोग लेना है! एक भी छोड़ना नहीं है।

उन्होंने कहा: 'महाराज, जो भी बन सकेगा, हम करेंगे। सब सुख जुटा देंगे। आप मालिक हैं। आप आज्ञा दें।'

दूसरी बात भर्तृहरि ने कही; दूसरी यह कि एक सुख एक ही बार देखना है--दुबारा नहीं, क्योंकि फिर क्या सार है! तो खयाल रहे: जो वस्त्र मुझे एक दफा पहनने दिये जायँ, दुबारा न दिये जायँ। और जो स्त्री एक बार मेरे पास लाई जाय, दुबारा न लाई जाय। और जो भोजन मुझे एक बार परोसा जाय, दुबारा न परोसा जाय।

वजीरों ने कहा: 'ऐसा ही होगा।' थोड़े तो दिक्कत में पड़े। और महीने दो महीने में दिक्कत बहुत साफ हो गई। अब कहाँ रोज-रोज नये भोजन लाओ! जो सब्जी एक दफे खा ली--खतम हो गई। जो फल एक बार चख लिया--समाप्त हो गया।

साल बीतते-बीतते तो वजीर पागल होने लगे कि कहाँ से इंतजाम करो! लाओ कहाँ से? सब छान डाले उन्होने। दूर-दूर प्रांत, जहाँ-जहाँ जो मिल सकता था। न मालूम कितनी स्त्रियां लाये; कितने वस्त्र लाये; न मालूम कितने भोजन लाये। लेकिन सब चुकने लगा। साल पूरा होते-होते वजीरों ने कहा: 'महाराज, क्षमा करें। हम पागल हुए जा रहे हैं। रोज-रोज नया कहाँ से लायें?'

तो भर्तृहरि ने कहा: 'सब चुक गया?' उन्होंने कहा: 'सब चुक गया। अब हमें कुछ नहीं सूझता।' तो भर्तृहरि कहा कि 'बस, ठीक है; बात समाप्त हो गई; अब मैं जंगल जाता हूँ।'

उन्होंने कहा: 'क्यों?' भर्तृहरि ने कहा: 'देख लिया। और एक दफा चख लिया; अब दुबारा उसी को चखने से क्या मिलेगा? जब एक बार चखने से नहीं मिला, तो दुबारा उसी को चखने से क्या मिलेगा? जो स्वाद मिलना होता, तो पहली बार में मिल आता। अब दुबारा मैं वही हूँ, चीज भी वही है, अब इसको पुनरुक्त करते रहने से क्या सार है? इस व्यर्थ की दौड़-धूप में कोई अर्थ नहीं है। अब मैं जंगल जाता हूँ।'

तब तो वजीर बड़े हैरान हुए। वे तो सोचते थे: कहाँ का भोगी राजा मिल गया! तब उनको पता चला कि इस भोग के पीछे कोई अनूठी त्याग की प्रक्रिया छिपी थी। किसी बड़े सूत्र पर भर्तृहरि काम कर रहा था।

भर्तृहरि ने दो शास्त्र लिखे हैं। पहला शास्त्र लिखा--शृंगार शतक--शृंगार के सूत्र। ऐसे सूत्र किसी ने नहीं लिखे, क्योंकि किसी ने ऐसा शृंगार जाना नहीं।

मलूकदास यही कह रहे हैं : 'जेते सुख संसार के इकठे किये बटोर।' सब बटोर लिया और सब सुख भोग लिए--तो शृंगार शतक लिखा। और फिर जब सब छोड़ कर गये, तो दूसरा शास्त्र लिखा--वैराग्य शतक। शृंगार से ही वैराग्य का जन्म हुआ। भोग से योग का जन्म हुआ।

संसार को देखने से ही, पहचानने से ही परमात्मा की स्मृति आनी शुरू होती है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ : भागना मत। मैं अपने संन्यासी को कहता हूँ--भाग कर कहीं जाना मत। जहाँ खड़े हो, वहाँ जो उपलब्ध है, उसे ठीक-ठीक भोग लो। भोग में ही मुक्ति है; भोग से ही मुक्ति है।

भोग और योग विपरीत नहीं हैं। योग का जन्म भोग की ही अन्तरतम अवस्था में पैदा होता है। इसलिए भागो मत। भाग कर कहीं कोई सार नहीं है। भगोड़े मत बनो। भागो नहीं--जागो। जो भोग रहे हो--उसे जाग कर भोगो, ताकि पुनरुक्ति न हो; ताकि बार-बार उसी-उसी में न दोहराते रहो। गाड़ी के चाक की तरह मत घूमो। हर अनुभव से तुम बोध ले लो और जल्दी ही तुम पाओगे कि ठीक कहते हैं बाबा मलूकदास :

> जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोर।
> कन थोरे कांकर घने, देखा फटक पछोर।।

खूब...जैसे स्त्रियाँ सूप में साफ करती है ना--चावल, गेहूँ—देखा फटक पछोर; ऐसा सूप में--बुद्धि के, होश के सूप में सब फटक पछोर कर देख लिया : कन थोरे काँकर घने। कन तो कहीं-कहीं हैं, सुख तो कहीं-कहीं है और कंकड़ ही कंकड़ ज्यादा हैं। कन थोरे कांकर घने...। सुख तो क्षणभंगुर है, दुःख की लम्बी कतारें लगी हैं।

यह बात भी समझने जैसी है कि मलूकदास की सचाई के प्रति ऐसी निष्ठा है कि अतिशयोक्ति नहीं करते। आमतौर से ज्ञानी कहेंगे : संसार से बिलकुल सुख नहीं है। मलूक ने यह नहीं कहा। यह एक सच्चे आदमी की परख है।

आमतौर से महात्मा कहते हैं : संसार में सुख है ही नहीं। अतिशयोक्ति हो गई यह। अगर संसार में सुख बिलकुल न हो, तो इतने लोग कब तक भटके रहें--कैसे भटके रहें! कुछ तो होना ही चाहिए। कन थोरे काँकर घने। माना कि कंकड़-पत्थर बहुत हैं, लेकिन यहाँ थोड़ी-थोड़ी सुख की भी बूँदें पड़ती हैं; ऐसा नहीं कि नहीं पड़तीं। इसको मैं कहता हूँ : बड़ी निष्ठा, बड़ी ईमानदारी। नहीं तो सहज यही होता है मन में कि अब क्या रखा है संसार में! सब व्यर्थ; सब दुःख।

इस दृष्टि से मलूकदास के वचनों में बुद्ध के वचनों से भी ज्यादा सचाई है। बुद्ध कहते हैं--सब दुःख है : जन्म दुःख, जरा दुःख, जीवन दुःख, मरण दुःख--सब दुःख। यहाँ दुःख ही दुःख है।

यह अतिशयोक्ति है। यह बात सच नहीं है। शायद उन्होंने करुणावश ही कही है; शायद तुम्हें देख कर कही है—कि तुमसे अगर यह कहा जाय कि थोड़ा भी यहाँ सुख है, तो शायद तुम उस थोड़े के लिए अटके रह जाओ। तुम कहो : थोड़ा तो है न! तो फिर ठीक है। चलो, कन थोरे काँकर घने, तो कांकर अलग कर देंगे और कन-कन भोग लेंगे। तो ठीक से फटकेंगे, पछोरेंगे; तो बाबा मलूकदास, दिखता है : आपने ठीक से नहीं फटका-पछोरा! हम बीन लेंगे--ठीक से बीन लेंगे। कंकड़ कंकड़ अलग कर देंगे, कन कन बीन लेंगे सुख के और मजा कर लेंगे। तो छोड़ने की क्या जरूरत है?

शायद बुद्ध ने इस करुणावश, इस बात को ध्यान में रखकर कहा होगा : सब दुःख है। लेकिन यह बात सच नहीं है। यहाँ सब दुःख नहीं है; थोड़ा-थोड़ा सुख भी है। उसी सुख के सहारे तो दुःख चल रहा है। अगर दुःख ही दुःख हो, तो सभी के सभी आदमी एकदम छलाँग लगाकर बाहर हो जायें।

यहाँ कुछ न कुछ सुख की प्रतीति होती है। झलक ही सही, मगर मिलती है। क्षण भर को सही, मगर सुख उतरता है। पूरा सूरज न भी आता हो, तो भी किरण आती है। और उसी किरण की आशा में आदमी बँधा रह जाता है। उसी एक किरण के सहारे सोचता है कि किरण आ गई, तो कल सूरज भी आ जायेगा। कण आया, तो सागर भी आ जायेगा। थोड़ी प्रतीक्षा करो; थोड़ा और श्रम करो; थोड़ा और आयोजन करो।

लेकिन मलूकदास का वचन सत्य के प्रति बिलकुल साफ है। वे कहते हैं : ऐसा नहीं है कि नहीं ही यहाँ सुख हैं; कन थोरे कांकर घने—लेकिन कंकड़ बहुत हैं; इतने ज्यादा हैं कि इतने थोड़े से कणों के लिए इतने कंकड़ झेलना नासमझी है।

और फिर अगर इनके जरा ऊपर उठो, तो आनन्द ही आनन्द है--जहाँ कंकड़ हैं ही नहीं।

एकाध फूल कभी, और हजारों-लाखों काँटे हैं। इस एक फूल के लिए इतने काँटे झेलना बुद्धिमानी नहीं है। फूल है; मगर एकाध और कभी कभार।

तुम जरा सोचो : तुम्हारी जिन्दगी में कब सुख आया? पीछे लौट कर देखो। पचास साल जी लिए, चालीस साल जी लिए, कब सुख आया? धोखा मत देना; क्योंकि ऐसा मान मत लेना कि फलाँ दफा आया था। नहीं, गौर से ही देख लेना। क्योंकि आदमी धोखा देने में भी कुशल है। वह सोचता है : देखो, उस बार आया था,

इस बार आया था। सिर्फ इसलिए कह लेता है, ताकि अपने सामने कम से कम अपनी बुद्धिमानी तो बनी रहे; नहीं तो बड़े मूरख हो जायेंगे--कि पचास साल जिये और सुख आये ही नहीं! तो क्या कर रहे थे? तो क्यों सिर मारते रहे पचास साल?

मेरे पास लोग आते हैं। कोई कहता है कि 'मैं बीस साल से संन्यासी हूँ। योग साधता, ध्यान साधता।' मैं उनसे पूछता हूँ: 'कुछ मिला?' वे कहते हैं: 'हां, कुछ कुछ मिला।' मैंने कहा: 'ईमानदारी से...?' क्योंकि बीस साल जिसने योग साधा है, वह यह भी तो नहीं कह सकता कि कुछ नहीं मिला, नहीं तो बीस साल क्या...! बिलकुल जड़बुद्धि हो? क्या कर रहे थे बीस साल?

नहीं, वह कहता है: 'कुछ कुछ।' और जब मैं उसे कुरेदता हूँ, खोदता हूँ, तो थोड़ी देर में वह कह देता है कि 'नहीं, मिला तो कुछ भी नहीं।' फिर क्यों कहते हो कि 'कुछ-कुछ?'

तुम जरा लौट कर देखना अपने पीछे। पचास साल जी लिए कि साठ साल जी लिए, इसमें कितने क्षण आये थे, जिनको तुम सुख के कह सकोगे? और जो भी क्षण तुम्हें मालूम पड़े कि सुख के थे, उनकी खूब जाँच-परख करना; सब तरफ से घूम कर जाँच-परख करना। थे--या मान लिये थे? शायद कभी तुम एकाध दो क्षण पाओ। तब तुम्हें बाबा मलूकदास का वचन समझ में आयेगा। और उन थोड़े से क्षणों के लिए तुमने कितने काँटे झेले हैं! कितना दुःख पाया है! दोनों में कोई अनुपात नहीं है।

ऐसा ही समझो कि एक आदमी हजारों मील चले मरुस्थल में और फिर एक घास के पत्ते पर एक ओस की बूंद मिले पीने को। जरा चख भी न पाये कि गई! जीभ से लगी नहीं कि गई। कंठ तक भी न पहुँच पायेगी। एक बूंद कहाँ तक तक पहुँचेगी! बस, जरा-सा स्वाद आया, खयाल आया और गया!

संभोग में ऐसा ही सुख है। धन-पद-प्रतिष्ठा में ऐसा ही सुख है। श्रम तो बहुत है; श्रम के अनुपात में कुछ भी नहीं मिलता। मगर है। मलूकदास की सत्य के प्रति निष्ठा अपूर्व है। कहते हैं: मगर है।

> जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोर।
> कन थोरे काँकर घने, देखा फटक पछोर।।
> मलूक कोटा झांझरा, भीत परी भहराय।
> ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आय।।

'मलूक कोटा झांझरा...।' और मलूक कहते हैं: इन सब थोड़े से कणों की खोज में मैं झांझरा हो गया, जर्जर हो गया। 'मलूक कोटा झांझरा'--यह जो

मलूक नाम का मकान था, यह खण्डहर हो गया। दौड़ते-धापते आपा-धापी में मिला कुछ भी नहीं, हाथ कुछ भी न लगा। थोड़े सपने थे, कि थोड़ी झलक आई; दुःख बहुत भोगा।

'मलूक कोटा झांझरा...।' और अब हालत यह है कि मैं सिर्फ एक खण्डहर हो कर रह गया हूँ। 'भीत परी भहराय'--और दीवालें गिरनी जाती हैं। 'ऐसा कोई ना मिला...।' और इस पूरे संसार में मित्र थे, सगे थे, सम्बन्धी थे, अपने थे--'ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आय।' और ये जो भीत गिरती जा रही हैं, दीवालें गिरती जा रही हैं, यह जो भवन खण्डहर होता जा रहा है, ऐसा कोई भी न मिला, जो इस खण्डहर को फिर सहारा दे दे और उठा ले।

> रूप की इस काँपती लौ के तले
> यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?
> नील-सर में नींद की नीली लहर
> खोजती है भोर का तट रात-भर
> किन्तु आता प्रात जब जाती उषी
> बूंद बन कर हर लहर जाती बिखर
> प्राप्ति ही जब मृत्यु है अस्तित्व की
> यह हृदय-व्यापार कितने दिन चलेगा?
> रूप की इस काँपती लौ के तले
> यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?
> विश्व-भर में जो सुबह लाती किरण
> साँझ देती है वही तम को शरण
> ज्योति सत्य, असत्य तम फिर भी सदा
> है किया करता दिवस निशि को वरण
> सत्य भी जब थिर नहीं निज रूप में
> स्वप्न का संसार कितने दिन चलेगा?
> रूप की इस काँपती लौ के तले
> यह हमारा प्यार कितने दिन चलेगा?

हम सभी जर्जर होते जाते हैं। रोज-रोज मौत करीब आती जाती है। जिनको तुम जन्म-दिन कहते हो, वे तुम्हारे मौत के पड़ाव हैं। एक जन्म-दिन आया, एक साल और रिक्त हो गया; हाथ से और इतना समय जा चुका। रोना चाहिए जन्म-दिन पर; उत्सव मनाते हो! जिन्दगी कम हो गई। जीवन बढ़ता नहीं--जन्म-दिन पर। उतना और जीवन कम हुआ।

मौत रोज करीब आती है! प्रतिपल करीब आती है। यहाँ कुछ मिलने को नहीं है। मिलता है जो, वह बहुत सपने जैसा है; इन्द्रधनुषों जैसा है। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं; पास जाकर सब व्यर्थ हो जाते हैं। मिलता कुछ भी नहीं, जीवन खोता चला जाता है। और यह कुछ समय ऐसा है कि दुबारा इसे लौटाया न जा सकेगा। और यह जो खण्डहर एक बार खण्डहर हो गया, तो हो गया।

इसके पहले कि तुम खण्डहर हो जाओ, इस मकान को परमात्मा का मन्दिर बना लो। उसके साथ शाश्वत जीवन हो सकता है--उसके साथ ही शाश्वत जीवन हो सकता है। और तो सब जीवन क्षण-भंगुर है।

> मत करो प्रिय! रूप का अभिमान
> कब्र है धरती, कफन है आसमान।
> हर पखेरू का यहाँ है नीड़ मरघट पर
> है बंधी हर एक नैया मृत्यु के तट पर
> खुद बखुद चलती हुई यह देह अर्थी है
> प्राण है प्यासा पथिक संसार-पनघट पर
> किसलिए फिर प्यास का अपमान?
> जी रहा है प्यास पी-पी कर जहान।
> मत करो प्रिय! रूप का अभिमान
> कब्र है धरती, कफन है आसमान।
> रंक-राजा, मूर्ख-पण्डित, रूपवान-कुरूप
> सांझ के आधीन सबकी जिन्दगी की धूप
> आखिरी सबकी यहाँ पर है चिता ही सेज
> धूल ही श्रृंगार अंतिम अन्त-रूप अनूप
> किसलिए फिर धूप का अपमान?
> धूल हम, तुम, धूल है सबकी समान।
> मत करो प्रिय! रूप का अभिमान।
> कब्र है धरती, कफन है आसमान।
> प्राण! जीवन क्या क्षणिक बस साँस का व्यापार
> देह की दूकान जिस पर काल का अधिकार
> रात को होगा सभी जब लेन-देन समाप्त
> तब स्वयं उठ जायेगा यह रूप का बाजार
> किसलिए फिर रूप का अभिमान?
> फूल के शव पर खड़ा है बागबान।

> मत करो प्रिय! रूप का अभिमान
> कब्र है धरती, कफन है आसमान।

जीवन को देखो। सुख से भागो मत; सुख के भीतर गहरी आँख डालो, तो तुम पाओगे: दुख बहुत, सुख ना कुछ। इतने से सुख के लिए इतना दुःख झेलना कुछ बुद्धिमानी नहीं है।

मौत बहुत--जीवन ना कुछ। जीवन तो ऐसा, जैसी छोटी-सी किरण; और मौत ऐसी, जैसी अँधेरी रात। इतनी अँधेरी रात में, इतनी-सी किरण के लिए जीने का कोई प्रयोजन नहीं है। यह बहुत मूल्य चुकाना हो रहा है।

और फिर जब यह देह जर्जर हो जायेगी, और जब कोई सहारा देने वाला न मिलेगा, तब तुम परमात्मा को पुकारोगे भी। लेकिन अकसर बहुत देर हो गई होती है। क्योंकि परमात्मा को पुकारने के लिए भी जो ऊर्जा चाहिए, वह भी समाप्त हो गई होती है। उस ऊर्जा को तो धन को पुकारने में लगा दिया; पद को पुकारने में लगा दिया; पत्नी और पति को पुकारने में लगा दिया। उस ऊर्जा को तो न्योछावर कर दिया--व्यर्थ में। और जब परमात्मा को पुकारने की घड़ी, तुम सोचते हो: आई, तब ऊर्जा नहीं बचती; पंख टूट गये; अब उड़ने की क्षमता नहीं रही।

लोग बूढ़े हो कर धर्म की तरफ जाते हैं। तुम मंदिरों और मसजिदों में बूढ़े बूढ़ियों का देखोगे। यह आकस्मिक नहीं है। जवान वहाँ दिखाई नहीं पड़ते। और जहाँ जवान न दिखाई पड़े, समझना कि वहाँ धर्म वास्तविक नहीं हो सकता। जवान ही दिखाई पड़े जहाँ, वहीं समझना कि धर्म जीवन्त है।

जब बुद्ध चले पृथ्वी पर तो जवानों ने संन्यास लिया: जब महावीर चले पृथ्वी पर, तो युवक आये और संन्यस्त हुए। जो बूढ़े भी आये, वे बहुत युवा-मन लोग थे; वे भी बूढ़े नहीं थे। लेकिन बड़ी मात्रा युवकों की थी।

जब भी धर्म जीवन्त होता है, तो युवक को आकर्षित करता है। युवक के पास क्षमता है, ऊर्जा है; अभी सब विकृत नहीं हो गया है; अभी कुछ पूंजी बची है। और पूंजी को परमात्मा के लिए दाँव पर लगाया जा सकता है।

एक बात खयाल रखना:

> जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
> स्वर्ग भी गर धरा पर मिले व्यर्थ है।

एक बात खयाल रखना: परमात्मा न मिला, तो कुछ भी मिल जाय, व्यर्थ है।

> जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
> स्वर्ग भी गर धरा पर मिले व्यर्थ है।

दीप को रात भर जल सुबह मिल गई
चिर कुमारी उषा की किरन-पालकी
सूर्य ने चल दिवस भर अगिन-पन्थ पर
रात, लट चूम ली चाँद के भाल की
जिन्दगी में सभी को सदा मिल गया
प्राण का गीत औ' सारथी राह का
एक मैं ही अकेला जिसे आज तक
मिल न पाया सहारा किसी बाँह का
बेसहारे हुई अब कि जब जिन्दगी
साथ संसार सारा चले--व्यर्थ है।
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।

जिन्दगी भर लोग साथ हैं, और अर्थी में भी सब तुम्हारे साथ जायेंगे मरघट तक; विदा कर आयेंगे। मगर अगर परमात्मा न मिला, तो कुछ भी न मिला। यह सब संग-साथ झूठा है; धोखा है।

बेसहारे हुई अब कि जब जिन्दगी
साथ संसार सारा चले--व्यर्थ है।
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।
नाश के इस नगर में तुम्हीं एक थे
खोजता जिसे मैं आ गया था यहाँ
तुम न होते अगर तो मुझे क्या पता
तन भटकता कहाँ, मन भटकता कहाँ
वह तुम्हीं हो कि जिसके लिए आज तक
मैं सिसकता रहा, शब्द में गान में
वह तुम्हीं हो कि जिसके बिना शत्र बना
मैं भटकता रहा रोज शमशान में
पर तुम्हीं अब न मेरी पियो प्यास तो
ओठ पर भी हिमालय गले--व्यर्थ है
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।
फूल से भी बहुत दिन किया प्यार पर

दर्द दिल का कभी मुस्कराया नहीं
चाँद से भी बहुत मन लगाया मगर
प्राण को चैन मेरे आया कहीं
किन्तु उस रोज तुमने पुकारा कि जब
मैं पड़ा था चिता पर, मगर गा उठा
एक जादू न जाने किया कौन-सा
औ' मुझे रोशनी अब तुम्हीं दो न तो
पास सारे सितारे जले--व्यर्थ हैं
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले--व्यर्थ है।

इस जगत् में जिसे हम जीवन कहते हैं, वह अन्ततः मृत्यु में परिणत हो जाता है। इस जगत् में जिसे हम जीवन कहते हैं, वह मृत्यु ही है छिपी हुई; वह मौत का ही विस्तार है। और परमात्मा में जो आदमी प्रविष्ट होने को राजी होता है, उसे करीब-करीब मरने की तैयारी दिखानी पड़ती है।

पुराने दिनों में जब संन्यास देते थे लोगों को तो उन्हें चिता पर लिटाते थे। चिता सजाते थे। सिर मूँड़ देते थे, जैसा कि मुरदे का मूँड़ देते हैं। नये कपड़े पहनाते थे। नाम बदल देते थे। चिता पर लिटाते थे। गुरु चिता में आग लगाता था और कहता था कि तुम्हारा जो पुराना रूप था, जल गया; तुम मर गये। और उठाता था नये व्यक्ति को कि अब तुम उठो। अब तुम नये हुए।

इसलिए पुराना संन्यासी...। अगर तुम उससे पूछो : किस गाँव के रहनेवाले थे संन्यास के पहले, तो नहीं बतायेगा। वह कहेगा--वह आदमी मर चुका। पूछो : किस घर से आये; क्या तुम्हारा नाम था!--नहीं बतायेगा। वह कहेगा : वह आदमी मर चुका।

एक जीवन है, जिसे हम जीवन कहते हैं, वह मृत्यु ही सिद्ध होता है। एक मृत्यु है--परमात्मा में मृत्यु--जो परम जीवन का द्वार बन जाती है।

मैं पड़ा था चिता पर, मगर गा उठा
किन्तु उस रोज तुमने पुकारा कि जब
एक जादू न जाने किया कौन-सा
आग की गोद में अश्रु मुस्का उठा
औ' रोशनी अब तुम्हीं दो न तो
पास सारे सितारे जलें--व्यर्थ है
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे

स्वर्ग भी गर धरा पर मिले——व्यर्थ है।
खोजने जब चला मैं तुम्हें विश्व में
मन्दिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया
खैर पर यह हुई, उम्र की दौड़ में
खयाल मैंने न कुछ पत्थरों का किया
पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण
बाँह डाली कली ने गले में मचल
एक तस्वीर तेरी लिए किन्तु मैं
साफ दामन बचा कर गया ही निकल
और फिर भी न यदि तुम मिलो तो कहो
जन्म किस अर्थ है, मृत्यु किस अर्थ है।
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले——व्यर्थ है।

इन पंक्तियों ध्यान करना :

खोजने जब चला मैं तुम्हें विश्व में
मन्दिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया।

मन्दिर भटकाते हैं; मसजिद भटकाती है।

खैर पर यह हुई उम्र की दौड़ में
खयाल मैंने न कुछ पत्थरों का किया।

अगर तुम पत्थरों से बच गये, तो तुम सौभाग्यशाली हो।

पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण
बाँह डाली कली ने गले में मचल
एक तस्वीर तेरी लिए किन्तु मैं
साफ दामन बचा कर गया कि निकल।

बहुत उलझनें हैं। बहुत धोखे हैं। बहुत भुलावे हैं। तुम एक परमात्मा की याद को अपने हृदय में सँजोये हुए बचा कर निकलते रहना।

एक तस्वीर तेरी लिए किन्तु मैं
साफ दामन बचा कर गया ही निकल
और फिर भी न यदि तुम मिलो तो कहो
जन्म किस अर्थ है, मृत्यु किस अर्थ है
जब न तुम ही मिले राह पर तो मुझे
स्वर्ग भी गर धरा पर मिले——व्यर्थ है।

एक प्रार्थना तुम्हारे भीतर उठती रहे; जलती रहे एक ज्योति; और तुम उस ज्योति में और प्रार्थना में जीवन के अनुभवों को कसते रहो। देखते रहो——क्या कन है, क्या कांकड़? क्या सार है——क्या असार। क्या चिन्मय है—क्या मृणमय है। क्या व्यर्थ है——क्या अर्थवान।

जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोर।
कन थोरे कांकर घने देखा फटक पछोर।
मलूक कोटा झांझरा, भीत परी भहराय।
ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावै आय।
प्रभुताई को सब मरैं, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय।।

इस अन्तिम सूत्र को हृदय में खूब सम्हाल कर रख लेना।

'प्रभुताई को सब मरैं...।' सभी चाहते हैं कि प्रभुता मिले, पद मिले, सत्ता मिले, इसके लिए मरने को भी तैयार हैं, मारने को भी तैयार है। 'प्रभुताई को मरै न कोय।' लेकिन प्रभु को पाने के लिए कोई चेष्टा करता हुआ नहीं मालूम पड़ना। और सूत्र ऐसा है: 'जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय।।' और जो प्रभु के लिए मरने को तैयार हैं, प्रभुता उसकी दासी हो जा जाती है।

जो प्रभु को पा लेता, वह सब पा लेता। इक साधे सब सधे। जीसस से किसी ने पूछा है: 'मैं क्या करूँ कि धनी हो जाऊँ; मैं क्या करूँ कि पदवान हो जाऊँ? तो जीसस ते कहा कि तू एक काम कर——सीक यी फर्स्ट द किंगडम ऑफ गॉड दैन ऑल एल्स शैल बी एडेड अन टू यू——तू प्रभु का राज्य खोज और शेष सब अपने आप मिल जायेगा। एक प्रभु को खोज ले, शेष सब अपने से आ जाता है।

उस एक को छोड़ कर हम सब खोजते हैं। सब तो मिलता ही नहीं; वह जो एक अपना था और मिल सकता था, वह भी खो जाता है।

जीवन को जाग कर जीओ। मलूकदास भगोड़े बनाने के पक्ष में नहीं हैं। इस-लिए उन्होंने कहा: घर में रहै उदासी। हृदय में दया हो, धर्म हो—और अपने ही घर में चुपचाप संन्यस्त हो कर रहे। किसी को बताने की भी कोई जरूरत नहीं है।

भगवान् सब जगह है; तुम्हारे घर में भी उतना ही, जितना काबा और काशी में है। अगर तुमने आँखें खोल कर देखा, तो कहीं भी मिल जायेगा।

एक ही बात याद रखना कि उसे पाना हो, तो अपने को गँवाने की तैयारी रखनी पड़ती है। जो उसे पाना चाहता है, उसे मिटाना होता है।

प्रभुताई को सब मरैं प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय।।

आज इतना ही।

अवधूत का अर्थ • परम्परा का झूठ • परख-बुद्धि
प्रेम का त्याग • आँसू की भाषा
अशान्ति का स्वीकार • पारलौकिक प्रेम

दसवाँ प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक २० मई, १९७७

प्रश्न-सार

- अवधूत का क्या अर्थ है ?
- मलूकदास भक्त हो कर भी मूर्तिपूजा का मजाक क्यों उड़ाते हैं ?
- कन थोरे काँकर घने की परख-बुद्धि कैसे पायें ?
- प्रेम और त्याग में किसका महत्त्व बढ़कर है ?
- आपसे कैसे कहूँ दिल की बात ? आपको कैसे धन्यवाद दूं ? आंसू बहते हैं !
- जीवन में कोई अभिलाषा पूरी नहीं हुई; विषाद में डूबा हूँ; अब मन कैसे शान्त हो ?
- दूर जा रही हूँ—पता नहीं कब आपके दर्शन हों ! आशीष दें ।

● पहला प्रश्न : आपने बाबा मलूकदास को अवधूत कहा। अवधूत का क्या अर्थ है ?

अवधूत बड़ा महत्त्वपूर्ण शब्द है। अर्थ ऐसा है :

अ का अर्थ है—अक्षरत्व को उपलब्ध कर लेना; जो कभी मिटे नहीं; जो सदा है।

क्षण-भंगुर है संसार——अक्षर है परमात्मा। क्षण-भंगुर को छोड़कर शाश्वत की डोर पकड़ लेनी। शाश्वत का आँचल जिसके हाथ में आ गया, वही अवधूत। यह अवधूत के 'अ' का अर्थ है।

हम तो पकड़े हैं——पानी के बुदबुदों को; पकड़ भी नहीं पाते कि फूट जाते हैं। हम तो दौड़ते हैं मृग-मरीचिका के पीछे। बार-बार हारते हैं, फिर-फिर उठते हैं, फिर-फिर दौड़ते हैं। हम अपनी हारों से कुछ सीखते नहीं। क्षण-भंगुर का भ्रम हम पर बहुत गहरा है।

माया से जो जागे——क्षण की माया से जो जागे, वही अवधूत। यह पहला अर्थ।

व का अर्थ है : जो वरण करे अक्षर को——बात ही न करे। जो अक्षर को सोचे ही नहीं——जिये। जो अमृत को चिन्तन में नहीं——जीवन में जाने। जिसकी श्वास-श्वास में अक्षर का वरण हो जाय। पण्डित न बन जाय, प्रज्ञावान बने।

यह दूसरों की उधार बात न हो——कि अक्षर है। यह अपना निज अनुभव हो; यह स्व-अनुभूति हो।

परमात्मा की बात तो बहुत करते हैं लोग; परमात्मा पर किताबें भी लिखी जाती हैं, लेकिन जो बड़ी-बड़ी किताबें भी लिखते हैं परमात्मा पर, उनके जीवन में भी खोज कर परमात्मा की किरण शायद ही मिले।

परमात्मा का सिद्धांत मनोरम है, और उस सिद्धांत में बड़ी सुविधाएँ हैं, और उस सिद्धांत को फैलाने के लिए काफी उपाय हैं। लेकिन अनुभव ? अनुभव महँगी बात है; सिद्धांत सस्ती बात है।

परमात्मा को वरण तो वही करे, जो अपने को मिटाने को राजी हो। कहा कबीर ने——घर फूँके जो आपना, चले हमारे साथ। जिसकी तैयारी हो, आपने को राख कर लेने की, वही उसे वरण करे। उसके वरण करने में अहंकार का त्याग समाविष्ट है। छोड़ोगे अपने को, तो उसे पा सकोगे।

इसलिए अवधूत का दूसरा अर्थ है : अक्षर की बात ही न करे, अक्षर जिसके रोयें-रोयें में, श्वास-श्वास में समाया हो; अक्षर जिसकी सुगंध हो गया हो, जिसके जीवन का छन्द हो गया हो।

और धू का अर्थ है : संसार को धूल समझे, असार समझे, ना-कुछ समझे। और यह समझ ऊपर-ऊपर न हो। यह समझ ऐसी न हो कि समझे तो ऊपर-ऊपर कि धूल है और भीतर-भीतर धूल को पकड़े। यह समझ वस्तुतः हो। यह परिधि से लेकर केन्द्र तक फैल जाय। यह प्राणों के प्राण में समाविष्ट हो जाय। यह समझ जागने में रहे; उठने-बैठने में रहे; मन्दिर में रहे, बाजार में रहे; हर घड़ी रहे। यह तुम्हारी छाया की तरह हो जाय——कि संसार धूल है। यह अवधूत का तीसरा अर्थ है। और स्वभावतः जो जानेगा कि परमात्मा सत्य है, वह जान ही लेगा कि संसार धूल है। ये दोनों बातें एक साथ घटती हैं। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

तो संसार को धूल समझे—वह अवधूत।

और चौथा अर्थ है : तत्त्वमसि; त का अर्थ है——तत्त्वमसि। जो ऐसा ही न समझे कि मैंने परमात्मा को जाना, जो ऐसा ही न समझे कि मैं परमात्मा को जीता हूँ, जो ऐसा ही न समझे कि मैं परमात्मा हूँ, बल्कि समझे कि सभी—प्रत्येक परमात्मा है। जो प्रत्येक को कह सके कि तुम भी वही हो।

नहीं तो परमात्मा का अनुभव भी बड़ा अहंकार का आधार बन सकता है। मैं कहूँ कि मैं परमात्मा हूँ, तुम परमात्मा नहीं हो, तो यह खबर होगी कि मैं अवधूत नहीं। जो कहे : मैं परमात्मा हूँ और दूसरा परमात्मा नहीं, उसे कुछ भी नहीं दिखा; उसकी आँखें अन्धी हैं; उसके कान बहरे हैं। उसने न सुना है, न देखा है। उसने परमात्मा के सहारे अपने अहंकार की यात्रा शुरू की है।

तो अवधूत का चौथा अर्थ है——तत्त्वमसि——तुम भी वही हो। और तुममें——ध्यान रहे——सब समाविष्ट है; पत्थर-पहाड़, वृक्ष-पौधे-पक्षी, स्त्री-पुरुष सब समाविष्ट है। यह जो त्वम् है, यह जो तू है, इस 'तू' में मुझसे अतिरिक्त सब समाविष्ट है।

तो मैं परमात्मा हूँ——ऐसा जो जाने और साथ ही ऐसा भी जाने कि परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है—ऐसी चित्त-दशा का नाम है अवधूत। यह

शब्द बड़ा प्यारा है।

● दूसरा प्रश्न : बाबा मलूकदास भक्त हैं और मूर्तिपूजा का मजाक उड़ाते हैं। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि भक्ति परंपरा ने ही मूर्तिपूजा को सर्वाधिक प्रतिष्ठा दी है?

परंपरा ने दी है--भक्तों ने नहीं। और परंपरा धर्म नहीं है। परंपरा तो, जहाँ से धर्म गुजर गया, वहाँ धूल पर पड़े चरण-चिन्हों का नाम है। जहाँ से धर्म कभी गुजरा था, वहाँ लकीरें छूट गई हैं, उन लकीरों का नाम परंपरा है।

हम चल कर आये, रास्ते पर तुम्हारे चरण-चिन्ह छूट गये। वे चरण-चिन्ह तुम नहीं हो। तुम तो दूर, तुम्हारे चरण-चिन्ह में तुम्हारा जूता भी नहीं है--जिसके कि चिन्ह बने हैं; वह भी चला आया है। खाली धूल पर पड़े निशान रह गये हैं, उन निशानों से परंपरा बनती है। चरण-चिन्हों से परंपरा बनती है।

धर्म तो जीवंत घटना है। धर्म तो सदा वर्तमान में है। धर्म का कोई अतीत नहीं है और धर्म का कोई भविष्य नहीं है। धर्म तो अभी है--यहाँ है।

मलूकदास जब जीवित हैं, तब धर्म है। जब मलूकदास जा चुके और उनके चरण-चिन्हों की लोग पूजा करने लगे--तब परंपरा है।

परंपरा धर्म-विरोधी होती है। धर्म की कोई परंपरा हो ही नहीं सकती। क्योंकि धर्म और परंपरा विपरीत घटनाएँ हैं। परंपरा होती मृत की और धर्म है सदा जीवंत। जीवंत को कैसे परंपरा होगी?

धर्म है--सदा उपस्थित और परंपरा उसकी होती है, जो कभी था उपस्थित और जा चुका।

कठिनाई ऐसी है कि जैसे दीया जलता हो, और फिर दीया बुझ जाय। और फिर तुम बुझे दीये की पूजा करते रहो। जलता दीया तो बाबा मलूकदास; बुझा दीया--परपरा।

अब तुम बुझे दीये की पूजा करते रहो।

ऐसा समझो कि बाबा मलूकदास को तुमने जलते दीये के आसपास नाचते देखा। तुम्हें तो ज्योति दिखाई नहीं पड़ती दीये की, क्योंकि तुम अन्धे हो। तुम तो टटोल कर देखते हो, तो तुम्हें दीया पकड़ में आता है; ज्योति तो पकड़ में आती नहीं। ज्योति को तो आँख से ही देखने का उपाय है। और तुम्हारी आँख भीतर की बंद है और यह भीतर की ज्योति की बात हो रही है।

तो तुम टटोल कर देख लेते हो कि बाबा मलूकदास किसलिए नाच रहे हैं; क्या मामला है; किस चीज के आसपास नाच रहे हैं? दीया पकड़ में आता है। फिर बाबा मलूकदास चले गये, अब तुम दीये के आसपास नाच रहे हो।

एक शराबी रात देर से घर लौटा। रास्ते में बड़ी झंझटें आईं। दीवालों से टकरा गया; चलते लोगों से टकरा गया; राह पर खड़े भैंस-बैलों से टकरा गया। बार-बार उसने अपनी लालटेन उठा कर देखी; उसने कहा : 'बात क्या है!' साथ में लालटेन लिए है। फिर एक नाली में गिर पड़ा--अपनी लालटेन सहित; कोई उसे उठाकर उसके घर पहुँचा गया।

दूसरे दिन सुबह बैठा है; कुछ-कुछ धुंधली-धुंधली याद आ रही है रात की। सिर में भी चोट है; पैर में भी चोट है। वह सोच रहा है कि मामला क्या हुआ! लालटेन मेरे हाथ में थी, मैं इतना टकराया क्यों? और तभी शराबघर का मालिक आया और उसने कहा कि 'भई, यह तुम्हारा लालटेन लो। तुम कल शराबघर में छोड़ आये थे। तुम मेरा तोते का पिंजड़ा उठा लाये। मेरा तोते का पिंजड़ा कहाँ है?'

अब शराबी आदमी; बेहोशी में हो गया। लालटेन जैसा ही जँचा होगा--तोते का पिंजड़ा। पकड़ने में भी लालटेन जैसा मालूम पड़ा होगा। चल पड़ा!

बेहोशी में तुम जो पकड़ लेते हो, उससे बनती है परम्परा। होश में तुम जो जानते हो, वह है धर्म।

धर्म की कोई परम्परा नहीं होती। परम्परा में कोई धर्म नहीं होता। इसलिए हिन्दू को मैं धार्मिक नहीं कहता? मुसलमान को धार्मिक नहीं कहता। ईसाई को, जैन को धार्मिक नहीं कहता। धर्म का इनसे क्या सम्बन्ध! ये तो तोते के पिंजड़े हैं।

महावीर के हाथ में लालटेन थी; जैन के हाथ में तोते का पिंजड़ा है। कृष्ण के हाथ में लालटेन थी; हिंदू के हाथ में तोते का पिंजड़ा है। अब तुम तोते के पिंजड़े की कितनी ही पूजा करो; लाख नाचो, गीत गाओ; तोते का पिंजड़ा, तोते का पिंजड़ा है; उससे प्रकाश नहीं मिल सकता। उसमें प्रकाश नहीं है।

ऐसा हुआ : सूफी फकीर बायजीद किसी गाँव से गुजरता था। अनूठा फकीर था बायजीद। उसने देखा कि उसके पीछे ही उसके चरण-चिन्हों पर--ठीक चरण-चिन्हों पर पैर रखता हुआ एक युवक चला आ रहा है। इधर-उधर पैर नहीं रखता! जहाँ-जहाँ बायजीद के चरण पड़ते हैं, वहीं पैर रखता है। बायजीद बायें मुड़ता, तो वह बायें मुड़ता है, बायजीद दायें मुड़ता है, तो वह दायें मुड़ता है। थोड़ा उसका मजा लेने के लिए बायजीद काफी गोल-गोल चलने लगा। मगर वह युवक भी धुन का पक्का है। वह ठीक पीछे लगा है--छाया की तरह। वह ठीक चरण-चिन्हों पर ही पैर रखता है!

अन्त में उसने बायजीद से कहा कि 'देखते हैं, आपके चरण-चिन्हों पर चल रहा हूँ; बड़ा आनन्द मिला। आपके सत्संग से बड़ा रस आया। अब एक काम करें; आपके कपड़े का एक टुकड़ा मुझे फाड़ कर दे दें, उसकी मैं ताबीज बना लूंगा।'

बहुत से देशों में ऐसा खयाल है कि सन्त के कपड़े का टुकड़ा मिल जाय, तो ताबीज बन जायेगा। सन्त मिलने को तैयार है, तुम कपड़ा ही माँग कर आ जाते हो! जहाँ हीरे मिल सकते थे, वहाँ तुम कौड़ी माँग कर आ जाते हो। तुम बड़े दया योग्य हो।

अब यह बायजीद के पास पहुँच गया है। बायजीद से तो जो मिल सकता है इस जीवन में, वह सब मिल सकता था; मगर यह माँग रहा है कपड़े का एक टुकड़ा--कि एक कपड़े का टुकड़ा दे दो। बायजीद ने कहा कि 'सुन, तू कपड़े का टुकड़ा क्या, अगर मेरे चमड़े का टुकड़ा भी ले जाय, तो भी ताबीज न बनेगा; बदबू आयेगी उस ताबीज में। मेरे चमड़े के टुकड़े से मेरा क्या सम्बन्ध। मेरा सम्बन्ध नहीं मेरे चमड़े से, तो मेरे कपड़े से तो मेरा क्या सम्बन्ध है! पागल हुआ है?'

लेकिन वह युवक जिद्द पर अड़ा रहा। उसने कहा: 'नहीं; आपका आशीर्वाद तो चाहिए ही।' बायजीद ने कहा: 'मेरा आशीर्वाद चाहिए हो, तो मेरी सुन। मैं जो कहता हूँ, उसको सुन। मेरा आशीर्वाद चाहिए हो, तो मेरे पैरों के चिन्हों पर चलने से कुछ न होगा; मैं जिस दिशा में इशारे कर रहा हूँ, उस दिशा में आँखें उठा। मेरा आशीर्वाद चाहिए, तो कुछ मुझ जैसा बन। नकल करने से कुछ भी न होगा।'

हम कार्बन कापियां बन गये हैं। हमारा मूलस्वर खो ही गया है।

परम्परा का अर्थ होता है--प्रतिलिपि। प्रतिलिपि का कोई मूल्य नहीं है। मूल्य तो मूल का है। धर्म जब भी होता है जगत् में, तब किसी व्यक्ति के हृदय में झरने की तरह बहता है। हाँ, बुद्ध होते हैं, तो होता है। महावीर होते हैं, तो होता है। जीसस होते हैं, तो होता है। नानक होते हैं, तो होता है। मलूक, फरीद...।

जब कोई व्यक्ति जीवितरूप से परमात्मा को अपने भीतर जीता है, तो धर्म होता है। फिर वह आदमी तो चला जाता है; फिर लकीर पीटनेवाले आते हैं और अकसर ये लकीर पीटने वाले बड़े कुशल लोग होते हैं--पण्डित, पुरोहित। ये बड़ा शब्दों का जाल बिछाते हैं। ये बड़े सिद्धान्त और तर्क फैलाते हैं। असली बात तो जा चुकी; अब बात में से बात निकालते रहते हैं। हाथ में तो कुछ भी न रहा, राख रह गई। लेकिन राख के आधार पर सोचते रहते हैं कि जहाँ-जहाँ राख है, वहाँ-वहाँ अँगारा भी होगा। जहाँ-जहाँ धुआँ है, वहाँ-वहाँ आग भी होगी। इस तरह के हिसाब लगाते रहते हैं।

धर्म परंपरा नहीं है; धर्म संस्कार नहीं है।

तो यह बात ठीक है कि मलूकदास भक्त हैं और मूर्तिपूजा का मजाक उड़ाते हैं।

सिर्फ भक्त ही उड़ा सकता है। सिर्फ भक्त में ही इतनी हिम्मत हो सकती है। क्योंकि जिसने परमात्मा को जाना है, वह मूर्ति से थोड़े ही डरेगा। वह मूर्ति को उठा कर फेंक देगा।

तुम डरते हो मूर्ति से, क्योंकि तुम्हें भय लगता है कि कहीं परमात्मा नाराज न हो जाय। परमात्मा को तो तुम जानते नहीं; इसी मूर्ति को जाना है बचपन से। तुम घबड़ाते हो कि कहीं मूर्ति नाराज न हो जाय। मूर्ति क्या खाक नाराज होगी!

झेन फकीर इक्कू एक मंदिर में ठहरा। रात सर्द है और उसने उठा कर बुद्ध की एक लकड़ी की प्रतिमा जला ली। और ताप ली। आधी रात मंदिर में आग जलती देख कर मंदिर का पुजारी घबड़ाया हुआ आया, भागा हुआ आया और उसने कहा: 'तुम पागल हो! तुम यह क्या कर रहे हो? मैंने तो तुम्हें फकीर जान कर मंदिर में रात ठहरा लिया। यह तुमने क्या किया--बहुमूल्य मूर्ति जला दी--भगवान् की मूर्ति जला दी! इसका पाप बड़ा होगा। इसका प्रायश्चित्त भुगतना पड़ेगा।' वह पुजारी तो थर-थर काँप रहा है।

सोच सकते हो तुम: तुमने जिसको भगवान् माना हो, उसको कोई जला कर ताप रहा हो! तुम्हारे कृष्णजी को कोई जला कर ताप रहा हो; कि तुम्हारे रामजी को कोई जला कर ताप रहा हो। तुमने तो बड़ी साज-सँवार की राम जी की। जब जरूरत थी भोजन की--भोजन दिया। जब नींद की जरूरत थी, तब लिटा दिया; कपड़े बदले। पट लगा दिये कि अभी रामजी सो रहे हैं; अभी कोई बाधा न डालो। और यह नासमझ राम जी को जलाये बैठा है!

पुजारी तो थर-थर काँप रहा है। सर्द रात है, लेकिन उसके माथे से पसीना चू रहा है। वह कह रहा है कि 'मेरी भी भूल हो गई कि तुम्हें मैंने ठहराया। तुम्हारे इस पाप में मैं भी भागीदार हो गया। यह महापाप है।'

इक्कू हँसता है। और एक लकड़ी उठा कर जो बुद्ध की मूर्ति जल गई है, अब सिर्फ राख रह गई है, उस राख में कुरेदता है। वह पुरोहित पूछता है: 'क्या कर रहे हो अब यह?' वह कहता है: 'मैं जरा भगवान् की अस्थियाँ खोज रहा हूँ।' 'अस्थियाँ?' वह पुरोहित कहता है: 'तुम बिलकुल पागल हो। अरे, लकड़ी की मूर्ति में कहाँ अस्थियां?' तो इक्कू कहता है: 'फिर तुम भी जानते हो कि लकड़ी की मूर्ति है। अस्थियाँ नहीं तो भगवान् कहाँ? अभी रात बहुत बाकी है और तुम्हारे मंदिर में बहुत मूर्तियाँ हैं, दो-एक और उठा लाओ। मैं तापता हूँ, तुम भी तापो।'

यह इक्कू की ही हिम्मत हो सकती है। यह जो भगवान् को जानता है, यह जो बुद्ध को जानता है, आमने-सामने पहचानता है, जिसका साक्षात्कार हुआ है, यह

डरेगा--लकड़ी-पत्थर से? यह भयभीत होगा? यह प्रश्न ही नहीं उठता।

हम भयभीत होते हैं, क्योंकि हमें असली का तो परिचय नहीं; नकली भी हमें डराता है। सच तो यह है कि असली से हम डरते ही नहीं; नकली से ही डरते हैं। असली से तो हमारी मुलाकात ही नहीं। अगर भगवान् तुम्हारे सामने आ कर खड़ा हो जाय, तुम उससे न डरोगे; पक्का मानो, तुम न डरोगे। क्योंकि तुम उसे पहचानोगे ही नहीं। न तो वह होगा--धनुर्धारी राम जैसा। न होगा वह--मोर-मुकुट बाँधे कृष्ण जैसा। तुम उसे पहचानोगे ही नहीं। तुम तो धक्का देकर उसको अलग कर दोगे--कि रास्ता छोड़ो, कहाँ बीच में खड़े हो!

तुम तो उनको पहचानोगे, जो तुम्हारे झूठ हैं, प्रचलित झूठ हैं।

मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि राम में भगवान् नहीं है। राम में भगवान् कभी झलके थे। उस दीये में ज्योति कभी झलकी थी। जो राम के पास थे, उन्होंने झलक देखी होगी। जिनके पास आँख थी, उन्होंने पहचान लिया होगा। अन्धे तो इनकार करते रहे तब भी--कि 'अरे, इसमें क्या रखा है? दशरथ का बेटा है।'

कृष्ण में कभी भगवान् झलके थे, कभी वह परम ज्योति, परात्पर ज्योति उतरी थी उस दीये में; वह मिट्टी धन्य हुई थी। कृष्ण तो मिट्टी हैं, लेकिन उस मिट्टी में कभी परमात्मा की सुगंध आई थी। जिनके पास नासापुट थे, जिनके पास थोड़ा होश था, वे मगन होकर नाचे थे। लेकिन दूसरों ने तो समझा था--यह कपटी, राजनीतिज्ञ, उपद्रवी। फिर वह ज्योति बिदा हो गई। दीया पड़ा रह गया।

मिट्टी ही पड़ी रह जाती है यहाँ, फिर हम मिट्टी की पूजा करते रहते हैं। हम मिट्टी के मजार बना लेते हैं। फिर मजारों पर हम दीये जलाते रहते हैं। हजारों साल बीत जाते हैं, चरण-चिन्हों की पूजा करते रहते हैं।

मैंने सुना है कि राम जब युद्ध विजय के बाद आयोध्या लौटे, राजगद्दी पर बैठे, तो उन्होंने एक बड़ा दरबार किया और सभी को पदवियाँ दीं, पुरस्कार बाँटे, जिन-जिन ने भी युद्ध में साथ दिया था। लेकिन हनुमान को कुछ भी न दिया और हनुमान की सेवाएँ सबसे ज्यादा थीं।

सीता बड़े पशोपेश में पड़ी। वह कुछ समझ न पाई कि यह चूक कैसी हुई! छोटे-मोटों को भी मिल गया पुरस्कार। पद मिले, आभूषण मिले, बहुमूल्य हीरे मिले, राज्य मिले। हनुमान--जिनकी सेवाएँ सबसे ज्यादा थीं, उनकी बात ही न उठी। वे कहीं आये ही नहीं बीच में। राम भूल गये! यह तो हो नहीं सकता। राम को याद दिलाई जाय, यह भी सीता को ठीक न लगा। याद दिलाने का तो मतलब होगा: शिकायत हो गई। तो उसने एक तरकीब की--कि कहीं हनुमान

को बुरा न लगे, इसलिए उसने हनुमान को चुपचाप बुला कर अपने गले का मोतियों का बहुमूल्य हार उन्हें पहना दिया। और कहते हैं: हनुमान ने हार देखा, तो उसमें से एक-एक दाना मोती का तोड़-तोड़ कर फेंकने लगे। सीता ने कहा: 'मूर्ख बंदर, अब मैं समझी कि राम ने तुझे क्यों कोई उपहार न दिया। यह तू क्या कर रहा है? ये बहुमूल्य मोती हैं। ये मिलनेवाले मोती नहीं हैं; साधारण मोती नहीं हैं। हजारों साल में इस तरह के मोती इकट्ठे किये जाते हैं, तब यह हार बना है। ये सब मोती बेजोड़ हैं। यह अमूल्य हार पहनने के लिए है। तू यह क्या करता है?'

हनुमान बोले: 'यह हार पत्थर का है। इसे मूर्ख मनुष्य भला गले में पहन सकते हों, मैं तो रामनाम को ही पहनता हूँ। और मैं एक-एक मोती को चख कर देख रहा हूँ, इसमें रामनाम का कहीं स्वाद ही नहीं है। इसलिए फेंकता जा रहा हूँ।

शायद राम ने इसीलिए कोई पुरस्कार हनुमान को नहीं दिया। क्योंकि हनुमान के हृदय में तो राम थे। पुरस्कार तो प्रतीक होगा। जिसके पास राम हैं, उसे क्या पुरस्कार?

जिसने प्रभु की थोड़ी-सी पहचान पाई है, उसे प्रतिमा की जरूरत नहीं है; उसे मंदिर की जरूरत नहीं है; उसे पूजा-पाठ की जरूरत नहीं है। तब तो मलूकदास कहते हैं कि 'राम का नाम भी नहीं लेता मैं। अपनी मस्ती में मस्त हूँ। अब तो राम मेरा नाम लेता है।

यह बात सच है कि बाबा मलूकदास भक्त हैं--परम भक्त हैं; बेजोड़ भक्त हैं, फिर भी मूर्तिपूजा का मजाक उड़ाया है। भक्त ही उड़ा सकता है, क्योंकि भक्त जानता है: मूर्ति में कहाँ भगवान्! और कब तक तुम मूर्ति में उलझे रहोगे? तुम्हें चौंकाने को मजाक उड़ाया है। तुम्हें झकझोरने को मजाक उड़ाया है। सन्त पुरुष तुम्हें जगाना चाहते हैं, इसलिए मजाक उड़ाया है। इसमें कुछ भगवान् के प्रति निन्दा नहीं है।

इक्कू ने जो बुद्ध की मूर्ति जलाई थी, तुम सोचते हो उसमें भगवान् के प्रति निन्दा है? ज़रा भी नहीं है। क्योंकि यही इक्कू दूसरे दिन सुबह राह के किनारे हाथ जोड़े हुए बैठा है--मील के पत्थर के सामने। फूल चढ़ा रहा है--मील के पत्थर पर। पुजारी ने कहा कि 'तू बिलकुल ही पागल है। रात तूने भगवान् की मूर्ति जला दी, अब मील के पत्थर पर...! यह मील का पत्थर है नासमझ, इस पर कहाँ फूल चढ़ा रहा है!' उसने कहा: 'जब भाव चढ़ाने का होता है, तो कहीं भी चढ़ा दो, उसी के चरणों में पहुँच जाते हैं।'

एक तरफ मूर्ति जला देता है भक्त, दूसरी तरफ मील के पत्थर पर फूल चढ़ा

देता है भक्त। भक्त की अनूठी दुनिया है। वह प्रेम की दुनिया है। वह अपूर्व जगत् है।

हम जहां से सोचते हैं, वहां से हमें विरोधाभास दिखाई पड़ सकता है और हमें यह भी लग सकता है कि भक्त परम्परा ने ही तो मूर्तिपूजा को सर्वाधिक प्रतिष्ठा दी है, फिर यह कैसा मजाक?

भक्त ने मूर्ति में भी भगवान् को देखा है, क्योंकि भगवान् ही सब जगह है। फर्क समझ लेना।

भक्त को तो मूर्ति में भी भगवान् है, क्योंकि भगवान् के अतिरिक्त तो कुछ और कहीं भी नहीं है। सभी कुछ भगवान् है। इसलिए तुम्हारे मन्दिर की मूर्ति में भी भगवान् है।

मलूकदास यह नहीं कह रहे हैं कि मूर्ति में भगवान् नहीं है। मलूकदास इतना ही कह रहे हैं कि मूर्ति में भगवान् है--ऐसी भ्रांति में मत पड़ना, नहीं तो चूक जाओगे। भगवान् ही है सब जगह है; तो मूर्ति में भी है। लेकिन फिर मूर्ति के लिए विशेष आयोजन की कोई जरूरत नहीं है।

जिसको भगवान् दिखा, उसे मूर्ति में भी दिखाई पड़ जायेगा। और जिसे मूर्ति में ही दिखाई पड़ता है, उसे तो दिखाई ही नहीं पड़ा है अभी, तो मूर्ति में कैसे दिखाई पड़ेगा?

नानक को काबा में सोया देख कर काबा के मौलवियों ने उठाया और कहा कि 'तुम नासमझ हो। हमने तो सुना है कि बड़ा दार्शनिक आया है भारत से। और तुम पैर किये हो--पवित्र काबा की तरफ! हटाओ यह पैर।'

तो नानक ने कहा: 'ऐसा करो, तुम स्वयं हटा दो, क्योंकि मैं बहुत थक गया हूँ। दिन भर का थका-मांदा हूँ, मुझसे यह पर हटाये न हटेंगे; तुम ही हटा दो। और फिर मैंने सब तरफ पैर करके देख लिए, कोई सार नहीं। सभी तरफ वही है। और पैर कहीं तो करूँगा; भले मानुषों, कहीं तो पैर करूँगा! और सभी तरफ वही है, तो अब मैं करूँ क्या? तुम हटा दो।'

कहानी बड़ी मीठी है कि मौलवियों नें क्रोध में नानक के पैर हटाये और देखा कि जहाँ पैर हटाये, वहीं काबा हट गया।

काबा हटा हो या न हटा हो, यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है। लेकिन यह अंतर्दृष्टि इस कथा में जो है, बड़ी गहरी है।

सब तरफ परमात्मा है, कहाँ पैर करोगे? कहीं तो करोगे; जहाँ करोगे, वहीं परमात्मा है।

ऐसी ही कथा महाराष्ट्र में एकनाथ के बाबत है कि एकनाथ एक मन्दिर में

सोये हैं--शंकर जी की पिण्डी पर पैर टेके हुए! और एक आदमी आया, एक नास्तिक आया। नास्तिक घबड़ा गया। नास्तिक है--और घबड़ा गया! ईश्वर को मानता नहीं; मानता है कि पिण्डी इत्यादि सब पत्थर है। लेकिन फिर भी घबड़ा गया।

नास्तिक के भीतर भी डर तो बना रहता है कि पता नहीं, हो ही। कौन जाने! कहता है--नहीं है, मगर 'नहीं है' कभी पूरा नहीं हो सकता; भीतर सन्देह तो बना रहता है। जैसा तुम्हारे 'है' कहने में सन्देह बना रहता है, ऐसा ही उसके 'नहीं' कहने में भी सन्देह बना रहता है।

सन्देह से छुटकारा इतना आसान नहीं है। और आस्तिक तो कभी सन्देह से मुक्त हो भी जाय, नास्तिक कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसने तो सन्देह के साथ सगाई कर ली है; उसने तो भांवर पाड़ ली है; वह तो सन्देह में मजा लेने लगा है।

तो नास्तिक डर गया! वह आया था कुछ प्रश्न पूछने, जिज्ञासा करने। लोगों ने भेजा था। उसने सोचा: इस आदमी से क्या जिज्ञासा होगी! यह तो मुझसे महानास्तिक मालूम पड़ता है! मैं भी पैर नहीं मार सकता शंकर जी को। जानता हूँ कि कुछ भी नहीं है, मगर पैर मारने में मैं भी डर जाऊँगा। झंझट कौन ले? कौन जाने--कुछ हो ही। पीछे कुछ अड़चन आ जाय।

तो उसने हिलाया एकनाथ को और कहा: 'महाराज मैंने सुना है कि आप महात्मा हैं; आप यह क्या कर रहे हैं? शंकरजी पर पैर टेके हैं?'

तो एकनाथ ने कहा: 'और कहाँ टेकूँ? कहीं तो टेकूँगा। तू कोई ऐसी जगह बता सकता है, जहाँ शंकरजी न हों?'

यह बड़ी गहरी दृष्टि है। यह भक्त की ही संभावना है। यह एकनाथ जैसा भक्त ही शंकर जी के ऊपर पैर टेक सकता है। और मलूकदास जैसा भक्त ही मूर्तिपूजा का मजाक उड़ा सकता है।

इसमें भक्ति का विरोध नहीं है; इसमें भक्ति की घोषणा है।

● तीसरा प्रश्न: 'कन थोड़े कांकर घने' की परख-बुद्धि कैसे पाई जाती है?

बुद्धि तो है ही तुम्हारे पास, तुम उसका उपयोग नहीं कर रहे हो। सुनार के पास देखा है--सोने को कसने का पत्थर। यह तुम्हारी जेब में ही पड़ा है। लेकिन तुम अपने जीवन के सोने को उस पर कसते नहीं। दोनों का मेल नहीं हो पाता।

परख की बुद्धि तुम्हारे पास है; कहीं से लानी होती, तो फिर बहुत मुश्किल थी। परख की बुद्धि तुम्हारे पास न होती तो तुम खोजने भी कैसे जाते? किससे खोजते? कैसे खोजते? कैसे पहचानते?

परख की बुद्धि तुम्हारे पास है, लेकिन तुमने उसका उपयोग नहीं किया है। तुम भी जीवन के उन्हीं अनुभवों से गुजरते हो, जिनसे मलूकदास गुजरे होंगे। तुमने भी क्रोध किया, तुमने भी घृणा की, तुमने भी वैमनस्य किया, तुमने भी शत्रुता साधी, तुमने भी काम-भोग में अपने को उतारा। तुम भी पछताये, तुम भी हारे।

तुम भी उन्हीं अनुभवों से गुजरे, जिनसे मलूकदास गुजरे हैं। कोई अलग अनुभव तुम्हारे नहीं हैं। और मलूकदास के पास जो बुद्धि है, वह तुम्हारे पास भी है। परमात्मा ने इस सम्बन्ध में कोई पक्षपात नहीं किया है।

प्रत्येक के पास बुद्धि है; पर्याप्त बुद्धि है। फर्क क्या है फिर? मलूकदास ने अपनी बुद्धि को अपने जीवन के अनुभव पर लगाया। एक-एक अनुभव को कसा। क्रोध किया, फिर अपनी बुद्धि के साथ कस कर देखा--क्या पाया? कुछ पाया? कुछ मिला मुझे? आगे भी करने जैसा है--कि नहीं करने जैसा है?

तुम कभी कसते नहीं। तुम क्रोध कर लेते हो, फिर भूल जाते हो। तुम इस क्रोध से कुछ अनुभव, कोई सार-संचय नहीं निकालते। यह क्रोध तुम्हारी सम्पदा नहीं बनता, नहीं तो क्रोध भी सीढ़ी बन जाय। एक दफा किया, दो बार किया, तीन बार किया--कितनी बार किया! कुछ भी कभी नहीं पाया। लेकिन यह प्रतीति तुम्हारी गहरी नहीं हो पाई कि कुछ भी कभी नहीं मिला। तो अब जब दुबारा करो, तो थोड़ा झिझक कर करना कम से कम। मैं यह भी नहीं कहता कि मत करना। थोड़े झिझक कर करना। एक क्षण रुक कर करना। एक क्षण विचार कर करना। पहले आँख बंद कर लेना; अपने अतीत के सारे क्रोध के अनुभव को सोच लेना। इतनी बार किया; इतनी बार पछताये। इतनी बार कुछ भी न पाया। अब फिर घड़ी आ गई; अब फिर करने का मौका आ गया; करना है--या नहीं?

गुरजिएफ के दादा की मृत्यु हुई, तो गुरजिएफ का दादा उससे कह गया कि 'मेरे पास तुझे देने को कुछ भी नहीं है; मैं गरीब आदमी हूँ। लेकिन एक चीज मेरे काम बहुत पड़ी जीवन में, तुझे दे जाता हूँ; तुझे भी काम पड़ेगी।'

नौ साल का था गुरजिएफ। उसके दादा ने कहा: 'अभी तू शायद समझ भी न पाये, लेकिन ठीक-ठीक याद कर ले, कभी समझ जायेगा। जब भी तुझे क्रोध आये, तो चौबीस घन्टे का समय माँग लेना। कहना: चौबीस घंटे बाद आ कर करूँगा। कोई गाली दे, तो उससे कहना कि भाई ठीक, तुमने गाली दे दी; मैं चौबीस घंटे बाद आ कर जवाब दे दूँगा।'

गुरजिएफ ने लिखा है कि इस छोटे से सूत्र ने मेरा सारा जीवन बदल दिया। अब चौबीस घंटे बाद कोई क्रोध कर सकता है? यह तो तुरत-फुरत हो जाय तो हो जाय। क्रोध तो ऐसी आग है कि इसी वक्त जल जाय, तो जल जाय। थोड़ी देर

बाद तो तुम्हारी बुद्धि तुम्हें कह देगी कि क्या फिजूल की बातों में पड़े हो? क्या मरने-मारने की बातें सोच रहे हो!

गुरजिएफ ने लिखा है: 'क्रोध तो फिर हुआ ही नहीं। चौबीस घण्टे बाद या तो मुझे यह दिखाई पड़ जाता कि उसने जो कहा, ठीक ही कहा।' जैसे किसी आदमी ने तुम्हें चोर कह दिया। अब तुम लड़ने-मारने को तैयार हो गये। तुम पहले यह भी तो सोचो: हो सकता है--वह ठीक ही कह रहा हो, तो धन्यवाद देना चाहिए। उसने तुम्हें याद दिला दी; वह तुम्हारा मित्र है--शत्रु नहीं है।

तो या तो ठीक कह रहा है, तब तो क्रोध का कोई कारण नहीं है। धन्यवाद देने गुरजिएफ को जाना पड़ता। गलत कह रहा है--बिलकुल गलत कह रहा है; अब जो बिलकुल गलत कह रहा है, उस पर क्या क्रोध करना! झूठ पर कोई क्रोध होता है?

तुमने खयाल किया: तुम्हारे सम्बन्ध में जब कोई ऐसी कोई बात कह देता है, जो कहीं खटकती है, तो उसका मतलब ही यह हुआ कि उसमें कुछ सचाई है। किसी ने तुम्हें चोर कह दिया तो खटकता है। किसी ने तुम्हें झूठा कह दिया, तो खटकता है। क्योंकि तुम जानते हो: झूठ तुम बोले हो। तुम जानते हो: चोरी तुमने की है; न भी की हो, तो कम से कम सोची है; करने के इरादे किये हैं।

खटकती है वही बात, जो सच होती है। तुम जब, कोई तुम्हारा अपमान करता है और क्रोधित हो जाते हो, तो तुम्हारे क्रोध से यही प्रमाण मिलता है कि उसने जो कहा, ठीक ही कहा था।

तो या तो ठीक ही कहा होगा, तो धन्यवाद दे आना। या व्यर्थ ही कहा होगा, तो दया आयेगी कि बेचारे ने नाहक मेहनत की। कितना उतावला हो गया था! मरने-मारने को उतारू हो गया था--एक झूठ के लिए, जिससे मेरा कोई संबंध नहीं है; जो उसने किसी और के लिए कहा होगा; मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है। तब भी बात समाप्त हो गई।

तुमने क्रोध तो बहुत बार किया, लेकिन परख की बुद्धि का उपयोग नहीं किया। और परख की बुद्धि कैसे पायें, यह पूछो मत; यह तरकीब है। परख-बुद्धि तुम्हारे पास है।

जब काँटा चुभता है, तो तुम्हें पता नहीं चलता कि पीड़ा हो रही है? तुम दुबारा फिर काँटों से बचकर नहीं चलने लगते? तुम्हारे हाथ में जब पहली दफा आग का स्पर्श होता है, तो फिर तुम दुबारा आग का स्पर्श करते झिझते नहीं? वही तो परख-बुद्धि है। और परख-बुद्धि क्या है? तुमको पता चल जाता है कि यह काँटा है; यह दुखता है; इससे सावधान हो कर चलो। तुम्हें समझ आ जाता

है : यह आग है, इसे मत छुओ। लेकिन जीवन की गहरी बातों में तुम प्रयोग नहीं करते।

काँटा है क्रोध। काम अग्नि है; जलाती है। वासना दुष्पूर है, कभी भरती नहीं। ऐसा ही समझो कि बालटी में पेंदी नहीं है और कुएँ से पानी भर रहे हैं। पेंदी है ही नहीं बालटी में। खड़खड़ाहट बहुत मचती है। कुएं में जा कर बालटी गिरती है जब तुम झाँक कर देखते हो, तो बालटी में पानी भरा हुआ भी मालूम पड़ता है--जब बालटी पानी में डूबी होती है। फिर खींचो; खाली बालटी वापस आ जाती है।

कितनी बार तुमने काम-वासना के कुएँ में अपने जीवन की बालटी डाली है! क्या पाया? सदा खाली लौट आई।

बुद्धि तुम्हारे पास है, शायद तुम उपयोग करना नहीं चाहते। शायद तुम डरते हो कि कहीं उपयोग किया, तो कहीं सचाइयाँ समझ में न आ जायँ।

मेरे एक मित्र थे, मौत से बहुत डरे हुए आदमी थे वे। एक ही डर उनको लगा रहता था कि कहीं मौत न आ जाय। अब मौत आ ही रही है, इसमें डरने का कोई कारण नहीं है। मैंने उनसे कहा : 'तुम ऐसी चीज से डर रहे हो, जिसमें डरने का कोई कारण नहीं है; मौत आ ही रही है; बचने का भी कोई उपाय नहीं है। कोई कभी बच नहीं पाया। आज तक नहीं बचा। तुम कैसे बच जाओगे! इसलिए जो होना ही है, उसे स्वीकार कर लो।'

लेकिन वे तो मौत शब्द से भयभीत होते थे। हम भी मौत शब्द का कम प्रयोग करते हैं। कोई मर जाता है, तो हम कहते हैं : 'फलाँ व्यक्ति स्वर्गवासी हो गया।' सीधा नहीं कहते कि मर गया। स्वर्गवासी! कहते हो कि फलाँ व्यक्ति स्वर्ग पधार गया; कि राम के प्यारे हो गये; प्रभु-प्यारे हो गये।

हम मौत शब्द का उपयोग करने में डरते हैं; कुछ घबड़ाहट आती है।...कहते हैं कि भगवान् ने उठा लिया। अब सभी मर कर स्वर्गवासी नहीं होते। तुम्हारे हिसाब से तो दिल्ली में जो मरते हैं, वे भी स्वर्गवासी हो जाते हैं! नहीं हो सकते। मगर तुमने कभी देखा : किसी के बाबत अखबार में खबर छपी हो कि नरकवासी हो गये!

हम भयभीत हैं; हम मौत से भयभीत हैं। हम मौत शब्द का उपयोग नहीं करते। हम इसे अच्छे-अच्छे शब्दों में छिपा लेते हैं। हम मौत को कहते हैं--महा-यात्रा पर निकल गये। हमने तरकीबें निकाली हैं--ढंग से कहने की।

आदमी मर जाता है--जिन्दगी भर कभी रामनाम नहीं लिया--तब हम उसकी अर्थी के साथ : 'रामनाम सत्य है' दोहराते हुए चलते हैं। उसकी जिन्दगी से इसका कोई संबंध नहीं है। रामनाम असत्य था उसकी जिन्दगी में; कभी सत्य नहीं था।

और अब मर गया आदमी, लाश को ढो रहे हैं--और रामनाम सत्य है...!

हमने सारा जीवन झूठ कर रखा है--एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक।

वे मित्र बड़े परेशान थे। फिर उनको कुछ बीमारी लगी, तो वे डॉक्टर के घर न जायँ! उसकी पत्नी मेरे पास आई, 'आप उन्हें कम से कम इतना तो समझा दें डॉक्टर के घर चलें!'

मैंने उन्हें बुलाया, तो उन्होंने कहा : 'जाऊँ क्यों? बीमार ही नहीं हूँ। डॉक्टर के घर क्यों जाऊँ? जब बीमार होऊँ, तो ही जाऊँ।' तो मैंने उनसे कहा : 'देखो, तुम्हारा तर्क बिलकुल ठीक है।' कॉलेज में प्रोफेसर थे वे। 'तुम्हारा तर्क बिलकुल ठीक है। लेकिन जब तुम बीमार ही नहीं हो, तो तुम डरते क्यों हो जाने से? चलो मेरे साथ। जब तुम बीमार ही नहीं हो, तो बात खतम हो गई। पत्नी का मन रह जायेगा। काहे को झंझट करनी!'

अब जरा वे मुश्किल में पड़े। बचने का रास्ता न रहा। 'जब बीमार ही नहीं तो,' मैंने कहा, 'डरना क्या। फीस मैं दूंगा। गाड़ी में मैं तुम्हें बिठा कर ले चलता हूँ। घर तुम्हें मैं छोड़ दूंगा। तुम्हें डर क्या! तुम्हारी पत्नी भी राजी हो गई है और तुम बीमार हो ही नहीं। तुम बीमार हो क्या?' उन्होंने कहा : 'नहीं।'

लेकिन माथे पर पसीने की बूंदें हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि बीमार वे हैं। सीढ़ियाँ चढ़ते नहीं बनता उनसे। जरा में हाँफने लगते हैं। हृदय दुर्बल हुआ है। उसी से तो डरते हैं वे कि कहीं कुछ मामला न हो जाय।

रास्ते में मुझसे कहने लगे : 'ऐसा कुछ जरूरी है क्या?' मैंने कहा : 'जरूरी कुछ भी नहीं है, क्योंकि तुम बीमार हो ही नहीं।' उन्होंने कहा : 'छोड़ो जी, यह बात क्या लगा रखी है कि बीमार हो ही नहीं। तुम्हें पता है कि मैं डर रहा हूँ। और तुम्हें मालूम है कि मेरी हालत ठीक नहीं है। और मैं नहीं चाहता जानना। मुझे डर है कि मेरे पिता टी. बी. से मरे; मेरी माँ टी. बी. से मरी; कहीं मुझे टी.बी. न हो!'

पर मैंने कहा : 'डरने के कारण तो टी. बी. मिटेगा नहीं। सिर्फ झुठलाने से तो टी. बी. मिटेगा नहीं। अब तो टी. बी. का इलाज है; अब टी. बी. कोई बीमारी है? सर्दी-जुकाम से कमजोर बीमारी है टी. बी.। सर्दी-जुकाम नहीं मिटता; टी. बी. तो मिट जाती है; टी.बी. का तो इलाज है। सर्दी-जुकाम का कोई इलाज नहीं है। तो तुम कोई बड़ी खतरनाक बीमारी में नहीं पड़े हो। टी. बी. तो ठीक हो जायेगा। लेकिन अगर निदान से हो डर रहे हो, तो फिर कैसे होगा?'

ऐसी हमारी दशा है।

टी. बी. ही निकला। और जब टी. बी. निकला और वे घर पर लौटने लगे,

तो मुझ पर बहुत नाराज थे कि मैंने पहले ही कहा था कि जाने की कोई जरूरत नहीं। अब उनको घबड़ाहट पकड़ी। टी. बी. है--इसको झुठला रहे थे।

जिनने प्रश्न पूछा है--सुखदेव महाराज ने--कन थोड़े कांकर घने की परख-बुद्धि कैसे पाई जाती है? तुम्हारे पास बुद्धि है सुखदेव महाराज! बुद्धि भलीभांति है! तुम जानते भी हो। तुम्हें पहचान भी है, तुम बच रहे हो।

> खुद को बहलाता था, आखिर खुद को बहलाता रहा।
> मैं बई सोजे दरूँ हँसता रहा, गाता रहा।।
> मुझको एहसासे-फरबे-रंगो-बू होता रहा।
> मैं मगर फिर भी फरेबे-रंगो-बू खाता रहा।।
> खुद को बहलाना था, आखिर खुद को बहलाता रहा।

यह सब बहलाना है। तुम्हें असलियत का पता है; सब को पता है। मैंने ऐसा आदमी नहीं देखा, जिसे आसलियत का पता न हो। झुठला रहा है। आँख नहीं लगाता असलियत पर। आँखें यहाँ-वहाँ चुरा रहा है। आँखें बचा कर देख रहा है।

'खुद को बहलाता था, आखिर खुद को बहलाता रहा।' बहलाना है, तो बहलाते रहो। 'मैं बई सोजे दरूँ हँसता रहा, गाता रहा। हृदय जल रहा था, लेकिन ऊपर से मुसकराते रहो।

'मैं बई सोजे दरूँ हँसता रहा, गाता रहा।' जानता था--भीतर जलन हो रही है, और ऊपर से मुसकराता रहा। वे मुसकराहटें तुम्हारी, छिपाने के उपाय हैं, आत्मवंचनाएँ हैं।

'मुझको एहसासे-फरबे-रंगो-बू होता रहा।' मुझे दिखाई भी पड़ता रहा कि रंग और सुगंध की यह दुनिया सब छल है। मुझको एहसासे-फरेबे-रंगो-बू होता रहा। मुझे पता भी चलता रहा कि सब क्षण-भंगुर है। 'मैं मगर फिर भी फरेबे-रंगो-बू खाता रहा।' लेकिन फिर भी इस भ्रम में बड़ी मिठास थी और मैं बार-बार यह भ्रम खाता रहा।

नहीं; परख-बुद्धि नहीं करनी होती। परख-बुद्धि परमात्मा ने दी है, सिर्फ उपयोग करना है। खीसे में पड़ा है--कसने का पत्थर--तुम्हारे भीतर पडा है, उसे जरा जीवन के अनुभवों में उपयोग करने लगो। चलो, अब तक नहीं किया, कोई फिक्र नहीं। अभी भी तो जीवन बहुत बाकी है, इतने में ही उपयोग करो।

अगर कोई व्यक्ति चौबीस घन्टे भी अपनी परख-बुद्धि का उपयोग करे, तो दूसरा आदमी हो जायेगा। क्योंकि चौबीस घन्टे में करीब-करीब सब बातें दोहर जाती हैं, जो पूरे जीवन में दोहराती हैं। क्रोध हो जाता, काम हो जाता; भूख लग आती, प्यास लग आती; मान-अपमान हो जाता; अहंकार पकड़ जाता, लोभ पकड़

जाता, ईर्ष्या पकड़ जाती, जलन हो जाती। चौबीस घन्टे में सारी कथा दोहरा जाती। फिर तुम इसी को तो रोज-रोज पुनरुक्ति करते हो।

अगर तुम चौबीस घन्टे भी जाग कर देख लो कि क्या हो रहा है।...और एक-एक चीज को गौर से देख लो, आँखें न बचाओ। आँखें गड़ाओ अपने अनुभव में तो कोई अडचन नहीं है। मुक्ति बहुत निकट है। सामान पूरा तैयार है। वीणा तुम्हारे पास पड़ी है, लेकिन तार छेड़ो।

तुम पूछते हो : वीणा कहाँ खोजें? मैं कहता हूँ : वीणा तुम्हारे सामने रखी है तुम जरा अँगुलियाँ चलाओ। वीणा भी है; अँगुलियाँ भी हैं; अँगुलियों के वीणा के तार पर पड़ते ही स्वर भी उठेगा। सब है। लेकिन पूछते हो : वीणा कहाँ है! यह तुम्हारी तरकीब है। तुम कहते हो : जब वीणा ही नहीं है, तो मैं संगीत कैसे उठाऊँ! 'आँगन टेढ़ा नाचूँ कैसे!' लेकिन नाचना हो, तो आँगन के टेढ़े होने से कुछ फर्क पड़ता है! और न नाचना हो, तो आँगन कितना ही चौकोर हो, क्या फर्क पड़ेगा? फिर भी कोई फर्क न पड़ेगा।

● चौथा प्रश्न : प्रेम और त्याग में किसका महत्त्व बढ़कर है?

ऐसा समझो : जैसे एक सिक्के के दो पहलू हैं, इनमें किसका महत्त्व बढ़ कर है? ऐसा समझो कि दिन और रात--इसमें किसका महत्त्व बढ़ कर है? ऐसा समझो कि अन्डा या मुरगी--इसमें किसका महत्त्व बढ़ कर है? संयुक्त हैं; जुड़े हैं। दो नहीं हैं असल में, एक ही है।

दिन और रात दो थोड़े ही हैं; एक ही चीज के दो पहलू हैं। अन्डा और मुरगी दो थोड़े ही हैं; एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं।

सदियों से वैज्ञानिक, दार्शनिक सोचते रहे हैं कि पहले कौन?--मुरगी या अन्डा? और ऐसे पागल भी हुए हैं, जिनने इस पर खूब विचार किया है! और इसका उत्तर भी देने की कोशिश की है। विवाद भी खड़े किये हैं। कोई कहता है : मुरगी पहले, क्योंकि मुरगी के बिना अन्डा कैसे होगा! और उतने ही तर्क से कोई कहता है : अन्डा पहले, क्यों अन्डे के बिना मुरगी कैसे होगी? और इनका विवाद चलता रह सकता है सदियों तक, इसका कोई अन्त नहीं होगा, क्योंकि अन्त हो ही नहीं सकता।

मैं तुमसे कहना चाहता हूँ : न तो मुरगी पहले है, न अन्डा पहले है। मुरगी और अन्डा दो नहीं हैं। मुरगी अन्डे का एक रूप है; अन्डा मुरगी का एक रूप है। जैसे अन्डा मुरगी का प्राथमिक रूप है; मुरगी अन्डे की ही बढ़ी हुई अवस्था है। जैसे बचपन और बुढ़ापा। बचपन ही बढ़ बढ़ कर बुढ़ापा हो जाता है। जीवन ही बढ़ बढ़ कर मौत हो जाता है। और दिन ही बढ़ बढ़ कर रात हो जाती है। संयुक्त हैं।

ऐसा ही प्रेम और त्याग। अलग-अलग नहीं हैं।

जिसने त्याग जाना, उसने प्रेम जाना। जिसने प्रेम जाना, उसने त्याग जाना। जिसने बिना प्रेम के त्याग जाना, उसका त्याग झूठा। और जिसने बिना त्याग के प्रेम जाना, उसका प्रेम झूठा। अगर प्रेम सच्चा है, तो उसके साथ त्याग आयेगा ही। अगर त्याग सच्चा है, तो उसके भीतर प्रेम की ज्योति जलती ही होगी।

अगर तुम कहो कि यह अन्डा ऐसा है कि जो मुरगी ने नहीं दिया, तो समझना कि अन्डा झूठा है। फिर किसी फैक्टरी में बना होगा। फिर प्लास्टिक का होगा। तुम कहो कि यह मुरगी अन्डे से नहीं आई, तो यह मुरगी असली नहीं हो सकती। असली मुरगी तो अन्डे से ही आती है।

और दुनिया में ऐसा प्रेम पाया जाता है, जिसमें त्याग नहीं है। और दुनिया में ऐसा त्याग पाया जाता है, जिसमें प्रेम नहीं है। ये दोनों झूठे हैं, थोथे है, कृत्रिम हैं, ऊपरा हैं।

संत जिस प्रेम की बात कहते हैं, उसमें त्याग छाया की तरह आता है। और संत जिस त्याग की बात करते हैं, प्रेम उसकी आत्मा है।

अब समझने की कोशिश करो--ये दोनों जुड़े क्यों हैं?

जब भी तुम प्रेम करोगे, तुम्हारे भीतर दान का भाव उठेगा। प्रेम देता है। प्रेम है ही क्या?--देने की परम आकांक्षा है। प्रेम बाँटता है। प्रेम के पास जो भी है, लुटाता है। प्रेम बड़ा प्रसन्न होता है दे कर। प्रेम कंजूस नहीं है। इसलिए कंजूस प्रेमी नहीं होते। इसलिए कंजूस प्रेमी हो ही नहीं सकता। कंजूस से दोस्ती मत बनाना। कंजूस के पास देने की भावना ही नहीं है, इसलिए दोस्ती बन नहीं सकती। और प्रेमी कंजूस नहीं होते।

मनोवैज्ञानिक भी इस बात से राजी हैं कि जिनके जीवन में बहुत प्रेम है, वे कभी बहुत धन-संपत्ति-पद इकट्ठा नहीं कर पाते। करेंगे कैसे! इधर आया नहीं --कि गया नहीं! उनके हाथ सदा खुले हैं। मुक्त आकाश--बँटता रहता है। और जो धन-पद इकट्ठा कर पाते हैं, एक बात पकड़ लेना--उनसे जीवन में प्रेम नहीं पाओगे; प्रेम का स्वर ही नहीं पाओगे। वहाँ तो इकट्ठा करने की दौड़ इतनी है कि बाँटने का सवाल ही कहाँ उठेगा? एक पैसा देने में भी घबड़ाहट होगी, बेचैनी होगी। एक पैसा कम हो गया! देने का मतलब वहाँ कम हो जाना है। और प्रेम की दुनिया में देने का मतलब और बढ़ जाना है। प्रेम जितना देता है, उतना बढ़ता है।

तो प्रेम का अर्थ ही होता है--अपने को बाँटने की क्षमता। तो त्याग अपने आप आता है। लेकिन यह त्याग बड़ा अनूठा है। यह त्याग, जैन मुनि जैसा त्याग नहीं

है। वह त्याग थोथा है। यह प्रेमी का त्याग है। यह मलूकदास का त्याग है। यह महावीर का त्याग है, लेकिन जैन मुनि का त्याग नहीं है। यह वैराग्य नहीं है। फर्क समझना।

एक आदमी धन छोड़ देता है, क्योंकि अगर धन को पकड़े रहेगा, तो नरक जाना पड़ेगा। यह भय के कारण धन छोड़ रहा है। और एक आदमी इसलिए धन छोड देता है कि दूसरों को जरूरत है। जिनको जरूरत है, उन्हें दे देता है। यह आदमी प्रेम के कारण धन छोड़ रहा है।

दोनों धन छोड़ रहे हैं, लेकिन दोनों के छोड़ने की प्रक्रिया बड़ी अलग है और दोनों के परिणाम अलग हैं।

जिस आदमी ने धन नरक के डर से छोड़ा, इस आदमी ने त्याग तो किया, लेकिन इसके त्याग में प्रेम की आत्मा नहीं है। बुझा हुआ त्याग है। इसलिए अपने त्याग का गुणगान करेगा यह। यह कहेगा कि मैंने कितना छोड़ दिया! कितना छोड़ा! यह त्याग के ऊपर सिंहासन बना कर बैठ जायेगा। यह त्याग से अकड़ जायेगा...कि देखो, मैंने लाखों छोड़ दिये! इसने किसी को 'दिये' नहीं हैं। इसने बाँटे नहीं हैं, यह भागा है। यह भय से भागा है।

यह तो ऐसा ही समझो कि कोई तुम्हारी छाती पर पिस्तौल लगा दे और कहे कि खाली करो जेब। और तुम जल्दी से जेब खाली कर दो और कहो कि 'लो महाराज, सब त्याग कर दिया! यह त्याग हुआ?

नरक की पिस्तौल लगी है छाती पर और तुमने छोड़ दिया। यह त्याग हुआ? यह त्याग नहीं है।

त्याग बड़ी और बात है। त्याग का मतलब है: तुमने देखा--कि तुम्हें जितनी जरूरत है, उससे ज्यादा जरूरत दूसरे की है। तुमने देखा कि इसे रोक रखने में तो कोई भी सार नहीं है; बहुत लोग वन्चित रह जायेंगे। तुमने देखा कि यह धारा तो बहती रहे; यह सब की है; मेरा इसमें क्या है? हवा सब की, आकाश सब का--सब सब का है, इसमें मेरा क्या है? तुमने ममत्व न रखा, क्योंकि तुमने देखा कि सब पर सभी मालिक हैं। तुमने मालकियत न रखी--प्रेम के कारण; तो तुम्हारी त्याग में एक अनूठी गरिमा है, एक गौरव है। और तब तुम इस त्याग की बात ही न करोगे। तब तुम्हें इस त्याग का स्मरण भी न आयेगा। यह त्याग तुम्हारे अहंकार का आभूषण न बनेगा। और अगर त्याग अहंकार का आभूषण बन जाय, तो चूक गये। तीर चूक गया। निशाना नहीं लगा।

त्याग का जब पता भी नहीं चलता, तभी...।

एक सूफी कथा है: एक सूफी फकीर परमात्मा की प्रार्थना में ऐसा गहरा

तल्लीन हो गया कि एक फरिश्ता प्रगट हुआ और उसने कहा कि 'प्रभु ने मुझे भेजा है; तुम कुछ वरदान माँग लो।' उसने कहा : 'लेकिन मुझे कुछ कमी नहीं है। मुझे जो चाहिए--जरूरत से ज्यादा मिला है। उसका प्रेम मेरे प्रति अपार है। धन्यवाद। मुझे कुछ चाहिए नहीं।' लेकिन फरिश्ते ने कहा : 'यह नियम के विपरीत है। जब भगवान् किसी को आशीर्वाद देने के लिए भेजता है, तो लेना ही पड़ता है। यह तो अपमान हो जायेगा। तुम्हें लेना पड़ेगा।' तो उसने कहा : 'बड़ी मुश्किल में डाल दिया। तो तुम्हीं सुझा दो, क्या ले लूं! क्योंकि मुझे कुछ याद ही नहीं पड़ता। मेरे पास जरूरत से ज्यादा है; मैं तो बाँटता हूँ। उसके प्रेम ने मुझे ऐसा भर दिया है कि मैं बाँटता हूँ और बढ़ता जाता है। जो मेरे पास है, बाँटता रहता हूँ। और कभी कुछ कमी होती नहीं। अब तुमने एक अजीब मुश्किल खड़ा कर दी। तो तुम्हीं बता दो।'

तो उस फरिश्ते ने कहा कि। कुछ भी ऐसी बात माँग लो, जिससे दूसरों का भला हो। समझो कि तुम्हारे छूने से कोई बीमार ठीक हो जाय। कि तुम्हारे छूने से कोई सूखा वृक्ष हरा हो जाय। ऐसी कुछ बात माँग लो कि तुम्हारे हाथ में संजीवनी का प्रभाव आ जाय।'

उस फकीर ने कहा : 'यह तो ठीक है। लेकिन इसमें खतरा है। अभी मैं बिलकुल नहीं मिट गया हूँ। इसमें अकड़ पैदा जाने का डर है कि मेरे छूने से सूखा झाड़ हरा हो गया; कि मेरे छूने से बेमौसम में फूल आ गये; कि मेरे छूने से मुरदा जाग गया। अभी मैं मरा नहीं हूँ। अभी मैं थोड़ा-थोड़ा हूँ। यह तो खतरनाक बात है। लेकिन तुम अगर जिद्द ही करते हो, तो ऐसा करो कि मेरी छाया को यह आशीर्वाद दे दो--कि मेरी छाया अगर सूखे वृक्ष पर पड़ जाय, तो वृक्ष हरा हो जाय; कि मेरी छाया अगर किसी मुरदे को छू ले, तो वह जीवित हो जाय।

फरिश्ते ने कहा : 'इससे क्या फर्क पड़ेगा?', उसने कहा : 'इससे फर्क पड़ेगा। मैं पीछे लौट कर कभी देखूंगा ही नहीं। तो छाया से जो होगा, छाया जाने। मेरा इससे कुछ सम्बन्ध न जुड़ेगा।'

और तब कहते हैं : वह फकीर भागता रहता था--एक गाँव से दूसरे गाँव, एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले, एक आदमी से दूसरे मोहल्ले। और उस फकीर ने जिन्दगी में कभी पीछे लौट कर नहीं देखा। बस, वह दौड़ता रहता कि जितने ज्यादा लोगों को छाया उसकी लग जाय। तो कोई बीमार ठीक हो जाय; कोई मुरदा उठ जाय; कोई वृक्ष सूखा था, हरा हो जाय; कोई पानी का स्रोत सूख गया था, तो झरना प्रगट हो जाय। मगर वह भागता रहता था। वह पीछे लौट कर नहीं देखता था। वह कभी एक गाँव में नहीं रुकता था, क्योंकि जितने दूर-दूर भाग सके और जितने

लोगों पर उसकी छाया पड़ जाय, उतना ही अच्छा। और उसे कभी याद भी नहीं पड़ा कि कौन-कौन ठीक हुए। उसने कुछ हिसाब भी न रखा। अगर तुम उससे पूछते जीवन के अंत में--खुद परमात्मा पूछता, तो वह नहीं बता सकता था--कितने मुरदा जिये, कितने वृक्ष हरे हुए, कितने झरने बहे, कितनी बीमारियाँ मिटीं। उसके पास कोई हिसाब न होता।

प्रेम हिसाब जानता ही नहीं। प्रेम पीछे लौट कर देखता ही नहीं। प्रेम में गणित का उपाय ही नहीं है।

तो तुम पूछते हो : प्रेम और त्याग में किसका महत्त्व बढ़ कर है? यह महत्त्व बढ़ कर है--ऐसा प्रश्न ही उठाना गलत है।

प्रेम के पीछे त्याग आता; त्याग के साथ प्रेम आता।

लेकिन अगर तुम्हारे प्रश्न का यह अर्थ हो कि कहाँ से शुरू करें, तो मैं तुमसे कहूँगा--प्रेम से शुरू करो। क्योंकि त्याग से शुरू करने में भूल हो सकती है।

बहुतों ने तुम्हें यही समझाया है कि त्याग से शुरू करो। मैं नहीं कहता। मैं कहता हूँ--प्रेम से शुरू करो। क्योंकि प्रेम केंद्र है--त्याग परिधि है। कोई परिधि बिना केंद्र के नहीं होती, और कोई केंद्र बिना परिधि के नहीं होता, इसलिए जहाँ तक होने का सम्बन्ध है, दोनों का मूल्य बराबर है।

लेकिन अगर तुम्हें एक परिधि बनानी हो, तो पहले तो परकाल केंद्र पर जमानी पड़ती है। केंद्र से परिधि पैदा होती है। प्रेम केंद्र है।

तो पहले तुम प्रेम से भरो! त्याग आये अपने से, तो तुम्हारी छाया को बल मिल जायेगा; तुम्हारी छाया में संजीवनी का गुण आ जायेगा। लेकिन त्याग को घसीट कर आगे मत लाना। माना कि बैल और गाड़ी में दोनों महत्त्व के हैं। अकेला बैल हो, तो क्या गाड़ी चलेगी; अकेली गाड़ी हो, तो क्या बैल चलेगा! लेकिन बैलों को गाड़ी के पीछे मत जोतना। बैल आगे जुतें, गाड़ी पीछे चले।

प्रेम आगे हो--त्याग पीछे चले।

इस अर्थ में प्रेम ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। अगर साधक की दृष्टि से पूछते हो, तो प्रेम ज्यादा अर्थपूर्ण है, ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। सिद्ध की दृष्टि में तो दोनों बराबर हैं।

● पाँचवाँ प्रश्न : आपसे बहुत कुछ कहना है, पर नहीं कह पाता। बहुत से धन्यवाद देने हैं, पर नहीं दे पाता। बस, आपकी ओर देखता हूँ और रोता हूँ।

इससे बेहतर कहने की और कोई तरकीब हो सकती है! जो शब्द नहीं कह पाते वे आँसू कह देते हैं। और जो आँसू कह पाते हैं, शब्द कभी भी नहीं कह पाते; शब्द बहुत असमर्थ और कमजोर हैं।

और यह धन्यवाद कुछ ऐसा थोड़े ही है कि तुम दोगे, तब मुझ तक पहुँचेगा। यह धन्यवाद कहोगे, तो छोटा हो जायेगा। यह तो कहना ही मत। यह तो आँखें गीली हो कर ज्यादा बेहतर ढंग से कह देती हैं।

शब्द की सीमाएँ हैं; आँसुओं की कोई सीमा नहीं है। शब्द में विकृति है; आँसू निष्कलुष हैं। शब्द में कुछ कहा कि उतना नहीं रह जाता, जितना कहना चाहा था।

रवीन्द्रनाथ मृत्यु शैय्या पर पड़े थे। उन्होंने अपने जीवन में छः हजार गीत लिखे; और एक मित्र मिलने आया था और मित्र ने कहा कि 'तुम तो धन्यभागी हो। तुम तो प्रभु को धन्यवाद दो कि तुमने छः हजार गीत लिखे! तुम महाकवि हो—सारी पृथ्वी के। अंग्रेजी में शेली को महाकवि कहा जाता है, उसने भी दो हजार गीत लिखे हैं। तुमने छः हजार गीत लिखे हैं।'

रवीन्द्रनाथ ने आँख खोली और कहा: 'यह तुम क्या कहते हो! मैं तो परमात्मा से यही प्रार्थना कर रहा था कि यह क्या मामला हुआ! अभी कोई उठाने का वक्त है मुझे? अभी जो कहना चाहा था, कह ही नहीं पाया। ये छः हजार गीत तो मेरी असफलताओं की खबर हैं। मैंने छः हजार बार कहने की कोशिश की और छः हजार बार असफल हो गया। जब भी शब्दों में बाँधा, तब देखा कि जो असली था, पीछे छूट गया।

'तो मैं तो प्रभु से कह रहा था: यह भी कोई बात हुई! यह कोई तुक की बात हुई? कि अब जरा मेरे हाथ कुशल हुए थे; शब्दों पर मेरी थोड़ी क्षमता बढ़ी थी; मेरी छेनी थोड़ी गहरी हुई थी; अब शायद कुछ निखार लेता; शायद कुछ मूर्ति बना लेता; शब्दों से शायद कुछ ढाल लेता; अब शायद कविता का जन्म हो जाता। अभी-अभी तो मैं अपने तबले को, अपनी वीणा को ठोक-ठाक के साज को बिठा पाया था। अभी गीत गाया कहाँ! और यह विदा का क्षण आ गया!'

यह बात सच है, लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि अगर रवीद्रनाथ हजार वर्ष भी जियें, तो हजार वर्ष के बाद भी यह बात इतनी ही सच होगी। क्योंकि शब्द में भाव बँधता नहीं है।

तुम पूछते हो: 'आपसे बहुत कुछ कहना है, पर नहीं कह पाता।'

यह कहना कुछ ऐसा है कि चुपचाप ही कहोगे, तो ही कहा जा सकेगा। शब्द की झंझट छोड़ो; मौन का सहारा पकड़ो। मौन भी कहता है। मौन भी बहुत प्रगाढ़ता से कहता है।

मौन की बड़ी महिमा है। मौन कह भी देता है और सीमा भी नहीं बँधती। मौन आकाश जैसा है--असीम। शब्द तो छोटे-छोटे आँगन हैं। तुम आँगन की

जिद्द छोड़ो; तुम पूरे आकाश से ही कह दो।

और कहना क्या है! वह तुम्हें लगता है कि बहुत कहना है, क्योंकि तुम कह नहीं पाते, इसलिए लगता है कि बहुत कहना है। शायद कहने को कुछ नहीं है। शायद कोई एक छोटी-सी बात कहना है।

बहुत ही डरते डरते आज यह इजहार करता हूँ।
मैं तुमको चाहता हूँ, पूजता हूँ, प्यार करता हूँ॥

शायद कुछ इतनी-सी बात कहने की हो। छोटा-सा इजहार करना हो--कि मैं तुमको चाहता हूँ, पूजता हूँ, प्यार करता हूँ; बहुत ही डरते डरते आज यह इजहार करता हूँ।

क्योंकि प्रेम ही कुछ ऐसी बात है, जो नहीं कही जा सकती। और सब तो कहा जा सकता है।

तुम्हारे भीतर उठता होगा कोई अपूर्व प्रेम। प्रेम ही ऐसा कुछ है, जिसके उठते ही बुद्धि अवाक रह जाती है। क्योंकि प्रेम बुद्धि का अंग नहीं है; प्रेम हृदय का अंग है।

और तुम्हारे ये आँसू हृदय से आते हैं। तुम्हारी आँखें तुम्हारी बुद्धि के कारण नहीं रोती--कभी नहीं रोतीं। बुद्धि के कारण कोई आँख कभी नहीं रोती। बुद्धि के कारण तो आँखें सूख जाती हैं, आँसू सूख जाते हैं। बुद्धि के कारण तो आँखें मरुस्थल हो जाती हैं। फिर हरियाली नहीं होती आँख में; झरने नहीं बहते; फूल नहीं लगते; पक्षी नहीं गाते।

मनुष्य बुरी तरह सूख गया है। पुरुष तो और भी बुरी तरह सूख गया है। क्योंकि सदियों से पुरुषों को समझाया गया है: 'रोओ मत। रोना स्त्रैण है।' परमात्मा ने ऐसा कुछ भेद नहीं किया है। तुम्हारी आँखों में भी आँसुओं की उतनी ही ग्रन्थियाँ हैं, जितनी स्त्रियों की आँखों में। जरा भी फर्क नहीं है। तुम चाहो तो जाकर आँख के डॉक्टर को पूछ लेना। दोनों की आँखों में आँसू बनाने की क्षमता बराबर दी है परमात्मा ने। इसलिए यह बात मूढ़तापूर्ण है कि तुम पुरुष हो—रोओ मत।

इसके दुष्परिणाम हुए हैं। इसका बड़े से बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ है कि पुरुष ज्यादा पागल होते हैं; दुगनी संख्या में पागल होते हैं। पुरुष ज्यादा आत्महत्या करते हैं; दुगनी संख्या में आत्महत्या करते हैं।

और अगर हम पुरुषों के द्वारा किये गये युद्धों का भी हिसाब करें, तब तो फिर बिलकुल ही पागलपन साफ हो जायेगा। हर दस साल के बाद महायुद्ध चाहिए। इतने प्राण भर जाते हैं--दुःख से, उदासी से, क्रोध से--कि विस्फोट होता है।

पाँच हजार सालों में, कहते हैं, केवल कुछ दिनों को छोड़ कर युद्ध चलता ही रहा है पृथ्वी पर। वे कुछ दिन--सात सौ साल! सात सौ साल भी इकट्ठे नहीं। कभी दो दिन युद्ध नही चला, कभी दस दिन युद्ध नहीं चला। पाँच हजार साल में सात सौ साल को छोड़ कर युद्ध चलता ही रहा है। आदमी बिलकुल पागल है!

आँसू आते हैं--हृदय से। और यहाँ हम जो अनूठा प्रयोग कर रहे हैं, यहाँ जो मिल-जुल कर एक यात्रा चल रही है, उस यात्रा का मौलिक प्रयोजन यही है कि तुम्हारी ऊर्जा बुद्धि से हट जाय और हृदय में प्रवाहित होने लगे।

तो अच्छा हो रहा है कि तुम कह नहीं पाते। कहने को कुछ है नहीं। हाँ कुछ निवेदन है; कुछ प्रेम है।

गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गये
एक थी मन की कसक, जो साधनाओं में ढली, कल्पनाओं में पली
पन्थ था मुझको अपरिचित, मैं नहीं अब तक चली
प्रेम की सँकरी गली
बढ़ गये पग किन्तु सहसा
और मन भी बढ़ गया
लोक-लीकों के सभी भ्रम, एक पल में ढह गये
गीत प्राणों मे जगे, पर भावना में बह गये
वह मधुर बेला प्रतीक्षा की, मधुर मनुहार थी
मैं चकित साभार थी
कह नहीं सकती हृदय की जीत थी, या हार थी
वेदना सुकुमार थी
मौन तो वाणी रही, पर
भेद मन का खुल गया
जो न कहना चाहती थी, ये नयन सब कह गये
गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गये
कल्पना जिसकी सँजोई, सामने ही पा गई
वह घड़ी भी आ गई
छबि अनोखी थी हृदय दर छा गई, मन भा गई
देखते शरमा गई
कर सकी मनुहार भी कब
मैं स्वयं में खो गई
और अब तो प्राण मेरे कुछ ठगे-से रह गये

गीत प्राणों में जगे, पर भावना में बह गये।

तुम्हारे आँसुओ से जो घट रहा है, शुभ है, सत्य है, सुन्दर है। यह तुम्हारा अब तक अपरिचित जगत् है, जिससे तुम अभी तक अछूते रह गये, इसलिए बेचैनी होती होगी। इसलिए तुम कुछ कहना चाहते हो, क्योंकि तुमने अभी तक न-कहने का मार्ग ही नहीं पकड़ा।

पन्थ था मुझको अपरिचित, मैं नहीं अब तक चली
प्रेम की सँकरी गली

डरो मत। और परेशान भी, चिन्तित भी न होओ। प्रेम की गली निश्चित ही सँकरी है, इतनी सँकरी है कि वहाँ दो तो समाते ही नहीं। इतनी सँकरी है कि वहाँ शब्द भी नही समाते; वहाँ निःशब्द का ही प्रवेश है।

चलने दो यह कदम, बढ़ने दो हृदय की तरफ। सोच-विचार, भाषा और शब्द —सब मनुष्य निर्मित हैं। निर्विचार, मौन परमात्मा का दिया है।

बढ़ गये पग किन्तु सहसा
और मन भी बढ़ गया
लोक-लीको के सभी भ्रम, एक पल में ढह गये
गीत प्राणो मे जगे, पर भावना में बह गये।

बढ़ो; जरा साहस करो। एक पल में क्रान्ति घट जाती है।

वह मधुर बेला प्रतीक्षा की मधुर मनुहार थी
मैं चकित साभार थी
कह नही सकती, हृदय की जीत थी, या हार थी
वेदना सुकुमार थी
मौन तो वाणी रही, पर
भेद मन का खुल गया
जो न कहना चाहती थी, ये नयन सब कह गये
गीत प्राणो मे जगे, पर भावना में बह गये।

वेदना शब्द बड़ा अनूठा है।

वह मधुर बेला प्रतीक्षा की मधुर अनुहार थी
मैं चकित साभार थी
कह नही सकती हृदय की जीत थी, या हार थी
वेदना सुकुमार थी।

वेदना अनूठे शब्दों मे एक है। इसके दो अर्थ होते हैं--दुःख और बोध--दुःख और ज्ञान। वेदना उसी से बना, जिससे वेद; विद् धातु से बना। वेद का अर्थ

होता है--ज्ञान, बोध।

तो वेदना का एक अर्थ तो बोध और दूसरा अर्थ है दुःख। यह बड़ी हैरानी की बात है कि ये दो विपरीत से अर्थ, जिनमें कोई तालमेल नहीं है, एक ही शब्द के कैसे हैं! लेकिन महत्त्वपूर्ण है यह बात।

दुःख का ही बोध होता है। और किसी चीज का बोध नहीं होता। पैर में काँटा गड़ता है, तो पैर का बोध होता है। पैर में काँटा न गड़े, तो पैर का भी बोध नहीं होता। सिर में दर्द होता है, तो सिर का बोध होता है; नहीं तो सिर का भी बोध नहीं होता।

हमें बोध ही उसका होता है, जहाँ वेदना होती है। परमात्मा का पहला बोध होता है--उसकी विरह की वेदना से। परमात्मा का पहला बोध होता है--वेदना से। कसकती है बात; खटकती है बात। कुछ खाली-खाली; कुछ चूका-चूका; जीवन कुछ अर्थहीन-अर्थहीन। करते सब हैं, लेकिन होता कुछ मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि हम जो भी करते हैं, सब बुद्धि से हो रहा है। और बुद्धि से कोई सम्बन्ध प्रभु से नहीं जुड़ता।

यही तो बाबा मलूकदास का पूरा सन्देश है कि अगर सम्बन्ध जोड़ना हो प्रभु से, तो बनो मस्त--भाव में; डूबो हृदय में। और पहला सूत्र था मलूकदास का--कि पीड़ा दो तरह की है : एक विरह की पीड़ा है, और एक मिलन की पीड़ा है।

मिलन की पीड़ा बड़ी मधुर है; विरह की पीड़ा भी बड़ी मधुर है। भक्त दोनों भोगता है। विरह की पीड़ा भी प्रीतिकर है--कि प्रभु अभी मिले नहीं। इन्तजार है, प्रतीक्षा है। द्वार खोल कर पलक-पाँवड़े आँखें बिछाये बैठे हैं। यह भी सुखद है। आँसू बह रहे हैं।

प्रभु की प्रतीक्षा में आँसू बहें, तो बड़ा सुखद है। और क्या धन्यभाग होगा! और फिर एक घड़ी है कि प्रभु आ गये--और आँसू बह रहे हैं! क्योंकि आनंद इतना है कि अब सम्हाले नहीं सम्हलता। फिर भी विरह है, फिर भी पीड़ा है।

कल्पना जिसकी संजोई, सामने ही पा गई
वह घड़ी भी आ गई
छबि अनोखी थी हृदय पर छा गई, मन भा गई
देखते शरमा गई।

शायद तुम जो कहना चाहते हो, नहीं कह पाते; एक संकोच मन को पकड़ लेता है। कैसे कह सकोगे? सदा ही महत्त्वपूर्ण बातें कहने में संकोच आ जाता है।

किसी ने कभी कहा है : 'मुझे तुमसे प्रेम है?' कितनी मुश्किल पड़ती है! कितना कठिन हो जाता है! हजार-हजार तरह से सोचते हैं कि इस तरह कह देंगे, कि इस तरह कह देंगे : प्रेमियों से पूछो...। कि आज तो कह ही देंगे। हजार भूमिकाएँ प्रेमी बाँधता है। चाँद-तारों की बात करता है; सोचता है : अब ठीक पृष्ठभूमि आ गई, अब कह दूँ कि मुझे तुमसे प्रेम है। और बस, वहीं सकुचा जाता है, वहीं शरमा जाता है। वहीं कोई चीज, बात अटक जाती है।

प्रेम का शब्द इतना छोटा है कि प्रेम की अनुभूति को प्रगट नहीं कर पाता; ओछा है। चुप-चाप ही कहा जा सकता है।

कल्पना जिसकी संजोई, सामने ही पा गई
वह घड़ी भी आ गई
छबि अनोखी थी हृदय पर छा गई, मन भा गई
देखते शरमा गई
कर सकी मनुहार भी कब,
मैं स्वयं में खो गई
और अब तो प्राण मेरे कुछ ठगे-से रह गये।

निश्चित ही प्रेम तुम्हारे भीतर जगा है; जगना ही चाहिए। न जगे—प्रेम के झरने, तो तुम अभागे हो। सौभाग्यशाली हो कि कुछ कहना चाहते हो और कह नही पाते।

'और बहुत धन्यवाद देने हैं, पर नहीं दे पाता!' नहीं; यह बात धन्यवाद देने से पूरी न होगी। यह तो तुम, जो मैंने तुम्हें दिया है, जब दूसरों को बाँटोगे, तभी इसका धन्यवाद पूरा होगा। और कोई उपाय नहीं है।

इस ऋण से चुकने का एक ही उपाय है कि जो मैं तुम्हें दे रहा हूँ, उसमें कंजूसी मत करना, उसे रोकना मत अपने भीतर; उसे बहने देना; उसे दूसरों तक जाने देना।

जीसस ने कहा है अपने शिष्यों को : 'जाओ अब और मकानों की मुन्डेर पर खड़े हो कर चिल्लाओ, ताकि जो बहरे हैं, वे सुन सकें।' वही मैं तुमसे कहता हूँ।

धन्यवाद देने की मुझे, कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारे बिना कहे धन्यवाद पहुँच गया। मैंने तुम्हारी आँख में देख लिया। तुम्हारे हृदय ने जो कहा, वह मेरे भीतर सुनाई पड़ गया। जो तुम्हारे भीतर कह जाता है, वही मेरे भीतर भी कह गया।

तुमने पुरानी कहानी सुनी है ना : एक घुड़सवार—अपने घोड़े पर बैठा चला आ रहा है--राजपूत--अपनी तलवार लगाये : एक बूढ़ी राह पर चल रही है; होगी अस्सी साल की बूढ़ी; सिर पर एक गठरी रखे हुए; और उससे बोली कि 'बेटा मैं थक गई हूँ। अगले गाँव तक मुझे जाना है और तू भी वहाँ से तो गुजरेगा ही, यह पोटली ले ले, घोड़े पर रख ले और जो पहला ही झोपड़ा मिले गाँव में,

उसमें दे जाना। मैं उठा लूंगी।'

उस घुड़सवार ने कहा : 'तूने समझा क्या है मुझे ? मैं कोई तेरा गुलाम हूं? कि कोई नौकर-चाकर हूँ ?' ऐसा कहकर उसने घोड़े को ऐड़ लगाई, आगे बढ़ गया।

कोई आधा मील गया होगा, तो उसे खयाल आया : पता नहीं, बुढ़िया की गठरी में क्या हो ! मैं नाहक छोड़ दिया। ले लेता। कौन-सी देने की जरूरत थी कहीं? लिये चला जाता। पता नहीं कुछ मूल्यवान भी हो !

लौट आया। आ कर कहा : 'माँ, भूल हो गई, क्षमा कर। ला, गठरी दे दे, मैं पहले ही झोपड़े पर दे जाऊँगा।' उस बुढ़िया ने कहा : 'बेटा, जो तुझसे कह गया, वह मुझसे भी कह गया।'

कुछ बातें हैं, जो तैर जाती हैं। 'अब गठरी देने की, उस बुढ़िया ने कहा, 'कोई जरूरत नहीं है। अब मैं ढो लूंगी।'

कुछ बातें हैं, जो तरंगित हो जाती हैं। और जीवन के भाव बड़ी आसानी से तरंगित हो जाते हैं, वह भी एक भाव था। बेईमानी का भाव था, लेकिन था भाव। इसकी तरंगें पहुँच गईं।

बेईमान आदमी जब तुम्हारे पास होता है, या कोई तुम्हारे साथ बेईमानी करना चाहता है, अगर तुम सरल हृदय हो, तत्क्षण तुम पहचान जाओगे। अगर तुम भी बेईमान हो, तो शायद न पहचान पाओ।

अगर तुम्हारे हृदय में प्रेम है, तो तुम दूसरे के प्रेम की मनुहार समझ जाओगे—उसने कहीं हो; न कही हो; बोला हो, न बोला हो। हाँ, अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं है, तो फिर तुम पास में ही कोई खड़ा रहे, प्रेम से भरा हुआ, तुम न समझ पाओगे।

तुम धन्यवाद की चिंता न करो। धन्यवाद पहुँच गया। इतना ही करो कि जो तुम्हें मिले, उसे बाँटते रहना, उसे बढ़ाते रहना, उसे किसी को देते जाना।

'आपकी ओर देखता हूँ और रोता हूँ।' शुभ है। यहाँ जब मेरे पास बैठ कर रोते हो, उतना ही काफी नहीं है। जब दूर चले जाओ, अपने गाँव लौट जाओ, वहां भी कभी-कभी आँख बंद करना, मुझे देखना और रोना। उस रोने में ही तुम्हारी प्रार्थना के बीज पड़ जायेंगे।

मैं तुम्हें अपना बनाना चाहता हूँ।
अजनबी यह देश, अजनबी यहाँ की हर डगर है
बात मेरी क्या—यहाँ हर एक खुद से बेखबर है।
किस तरह मुझको बना ले सेज का सिन्दूर कोई
जब कि मुझको ही नहीं पहचानती मेरी नजर है

आँख में इससे बसा कर मोहिनी सूरत तुम्हारी
मैं सदा को ही स्वयं को भूल जाना चाहता हूँ।
मैं तुम्हें अपना बनाना चाहता हूँ॥
दीप को अपना बनाने को पतंगा जल रहा है
बूँद बनने को समुन्दर की, हिमालय गल रहा है
प्यार पाने को धरा का, मेघ है व्याकुल गगन में
चूमने को मृत्यु, निसि-दिन श्वास-पन्थी चल रहा है
है न कोई भी अकेला राह पर गतिमय इसी से
मैं तुम्हारी आग में तन-मन जलाना चाहता हूँ।
मैं तुम्हें अपना बनाना चाहता हूँ॥

गुरु के साथ अपने को जोड़ लेना, पहला कदम है—परमात्मा की तरफ। गुरु के साथ अपने को एक मान लेना बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना है, क्योंकि उसके बाद परमात्मा के साथ एक मान लेने में अड़चन न आयेगी।

गुरु तो पाठ है—परमात्मा के प्रति समर्पण का। जाना तो परमात्मा में है, गुरु तो द्वार है। सिक्खों का शब्द 'गुरुद्वारा' सुन्दर है। मन्दिर का नाम गुरुद्वारा—ठीक।

गुरु तो द्वार है, उससे पार हो जाना है; उस पर अटक नहीं जाना। इसलिए मुझे धन्यवाद देने की जरूरत नहीं है। मेरे प्रति कुछ कहने की भी बात नहीं है। तुम्हें जो कहना हो, वह परमात्मा से कह देना। मुझसे पार हो जाओ।

कहने को वहाँ भी तुम कुछ न पाओगे। कहने को कुछ है ही नहीं। जो कहा जा सके, क्षुद्र है; जो न कहा जा सके, वही विराट् है।

लाओत्सू ने कहा है कि जो कहा जा सके, वह सत्य नहीं है। जो न कहा जा सके, वही सत्य है।

● छठवाँ प्रश्न : जीवन में कोई आकांक्षा-अभिलाषा पूरी नहीं हुई। सब भाँति असफलता ही हाथ लगी। विषाद में डूबा हूँ और अब तो बस, एक ही इच्छा है कि मन किसी भाँति शान्त हो जाय। आप राह बतायें।

अब यह एक नई अभिलाषा तुम्हें पकड़ी। तुम सीखे नहीं। इतनी आकांक्षाएं कीं, इतनी अभिलाषाएँ कीं, सब हार गईं; सबसे विषाद मिला। अब तुम नई आशा कर रहे हो, नई अभिलाषा संजो रहे हो—कि मन शान्त हो जाय। तो तुम ठीक से समझे नहीं। पाठ गहरा नहीं उतरा।

मन के शान्त होने का इतना ही अर्थ होता है कि अब हम और आकांक्षा न करेंगे। और क्या अर्थ होता है!

आकांक्षा करके देख लिया। आकांक्षा से मिली चिन्ता। चिन्ता से पैदा हुआ तनाव। और हर आकांक्षा असफलता में डुबा गई।

तुम्हारी कोई आकांक्षा पूरी हो ही नहीं सकती। क्योंकि तुम्हारी सब आकांक्षाएँ परमात्मा के विपरीत हैं। अगर तुम्हारी आकांक्षा परमात्मा के विपरीत नहीं है, तो तुम्हें आकांक्षा करने की कोई जरूरत ही नहीं है।

हम जब भी आकांक्षा करते हैं, तब नदी के विपरीत, धार में तैरने की कोशिश कर रहे हैं।

भक्त कहता है : तेरी इच्छा पूरी हो। मेरी क्या इच्छा! मैं हूँ कौन? तेरे सागर की एक छोटी-सी तरंग हूँ; तू जहाँ जाय, हम भी चलेंगे। एक तिनका हूँ; तू जहाँ बहे, हम भी बहेंगे।

जीसस ने सूली पर कहा है : 'हे प्रभु, तेरी मरजी पूरी हो।' एक क्षण में उनको आकांक्षा जगी थी, खयाल आया था; एक क्षण तो नाराज हो कर परमात्मा को कहा भी था कि 'यह मुझे क्या दिखा रहा है! क्या तूने मुझे छोड़ दिया? त्याग दिया? इस संकट की घड़ी में तू मेरे साथ नहीं रहा?' फिर समझ आई कि यह मैं क्या कह रहा हूँ! इसका तो अर्थ हुआ कि मेरी कोई छिपी वासना है, कोई दबी वासना है––कि भगवान् ऐसा करे, तो ठीक।

जब भी तुमने आकांक्षा की, तो तुमने क्या चाहा? तुमने चाहा कि अस्तित्व तुम्हारे अनुकूल चले। यह इतना विराट् अस्तित्व तुम्हारे अनुकूल चले तो कैसे चले!

तुम जरा सोचो तो; तुम्हारा अनुपात क्या है? ऐसा ही समझो कि एक छोटा-सा पत्ता इस गुलमोहर के वृक्ष में सोचने लगे कि सारा वृक्ष मेरे अनुकूल चले। जब मैं हिलूँ, तो हिले। और जब मैं ठहरूँ, तो ठहरे। और जब मैं सोऊँ, तो सो जाय। और जब मैं जागूँ, तो जागे। कैसे यह हो सकेगा? वृक्ष पत्ते की बात मान कर नहीं चल सकेगा। वृक्ष की बात ही मान कर पत्ते को चलना होगा। अंश को माननी पड़ेगी बात––अंशी की।

पूर्ण हमारी बात मान कर नहीं चल सकता है। लहरों की बात मान कर सागर चलेगा! कैसे यह होगा? वृक्ष जब हिलेगा, तो पत्ता हिलेगा। वृक्ष जब सो जायेगा, तो पत्ता सो जायेगा।

आदमी की तकलीफ यही है कि आदमी आकांक्षा करता है। आकांक्षा करता है––आकांक्षा का अर्थ हुआ कि वह सारे विराट् को अपने अनुकूल चलाना चाहता है। यह नहीं हो पाता; नहीं हो पाता तो विषाद होता है। असफलता हाथ लगती है, तो दुःख होता है, पीड़ा होती है। लगता है : सब मेरे दुश्मन हैं। सारा अस्तित्व

मेरे विपरीत है। कोई तुम्हारे विपरीत नहीं है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने दरवाजे पर बैठा है। बरसा हो रही है मूसलाधार और कोई भागा हुआ आया और उसने कहा कि बड़े मियां, क्या बैठे हो! तुम्हारी पत्नी नदी में गिर गई। अरे, भागो, बचाओ।'

तो मुल्ला भागा। कपड़े पहने हुए ही नदी में कूद पड़ा, और जोर-जोर से हाथ मार कर नदी में उलटी धारा की तरफ तैरने की कोशिश करने लगा। किनारे पर खड़े लोग चिल्लाये कि 'बड़े मियां, कुछ अकल से काम लो। पत्नी बह गई, तो नीचे की तरफ जायेगी। तुम ऊपर की तरफ तैर रहे हो!' मुल्ला ने कहा : 'तुम मेरी पत्नी को जानते हो कि मैं उसे जानता हूँ? किसी और की पत्नी हो, तो नीचे जाय। मेरी पत्नी को मैं भलीभाँति जानता हूँ। वह तो विपरीत ही जायेगी। वह जरूर ऊपर की तरफ गई होगी। जिन्दगी भर का मेरा अनुभव ही यह है।'

आदमी ऐसा ही है। तुम्हारी सारी आकांक्षाएँ-अभिलाषाएँ जीवन की धार के विपरीत हैं। धार के विपरीत बहने में ही अहंकार को मजा भी आता है। धार के साथ बहने में अहंकार टिकेगा ही नहीं। फिर तुम बचे ही नहीं।

जब तुमने कहा : 'प्रभु तेरी मरजी पूरी हो, तो तुम कहाँ रहे? मैं कहाँ रहा? मैं तो तभी रहता है, जब मेरी मरजी पूरी हो। जब मैं सारे अस्तित्व को अपनी मरजी के अनुसार झुका लूँ, तब मैं का मजा है। धार के साथ बहने में तो मैं विसर्जित हो जाता है।

तुम कहते हो : 'जीवन में कोई आकांक्षा-अभिलाषा पूरी नहीं हुई,' होती ही नहीं; किसी की भी नहीं होती। और अगर कभी तुम्हें ऐसा लगता हो कि कोई आकांक्षा पूरी हो गई, तो उसका इतना ही अर्थ है कि संयोगवशात तुमने वही आकांक्षा की, जो अस्तित्व की आकांक्षा थी। वह संयोग की बात है। हार निश्चित है, जीत संयोग है।

इसे मैं फिर दोहरा दूँ। हार निश्चित है, जीत संयोग है। यह ऐसा ही हुआ कि सोच रहा था कि मैं हिलूँ और तभी आ गया हवा का झोंका और वृक्ष हिलने लगा और पत्ता भी हिल गया और पत्ते ने कहा : अरे, बड़ा गजब हो गया।

मैंने सुना है : एक युवक अपनी प्रेयसी को ले कर समुद्र के तट पर बैठा है। प्रेयसी बड़ी मंत्रमुग्ध है युवक के प्रति। और जब कोई प्रेम में मंत्रमुग्ध होता है, तो फिर होश-हवाश नहीं रहता। तभी उस युवक ने एक कविता उद्धृत की। कविता का अर्थ है कि 'हे समुद्र की लहरों, उठो और आओ मेरी तरफ।' अब समुद्र की लहरें उठ ही रही थीं; आ ही रही थीं। उसने कहा : 'हे समुद्र की लहरों, उठो और आओ मेरी तरफ।' और बड़ी-बड़ी लहरें आने लगीं। उसकी प्रेयसी बोली :

'अरे गजब, समुद्र भी तुम्हारी मानता है!'

समुद्र किसकी मानता है! संयोग की बात होगी।

जीत सुनिश्चित नहीं है। हार सुनिश्चित है, जीत मात्र संयोग है।

तो कभी-कभी तुम जब जीत जाते हो, तब व्यर्थ मत अकड़ जाना। यह संयोग की बात थी कि तुमने जो आकांक्षा की थी, बड़ी विराट् की भी आकांक्षा थी। पूरी हो गई। लेकिन सौ में निन्यानबे मौके पर ऐसा संयोग नहीं होगा। संयोग तो कभी-कभार होते हैं। निन्यानबे मौके पर तो तुम हारोगे।

तुम कहते हो: 'जीवन में कोई आकांक्षा-अभिलाषा पूरी नहीं हुई, यह तुम्हारे ही साथ नहीं, सभी के साथ ऐसा है। किसी की भी पूरी नहीं हुई। अगर आकांक्षाएँ-अभिलाषाएँ ही पूरी होती होतीं, तो मलूकदास कहते: कन थोड़े कांकर घने?

वह कन थोड़े का मतलब: वह जो एक प्रतिशत कभी-कभी पूरी हो जाती है। और 'कांकर घने'––वह निन्यानबे प्रतिशत, जो कभी पूरी नहीं होती।

'सब भाँति असफलता हाथ लगी।' अब तो कुछ सीखो। अब तो जागो। अब तो कोई आकांक्षा मत करो। अब तुम फिर नई आकांक्षा कर रहे हो। तुम कह रहे हो: 'विषाद में डूबा हूँ। बस, अब तो एक ही इच्छा है कि मन किसी भाँति शान्त हो जाय।' अब तुमने नई आकांक्षा की––कि मन किसी भाँति शान्त हो जाय।

अकसर मेरे अनुभव में आया है कि जो लोग मन को शान्त करने में लग जाते हैं––और अशान्त हो जाते हैं। एक बड़ी झंझट की बात ले ली उन्होंने: अब मन शान्त होना चाहिए।

पहले धन पाना चाहते थे। धन शायद कोशिश करने से कभी मिल भी जाय। धन ऐसी तुच्छ चीज है कि मिल सकता है। कोई बड़ी भारी बात नहीं है। चोरी-चपाटी से भी मिल सकता है। बेईमानी से भी मिल सकता है। धोखे-धड़ी से भी मिल सकता है। और कभी संयोगवशात राह के किनारे पड़ा भी मिल सकता है।

कोई पद चाहता था। पद भी मिल सकता है।

अब तुमने एक बड़ी आकांक्षा की––मन शान्त हो जाय। यह सारी आकांक्षाओं में बड़ी से बड़ी आकांक्षा है। तुम मुश्किल में पड़ोगे।

अकसर मैंने देखा है कि धार्मिक आदमी जितने अशान्त हो जाते हैं, उतने अधार्मिक आदमी नहीं होते। धार्मिक आदमी तो बड़ी झंझट है।

एकात आदमी घर में धार्मिक हो जाय, तो तुम जानते हो––घर भर झंझट में पड़ जाता है। अभी वे पूजा कर रहे हैं! अभी वे ध्यान कर रहे हैं!

प्रार्थना कर रहे हैं! बच्चों शोरगुल मत करो। पत्नी बर्तन नहीं पटक सकती; दरवाजे जोर से लगाये नहीं जा सकते। सारा घर मुश्किल में पड़ जाता है। और वे कुछ शांत हो नहीं रहे हैं! वे वहाँ बैठे हैं और उबल रहे हैं। प्रार्थना के नाम पर, पूजा के नाम पर वहाँ भीतर आग जल रही है।

वे यह मौका ही देख रहे हैं कि कोई दरवाजा जोर से खटका दे; कि बच्चा रो दे; कि पत्नी बर्तन गिरा दे, तो वे निकल कर बाहर आ जायें कि मेरा ध्यान भंग कर दिया। कोई बहाना तो मिल जाय––कम से कम बाहर निकलने का। कम से कम यह तो हो जाय कि किसी दूसरे ने ध्यान भंग कर दिया।

जिनका ध्यान लगता है, उनका भंग होता ही नहीं। और जिनका भंग होता है, उनके पास ध्यान था ही नहीं, जो कि भंग हो जाय।

नहीं, तुम इस आकांक्षा से मत उलझो। अगर तुम्हें ठीक-ठीक समझ में आ गया कि सभी आकांक्षाएँ दुःख में डाल गई, तो अब नई आकांक्षाएँ मत करो––और तुम पाओगे कि मन शांत हो गया।

मन की शांति प्रयास से नहीं होती; इसी जीवन के प्रगाढ़ अनुभवों का सार-निचोड़ है––कि कोई आकांक्षा शांति में नहीं ले जाती, अशांत करती है।

तो अब यह नई आकांक्षा तो न करो। इतना तो कम से कम करो। अब बस, चुप हो जाओ। अब कह दो कि ठीक, जो होगा––होगा: मन अशांत होगा; हम क्या करेंगे! हमारे किये क्या हुआ? बाहर का नहीं सधा, भीतर का क्या सधेगा?

अब तो कह दो कि प्रभु, तेरी मरजी। अशांत रखना हो, तो अशांत रख। पागल रखना हो, तो पागल रख। अब तू जैसा रखेगा, वैसा रहेंगे। तेरी राजी में रजा हैं। जिहि विधि राखैं राम, तिहि विधि रहिये। जैसा रखेंगे––वैसा रहेंगे। अशांत रखना है, तो जरूर तुम्हारी कोई मरजी होगी। तुम मेरी अशांति से कुछ काम ले रहे होओगे। चलो, वही ठीक। इसमें भी मौज है।

तुम मेरी बात समझ रहे हो? अशांति में भी अगर तुम स्वीकार-भाव ले आओ, तो फिर कैसे अशांत रहोगे? अशांति में भी अगर राजी हो जाओ, तो शांत हो गये। अब और क्या शांति चाहिये! तुम्हारा तनाव विसर्जित हो जायेगा।

'जीवन तो अपना है लेकिन, सपनों पर अधिकार नहीं है।'

सुनो:

> जीवन तो अपना है लेकिन
> सपनों पर अधिकार नहीं है
> यूँ तो बहुतेरे जलते हैं, कुन्दन कौन यहां बन पाता
> डूबे तो लाखों है लेकिन, मोती किसके हाथों आता

मैं अपनी डगमग नैया को, कैसे तट से पार निहारूँ
सागर का आमंत्रण मुझको
लहरों को स्वीकार नहीं है
जीवन तो अपना है लेकिन
सपनों पर अधिकार नहीं है
अपना-अपना भाग्य, कहीं रसधार, कहीं पर बिजली गिरती
खिलता कोई फूल ओस में, कोई कली प्रथम दिन झरती
सावन के मेघों को प्यासे अधरों ने सौ बार निहारा
बादल किसके घर बरसें
जब अपना ही घर-बार नहीं है
जीवन तो अपना है लेकिन
सपनों पर अधिकार नहीं है
चित्र बड़ा मोहक है लेकिन, हलदी की अल्पना नहीं है
यह शृंगार हाथ मेरे का है, कोई कल्पना नहीं है
रूप तुम्हारा सोने जैसा, प्रतिबिम्बित मन के दरपन पर
दरपन अपनाये भी तो क्या
छाया का आकार नहीं है
जीवन तो अपना है लेकिन
सपनों पर अधिकार नहीं है।

छोड़ो सपने। जीवन तुम्हारा है; सपने छोड़ो।

दरपन अपनाये भी तो क्या
छाया का आकार नहीं है
जीवन तो अपना है लेकिन
सपनों पर अधिकार नहीं है।

ये आकांक्षाएँ सपने हैं--बस, सपने--कोरे सपने हैं। अब तुम नई आकांक्षा मत जगाओ—कि मन को शान्त करना है; कि मोक्ष पाना है; कि निर्वाण उपलब्ध करना है; कि समाधि लगानी है। अब तुम नई आकांक्षाएँ न जगाओ।

अगर तुम सारी आकांक्षाओं को गिर जाने दो, इस अनुभव के कारण--कि कोई आकांक्षा कभी पूरी नहीं होती--हुई ही नहीं; तो क्या शेष रह जायेगा--तुम्हारे भीतर? जो शेष रह जाय, वही समाधि।

मन को शान्त नहीं करना होता। मन को समझने से शान्ति आती है। शान्ति परिणाम है।

● आखिरी प्रश्न : भगवान्, मलूक-वाणी सुनते-सुनते हृदय भर आया है; आँसू बहने लगे हैं और नींद भी जाती रही है। बहुत अनुगृहीत हूँ। कल मैं आपसे दूर होनेवाली हूँ। पता नहीं फिर कब आपके पावन-चरणों के दर्शन हों। मुझे आशीष दें।

पूछा है--धर्म मन्जु ने। मन्जु नैरोबी से है। काफी दिन से यहाँ थी, अब जाने का क्षण उसका आया।

अच्छा हुआ कि आँखों में खूब आँसू बहे। आँसुओं से ज्यादा पवित्र करनेवाली और कोई कीमिया नहीं है। और आँसू आँखों को जितना साफ-सुथरा कर जाते हैं, उतनी और किसी कला से आँखें साफ-सुथरी नहीं होतीं। और आँख साफ-सुथरी हो जाय, तो परमात्मा दिखाई पड़ने लगे। और कमी ही क्या है?

सिर्फ आँखों पर धूल जमी है--विचारों की धूल। भाव के आँसू उस धूल को बहा दें, तो दर्पण साफ हो जाय। परमात्मा झलकने लगे।

ठीक हुआ। मलूकदास जैसे मस्तों की वाणी का इतना ही प्रयोजन है कि तुम रो सको; कि तुम हृदय भर रो सको; कि तुम सब लोक-लाज छोड़ कर रो सको; कि तुम सब ऊपर-ऊपर की बातचीत और ऊपर-ऊपर की औपचारिकताएँ और नियम, व्यवस्थाएँ--सबको भूल जाओ और रो सको।

'आँसू बहे और नींद भी जाती रही है।' ठीक ही हुआ। नींद सदा को ही टूट जाय। जो नींद रात लगती है, उसकी मैं बात नहीं कर रहा हूँ। लेकिन उससे भी एक गहरी नींद लगी है। आध्यात्मिक रूप में हम सोये हुए हैं। वह नींद टूट जाय। तो सन्तों की वाणी ठीक हृदय पर चोट कर गई, तो तुम्हें जगा गई।

पूछा है : 'और मैं आपसे दूर होने वाली हूँ कल।' दूर होने का अब उपाय नहीं मन्जु। समय और स्थान दूर नहीं करते हैं। यहाँ हो कि नैरोबी में, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा।

भाव अगर जुड़ा हो, तो दूर चाँद-तारों पर भी कोई हो, तो भी जुड़ा है। और भाव अगर न जुड़ा हो, तो कोई बिलकुल पास बैठा हो; देह से देह सटा कर बैठा हो, तो भी हजारों कोसों दूर है।

दूरी दूरी में हिसाब रखना। भाव जुड़ा हो, तो दूरी भी दूरी नहीं। भाव न जुड़ा हो, तो निकटता भी दूरी है।

और नींद तो टूटनेवाली है; आँखें और भी आँसुओं से भरेंगी; और भी गीली होंगी।

सच कहा था जाहिद तूने, जहर कातिल है शराब।
हम भी कहते यही, जब तक बहार आई न थी।।

दूसरों की भरी आँख देख कर बहुत हैं यहाँ, जिनको आँख नहीं भरती है।

उन्हें हैरानी भी होती है कि पागल हैं क्या!

सच कहा था जाहिद तूने, जहर कातिल है शराब।
हम भी कहते थे यही, जब तक बहार आई न थी।।

वे तब मुसकुरायेंगे तुम पर, जब तक बहार का उन्हें पता नहीं चला। जिस दिन उनका झोंका आ जायेगा, जिस दिन उनका वसन्त आयेगा, उस दिन से समझेंगे कि आँसुओं का मजा क्या है।

उनको देख कर आँसू रोकना मत। दूसरों की चिन्ता मत करना। कौन क्या कहता है--इसकी फिक्र मत करना। जिस व्यक्ति का परमात्मा की दिशा में जाना हो, उसे दूसरों के मन्तव्य का ध्यान रखना छोड़ देना चाहिए।

यहाँ तू रोई, नैरोबी में भी रोना। जहाँ भी हो, वहाँ प्रभु के लिए रोते रहना। रोने से कोई जितने करीब आया है प्रभु के और किसी तरकीब से नहीं आया। रोना सुगमतम मार्ग है। कोई ठीक-ठीक रो सके, तो कुछ और करने की जरूरत नहीं है। फिर ठीक-ठीक हँसने का अविर्भाव होता है।

भक्ति की एक ऐसी घड़ी आ जाती है, जब रोना और हँसना साथ चलता है। पहले रोना। फिर नम्बर दो पर घड़ी आती है, जब रोना-हँसना साथ चलता है। तब बिलकुल मतवालापन हो जाता है, क्योंकि जब रोना-हँसना साथ चलता है, तो लोग समझते हैं--बिलकुल पागल है।

फिर तीसरी घड़ी आती है, जब हँसना ही हँसना रह जाता है।

और फिर चौथी अन्तिम अवस्था आती है--न हँसना रह जाता, न रोना रह जाता; वही परम शान्ति है।

पर दूर जाने का कोई उपाय नहीं है। पास जो आ गया, उसे दूर जाने का कोई उपाय नहीं है।

मयखाने की चौखट को जरा चूम लें साकी।
मयखाने से आखिर तो जुदा हो ही रहे हैं।

नहीं, यह मयखाना ऐसा नहीं है। इसकी चौखट को चूमने की जरूरत नहीं है। इसकी चौखट बड़ी है। जो इस मयखाने का साझीदार हो गया, जिसने यहाँ बैठकर थोड़ी शराब पी ली, वह फिर जहाँ भी रहे, वहीं इस शराब को पी सकेगा। यह शराब सूक्ष्म है। बाहर पर निर्भर नहीं है। तुम्हारे भीतर की ही सुराही है। भरी है; तुम्हीं को ढालनी है।

दूर रहो या पास, याद जारी रहे।

उठे कभी घबरा के तो मयखाना हो आए।
पी आए तो फिर बैठ रहे यादे खुदा में।।

बस, पीना। कभी होश रहे, तो याद कर लेना। कभी बेहोशी आ जाय, तो उसमें डुबकी लगा लेना।

उठे कभी घबरा के तो मयखाना हो आए।
पी आए तो फिर बैठ रहे यादे खुदा में।।

समय और स्थान मूल्यवान नहीं है।

यह जो संबंध है--समय और स्थान से परे है। इस संबंध का नाम ही संन्यास है। संन्यास यानी एक ऐसा संबंध, जो समय और स्थान से परे है; एक ऐसा प्रेम जो न देह का है, न मन का है; एक ऐसा लगाव, जो पारलौकिक है; एक ऐसा स्वाद, जो इस पृथ्वी का नहीं है।

और मन्जु को वैसा स्वाद मिला है। उसकी आँखों में, उसके भाव में, उसके हृदय में उस स्वाद की तरंगें मैंने देखी है. मैं आश्वस्त हूँ।

आज इतना ही।

बाबा मलूकदास—यह नाम ही मेरी हृदय-वीणा को झंकृत कर जाता है। जैसे अचानक वसंत आ जाय! जैसे हजारों फूल अचानक झर जायें!

नानक से मैं प्रभावित हूं; कबीर से चकित हूं; बाबा मलूकदास से मस्त। ऐसे शराब में डूबे हुए वचन किसी और दूसरे संत के नहीं हैं।

नानक में धर्म का सारसूत्र है, पर रूखा-सूखा। कबीर में अधर्म को चुनौती है—बड़ी क्रांतिकारी, बड़ी विद्रोही। मलूक में धर्म की मस्ती है; धर्म का परमहंस रूप; धर्म को जिसने पीया है, वह कैसा होगा। न तो धर्म के सारतत्त्व को कहने की बहुत चिंता है, न अधर्म से लड़ने का कोई आग्रह है। धर्म की शराब जिसने पी है उसके जीवन में कैसी मस्ती की तरंग होगी, उस तरंग से कैसे गीत फूट पड़ेंगे, उस तरंग से कैसे फूल झरेंगे, वैसे सरल अलमस्त फकीर का दिग्दर्शन होगा मलूक में।

—भगवान श्री रजनीश

कन थोरे कांकर घने

मलूक-वाणी

भगवान श्री रजनीश